

श्री
जैनकथारत्नकोष
ભાગ ૧ લો.

Printed by Ramchandra Yesu Shedge, at the Nirnaya sagar Press, 23, Kolbhat Lane, Bombay
Published by Bhanji Maya for Bhimsi Maneck, 225 231, Mandvi, Sackgalli, Bombay

Printed by Ramchandra Yesu Shedge, at the Nirnaya-sagar Press, 23, Kolbhat Lane, Bombay

Published by Bhimsi Maneck, Mandvi, Sackgalli, Bombay.

श्री जैनकथा रत्नकोष भाग १ लो.

आ ग्रंथमां श्री सोमप्रभाचार्य कृत "सिंदूरप्रकर" मूल, टीका, बालावबोध अने रसिक कथाओ सहित
तथा श्रीमद् हेमचंद्राचार्य कृत "श्री वीतरागस्तोत्र" अर्थ सहित
तथा "श्रीगौतमपृच्छा" मूल, बालावबोध अने कथाओ सहित दाखल करेल छे.

आ ग्रंथो "समस्त साधु अने श्रावकवर्गने भणवा वांचवा माटे उपयोगी जाणीने छपावी प्रसिद्ध करनार

श्रावक भीमसिंह माणेक;

जैन पुस्तक वेचनार तथा प्रसिद्ध करनार. मांडवी शाकगली मुंबई.

संवत् १९७० आसो सुदि पूर्णीमा, सने १९१४.

॥ प्रस्तावना ॥

श्री जैन कथा रत्नकोष नाग १ लो, तेमां प्रथम बाल जीवोने नीति वैराग्यादि सन्मार्गनो बोध थवा माटे श्री सोमप्रन्नाचार्य विरचित "सिंदूरप्रकर" नामे ग्रंथ मूल, बालावबोध, टीका, नाषा अने रसिक बोधदायक कथार्ज सहित दाखल करेलो छे.

आ ग्रंथमां नीति विगेरे विषयोनुं एवी रीते यथातथ्य निरूपण करेलुं छे के वांचनारा सज्जनोने आवेहुब ते वात तेवाज स्वरूपे परिणम्या विना रहेज नहीं, तेथीज आ ग्रंथ बालकथी ते वृद्धने नणवा तेमज वांचवा नलामण करीए छीए. वली एवी रीते ए ग्रंथ मांहेला विषयो नएया वांच्या पछी नणनार के वांचनार सज्जनोनी तेवी रीतनी प्रवृत्ति पण अवश्य थवीज जोइए के जेथी ते वांचनारा "श्रीवीतराग परमात्मानी" नक्ति करवाने योग्य थाय, माटे ते पछी तुरत बीजो ग्रंथ श्रीमन्महा पंमित श्री हेमचंद्राचार्य विरचित "श्री वीतरागस्तोत्र" अर्थ सहित दाखल करेलो छे. आ ग्रंथ नएया वांच्या पछी संसारमां प्राणीमात्रने सुखडुःखनी प्राप्तिना हेतुनूत एवां जे

शुभाशुभ कर्म छे, तेनुं स्वरूप जाणीने तेथी विरक्त थवानो तेओए उद्यम करवो जोइए; ते समजवा माटे "श्री गौतमपृछा" नामे ग्रंथने मूल, बालावबोध अने रसिक कथाओ युक्त दाखल करेल छे. आ ग्रंथमां श्री गौतमस्वामीए जीवने सुखदुःखनी प्राप्तिना जुदा जुदा अडतालीश प्रश्नो "श्रीमहावीरस्वामी" ने पूछवाथी "श्री महावीरस्वामी (प्रभु)" ए ते प्रश्नो संबंधी शुभाशुभ कर्मोनां फल दार्ष्टांतिक बोधदायक कथाओ सहित कहेल ते दाखल करेल छे. जे भणवा वांचवाथी सज्जनो संसारथी भय पामता थका मनुष्यभव पामीने धर्ममार्गमां प्रवर्त्तवाने उजमाल थाय. एवी रीते त्रणे ग्रंथोए करीने आ प्रथम भाग समाप्त कर्यो छे.

वली आ ग्रंथ मुनि महाराजने व्याख्यानमां वधारे उपयोगी होवाथी पानां आकारे छपाव्यो छे.

प्रथम आ ग्रंथ शेठ भीमसिंह भाइए छपाव्यो हतो ते खपी जवाथी फक्त सिंदूरप्रकर जुदो छपाव्यो हतो, ते पण खपी जवाथी अने मजकुर ग्रंथ "जैन कथा रत्नकोष भाग १ लो" नी बहुज मागणी थवाथी ए त्रणे ग्रंथो साथे छपावी प्रसिद्ध कर्या छे.

ए अंगोमां दृष्टिदोषथी अथवा मतिमंदताने लीधे जे कांइ भूलचुक रही होय अगर सिद्धांत विरुद्ध लखायुं होय ते संबंधी सर्व वांचनार श्री संघनी समक्ष क्षमा चाहीए छीए, अने तेवी भूलो वांचनारा सज्जनोने सुधारी वांचवानी भलामण करीए छीए.

मुंबई मांडवी शाकगली.
सं० १९७० आसो सुदि पूर्णिमा.
ता० ४ ऑक्टोबर १९१४.

श्रावक भीमसिंह माणेकना
कार्यप्रवर्तको.



श्री सोमप्रभाचार्यविरचित

श्री सिंदूर प्रकर.

आ ग्रंथ

मूल, टीका, भाषा, बालावबोध अने कथाउ सहित छे.

तेने यथामति संशोधन करावीने,

श्रावक भीमसिंह माणके

श्री मोहमयी पत्तन मध्ये

निर्णयसागर छापखानामां छपावी प्रसिद्ध कर्यो छे.

सने १९१४ संवत् १९७० श्रावण वदि अगीयारस.

Printed by R Y Shedge, at the Nirnaya-sagar Press, 23, Kolbhat Lane, Bombay

Published by Bhimsi Maneck, Mandvi, Sackgalli, Bombay

प्रस्तावना.

"सिंदूर प्रकर" आ अपूर्व ग्रंथमां तेना कर्त्ता श्री सोमप्रभाचार्य महाराजे नीति आदि विषयोनुं यथातथ्य एवुं तो निरूपण करेलुं छे के वांचक वर्गना हृदयमां वांचवानी साथेज नीति विगेरेनी सज्जड छाप बेसाडी दे छे. आ अलौकिक ग्रंथ प्रथम शेठ भीमसी भाइए "जैनकथा रत्नकोषना" प्रथम भागमां छपावेल हतो. ते ग्रंथनी तमाम प्रतो थइ रहाथी अने तेनी मागणी घणां स्थलेथी आववाथी अमोए आ "सिंदूर प्रकर" ग्रंथ मूल, टीका, भाषा, बालावबोध अने तमाम कथाओ सहित जूदो छपाव्यो हतो, परंतु तेनी नकलो पण तमाम खपी जवाथी यथामति संशोधन करी आ आवृत्ति छपावी छे.

जैनकथा रत्नकोष भाग १ लानी खामी आ ग्रंथ छपाववाथी दूर थइ छे, कारण के तेमां समावेश करेला ग्रंथो पैकी वीतरागस्तोत्र तथा गौतमपृछा आ साइझमा अमारा तरफथी बहार पडेल छे एटले जे गृहस्थोने प्रथम भाग खूटतो हशे ते आ त्रणे ग्रंथ साथे बंधावशे तो प्रथम भाग थइ रहेशे.

आ ग्रंथ वांच्या पछी ते फरी फरी वांचवा मन थाय छे. मतलब के तेमां समावेल विषय धर्मोपयोगी होवानी साथे संसार व्यवहारोपयोगी पण होवाथी ए ग्रंथ कंठाग्रे थतां अलभ्य लाभ आपवा परिपूर्ण समर्थ छे. वांचनार साहेबोने तेमां निरूपण करेली बाबत आबेहुब तेवाज स्वरूपे परिणम्या विना रहे नहीं एवी ए ग्रंथकारनी चमत्कृति छे, अने तेथी तेमांना विषयो हृदयमां प्रवेश थवानी साथे तेवी रीतनी प्रवृत्ति अवश्य निःसंदेह थइ शके एम कही शकाय तेम छे. जेथी वीतराग परमात्मानी भक्तिमां लीन थइ आ असार संसारसमुद्र तरी पार पडवाने समर्थ थवाय छे अने तेथी आ ग्रंथ एक नौका समान छे.

आ ग्रंथ छपाववामां दृष्टिदोषथी अगर मतिमंदताने लीधे कांइ पण न्यूनाधिक वचन सिद्धांत विरुद्ध लखायुं होय ते मिथ्या दुष्कृत हो, अने तेवी कोइ भूल होय तो ते वांचनार श्रीसंघे सुधारी वांचवा कृपा करवी.

मुंबइ. ता. १७ मी ऑगष्ट सने १९१४

ली. श्रावक
भीमसिंह माणेकना
कार्यप्रवर्तको.

अस्य पुस्तकस्यानुक्रमणिका.

सिंदूरप्रकराख्यग्रंथनी अनुक्रमणिका.

अथ

॥ श्रीसिंदूरप्रकरः प्रारभ्यते ॥

प्रथम ग्रंथना प्रारंभमां ग्रंथकर्त्ता पोताना जे इष्टदेव तेना चरणस्मरणरूप मंगलाचरणपूर्वक आ ग्रंथ सांभलनाराउने आशीर्वाद कहे छे.

॥ शार्दूलविक्रीडितवृत्तद्वयम् ॥

॥ सिंदूरप्रकरस्तपःकरिशिरःक्रोडे कषायाटवी,–दावार्चिर्निचयः प्रबोधदि-
वसप्रारंभसूर्योदयः ॥ मुक्तिस्त्रीकुचकुंभ(वदनैक)कुंकुमरसः श्रेयस्तरोः
पल्लव,–प्रोल्लासः क्रमयोर्नखद्युतिभरः पार्श्वप्रभोः पातु वः ॥ १ ॥

अर्थः– (पार्श्वप्रभोः के०) श्रीपार्श्वनाथ प्रभुना (क्रमयोः के०) चरण जे तेमना (नख के०) नख, तेनी (द्युति के०) कांति, तेनो (भरः के०) समूह, ते (वः के०) तमोने (पातु के०) रक्षण करो. हवे ते नखकांतिसमूह केवो छे? तो के (तपः के०)

तपरूप (करि के०) हस्ती, तेना (शिरः के०) मस्तक, तेनो (क्रोडे के०) मध्यभाग जे कुंभस्थल, तेने विषे (सिंदूरप्रकरः के०) सिंदूरना पुंज समान छे, वली (कषाय के०) क्रोध, मान, माया, लोभ, तेरूप (अटवी के०) वन, तेने बालवा माटे (दा-वार्चिर्निचयः के०) वनना अग्निनी ज्वालाना समूहनी तुल्य छे, वली (प्रबोध के०) ज्ञान तेरूप जे (दिवस के०) दिवस, तेनो (प्रारंभ के०) उदय, तेने विषे (सूर्योदयः के०) सूर्योदय सदृश छे, वली (मुक्तिस्त्री के०) मुक्तिरूप जे स्त्री, तेना (कुचकुंभ के०) स्तनकुंभ, तेने विषे (कुंकुमरसः के०) कुंकुमरसना लेपन समान छे, तथा (श्रेयस्तरोः के०) कल्याणरूप जे वृक्ष, तेना (पल्लव के०) नवांकुर, तेनो छे (प्रोल्लासः के०) उत्पत्ति जे थकी, एवो छे. आ श्लोकमां नखकांतिसमूहनी रक्तता छे,माटे सिंदूरप्रकरनी उपमा आपी छे. तथा वली आ श्लोकमां कोइ ठेकाणे (मुक्तिस्त्रीवदनैककुंकुमरस) एवो पण पाठ छे. तेनो अर्थ एवी रीते छे के मुक्तिरूप स्त्रीनुं शोभायमान जे मुख ते मुखकमल रंगवाने विषे कुंकुमरसना लेपन सरखो नखकां-तिसमूह छे, तेवो अर्थ जाणवो, माटे हे भव्यजनो! ए प्रकारे जाणी मनमां विवेक लावीने श्रीपार्श्वनाथना चरणकमलज सेवन करवां. ते सेवनार सुजनने जे पुण्य उत्पन्न

थाय छे, ते पुण्यना प्रसादे करीने उत्तरोत्तर मांगलिक्यमाला विस्तार पामो ॥ १ ॥

॥ टीका ॥ श्रीमत्पार्श्वजिनं नत्वा, स्तोतॄणां सुखकारकम् ॥ सद्यः संस्मृतिमात्रेण, प्रत्यूहव्यूहवारकम् ॥ १ ॥ श्रीचंद्रकीर्त्तिसूरीणां, सद्गुरूणां प्रसादतः ॥ सिंदूरप्रकर-व्याख्या, क्रियते हर्षकीर्त्तिना ॥ २ ॥ युग्मं ॥ ग्रंथकर्ता आदौ इष्टदेवताचरणस्मरणरूपं मंगलाचरणपूर्वकं श्रोतॄन् प्रति आशीर्वादवृत्तमाह ॥ व्याख्या ॥ पार्श्वप्रभोः श्रीपार्श्व-नाथस्य क्रमयोश्चरणयोर्नखद्युतिभरः नखकांतिसमूहो वो युष्मान् पातु अवतु रक्षतु ॥ कथंभूतो नखद्युतिभरः तपःकरिशिरःक्रोडे सिंदूरप्रकरः तप एव करी हस्ती तस्य शिरःक्रोडे मस्तकमध्यभागः कुंभस्थलं तत्र सिंदूरप्रकरः सिंदूरपुंजसदृशः नखद्युतिभरस्य रक्तत्वात् सिंदूरप्रकरोपमा । पुनः कथंभूतो नखद्युतिभरः कषायाटवीदावार्चिर्निचयः कषायाः क्रोध—मान—माया—लोभास्त एव अटवी अरण्यं वनं तस्याः दावार्चिर्निचयः दावाग्निज्वालासमूहतुल्यः । पुनः कथंभूतो नखद्युतिभरः प्रबोधदिवसप्रारंभसूर्योदयः प्रबोधो ज्ञानं स एव दिवसो दिनं तस्य प्रारंभे उदये सूर्योदयसमानः । पुनः कथंभूतो नखद्युतिभरः मुक्तिस्त्रीकुचकुंभकुंकुमरसः मुक्तिरेव स्त्री तस्याः कुचावेव कुंभौ तत्र कुंकुमरसः काश्मीररजोद्भवलेपतुल्यः मुक्तिस्त्रीवदनैककुंकुमरस इति वा पाठः । पुनः

कथंभूतो नखद्युतिभरः श्रेयस्तरोः पल्लवप्रोल्लासः श्रेयः कल्याणमेव तरुर्वृक्षस्तस्य पल्लवानां नूतनपत्राणां प्रोल्लासः उद्गमः । ईदृशः पार्श्वप्रभोः क्रमयोश्चरणयोर्नखद्युतिभरो वो युष्मान् पातु रक्षतु नखद्युतिभरस्य रक्तवर्णत्वात् रक्ता एवोपमा । भो भव्यप्राणिन् ! एवं ज्ञात्वा मनसि विवेकमानीय श्रीपार्श्वनाथस्य चरणकमलौ एव सेव्यौ सेव्यमानानां यत्पुण्यमुत्पद्यते तत्पुण्यप्रसादात् उत्तरोत्तरं मांगलिक्यमाला विस्तरंतु ॥ १ ॥

भाषाकाव्यः—शोभित तप गजराज, सीस सिंदूरपूर छवि ॥ बोधदिवस आरंभ, करन कारन उद्योत रवि ॥ मंगल तरु पल्लव, कषाय कंतार हुताशन ॥ बहु गुनरतन निधान, मुक्ति कमला कमलासन ॥ इहविध अनेक उपमा सहित, अरुन वरन संताप हर ॥ जिनराय पाय नख ज्योति वर, नमत बनारसी जोरी कर ॥ १ ॥

हवे कवि सज्जन पुरुष प्रत्ये पोतानी विज्ञप्ति करे छे.

संतः संतु मम प्रसन्नमनसो वाचां विचारोद्यताः, सूतेऽम्भः कमलानि
तत्परिमलं वाता वितन्वंति यत्॥ किंवाभ्यर्थनयानया यदि गुणोऽस्त्यासां
ततस्ते स्वयं, कर्त्तारः प्रथनं न चेदथ यशःप्रत्यर्थिना तेन किम् ॥२॥

अर्थः—(संतः के०) सज्जनो, (मम के०) मने, (प्रसन्नमनसो के०) प्रसन्न छे मन जेनुं एवा (संतु के०) हो. अर्थात् मारी उपर प्रसन्न चित्तवाला थाउ. ए सज्जनो केवा छे ? तो के (वाचां के०) वाणीउना (विचारोद्यताः के०) सदसद्विचारने विषे सावधान एवा अर्थात् आ वाणी सारी, आ वाणी नहि सारी ए प्रकारना विचारने जाणनारा छे. कवि कहे छे ते घटे छे (यत् के०) जे कारण माटे (अंबः के०) जल जे छे, ते (कमलानि के०) कमलोने (सूते के०) उत्पन्न करे छे, परंतु (तत्परिमलं के०) ते कमलोनो आमोद जे छे तेने तो (वाताः के०) वायुउ (वितन्वंति के०) विस्तारे छे, तेम हुं पण आ ग्रंथने रचीश, परंतु ग्रंथनो विस्तार तो सज्जन पुरुषोज करशे. कोइ ठेकाणे कहेलुं छे के ॥ श्लोक ॥ पद्मानि बोधयत्यर्कः, काव्यानि कुरुते कविः ॥ तत्सौरभं नभस्वंतः, संतस्तन्वंति तद्गुणान् ॥ अर्थः—कमलने सूर्य विकसित करे छे, तेम काव्योने कवि करे छे, अने ते कमलोना सुगंधने वायु प्रसार करे छे, तेम ए कविना गुणोने संत पुरुषो विस्तारे छे, माटे सज्जननुं एवुं लक्षणज होय छे. (वा के०) अथवा जो ते सज्जनोनी अभ्यर्थना हुं करुं तोपण ते (अनया के०) आ मारी कवितानी प्रशंसा करो एवी (अभ्यर्थ-

शा कारण माटे के
नया के०) याञ्चाए करीने (किं के०) शुं ? कांइज नहि. (गुणोऽस्ति के०) गुण छे,
(यदि के०) जो (आसां के०) आ मारी वाणीउं मध्ये (प्रथनं के०)
(ततः के०) तो (ते के०) ते सज्जनो, (स्वयं के०) पोतानी मेळेज (प्रथनं के०)
विस्तारने (कर्त्तारः के०) करनारा थशे. अर्थात् आ ग्रंथमां कांइ गुण हशे तो
सज्जनो छे ते मारी प्रार्थना कर्या विनाज विस्तार करशे, (अथ न चेत् के०)
वली जो आ मारी वाणीउंमां गुण नहि होय तो (यशःप्रत्यर्थिना के०) यशना
शत्रुभूत अर्थात् अपयशने करनारा एवा (तेन के०) ते विस्तारे करीने (किं के०)
शुं ? कांइज नहि. एटले निर्गुणनो विस्तार करवाथी अपयशज थाय छे ॥ २ ॥

॥ टीका ॥ अथ कविः सज्जनपुरुषान्प्रति स्वविज्ञप्तिमाह ॥ संत इति ॥ सज्जना
मम प्रसन्नमनसः संतु ममोपरि प्रसन्नचित्ताः भवंतु । किं विशिष्टाः संतः । वाचां
कविवाणीनां विचारे सदसद्विचारे उद्यताः सावधानाः समीचीनासमीचीनविचारज्ञाः
यत् यस्मात् कारणात् अंभः पानीयं कमलानि सूते तेषां कमलानां परिमलमामोदं
वायवो वितन्वंति विस्तारयंति तद्भदेनं ग्रंथमहं रचयिष्यामि . परं विस्तारं सज्जनाः
करिष्यंति ॥ यतः ॥ पद्मानि बोधयत्यर्कः काव्यानि कुरुते कविः॥ तत्सौरभं नभस्वंतः,

संतस्तन्वंति तद्गुणान् ॥ अथवा अनया ममाऽभ्यर्थनया सतामग्रे प्रार्थनया किं अपितु न किमपि। कुतः। यद्यासां मम वाणीनां मध्ये गुणोऽस्ति तदा ते संतः स्वयमेव प्रथनं विस्तारं कर्त्तारः भविष्यंति ॥ यद्यस्मिन् शास्त्रे कश्चिद्गुणो भविष्यति तदा सन्तः स्वयमेव अभ्यर्थनां विनैव विस्तारं करिष्यंति ॥ अथ चेद्यदि आसां मम वाणीनां मध्ये गुणो नास्ति तदा तेन प्रथनेन विस्तरेण किं न किमपि ॥ कथंभूतेन तेन प्रथनेन विस्तरेण यशः-प्रत्यर्थिना यशःप्रत्यर्थी शत्रुभूतं यत्तत् यशःप्रत्यर्थी तेन यशःप्रत्यर्थीना यशसो विनाशकेन निर्गुणस्य विस्तरेण अयशो भवतीत्यर्थः ॥ २ ॥

·भाषाकाव्यः—जैसें कमल सरोवर वासैं, परिमल तासु पौन परगासैं ॥ त्यौं कवि भाषहि अक्षर जोर, संत सुजस प्रगटाहिं चिहू ओर ॥ जो गुणवंत रसाल कवि, तौ जगमहिमा होइ ॥ जो कवि अक्षरगुन रहित, तौ आदरे न कोइ ॥ २ ॥

हवे करी छे सकल सुरासुरे सेवा जेमनी एवा जे श्रीवीतराग तेमना आगमना अनुसारे भव्यजनना हितने माटे धर्मोपदेश कहे छे.

॥ उपजातिवृत्तम् ॥ त्रिवर्ग्गसंसाधनमंतरेण, पशोरिवायुर्विफलं नरस्य ॥ तत्रापि धर्म्मं प्रवरं वदंति, न तं विना यद्भवतोऽर्थकामौ ॥ ३ ॥

अर्थः—हे भव्यजनो ! (त्रिवर्गसंसाधनं के०) धर्म, अर्थ अने काम, तेना साध-
ननी (अंतरेण के०) विना (नरस्य के०) मनुष्यनुं (आयुः के०) आयुष्य (पशो-
रिव के०) ढागादिकनी पेठे (विफलं के०) निष्फल जाणवुं. अर्थात् धर्म, अर्थ,
काम अने मोक्ष ए चार जे पुरुषार्थ छे तेमां हाल भरतखंडमां मोक्ष तो साधवाने शक्य
नथी, ए कारण माटे शेष धर्म, अर्थ अने काम, ए त्रणना उपार्जन विना नर जे
मनुष्य तेनुं जीवितव्य पशुनी पेठे विफल जाणवुं. हवे त्यां आशंका करे छे के ते धर्म,
अर्थ अने काम, ए त्रणे समान छे के कांइ तेउमां अंतर छे ? तो त्यां कहे छे के
(तत्रापि के०) ते त्रण वर्गमां पण (धर्म के०) धर्मने (प्रवरं के०) श्रेष्ठ (वदंति
के०) कहे छे. (यत् के०) जे कारण माटे (तं के०) ते धर्म (विना के०) विना
(अर्थकामौ के०) अर्थ अने काम (न के०) नहि (भवतः के०) होय छे; कारण
के जेणे पूर्वजन्मे धर्म कर्यो छे तेनेज अर्थ, काम आ जन्ममां प्राप्त थाय छे. ते
माटे त्रण वर्गमां जे धर्म छे, तेज श्रेष्ठ छे. तेथी हे भव्यप्राणीउ ! मनने विषे विवेक
लावीने श्रीसर्वज्ञप्रणीत धर्मज आचरण करवो. धर्माचरण करनारा सज्जनोने जे पुण्य
उत्पन्न थाय छे, ते पुण्यना प्रसादे करीने उत्तरोत्तर मांगलिक्यमाला विस्तार पामो ॥ ३ ॥

टीकाः—अथ विदितसकलसुरासुरसेव्यस्य देवाधिदेवस्य श्रीवीतरागस्यागमानुसारेण नव्यानां हितहेतवे धर्मोपदेशमाह ॥ त्रिवर्ग इति ॥ नो नव्याः त्रिवर्गसंसाधनं अंतरेण नरस्य आयुः पशोरिव विफलं ज्ञेयं । धर्मार्थकाममोक्षाश्चत्वारः पुरुषार्थाश्चतुर्वर्गास्तेषां मध्ये सांप्रतं अस्मिन् नरतक्षेत्रे मोक्षः साधयितुं न शक्यः ॥ अतः कारणात् शेषस्त्रिवर्गः धर्मार्थकामरूपः । तस्य त्रिवर्गस्य संसाधनं उपार्जनं अंतरेण विना नरस्य मनुष्यस्य आयुर्जीवितं पशोरिव विफलं निष्फलं वृथेत्यर्थः ॥ येन नरेण धर्मार्थकामानां संसाधनं उपार्जनं न क्रियते तस्य जीवितं पशोरिव वागादेरिव वृथा निष्फलं ॥ यतः ॥ धर्मार्थकाममोक्षाणां, यस्यैकोऽपि न विद्यते ॥ अजागलस्तनस्येव निष्फलं तस्य जीवितम् ॥ १ ॥ इति ॥ ते त्रयोऽपि किं सदृशाः वा किंचिदंतरं इत्याह ॥ तत्रापि त्रिवर्गे धर्म प्रवरं वदंति श्रेष्ठं कथयंति कुतः यत् यस्मात् कारणात् धर्म विना अर्थकामौ न नवतः । येन पूर्वजन्मनि धर्मः कृतो नवति तस्यैवात्रार्थकामौ नवतः नान्यस्य ॥ यदुक्तं ॥ किं जंपिएण बहुणा, जं जं दीसइ समह्न जियलोए ॥ इंदीयमणाजिरामं, तं तं धम्मं फलं सव्वं ॥ २ ॥ अतः कारणात् त्रिवर्गे धर्म एव श्रेष्ठः ॥ नो नव्यप्राणिन्नेवं ज्ञात्वा मनसि विवेकमानीय श्रीसर्वज्ञप्रणीतो धर्म एवाचरणीयः

धर्माचरतां सता यत्पुण्यमुत्पद्यते तत्पुण्यप्रसादात् उत्तरोत्तरं मांगलिक्यमाला विस्तरंतु॥३॥
धर्मीचरतां सता यत्पुण्यमुत्पद्यते तत्पुण्यप्रसादात् उत्तरोत्तरं मांगलिक्यमाला विस्तरंतु॥३॥

भाषाकाव्यः—पुरुष तीन पदारथ साधहिं, धरम विशेष जानी आराधहिं ॥ धरम प्रधान कहैं सब कोइ, अरथ काम धरमहीतें होइ ॥ धरम करत संसार सुख, धरम करत निरवान ॥ धरमपंथ साधन विना, नर तिरियंच समान ॥ ३ ॥

माटे धर्मने विषे प्रमाद न करवो, धर्मोद्यम करवाने प्रसादे ललितांग कुमर सुख पाम्यो, अने धर्म नहीं करवाथी सज्जन नामे सेवक दुःख पाम्यो ते बेहुनी कथा कहे छे.

कथा—एहज भरतक्षेत्रने विषे श्रीवाल नामे नगर छे. तिहां नरवाहन नामे राजा राज्य करे छे, तेने रूप यौवननिधान, सर्व गुणे करी प्रधान, अमृत समान जेनी वाणी छे एवी कमला नामे स्त्री छे. तेनी कुखे जेम छीपने विषे मुक्ताफल उपजे, तेवा रूपे करी अमर समान ललितांग नामे कुंअर जन्म्यो, ते अनुक्रमे सर्व कलामां प्रवीण थयो. साक्षात् कंदर्पावतार जेवो अने विनय विवेक विचार चातुर्यादि गुणे संपन्न थयो. तेने लालतां पालतां ते यौवनावस्थाने पाम्यो, ते वारे अनेक प्रकारनां सांसारिक सुख भोगवतो दिवस व्यतिक्रमवा लाग्यो. कोइक अवसरे ते कुमरने कोइ सज्जन एवे नामे मित्र आवी मल्यो, यद्यपि तेनुं नाम तो सज्जन छे परंतु

॥ ५ ॥

परिणामे करी ते अति दुर्जन छे: हवे तेमी उपर कुमर अत्यंत प्रीति राखे छे, पण ते पोतानुं दुर्जनपणुं वधारतो जाय छे ॥ यतः ॥ शशिनि खलु कलंकं, कंटकं पद्मनाले, जलधिजलमपेयं, पंडिते: निर्धनत्वं ॥ दयितजनवियोगं, दुर्जनत्वं स्वरूपे, धनपतिकृपणत्वं, रत्नदोषी कृतांतः ॥ १ ॥ जाड्यं धीमति गण्यते व्रतरुचौ दंजः शुचौ कैतवं ॥ इति काव्यं ॥ शशी दिवसधूसरो गलितयौवना कामिनी, सरो विगतवारिजं मुखमनक्षरं स्वाकृतेः ॥ प्रभुर्धनपरायणः सतत दुर्गतिः सज्जनो, नृपांगणगतः खलो नवंति सप्त शल्यानि मे ॥ २ ॥ इति ॥ जेम नागरवेलिमां निष्फलतानुं कलंक, चंदनमां कटुतानुं कलंक, लक्ष्मीमां चपलतानुं कलंक, सुवर्णने विषे निर्गंधतानुं कलंक छे, तेम ललितांग कुमरने विषे वार्ताविशेष जे कांइ कार्य प्रमुख करवां तथा गुणज्ञाता, पटुता प्रमुख जे करवां, ते सर्वमां सज्जननो मेलाप राखवो, ते कलंकरूप छे.

अन्यदा ललितांग कुमर राजाने नमस्कार करवा माटे गयो. विनयवंत गुणवंत कुमरने देखी राजाए संतुष्ट थइने एक बहु मूल्यनो अपूर्व हार कुमरने दीधो. कुमर राजाने नमस्कार करी पाछो वलतां ते कुमरनी मार्गमां याचकजनोए जय जयारव करी प्रार्थना कीधी, तेथी कुमरे तरत ते हार याचकोने आपी दीधो. ते

सर्व वात सज्जने जाणी, अने तेणे आवी राजानी आगल चाडी खाधी ॥ कह्युं छे के ॥ परविघ्नेन संतोषं, लजते डुर्जनो जनः ॥ लजेदग्निः परां दीप्तिं, परमंदिरदाहतः ॥ १ ॥ राजाए ते वात सांजली क्रोधवंत थइ कुमरने तेडावी एकांते बेसाडी शिखामण आपीने कह्युं, के हे पुत्र ! तुं अत्यंत दान देवाना व्यसननो त्याग कर ॥ यतः ॥ अतिदानाद्बली बद्धो, नष्टो मानात् सुयोधनः ॥ विनष्टो रावणो लौल्या—दति-सर्वत्र वर्जयेत् ॥ १ ॥ महाडुःखाय संपद्ये,—दतिमेघस्य वर्षणम् ॥ प्राणघाताय जायेत, प्राणिनामतिजोजनम् ॥ २ ॥ हे पुत्र ! आयपदथी अधिको व्यय करे तो समुद्र पण खाली थइ जाय, माटे पछी निर्धन पुरुष क्यांय आदर न पामे ॥ यतः ॥ आदरं लजते लोको, न कापि धनवर्जितः ॥ कांतिहीनो यथा चंद्रो, वासरे न लजेत् प्रथां ॥ १ ॥ यस्यास्ति वित्तं स नरः कुलीनः इति ॥ माटे कुल, शील, आचार, विद्या, इंद्रियनुं पटुत्व, ए सर्व धन विना निरर्थक जाणवां. तो हवे हे वत्स ! आजथी तारे आयपद माफक उचित खरच करवो, द्रव्यनो संग्रह करवो, जे माटे राज्यने योग्य तुंज छो, अने राज्य पण जो जंडारमां द्रव्य सबल हशे तोज चालशे, अने वली द्रव्य हशे तोज सजा सर्व तारी आज्ञामां रहेशे.

एवुं पितानुं वचन सांजली कुमर मनमां चिंतववा लाग्यो के जूर्ज, मारा पितानुं मारा उपर केटलुं हेत छे? ॥ यतः ॥ आकारैरिंगितैर्गत्या, चेष्टया जाषणेन च ॥ नेत्रवक्त्रविकारैश्च, लक्ष्यतेऽन्तर्गतं मनः ॥ कोइक पुण्यवंतनी उपरज मातापितानी सौम्य दृष्टि पडे. हवे कुमर पितानी आज्ञा पाम्या पछी स्वल्प स्वल्प दान धर्म करवा लाग्यो, ते वारे याचक जनो कहेवा लाग्या के हे ललितांग कुंअर! प्रथम तमे हाथी सरखा दातार थइने हवे गर्दन जेवा कृपण केम थया? अथवा प्रथम तमे कल्पवृक्ष समान थइने हवे धतुराप्राय केम थया? अथवा पहेला सिंह समान थइने हवे शीयालीया जेवा केम थया? एम स्वार्थनिष्ठ याचक लोको कहेवा लाग्या ॥ यतः ॥ तावत् प्रीतिर्जवेल्लोके, यावद्दानं प्रदीयते ॥ वत्सः क्षीरक्षयं दृष्ट्वा, स्वयं त्यजति मातरम् ॥ १ ॥ कदापि समुद्र मर्यादाथी चूके, राजा हरिचंद सत्य मूके, मेरु कंपायमान थाय, पृथ्वी पातालने चांपे, तथापि सत्पुरुष पोतानी वाचा चूके नहीं ॥ यतः ॥ चलेच्च मेरुः प्रचलेत्तु मंदरं, चलेत्तु ताराग्रहचंद्रजानुः ॥ कदापिकाले पृथिवी चलेद्धि, तथापि वाक्यं न चलेद्धि साधोः ॥ १ ॥ एवां वाक्य सांजली कुमर कुःखित थयो थको चिंतववा लाग्यो के मने तो वाघ नदीना न्याय समान कष्ट प्राप्त थयुं छे. हवे जो हुं

दानेश्वर थाउं छुं, तो पितानी आज्ञानुं उल्लंघन थाय छे, अने जो दान नथी आपतो, तो कीर्त्ति जाय छे ॥ यतः ॥ जइ गिलइ गलइ उयरं, जइ न गिलइ गलंति न यणाइं ॥ अहिविसमा कज्ज गइ, अहिणा छछुंदरी गहिया ॥ १ ॥ अथवा रुडुं करतां मुजने श्यो दोष छे, एवुं विचारी कुमर वली पण पूर्वनी पेठे दातार थको दान देवा लाग्यो, ते वात राजाए सांजली ते वारे कोपायमान थइने कुमरने देशवटो दीधो. पछी कुमर पण महामाननो धरनार, साहसिकनो शिरदार ते थोकाएक असवारोने साथे लइ हाथमां हथियार लइने तत्काल परदेशे चाल्यो, केमके तेजी ताजणो खमे नहीं. पछी ते समाचार लोकोना मुखथी जाणीने सज्जन पण पाछलथी नीकलीने कुमरने जइ मल्यो. मार्गमां बेहु जण चाल्या जाय छे, ते वारे सज्जन प्रत्ये कुमर पूछवा लाग्यो के हे सज्जन! कांइ चमत्कारिक वात तो कहो. ते वारे सज्जन बोल्यो के हे कुमरजी! तमे कहो के पुण्य अने पाप ए बे मांहे कोण रुडुं छे? के जेनी प्रशंसा करीए. ते वारे ललितांग कुमर हसीने कहेवा लाग्यो के अरे जूंडा मूर्खा! एटलुं तो सहु कोइ जाणेज छे के जिहां धर्म तिहां जय, अने पाप तिहां क्षय छे. ते सांजली अधर्मी सज्जन बोल्यो के हे स्वामी! जो पुण्य रुडुं छे, तो तमे

दानपुण्यादिक करतां करावतां इहां आवी अवस्था केम पाम्या? त्यारे तेने कुंअरे कह्युं के जे कष्ट पामीए ते पूर्वकृत पापकर्मनो उदय जाणवो अने जे शाता पामीए ते पूर्वकृत पुण्यकर्मनो उदय जाणवो. ते वारे वली सज्जन बोल्यों के तमारा धर्मनुं फल तो में प्रत्यक्ष दीठुं, माटे हवे तमे चौर्यादिके धन उपार्जन करी राज्य पोताने वश करो. ते सांजली ललितांग कुमर बोल्यो के हे दास! तुं एवां सपाप वचन म बोल, कारण के स्वजावे पण पाप वचन बोल्यो थको जीव दुःख प्रत्ये पामे छे. जेम होंशे करी विष खाधुं थकुं पण मरण उपजावे छे, माटे तारे एवा यद्वा तद्वा प्रलाप करवा नहीं. कारण वली एम करवाथी तारे शुं लाज थाय छे? जो तुजने एनो निश्चय करवो होय तो चालो आपणे कोइ महंत पुरुषने पूछीए, अने जो ते पुण्य थकी जय थाय एवुं कहे, तो तारे मारे शी सरत? ते सांजली सज्जन बोल्यो के जो एम कोइ कहे तो हुं आ जन्म पर्यंत तमारो दास थइने रहीश, अने जो एम न ठरे तो आ जन्म पर्यंत तमे मारा दास थइने रहो. बन्ने जण एवी प्रतिज्ञा करी आगल चालतां कोइक गामे जइ पहोंच्या. तिहां घणा मोटा लोकोना टोलामांहे जइ पूछवा लाग्या के जाइर्ज! सुखश्रेय पामीए ते पुण्यथी किंवा पापथी?

ए प्रश्नवचन सांजलीने लोको बोल्या के जाइ! हमणां तो पापज सुखहेतु ठे, अने पुण्यथी दुःख थाय ठे. एवुं सांजली बेहु जण आगल चाल्या. मार्गमां ललितांग कुमरने सज्जन हांसीपूर्वक कहेवा लाग्यो के अहो कुमर! हवे तमे घोडा उपरथी उतरी चाकर थइने मारी आगल चालो, पोतानी प्रतिज्ञा पालो. एवुं वचन सांजली कुमर घोडाथी नीचे उतरी सज्जन प्रत्ये कहेवा लाग्यो के हे मित्र! हुं सर्वदा तारो सेवकज ठुं. ए असार धननी शोजा कारमी ठे, तेनी कांइ मने गरज नथी. मने तो एक धर्मज निश्चल थाओ. एम कही सेवक थइ आगल चाल्यो अने सज्जन घोडा उपर चढ्यो. आगल चालतां वली कुमर प्रत्ये कहेवा लाग्यो के हे कुमर! श्रीजिनधर्मनां फल जोगवो, केवां ठे? हुं तमोने हजी पण कहुं ठुं के तमे तमारो कदाग्रह मूकीने पाप चौर्यादिक कर्म करो, ते सिवाय बीजो कोइ तमारे जीववानो उपाय मने जासतो नथी. जो एम नहि करशो तो कष्ट पामशो. एवां वचन सांजली रीश चढावीने कुमर बोल्यो के अरे मूर्ख! तारामां गुण तो सर्व दुर्जननाज देखाय ठे, पण तारी फइए तारुं नाम सज्जन पाड्युं ठे, ते मिथ्या ठे. जे मिथ्या उपदेश आपे ते महापापी जाणवो. तेनी उपर एक दृष्टांत कहुं ठुं ते सांजल. कोइ एक आहेडी निरंतर जीवोनो वध

करतो अटवीमां वसे छे. एकदा प्रस्तावे आहेडीए वनमां जइ एक हरणी दीठी, तेने हणवा माटे कान पर्यंत बाण सांधीने जेवामां छोडवा लाग्यो, तेवामां हरणी बोली के हे व्याध ! हे बांधव ! तुं क्षण एक सबूर कर. एटलामां हुं मारां न्हानां बच्चांउने धवरावी पाछी आवुं. ते वारे आहेडी बोल्यो; अरे बापडी ! तुं आ बाणथी छूटी जइश तो फरी पाछी आवीश नहीं, ते वारे तेने हरणीए कह्युं के जो हुं न आवुं तो मारे शिर गोहत्यादिकनां पापो छे. ते वचन सांभली आहेडीए कह्युं के कष्टमांथी उगरवा माटे तुं एवां वचन बोले छे, ते हुं मानुं नहीं. ते वारे मृगलीए कह्युं के हे पाराधी ! आ समये जे तुं कहे तेवा सम हुं खाउं. ते वारे आहेडीए कह्युं के शील पूछतां कुशील आपे, तेनुं पाप तारे शिर ले, तो हुं जावा दउं. ते वारे हरणीए ते प्रतिज्ञा करी, अने पाराधीए तेने जवा दीधी. पछी ते पोतानां बाल-कोने धवरावी संतोषीने पोतानुं वचन पालवा माटे पाछी आहेडी पासे आवीने कहेवा लागी के हे वधक ! हुं कइ दिशाए नासी जाउं तो तारा बाणथी छूटुं ! ते सांभली आहेडी विचारवा लाग्यो के हुं एने कुशील आपीश तो मने पाप लागशे, माटे खरुं कहेवुं जोइए, एम चिंतवीने कहेवा लाग्यो के जो तुं जमणी बाजुए

नासी जा, तो बूटे, एवुं वचन सांजली हरणी जमणी बाजु नाठी तेथी बूटी. माटे हे सज्जन! शीख आपतां कुशील आपे तो ते महापाप कहेवाय. तो हवे तुं मारो मित्र बतां मुजने कुशील केम आपे बे? जो कोइ बापका पामर लोकोए धर्म नहीं वखाएयो तो शुं तेथी धर्म व्यर्थ थइ गयो समजवो? जो आंधले पुरुषे सूर्य न दीठो, तो शुं सूर्य नथी उग्यो, एम समजवुं? माटे संसारमांहे सारपदार्थ सर्व लोकनो आधार, सर्व सुखनो जंकार, स्वर्गापवर्गनो दातार, अचिंत्य चिंतामणि समान, सकल कलाप्रधान एवो एक धर्मज बे एम जाणवुं.

वली सज्जन बोल्यो के अहो कुमर! तुं तो महा कदाग्रही देखाय बे, जे माटे धर्मनां फल देखतो बतो पण हजी मानतो नथी. रासजनुं पूंब पकड्युं ते मूकवुंज नहीं, एवो तारो न्याय बे. जेम कोइ ग्रामीण मातापिताए पुत्रने शिखव्युं जे पांच जणमां बेसी जे वात अंगीकार करीए, ते मूकीए नहीं. एवी शिक्षा दीधी. एकदा ते मूर्खशिरोमणिए एक सांढ नासी जतो हतो तेथी तेणे पांचनी साक्षीथी तेनुं पूंब पकड्युं पण मूके नहीं, त्यारे लोक कहेवा लाग्या के हे मूर्ख! मूकी आप, पण पेलो मूके नहीं, तेम तें पण हठ लीधो ते बोडतो नथी. हजी पण जो मारुं कह्युं न माने तो

चाल आगल बीजा लोकोने पूछीए. एम वाद करतां परस्परे नेत्रनी होड करी. एटले जे हारे ते पोतानां नेत्र काढी आपे. आगल कोइ गाममां जइ लोकोने पूछ्युं के धर्म उत्तम के अधर्म ? ते वारे ते मूर्खोए पण अधर्मनीज स्थापना करी, ते वाणी सांभली सज्जन हर्ष पाम्यो. आगल जतां कुमरनी पासेथी होडमां हारेलां नेत्र माग्यां, कुमरे पण पोतानी चक्षु छरी वडे काढी आपी, ते वारे सज्जने कह्युं के केम कुमरजी, धर्मनां फल दीठां के ! आंधला तो थया !!! एम कही लगारेक तिहां बेसी पछी कुमरने मूकी घोडे चडीने सज्जन अन्य देशे जतो रह्यो.

हवे पाछलथी कुमर चिंतववा लाग्यो के आपदारूप नदीनुं पूर, पूर्वकृतकर्म प्रमाणे मारे वृद्धि पाम्युं छे, अथवा वली आपदा ते शुं? धर्मना प्रसादथी सर्व सारुंज थशे, एम चिंतवी ज्ञानबले धर्म उपर निश्चल मन करी उभो रह्यो. एवामां सूर्य अस्त पाम्यो. चारे दिशाए अंधकार प्रसर्यो, रात्रिचर जीवो संचार करवा लाग्या, चोर प्रसर्या. एवा अवसरे तिहां वड उपर भारंड पंखीओ मली मांहोमांहे वातो करवा लाग्यां के जेणे-जे कौतुक दीठुं होय ते कहो. ते वारे एक बोल्यो के इहांथी पूर्वदिशे चंपा नगरे जितशत्रु राजा राज्य करे छे, तेने पुष्पवती नामे पुत्री प्राणथी पण वल्लभ छे,

ते महारूपसौंदर्यनुं निधान छे, यौवनावस्था पामी पण कृतकर्मने योगे तेने अंधपणुं
प्राप्त थयुं छे. एकदा प्रस्तावे राजा पोतानी पुत्रीने खोळामां बेसाडी चिंतववा लाग्यो
के एक तो दीकरी छे ते स्वभावे चिंतानुंज कारण छे अने वळी ए तो कर्मे कलंकित
छे अने विवाहयोग्य पण थइ छे. हवे श्यो उपाय करवो? एम विचारी नगरमां
पडह वजडाव्यो के जे राजानी दीकरीनी आंखो सारी करे, तेने राजा अर्धुं रा-
ज्य तथा तेज कन्या आपे. एवी रीते राजपुरुषो तिहां चौटे चौटे ढंढेरो फेरवे छे.
ए कौतुक में दीठुं. हवे आगळ शुं थशे? ते हुं जाणतो नथी.

एवुं सांभळी वळी एक न्हानो भारंड बोल्यो के हे तात! तमे जाणता हो तो
कहो के नेत्र सारां थवानो कोइ उपाय छे? ते सांभळी वृद्ध भारंड बोल्यो के हे व-
त्स! उपाय तो घणाए छे पण भाग्य विना मळे नहीं. ते वारे लघु भारंड बोल्यो के
तमे जाणता हो तो कहो. ते वारे वृद्ध भारंड बोल्यो के हे वत्स! रात्रिए कहेवाय
नहीं ॥ यतः ॥ दिवा निरीक्ष्य वक्तव्यं रात्रौ नैव च नैव च ॥ संचरंति महाधूर्त्ता,
वटे वररुचिर्यथा ॥१॥ वळी लघु भारंड बोल्यो के इहां तो कोइ सांभळतो नथी माटे
तमे कहो. ते वारे वृद्ध बोल्यो जे ए वृक्षने जे वेलडी वींटाइ रही छे, तेने लइने जो

आंखे अंजन करे तो नवां नेत्र आवे. ते सांजली वली लघु जारंरू बोल्यो के स्वामी ! तमे प्रजाते किहां जशो ? ते बोल्यो के तेज नगरे हुं जइश. लघु जारंरू बोल्यो के हुं पण कौतुक जोवाने माटे तमारी साथे आवीश. एवी वात करीने ते जारंडो सूइ रह्या. कुमरे वरू हेठल बेठा थकां सर्व वात सांजली विचार्युं जे पुण्यनुं प्रमाण अद्यापि प्रवर्त्ते छे. पछी ते वेलरुी लइ हाथथी घसीने आंखे अंजन कीधुं, तेथी नवी चक्षु आवी. पछी वरू उपर चढी संपूर्ण वेलरूी लइ लीधी अने पोते जारंरू पंखीनी पांखमां बेसी रह्यो. प्रजाते जारंरू उरुी चंपाए पहोंच्यो, कुमर पण पांखमांथी नीसरी वस्त्रादिक पहेरी राजद्वारे गयो, दरवाने आवी राजा आगल हकीकत जाहेर करी के हे स्वामी ! कोइक देशांतरी पुरुष आवी कहे छे के हुं राज्यकुमारीनी आंखो सारी करीश. ते वात सांजली राजाए तेने आदरथी तेरुी विनंति करीने कह्युं के हे महापुरुष ! उपकार करो. पछी कुमरे तरत वेलडीनो रस काढी आंखे अंजन करी राजपुत्रीने साजी करी. ते वारे राजाए पण मोटा महोत्सवपूर्वक पोतानी पुत्री कुमरने परणावी दीधी. हाथ मेलावरुामां हाथी, घोरुा, पायदल प्रमुख घणी लक्ष्मी आपी अने अर्ध राज्य दीधुं. तिहां मनुष्य संबंधी जोग जोगवतो सुखे रहे छे.

एकदा गवाक्षमां बेठो छे, एवामां जेनी आंखमांथी आंसु झरे छे, रोगे करी ग्रस्त अने फाटेलां वस्त्र, बीभत्सांग, दुर्निरीक्ष्य, पगे पगे पडता एवा सज्जनने आवतो दीठो. ते वारे पापनां फल प्रत्यक्ष देखीने कुमरने दया आवी, तेथी चाकर मोकली तेडावी बेसाडीने पूछ्युं के हे सज्जन ! तुं मुजने उलखे छे ? ते बोल्यो अहो सत्पुरुष ! तमने कोण नथी उलखतो. कुमरे साचुं पूछ्युं ते वारे अणबोल्यो रह्यो. पछी कुमरे पाछलुं वृत्तांत कही सर्व पोतानी हकीकत संभलावी, तेथी ते सज्जन लज्जा पाम्यो. पछी तेनां फाटेलां वस्त्र उतरावी नवां पहेरावी भोजन करावीने कह्युं के हे मित्र ! आ लक्ष्मी सर्व तारी छे, तुं निश्चिंत थको अहीं सुख भोगव.

हवे सज्जन बोल्यो के हुं तमने मूकीने चालतो थयो. आगल जतां मने चोर मल्या, तेणे लाकडी तथा मुष्ट्यादिके खूब मार्यो, अने मारी पासे जे धन हतुं ते सर्व लइ लीधुं. मात्र पाप भोगववा माटेज जाणे मुने जीवतो मूक्यो होय नहि ? तेम जीवतो मूक्यो. तिहांथी हुं अनेक देश भम्यो, सर्वत्र दुःख देखतो तमने आवी मल्यो छुं; माटे हुं पापीने तमे दूर जवा द्यो, तमारी पासे म राखो. ते सांभली कुमर

बोल्यो के हे सज्जन ! हुं राज्य कन्यादिक ऋद्धि पाम्यो, ते सर्व तारो प्रताप छे, माटे हवे तुं आ राज्यनी चिंता कर. एम कही तेने प्रधानपदवी आपी.

ए खबर सर्व कुमरनी स्त्री पुष्पवतीए सांभली ते वारे भर्त्तार प्रत्ये कहेवा लागी के हे स्वामिन् ! ए तमारो बालपणानो मित्र छे, तो एने कोइ एकाद गाम आपी द्यो, पण तमाराथी दूर राखो, परंतु पासे म राखो ॥ यतः ॥ दुर्जनः परिहर्त्तव्यो, विद्यया भूषितोऽपि सन् ॥ मणिना भूषितः सर्पः, किमसौ न भयंकरः ॥ १ ॥ जे माटे दुर्जनने उपकार करतां पण सामुं कष्ट थाय. जेम कोइ एक कागडो सरोवरने विषे बग प्रमुखने तरतां देखी पोते पण तेमनी पेठे मत्स्यभक्षण करवा सारु पाणीमां पड्यो, पण तरतां आवडतुं नथी तेथी पाणीमां बूडवा लाग्यो, तिहां तेने कोइ राजहंसीए दीठो. तेने दया आवी ते वारे राजहंसने कहेवा लागी के हे स्वामी ! बापडो कागडो बूडे छे, माटे तमे उपकार करी एने काढो. ते वारे हंस हंसिणीए मली चांचे ताणी पकडीने बहार काढ्यो. पछी कागडो हंस हंसिणीने पगे लागी कहेवा लाग्यो के हे भाग्यवानो ! हुं ज्यांसुधी जीवतो रहुं, त्यांसुधी तमारो उपकार मानीश. हवे कृपा करी तमे बेहु जण आहार भक्षण करवा अमारा वनमां आवो.

ते वारे हंसे हंसिणीने पूछ्युं के केम तारी शी मरजी छे? हंसिणी बोली के हे स्वामी! उपकार सर्वने करीए, पण अजाण्यानी संगत न करीए. एम हंसिणीए वार्यो, तोपण दाक्षिण्यने लीधे हंस, कागडानी साथे वनमां गयो. ते बेहु कोइ लींबडाना झाड उपर बेठा, ते वृक्षनी नीचे कोइ राजा आवी वीसामाने अर्थे उभो रह्यो छे. तेनी उपर कागडो विष्टा करीने तिहांथी उडी गयो. राजाए उंचुं जोइने हंसनी उपर बाण मूक्युं, तेथी हंस तडफडतो भूमिए पड्यो. राजाए विचार्युं जे आ धवल काग छे, ए कौतुक जेवी वात छे. ते सांभली हंस बोल्यो ॥ नाहं काको महाराज! हंसोऽहं विमले जले ॥ नीचसंगप्रसंगेन, मृत्युरेव न संशयः ॥ १ ॥ ए वात स्त्रीए कहीने कह्युं के हे स्वामी! तमे नीच नरनी संगति म करो. कुमर ते हितकारक वचन जाणतो थको पण दाक्षिण्यपणे तेनो संसर्ग मूके नहीं, एम केटलोएक काल व्यतिक्रम्यो.

अन्यदा प्रस्तावे राजाए सज्जनने पूछ्युं के ए कुमरनी साथे तमारे मांहोमांहे गाढ स्नेहनुं कारण शुं छे? ते वारे सज्जने विचार्युं जे हुं प्रथमथी कुमारनी उपर दूषण चढावुं तो पछी मारां दूषण ए प्रकाशी शकशे नहीं. एम विमासी राजा प्रत्ये बोल्यो

के हे स्वामिन्! ए वात कहेवा योग्य नथी, केमके कुमरे मुजने प्रथमथी सोगंद खवराव्या छे. एवुं सांजली राजा वली विशेष आग्रह करी पूछवा लाग्यो, ते वारे राजाने सोगंद आपीने सज्जन कहेतो हवो के वासपुरी नगरीए नरवाहन राजानो हुं पुत्र छुं, अने ए मारा घरनी दासीनो पुत्र छे. कर्मयोगे देशांतरे जमतो थको विद्या पाम्यो, ते वारे नीच जातिथी लज्जा पामीने घरमां रहे नहीं, देशांतरेज जम्या करे, ते जमतो जमतो तमारे नगरे आव्यो. विद्यावंत माटे तमे आदर दीधो. पूर्वकर्मना प्रसादथी अर्धराजपदवी पाम्यो, अने हुं पण मारा पिताथी पराजव पाम्यो थको इहां आव्यो. मने एणे उलख्यो कारण के मर्मनो जाणज मर्म जाणे, तेथी एणे मुजने पोतानी पासे राख्यो. हे स्वामिन्! एनी वात में तुमने कही, पण ए मांहे जली वार कांइ नथी. एवी वात सांजली राजा विचारमां पड्यो जे में अणविचार्युं काम कर्युं; राज जाउं तो जले जाउं, धन जाउं तो जले जाउं, परंतु माराथी मारो वंश मलिन थयो ते अत्यंत अकार्य थयुं. एम चिंतवी जमाइने मारवा माटे राजाए अंतरंग पुरुषने तेडावीने कह्युं के आज रात्रिए घर मांहेले रस्ते जे आवे, तेने तरत समाधान करी नाखजो. सेवके पण तेवीज रीते राजानी आज्ञा प्रमाण कीधी. राजाए रात्रिने समये जलो पुरुष मोकलीने कुमरने मारवा माटे तेडाव्यो, तेणे जइ

कुमरने विनव्यो जे आपने राजा अवश्य तेडे छे. कोइ मोटुं कार्य छे, ते माटे घर मांहेले रस्ते थइने आवो, कुमर पण तेवीज रीते सज्ज थइने जवा लाग्यो, ते वारे स्त्री बोली, हे स्वामिन्! जोला थइ रात्रे जाउं छो पण राज्यस्थिति मलिन छे ॥ यतः ॥ काके शौचं द्युतकारेषु सत्यं, सर्पे क्षांतिः स्त्रीषु कामोपशांतिः ॥ क्लीबे धैर्यं मद्यपे तत्त्वचिंता, राजा मित्रं केन दृष्टं श्रुतं वा ॥ १ ॥ ते सांजली कुमर बोल्यो, हे सुजगि! तुं कहे छे ते सत्य छे, परंतु राजानी आज्ञा लोपीए तो महादोष लागे ॥ यतः ॥ आज्ञाजंगो नरेंद्राणां, गुरूणां मानमर्दनम् ॥ पृथक्शय्या च नारीणां अशस्त्रवध उच्यते ॥ १ ॥ ते सांजली स्त्री बोली, तमे कहो छो ते पण सत्य छे, माटे हमणां मित्रने मोकलो, कुमरे पण तेमज कर्युं अने सज्जनने मोकल्यो. मार्गे जतां राजाना सेवके पूर्व संकेतथी तेने पेसतांज मारी नाख्यो, मरण पामीने दुर्गतिए गयो ॥ यतः ॥ मित्रद्रोही कृतघ्नश्च, ये च विश्वासघातकाः, ते नरा नरकं यांति, यावच्चंद्रदिवाकरौ ॥ १ ॥ तिहां ते सज्जनना मरणथी कोलाहल थयो, ते वारे कुमरी बोली, हे स्वामिन्! जो तमे तिहां जात तो शा हवाल थात! माटे अद्यापि तमे प्रमाद छांडी कटक सज्ज करी सावधान थका रहो, कुमर पण तेमज सज्ज थइ रह्यो. राजा पण सर्व वात

जाणी कटक लइ युद्ध करवाने सामो आव्यो. बेहु सैन्य मांहोमांहे मल्यां. एवामां दीर्घबुद्धिना धणी मंत्रीश्वर आवी राजाने कहेवा लाग्या के हे स्वामिन् ! अणविचार्युं युद्ध न करीए ॥ यतः ॥ अपरीक्षितं न कर्त्तव्यं, कर्त्तव्यं सुपरीक्षितं ॥ पश्चाद्भवति संतापो, ब्राह्मणी नकुलं यथा ॥ १ ॥ इत्यादि प्रधानोनां वचन सांभली राजाए युद्ध निवारण करी कुलजाति पूछवा माटे मंत्रीश्वरने कुमर पासे मोकल्या. मंत्रीश्वरे आवी कुमरने विनव्यो जे तमारो कुलवंश प्रकाश करो. कुमर बोल्यो के सत्पुरुष पोतानुं कुल पोताना मुखथी कहे नहीं. प्रधान पुरुष बोल्यो, तमारा सज्जन मित्रे आवीने राजानी आगल तमारा अवर्ण वाद कह्या छे, प्रायः दुर्जन होय ते परविघ्ने संतोषी थाय. ते वचन सांभली कुमरे पोतानुं सर्व वृत्तांत प्रधान आगल कह्युं. मंत्रीए जइ राजानी आगल निवेदन कर्युं, ते समाचार आमूलथी जाणवा भणी तत्काल कागल लखीने राजाए कुमरना नगर भणी सेवक मोकल्यो, ते सेवके पण ललितांग कुमरना पिता पासे जइ सर्व हकीकत कही. ते वारे राजा पोताना पुत्रनी खबर सांभली घणोज हर्षवंत थयो, अने राजा कहेवा लाग्यो जे भलुं कर्युं जे मारा पुत्रने जितशत्रु राजाए जीवितव्यनी पेरे राख्यो, में मंदभागीए तो अतिदाननुं दूषण आ-

पीने सज्जनना कहेवाथी पुत्रने परदेशे काढ्यो. एम कही ते राजाना सेवकने वस्त्रादिक आपी संतोषीने विसर्जन कर्यो. सेवके आवी राजानी आगल सर्व समाचार संजलाव्या, राजा प्रमुदित थयो. जमाइ तथा दीकरीनी पासे जइ पोतानो अपराध खमाव्यो, अने कह्युं के हे ललितांगजी ! तमारा जेवा गुणवंत कोइ नथी, अने सज्जन सरखो दुर्गुणी पापी पण कोइ नथी, माटे हवे हे कुमरजी ! तमे राज्यनो अंगीकार करो. एम कही कुमरने राज्य आपी पोते दीक्षा लइ देवलोके गयो.

पाछलथी ललितांग कुमर पण राज्यनी चिंताना करनार मंत्रीश्वरने सर्व कारजार सोंपी पोते सैन्य लइ मोटी ऋद्धिथी पिताने चरणे जइ नम्यो. पिता पण नेत्रने आनंदकारक एवा पुत्रनुं दर्शन पामीने जेम चंद्रमाना दर्शन थकी समुद्रने हर्ष थाय, तेम हर्षवंत थयो थको पुत्रने कहेवा लाग्यो के हे वत्स! हवे अमे परलोक साधन करशुं अने तमे ए राज्य अंगीकार करो. ते सांजली ललितांग बोल्यो के हे स्वामिन् ! हुं तमारी सेवामां तत्पर रहीश अने तमे राज्य पालो. एम राज्यने अणवांछता पण राजाए कुमरने राज्य दीधुं, अने पोते चारित्र लइ परजवनुं साधन करवा मांड्युं. ललितांग कुमर पण घणा वर्ष न्यायपूर्वक राज्य पाली अंत्यावस्थाए चारित्र लइ देव-

लोके गयो. ए ललितांग कुमरनुं चरित्र सांजली हे जविजनो! तमे गीतार्थनां वचनने अनुसारे एकमना थइ श्रीजैनधर्मने विषे प्रीति राखो अने दानादिक चार प्रकारनो धर्म पालो, प्रमाद टालो, पाप गालो, आठ मद टालो, आत्मा अजुवालो, तो स्वर्ग मोक्षनां सुख निश्चय पामो ॥३॥ इति धर्मविषयिक ललितांग कुमरनी कथा संपूर्ण॥

हवे आ नरजवनुं डुर्लजपणुं छे, ते कहे छे.

इंद्रवज्रावृत्तम् ॥ यः प्राप्य डुःप्राप्यमिदं नरत्वं, धर्म्मं न यत्नेन करोति मूढः ॥ क्लेशप्रबंधेन सलब्धमब्धौ, चिंतामणिं पातयति प्रमादात् ॥ ४ ॥

अर्थः—(यः के०) जे (मूढः के०) मूढ पुरुष, (इदं के०) आ (डुःप्राप्यं के०) डुःखे प्राप्त थवा योग्य एवुं (नरत्वं के०) मनुष्यपणुं, तेने (प्राप्य के०) पामीने (यत्नेन के०) उद्यमे करीने (धर्म्मं के०) धर्मने (न करोति के०) न करे छे, (सः के०) ते पुरुष, (क्लेशप्रबंधेन के०) अति महेनते (लब्धं के०) पामेला (चिंतामणिं के०) चिंतामणिने (अब्धौ के०) समुद्रमां (प्रमादात् के०) आलस्ये करीने (पातयति के०) नाखे छे. अर्थात् जे मूर्ख पुरुष मोटा कष्टे पमाय एवो मनुष्यजन्म पामीने

सावधानताए करीने श्रीवीतरागप्रणीत धर्मने न अंगीकार करे, तेणे अतिदुःखे मलेलो एवो प्रत्यक्ष चिंतामणि प्रमाद थकी समुद्रमां नाख्यो, एम जाणवुं. ए कारण माटे नरजवे करीने धर्मनुं उपार्जन करवुं. आ ठेकाणे ब्राह्मणने रत्नद्वीपे देवीए दीधेला चिंतामणिनुं समुद्रमां पातन कर्युं, तेनो संबंध जाणवो, माटे हे जव्यजनो! ए प्रकारे मनने विषे विवेक लावीने धर्मज करवो, कारण के धर्मने विषे प्रीति करनारा सुजन पुरुषो तेने जे पुण्य उत्पन्न थाय इत्यादि सर्व पूर्ववत् जाणवो ॥ ४ ॥

टीका ॥ अथ नरजवस्य दुर्लजत्वमाह ॥ यः प्राप्येति ॥ यो मूढो मूर्खः इदं दुःप्राप्यं नरत्वं प्राप्य यत्नेन उद्यमेन धर्म्मं न करोति सः क्लेशप्रबंधेन लब्धं चिंतामणिरत्नं प्रमादात् अब्धौ समुद्रे पातयति ॥ यो मूर्खः पुमान् दुःखेन महता कष्टेन प्राप्यं यतः ॥ चुल्लंग १ पासग २ धन्ने ३, जूए ४ रयणे य ५ सुमिण ६ चक्के य ७ ॥ कुम्मे ८ युग ए परमाणू १०, दस दिठंता मणुअ जम्मे ॥ १ ॥ इत्यादिदशजिर्दृष्टांतैर्दुर्लजं इदं नरत्वं मनुष्यजन्म प्राप्य लब्ध्वा यत्नेन सावधानतया श्रीवीतरागप्रणीतं धर्म्मं न करोति उपेक्षते स क्लेशप्रबंधेन महता कष्टप्रकारेणातिप्रयासेन लब्धं प्रत्यक्षं प्राप्तं चिंतामणिरत्नं प्रमादात् अब्धौ समुद्रे पातयति ॥ अत्र ब्राह्मणरत्नद्वीपदेव्या दत्तचिं-

तामणिरत्नसमुद्रपातनसंबंधो वाच्यः । जो जव्यप्राणिन् ! एवं ज्ञात्वा मनसि विवेकमानीय यत्नेन धर्म्म एव कार्यः धर्म्मं च कुर्वतां सतां यत् पुण्यमुत्पद्यते तत्पुण्यप्रसादात् उत्तरोत्तरं मांगलिक्यमाला विस्तरंतु ॥ ४ ॥

जाषाकाव्य ॥ कवित्त ॥ जैसें पुरुष कोइ धनकारन, हींडत दीप दीप चढि जान ॥ आवत हाथ रतन चिंतामनि, मारत जलधि जानि पाखान ॥ तैसें ज्रमत ज्रमत जवसागर, पावत नरसरीर परधान॥धरम जतन नहि करत वनारसी,खोवत वाहि जनम अज्ञान ॥४॥

सिद्धांतने विषे मनुष्यनो जन्म पामवो दश दृष्टांते डुर्लज कह्यो बे, ते दश दृष्टांतनां नाम कहे बे. एक चूलकनो, बीजो पासकनो, त्रीजो धान्यनो, चोथो द्यूतनो, पांचमो रत्ननो, बठो स्वप्ननो, सातमो चक्रनो, आठमो कूर्म्मनो, नवमो युगनो, दशमो परमाणुनो. ए दश दृष्टांतनां नाम कह्यां. हवे एनी उपर संक्षेपथी कथाउं कहे बेः—

प्रथम चुलक ते देशी जाषाए जोजन कहेवाय बे, तेनो दृष्टांत कहे बे. कांपिलपुर नगरे ब्रह्म नामे राजानी चुलणी नामे राणी तेने चौद सुपने सूचित ब्रह्मदत्त नामे पुत्र थयो. ते पांच वर्षनो थयो, ते वारे तेनो पिता मरण पाम्यो. हवे राज्यचिंता करवा जणी तेना दीर्घादिक चार मित्र मव्या. तेमां दीर्घने कांपिलपुरे राख्यो,

अने बीजा त्रण मित्र पोताने घेर गया. हवे चुलणी राणी इंद्रियोना चपलपणा थकी दीर्घनी साथे लुब्ध थइ. ते वारे धनु नामे मंत्रीश्वरे ते समाचार कुमरने जणाव्या, कुमर पण दीर्घने तथा पोतानी माताने शिखामण आपवा सारु नानाविध प्रपंच देखाडवा लाग्यो. राजसभा मांहे अनाचारी पुरुष देखी राजहंसीशुं काग संयोग करतो जोइ ब्रह्मदत्त कहेवा लाग्यो के ए पापीने अन्य जातिशुं अणमलतो संबंध क्यांथी मल्यो. ए अन्याय हुं सहन करी शकुं एम नथी. ते वारे प्रधानने शंका उपनी जे निश्चे ए ब्रह्मदत्ते चुलणीने अनाचार सेवती जाणी छे, अने दीर्घे पण ते समाचार जाणी चुलणीनी आगल कह्युं के तारा पुत्र ब्रह्मदत्ते एवां चिह्न देखाड्यां छे, माटे ते आपण बेहु जणने मारशे, तेथी जो तुजने मारो खप होय तो प्रथमथीज आपणे एने मारी नाखीए, तो सारुं थाय. ते वारे राणीए कह्युं के हुं एना विनाशनो उपाय करुं छुं. पछी चुलणीए ब्रह्मदत्तने एक कन्या परणावी, अने नवुं लाखनुं गृह कराव्युं. ए चुलणीनो अभिप्राय सर्व जूना पाटभक्त प्रधाने जाण्यो, जे ए विषयांधत्व थकी पुत्रने लाखगृहमां बाली नाखशे, ते माटे प्रधाने पण नगर बहार थका प्रछन्नपणे लाखना धवलगृह लगे मध्य गर्त्ता खणावीने पछी ब्रह्मदत्तने कह्युं के तारी माताए तुजने

मारवा माटे लाखनुं गृह बनाव्युं छे, पण ते वात ब्रह्मदत्ते मानी नहीं. ब्रह्मदत्ते कह्युं के छोरु कुछोरु थाय पण मावतर कुमावतर थाय नहीं. ते सांजली प्रधाने कह्युं के स्वामिन्! तमे कहो छो ते सत्य हशे, पण जे वारे आ घरमां वसवानुं मुहूर्त्त होय, ते वारे सूता थका सावधान रहेजो. कांइ काम पडे तो पाटु प्रहारे सुरंग उघाडी नगरनी बहार आवजो. अश्व शणगारी पलाण सहित हुं सज्ज करी राखीश. तमे मारी साथे देशांतर चालजो.

हवे चुलणीए मुहूर्त्त जोवरावी पुत्रने कह्युं के तमे नवपरिणीत छो, माटे आजे नवा घरमां शयन करवा जाजो. कुमर तिहां गयो, ते वारे तेने प्रधाने कह्युं के आज तुमे सावधान रहेजो. ते सांजली ब्रह्मदत्ते जद्रक परिणामे चिंतव्युं जे आवा स्थानकमां वली शो उपद्रव थवानो छे? रात्रिए अकस्मात् ते पापबुद्धि माताए घरनी चारे बाजुए आग लगाडी दीधी. ते देखी वरधनु मित्रे कुमरने जगाड्यो, ते सुरंगमांथी बेहु जण नासी अश्वारूढ थइ देशांतर जणी चाल्या. केटलीएक जूमि उल्लंघी गया. एकदा वन मांहे कुंअरने तृषा लागी ते सारु मंत्रिपुत्र पाणी लेवा गयो, ते घणी वार पर्यंत न आव्यो ते वारे तेने जोवा माटे कुंअर नीकल्यो. ते मार्गमां जूलो

पड्यो ते वारे तृषाए पीड्यो थको एक वृक्षनी नीचे जइ सुइ रह्यो. एवामा एक देशांतरी वटेमार्गु कोइ एक ब्राह्मण पाणीनुं पात्र लइ वृक्षनी छायाए आवी विश्राम लेवा बेठो. ब्रह्मदत्ते तेनी पासेथी पाणी माग्युं. ब्राह्मणे पाणी आप्युं अने वली पासे कांइक फलादिक हतां, ते खावाने आप्यां, ते वारे ब्रह्मदत्ते कह्युं के मुजने जे वखत राज्य प्राप्त थयुं तमे सांभलो, ते वखत कांपिलपुर पाटणे आवजो. एम कही ब्राह्मणने विसर्ज्यो.

वली तिहांथी केटलेक काले बेनातट नगर भणी जतां मार्गमां एक ब्राह्मण मल्यो, तेना सथवाराथी बार योजननी अटवी कुमरे उल्लंघन करी. भोजननी वेलाए ब्राह्मण पोते एकलोज जम्यो, पण कुमरने आग्रह मात्र न कीधो. तेम कुंअरे पण याचना कीधी नहीं, कारण के महंत पुरुष मरणांते पण याचना करे नहीं. एम करतां अटवी उतरी प्रांते पहोता, ते वारे कुमरे कह्युं के हे ब्राह्मण ! तमारा पसा- यथी हुं अटवी उतर्यो, माटे जे वारे मुजने कांपिलपुरनुं राज्य प्राप्त थयुं सांभलो, ते वारे तरत आवजो. एम कही ब्रह्मदत्त बेनातट नगरे गयो. ब्राह्मण चिंतववा लाग्यो के जूओ, एनुं औदार्य धैर्य केवुं छे ? अने मारुं कृपणपणुं केवुं छे ? एम चिंतवतो

स्वस्थानके गयो. पछी केटलेक काले भाग्ययोगे ब्रह्मदत्तने छ खंड पृथ्वीनुं राज्य मल्युं, चक्रवर्त्तीनी पदवी प्राप्त थइ. वरधनु मित्र पण आवी मल्यो, तेमने आपणा नगर भणी आवता जोइ चुलणीए देहनो त्याग कर्यो. ब्रह्मदत्त पोताना पिताना राज्यपाटे बेठो.

हवे जेणे पाणी पीवराव्युं हतुं ते ब्राह्मण पण ब्रह्मदत्तने राज्य मल्युं सांभली नगरमां आव्यो. तेणे राजाने मलवाना घणा उपाय कर्या पण दरिद्रीने राजानुं दर्शन थाय नहीं. एम छ मास वही गया, पछी नगरमां कोइ बुद्धिथी उपाय बतावनाराने शोध करतां एक बुद्धिना आपनाराए कह्युं के मने लाख सोनामोर आपो तो हुं उपाय बतावुं. तेने ब्राह्मणे कह्युं जो मुजने राजानो मेलाप थशे, तो हुं तुजने लाख सोनामोर आपीश. पछी बुद्धिना देवावालाए कह्युं के एक मोटो जबरजस्त वांस लइने तेने रस्ता मांहिलां जूनां त्रूटेलां फाटेलां खासडांनी माला वलगाडी ते वांसडाने पकडी राजमार्गे उभा रहो, जे वारे राजानी स्वारी नीकलशे, ते वारे तेना उपर दृष्टि पड-वाथी अभिनव आश्चर्य देखी राजा पूछा करशे, ते वखत तुं आशीर्वाद आपजे. ब्राह्मण पण तेज उपाय करी राजाने मल्यो. राजाए दीठो ते वारे. तरत उंलखी तुष्मान थइने कहेवा लाग्यो के हे विप्र! माग, माग, जे मागे ते आपुं. ब्राह्मणे

कह्युं के स्वामिन्! घेर जइ मारी स्त्रीने पूछी आवुं, राजाए कह्युं शीघ्र पूछी आव. ब्राह्मणे घेर आवी स्त्रीने पूछ्युं के हे प्रिये! राजा संतुष्ट थयो छे माटे हवे हुं शुं मागुं? ते वारे स्त्रीए विचार्युं जे ए गाम गरास नगर मागशे तो पछी मुजने मानशे नहीं, माटे एवुं मगावुं के जेथी ए समतुल्य रहे. एवुं चिंतवीने कहेवा लागी के आपणे ब्राह्मणजाति छीए, माटे गाम नगरादिक मागशुं तो रात्रि दिवस तेनी चिंतामां रहेवुं पडशे, घणा चाकर नफर राखवा पडशे अने जो धनधान्य मागशुं तो व्यापार चलाववो जोशे, व्याजे धन आपवुं जोशे इत्यादि संजाल राखवानी विटंबना करवी पडशे, माटे राजाना छ खंड पृथ्वीमां जेटला चूला छे, ते प्रत्येक चूला दीठ एक दिवस आपणा कुटुंबने भोजन मळे, अने एक सोनामोर दक्षणा मळे, एवी मागणी करो. ब्राह्मणे पण स्त्रीना कह्या मुजब राजा पासे जइ याचना करी, ते वारे राजा बोल्यो के हे निर्भाग्य! पाछलबुद्धि ब्राह्मण! हुं तुष्टमान थयो छतां आ फरी भिख मागवानुं ते तें शुं माग्युं? पण ब्राह्मणे तो स्त्रीना कहेवा प्रमाणेज राजाने कह्युं. हे महाराज! जो तुमे तुष्टमान थया तो एटलुंज आपो के जेथी हुं रळीयायत थाउं! ते वारे राजाए तेमज प्रमाण कीधुं, अने

पहेला दिवसे चक्रवर्त्तीए पोताने घेर जमाडीने एक सोनामोर दक्षणा आपी. पछी चक्रवर्त्तीनी १९२०००) अंतेउरीने घेर जम्यो. पछी चक्रवर्त्तीना पुत्र पौत्रादिकने घेर जम्यो, पण जेवो स्वाद पहेले दिवसे चक्रवर्त्तीना घरनी रसवतीनो हतो, तेवो स्वाद बीजा कोइना घरनी रसवतीनो आवे नहीं. तेथी तेज जमण संभाख्या करे अने मनमां विचारे के कोइ रीते फरी चक्रवर्त्तीने घेर जमवानो वारो आवे तो सारुं, पण वारो आवे नहीं. ते वारो पण कदापि कोइ देवतानी सहायथी अथवा प्रबल आयुष्यवान् पामे, परंतु मनुष्यजन्मथी भ्रष्ट थयो ते फरी मनुष्यावतार न पामे ॥ इति प्रथम क्षुल्लकदृष्टांतः ॥ १ ॥

हवे बीजो पासानो दृष्टांत कहे छे. भरतक्षेत्रमां गोल्ल देशने विषे चणक नामे ग्राम छे. तिहां चणक नामे ब्राह्मण, तेना चिणेश्वरी नामे भार्या, ते स्त्री भरतार बेहु अरिहंतनी भक्तिनां करनार छे. तेमने घेर दांत सहित पुत्र जन्म्यो. मातपिताए दांत घसावी नाख्या. एकदा ऋषीश्वरनो संघाडो तेमने घेर आव्यो, ते वारे चिणेश्वरीए नमस्कार करीने पूछ्युं के महाराज! अमारे घेर आ दांत सहित पुत्र आव्यो, तेनुं शुं फल थशे? ऋषिओ बोल्या के जो तमे एना दांत नहीं घसत तो ए राजा

थात. हवे ए दांत घसी नाख्या माटे बिंबांतरित राजा थशे. पछी ते पुत्रनुं चाणाक्य एवुं नाम दीधुं. ते पण आकरो श्रावक थयो, सर्व विद्या जण्यो, यौवनावस्था पाम्यो, रुडा कुलमा परणाव्यो. अन्यदा प्रस्तावे चाणाक्यनी स्त्री जाइना विवाह माटे पीयर गइ. तिहां विवाह उपर बीजी पण बहेनो आवी छे, तेना ससरा महाधनवंत छे तेथी ते बहेनो वस्त्राजरण पहेरी जमी तांबूल जक्षण करी उंची चढी बेठी, अने चाणाक्यनी स्त्रीनां अंगनां वस्त्र जूनां फाटां देखी हसवा लागी, तेथी ते आकरो अ-संतोष धरती विवाह करी पोताने घेर आवी. चाणाक्ये पोतानी जार्याने आमण दूमणी देखीने पूछ्युं जे तुजने शी असमाधि उपनी छे ? पण ते बोली नहीं. ते वारे जरतारे घणो आग्रह करीने पूछ्युं त्यारे तेणे पण पोताना पीयर संबंधी सर्व वृत्तांत कह्युं. ते सांजली चाणाक्य द्रव्योपार्जन करवानो उपाय चिंतववा लाग्यो. ते वारे तेने कोइक ब्राह्मणे कह्युं के पाटलीपुर नगरे नंद राजा वर्षदिवसने आंतरे ब्राह्मणने द-क्षणा आपे छे. एवुं सांजली चाणाक्य पण तिहां गयो. राजाने घेर जइ वीसामो लेवा माटे नंद राजाना सिंहासन उपर चढी बेठो. राजानी दासीए कह्युं के हे विप्र ! तमे बीजे कोइ आसने बेसो. ते सांजली चाणाक्ये बीजे आसने कमंडल मेल्युं तेमज त्रीजे

आसने दंड मूक्यो, चोथे आसने जपमालिका मूकी, एम चार सिंहासन रुंध्यां; अने पांचमे आसने जनोइ मूकी, ते वारे दासीए तेने रीसथी उठाडी मूक्यो. चाणाक्ये पण रीसाइने एवी प्रतिज्ञा करी के हुं खरो चाणाक्य तोज के ए नंद राजाने समूलो उन्मूली नाखुं. एवुं कही सभामांहेथी नीकल्यो. आगल जतां विचारवा लाग्यो जे मने तो राज्य मलवानुं नथी, माटे हुं प्रधानज थइश; पण कोइ राजयोग्य कुमर जोउं, एम चिंतवतो मयूरपोषकने गामे गयो. यावत् भिक्षानिमित्ते तेने घेर गयो, ते अवसरे मयूरपोषकनी दीकरीने गर्भने योगे चंद्रमा पीवानो दोहोलो उपन्यो, पण कोइ पूरी शके नहीं. तेना बापे चाणाक्यने परदेशी जाणी पूछ्युं ते वारे चाणाक्य बोल्यो के ए पुत्र जन्मतांज जो मुजने आपो तो हुं दोहोलो पूर्ण करुं. बापे ते वात कबूल करी ते वारे चाणाक्ये पोतानी मतिए करी छिद्रयुक्त तृणनुं घर कराव्युं, ते उपर एक पुरुष छिद्र पूरवा माटे छानो चढाव्यो. पछी विशाल थाल दुग्ध मिश्री प्रमुख परमान्ने भरी ते घरमां जिहां चंद्रमानो उद्योत छे, तिहां मूक्यो. तेमां चंद्रमानुं प्रतिबिंब छे, माटे बापे दीकरीने तेडीने कह्युं के हे पुत्रि! ए चंद्रमा छे तेनुं तमे पान करो. ते वारे ते पुत्रीए परमान्न पीवा मांड्युं तेम तेम उपर रहेला पुरुषे ते

छिद्र पण पूरवा मांड्युं, जे वारे संपूर्ण पान करी लीधुं ते वारे छिद्र पण पूरी नाख्युं, घरमां अंधकार थयो. एम करी चंद्रमानो दोहोलो पूरो कराव्यो. पूर्ण मासे पुत्रनो जन्म थयो, तेनुं नाम चंद्रगुप्त पाड्युं.

हवे चंद्रगुप्तने तिहां मूकी चाणाक्य पोते सुवर्णविद्या साधवा जणी देशांतरे ज-मवा लाग्यो, सुवर्णसिद्धि करवानी विद्या पामीने चाणाक्य बार वर्षे पाछो तेज गामे आव्यो. ते वारे चंद्रगुप्तने छोकराउं साथे रमतो दीठो. तिहां चंद्रगुप्त पोते राजा थयो छे, कोइक छोकराने प्रधान कर्यो छे, केटलाएकने खीजमतदार सेवक कर्या छे. एवो देखी चाणाक्य हर्षवंत थयो, छोकराने आशिष आपी कहेवा लाग्यो के हे राजा ! अमने कांइक दान आपो. चंद्रगुप्ते कह्युं, जाउ, तमोने पांच गाम दीधां. एम कही नमस्कार कीधो. वली लोकोनी गाय जती देखी चंद्रगुप्ते कह्युं के ए गाय पण तमे ल्यो. चाणाक्ये कह्युं के ए पारकी छे ते केम लेवाय? चंद्रगुप्ते कह्युं " वीर-भोज्या वसुंधरा " ए वचन सांजली विस्मित थको चाणाक्य पूछवा लाग्यो. आ बा-लक कोनो छे ? त्यारे बीजा बोल्या, ए परिव्राजकनो पुत्र छे. ते सांजली चाणाक्ये कह्युं के हे वत्स ! आव, तुजने राज्य देवरावुं. ते वारे चंद्रगुप्त उठीने चाणाक्यने

पगे लाग्यो अने बेहु जण देशांतरे चाल्या. पछी धातुर्वादादिकने योगे सुवर्णसिद्धि करी हस्ती, तुरंगम, गज, पायदलादिक सर्व सैन्य एकठुं करी, लइने पाडलीपुर नगरे घेरो नाख्यो. नंद राजा पण युद्ध करवा सामो आव्यो, युद्ध करतां दैवयोगे चाणाक्यनुं सैन्य नाठुं. ते वारे ते चाणाक्य, चंद्रगुप्तने साथे लइ जीवतो नाठो. पाछलथी नंद राजाए चाणाक्यने मारवा माटे केटलाएक घोडेसवार मोकल्या अने नंद राजा पाछो घेर आव्यो. हवे ते सवारो दोडता दोडता चाणाक्यनी नजीक आव्या. ते जोइ चाणाक्ये चंद्रगुप्तने कह्युं के हे वत्स! तुं नासीने सरोवरमां प्रवेश कर. तेणे तेमज कीधुं अने चाणाक्य पोते सरोवरने कांठे योगींद्र थइ ध्यान धरवा बेठो. एटलामां असवार आवी चाणाक्यने पूछवा लाग्यो, स्वामिन्! तमे इहां बे स्वरूपवंत यौवनवय पुरुषो जता दीठा? चाणाक्ये ध्यानभंगना भयनो डोल घालीने संज्ञाथी सरोवरमां रहेलो चंद्रगुप्त देखाड्यो. तेने काढवा माटे असवारे हथियार धरती उपर राख्यां अने पोते पाणीमां प्रवेश करवा मांड्यो, एटलामां चाणाक्ये उतावलथी उठी लघुलाघवी कलाए करी तेज हथियारथी तेनुं मस्तक कापी नाख्युं. पछी चंद्रगुप्तने पाणीमांथी काढी अश्व तथा हथियार लइ बेहु मार्गे चालता थया. ते वारे रस्तामां

चंद्रगुप्तने चाणाक्ये कह्युं के हे वत्स! में तुजने पाणीमां बताव्यो ते वखते तुजने मारी उपर द्वेष उपन्यो के केम? ते कहे. ते वारे चंद्रगुप्ते कह्युं के हुं तो एम समज्यो के जे तमे कह्युं हशे, ते गुणने वास्तेज कह्युं हशे.

वली आगल जतां नंदा राजानो बीजो असवार आवतो देखी फरी चाणाक्ये ते चंद्रगुप्तने तलावमां प्रवेश कराव्यो अने त्यां कोइ धोबी वस्त्र धोतो हतो तेने चाणाक्ये कह्युं, हे रजक! राजा रीसाणो छे ते लोकोने मारतो आवे छे, माटे जीवितव्य वांछो तो अहींथी नासी जाओ. रजके पण उघाडे खड्ग असवार आवतो दीठो, ते जोइ ते नासी गयो. पाछलथी चाणाक्य ते धोबीनां वस्त्र धोवा लाग्यो. तेने असवारे आवी पूर्वनी पेठे पूछ्युं, तेने पण चाणाक्ये तेमज पूर्वोक्त बुद्धिए करी मारी नाख्यो.

फरी बेहु जण तिहांथी आगल चाल्या. संध्या समये एक गामे गया. तिहां एक डोशीने घेर जइ बेठा, एटलामां ते डोशीनो पुत्र वालु करवा बेठो. तेने डोशीए उनी राब पीरसी छे, तेमां ते छोकरे उतावले वचमां हाथ घाल्यो, ते वारे डोशीए कह्युं के दाझो रे पुत्र दाझो. तुं पण चाणाक्यनी पेठे मूर्ख कां थयो छो? ते सांभली चाणाक्ये डोशीने पूछ्युं के माताजी! चाणाक्यने मूर्ख केम कहो छो? ते वारे डोशी

बोली के चाणाक्ये प्रथमथीज पाडलीपुर जइ रुंध्युं, परंतु जो देश पोताने वश करी पछी नगरने घेरो घाल्यो होत, तो शुं बगडी जात ? ए बुद्धि सांभली चाणाक्य विस्मयापन्न थइ हिमवंत पर्वते गयो. तिहां एक गाममां जइ पर्वतक राजानी साथे प्रीति कीधी. एक दिवस अवसर जोइ चाणाक्ये ते राजानी साथे मसलत करी के आपणे नंद राजानो देश वश करी पाडलीपुरमांथी नंद राजाने उठाडी अर्धो अर्ध राज्य वहेंची लेशुं. तेणे पण ते वात मान्य करी. पछी बेहु एकठा मली कटक मेलवी अनुक्रमे सर्व देश वश करी छेल्लो पाडलीपुरने विषे घेरो नाख्यो. नंद राजाए युद्ध कर्युं. तेमां नंद राजा हारी गयो, ते वारे धर्मद्वार माग्युं. तेने चाणाक्ये कह्युं के हे नंद राजा ! जेटलुं एक रथमां द्रव्य उपडे, तेटलुं लइ जाउ, तेथी अधिक लेशो मां. नंद राजा पण मणि रत्न सुवर्णादिक रथमां भरी, एक स्वरूपवल्लभा दीकरीने रथमां बेसाडी तिहांथी नीकल्यो. एवामां चंद्रगुप्त रथमां बेसी गाममां फरवा नीकल्यो छे, तेनी उपर कुमरीनी दृष्टि पडी, तेथी अनुराग उपन्यो, ते वारे नंद राजा पुत्रीनो मनोगत भाव जाणीने बोल्यो के हे पुत्रि ! तुं सुखे ए चंद्रगुप्त भरतारने वर. तारुं कल्याण थाउ. एम कहेतांज ते पुत्री रथ उपरथी उतरीने चंद्रगुप्तना रथ उपर चढवा लागी. तेट-

लामां चंद्रगुप्तना रथना नव आरा भांगी पड्या, ते वारे चंद्रगुप्ते कह्युं के ए कन्या अशुभकारिणी छे, माटे जवा द्यो, आपणा कामनी नथी. तेने चाणाक्ये कह्युं के ए शुकन भलुं छे, एनुं वर्जन म कर. नव आरा भांग्या माटे तारी नव पेढी पर्यंत राज चालशे, एम कही कन्या राखी. पछी पर्वतक अने चंद्रगुप्त ए बेहु नंदना घरमां गया, तिहां लक्ष्मीनी वहेंचण करवा लाग्या. ते घरमां एक कन्या दीठी, तेनी उपरे पर्वतक राजा सानुरागी थयो. ते वारे ते कन्या चाणाक्ये पर्वतक राजाने परणावी, परंतु ते विषकन्या होवाथी तेना करस्पर्शनथी पर्वतक राजा विपत्ति पाम्यो. ते विषकन्याने योगे चंद्रगुप्तने औषध विना व्याधि गयो ॥ यतः ॥ अर्द्धराज्यहरं मित्रं, यो न हन्यात्स हन्यते ॥ तस्माद्विनौषधेनैव, व्याधिर्गच्छेत्तु गम्यते ॥ १ ॥ चंद्रगुप्त सर्व राज्यनो धणी थयो, राज्य पालवा लाग्यो. एवामां पाटलीपुरनिवासी सर्व लोक मली विनंति करवा लाग्या के अहो स्वामी ! नंद राजा अमारी पासेथी स्वल्प कर लेतो हतो, प्रजाने आत्मजनी पेरे पालतो अने हमणां तमारा राज्यमां तो अमे करे करी पीडित छीए, माटे केम करीए ! क्यां जइए ! ! ! ते वारे चंद्रगुप्ते चाणाक्यना मुख सामुं जोयुं, तेणे विचार्युं जे आ लोकोने संतोष नहि थशे, तो लोक

उचाळो भरीने जशे. एम विचारी लोकोने कर रहित कर्या, तेने लीधे आयपद थोडी अने खरच घणो थवाथी भंडार खाली थतो देखीने चाणाक्य कांइक नवीन उपाय चिंतववा लाग्यो. ते वारे त्रण उपवास करी पूर्वना मित्र देवताने आराध्यो. ते देवताए आवी भक्तिने प्रमाणे चाणाक्यने बे अजेय पासा आप्या. पछी चाणाक्य ते शहेरना व्यवहारीयाने तेडी क्रोड क्रोड टकानां रत्न भंडारमांथी काढी द्यूत रमवा माटे कहेवा लाग्यो के जे मुजने जूवटुं रमतां जीते, तेने ए रत्न सर्व आपुं, अने जे हारे ते ए रत्न मांहेला रत्न सरखुं एक रत्न आपे. ए वचने संतोष पाम्या थका ते व्यवहारीया रमवा लाग्या, पण देवताधिष्ठित पासाना बलथी चाणाक्य जीती जाय, कोइ काले हारे नहीं. ते पण कदापि दैवयोगे हारी जाय, परंतु मनुष्यभव हाथमांथी गयो ते फरी पामवो महा दुर्लभ छे ॥ इति द्वितीय पासकदृष्टांतः ॥ २ ॥

हवे त्रीजो धान्यनो दृष्टांत कहे छे. कोइक राजाए कौतुक माटे सर्व जातिनां भरतक्षेत्रमां उपजतां धान्य एकठां करावी तेमां एक पाथो सरसवना दाणानो नाख्यो, ते धान्य साथे मेलवीने पछी एकसो वर्षनी डोशीने तेडावी कह्युं के आ चोवीश जातिनां धान्यना राशिमांथी सर्व जातिनां धान्य जूदां करीने वली एक

सरसवनो पाथो साथे मेलव्यो छे, ते काढी आपो. ते वृद्धा डोशीथी ए कोइ रीते जूदा थइ शकेज नहीं. ते पण कदापि देवसहायथी सरसव जूदा थइ शके, पण जे मनुष्यावतार गयो ते फरी वीतरागनी आज्ञामां वर्त्ततो एवो मनुष्यभव पामवो दुर्लभ छे ॥ इति तृतीय दृष्टांतः ॥

हवे चोथो द्यूतनो दृष्टांत कहे छेः— कोइक राजानी सभा एकसो आठ थांभाए करी समन्वित छे, ते वळी एकेके थांभे एकसो ने आठ हांसो छे. ते राजा घणो वृद्ध थयो पण मरण पामतो नथी, ते वारे मोटा छोकराए विचार्युं जे हुं पण वृद्ध थवा आव्यो, तो हवे राजा क्यारे मरशे ने पछी हुं ते राज्य क्यारे भोगवीश ! माटे कोइ रीते राजाने मारी नाखुं तो हुं राजा थाउं. ते छुपी वात प्रधाने जाणीने राजाने संभळावी. राजाए विचार्युं जे पुत्र पण जीवतो रहे अने हुं पोते पण जीवतो रहुं एवी युक्ति शोधुं. पछी बुद्धिना प्रपंचे करी पुत्रने तेडावीने कह्युं जे हे वत्स ! हुं वृद्ध थयो, माटे तुं राज्य ले, पण प्रथम आपणा घरनी चाल छे, ते कर, के जे थकी तुजने राज्य स्थिर थाय. कुमर बोल्यो के हे पिताजी ! जे तमे आज्ञा आपो, ते हुं करुं. राजाए कह्युं, आपणी सभाना एक मंडपे १०८ थांभला छे, थांभले थांभले १०८

हांस छे, माटे तमे मारी साथे जूवटुं रमो. एकवार जीतो तो एक हांस जीत्या. एम १०० वार जीतो तो एक थांभो जीत्या. एवा १०० थांभा जीतीने राज्य ल्यो, पण जो रमतां रमतां वचमां एक दाव हारी जशो तो पाछला दाव सर्व व्यर्थ जशे. ते वचन सांभली कुमर पण लोभना वशथी रमवा बेठो. घणा दिवस रमतां पण एके थांभो जीती शकायो नहीं, तो सर्व सभाना थांभला क्यांथी जीत्या जाय? कदापि ते पण कोइ देवताना सान्निध्यथी जीत्या जाय, परंतु मनुष्यभवथी भ्रष्ट थयो ते बीजी वार मनुष्यजन्म न पामे ॥ इति चतुर्थ द्यूतदृष्टांतः ॥ ४ ॥

हवे पांचमो रत्ननो दृष्टांत कहे छेः—वसंतपुर नगरे अपार धननो धणी गुणवान् धन्नो एवे नामे व्यवहारीयो वसे छे. तेने गुणवंत एवा पांच पुत्रो छे. हवे ते धन्नो शेठ रत्नपरीक्षाने विषे निपुण छे, माटे तेनुं अपर नाम रत्नपरीक्षक छे. जे जे बहुमूलां रत्न आवे, ते सर्वनो संग्रह करे, पण वेचे नहीं. ते वारे पुत्रो कहेवा लाग्या के हे पिताजी! छमणां त्रमणां दाम आवे छे, तेम छतां रत्न कां वेचता नथी? तोपण ते लोभवशे वेचे नहि. एकदा ते शेठ ग्रामांतरे गयो, पछी पाछलथी पुत्रोए सर्व रत्न कोइ देशांतरीने वेचातां आपी दीधां. शेठ घेर आव्यो, अने पोतानां रत्न

वेचवाना सर्व समाचार सांभली रीसे करी कहेवा लाग्यो के हे पुत्र ! मारां जे रत्नो छे, ते रत्नो पाछां आण्या विना मारा घरमां तमे आवशो नहीं. ते वारे ते पांचे पुत्र रत्न लेवा माटे परदेश भणी नीकल्या, पण ते सर्वे रत्नो तेवांने तेवांज क्यांथी मले ? हवे ते पण कदाचित् कोइ देवतानी सहायथी मली जाय, परंतु मनुष्यावतार थकी जे भ्रष्ट थयो होय, ते फरी मनुष्यभवने पामे नहीं ॥ इति पंचम रत्नदृष्टांतः ॥ ५ ॥

हवे छठो स्वप्ननो दृष्टांत कहे छेः—उज्जयणी नगरीए बहोंतेर कलानो जाण एवो मूलदेव नामे राजपुत्र छे, ते कलाकलापे करी सकल लोकने प्रीति उपजावतो रहे छे. एकदा ते उज्जयणीमां देवदत्ता वेश्यानी उपर आकरो रागातुर थइने तिहांज रह्यो. तेने कोइक व्यवहारीए मान भ्रंश करी काढ्यो. त्यांथी नीकली परदेश भमवा लाग्यो. अनेक पृथ्वीना विनोद देखतो थको कोइक गामे मठ मांहे जइ सूतो. तिहां स्वप्नमां चंद्रमाने पोताना मुखमां पेसतो देखी जाग्यो, ते समये तेज मठमां एक कापडीए एटले कोइ गुंसाइने चेले पण एवुंज स्वप्न दीठुं. पछी जागीने ते स्वप्ननो विचार पोताना गुरु गुसांइ पासे जइ पूछवा लाग्यो, ते वारे गुसांइए कह्युं के आज तुं घृत खांड सहित रोटलो पामीश. एवुं जाणी मध्याह्न समये ते भिक्षा माटे गयो,

तिहां कोइक दातार पुरुषे घृत खांड सहित रोटला आप्या, ते लइ चालतो थयो अने मनमां प्रमोद पाम्यो. हवे मूलदेव तो शास्त्रनो जाण छे माटे मठ थकी नीकली फलफलादिक लइ स्वप्नपाठक आगल मूकी स्वप्ननो विचार पूछ्यो. ते वारे पाठक बोल्यो के तमोने मोटुं राज्य मलशे. तेने तहत्त मानीने नगर मांहे भिक्षा पामी कल्माषे करी मासोपवासी साधुने पारणुं कराव्युं. ते साधुनी भक्तिना प्रभावथी देवता तुष्टमान थइ बोल्यो के हे मूलदेव ! तुं एके वचने जे विचारमां आवे, ते माग. ते वारे मूलदेव बोल्यो के हे स्वामिन् ! हजार हस्ती बंधाय एवुं राज्य देवदत्ता गणिका सहित आपो. देवता बोल्यो के ए सर्व तमे पामशो. ते वार पछी सातमे दिवसे कोइक नगरे गयो. तिहां अपुत्रीओ राजा मरण पाम्यो. ते नगरना लोकोए राजानुं मृतकार्य करी राज्यना अधिकारी पंचने मेलवी पंच दिव्य प्रगट करी मूलदेवने राज्य आप्युं. ए वात गुसांइना चेलाए सांभली ते वारे पश्चात्ताप करवा मांड्यो जे अरे ! हुं निर्बुद्धि छुं, मने स्वप्न लाध्युं ते फोकट हार्युं. पछी वारंवार जइ तिहांज सुवे पण स्वप्न देखे नहीं. कदाचित् दैवयोगे वली ते कापडी स्वप्न पण देखे, परंतु मनुष्यभवथी भ्रष्ट थयो ते फरी मनुष्यभव पामे नहीं ॥ इति षष्ठ स्वप्नदृष्टांतः ॥ ६ ॥

हवे सातमो चक्रनो दृष्टांत कहे छे. इंद्रपुर नगरे इंद्रदत्त राजा छे, तेने बावीश राणीओना श्रीमाल प्रमुख बावीश पुत्रो छे. ते सर्व बहोंतेर कलामां प्रवीण छे, सर्व सौभाग्यना निधान छे. एकदा वली राजाए मंत्रीनी पुत्रीने परणी. पाछलथी कर्मयोगे ते मंत्रीनी पुत्रीने अने राजाने द्वेष थयो, तेथी राजाए तेने त्यागी दीधी, ते पिताने घेर जइ रही. एम करतां घणा दिवस वीत्या, ते वारे एक दिवस राजाए बहार जतां ते स्त्रीने गोंखे बेठी दीठी, ते दिवसे ते ऋतुस्नानवाली छे. राजाए तेने साक्षात् रति समान देखी पोताना माणसोने पूछ्युं के अरे! ए स्त्री ते कोण छे? ते वारे एक सुभटे कह्युं, हे स्वामिन्! ए मंत्रीनी पुत्री तमारी राणी छे, ते वारे राजा ते रात्रे तिहांज रह्यो. पछी भाग्ययोगे कोइक पुण्यवंत जीव तेने उदरे आवी उपन्यो. प्रातःकाले पुत्रीए पिता आगल सर्व समाचार कह्या. ते वारे मंत्रीए ते दिवस, वेला, संकेत इत्यादि सर्व यादी कागले लखी राखी अने पूर्ण दिवस थये पुत्र जन्म्यो, तेनुं नाम सुरेंद्रदत्त दीधुं. पछी उज्ज्वल पक्षमां जेम चंद्रमा हर्ष उपजावे, तेम हर्ष उपजावतो क्रमे क्रमे वधतो गयो. हवे तेज दिवसे मंत्रीनी दासीए चार पुत्र प्रसव्या, तेनां नाम कहे छे. एक अग्निकर, बीजो पर्वतक, त्रीजो बहुल, चोथो सागर अने

पांचमो तेनी साथे सुरेंद्रदत्त, ए पांचे मली एकज उपाध्याय पासे जणवा लाग्या. तिहां प्रधाने सुरेंद्रदत्तने जणाववा माटे कलाचार्यने सारी रीते जलामण दीधी, ते उपरथी कलाचार्यें पण घणी महेनत करीने जणाव्यो. दासीना चारे पुत्र विघ्न करे, पण सुरेंद्रदत्त विद्याभ्यासज करतो रहे. वली राजाना बीजा जे बावीश पुत्रो छे, ते पण तेज निशालमां जणे छे, परंतु ते राजमद यौवनमदे करीने उद्धंठ थका गुरुनी सामा वांकुं बोले, ते वारे कलाचार्य तेमने शीख आपे, तो रुदन करता मावापनी आगल जाय, अने प्रधान तो अध्यापकने एज जलामण करे के पुत्रने ताडना तर्जना करीने पण जणावजो; तेथी उपाध्याय पण तेने खांते करी विशेष जणावे. शास्त्रकला, राधावेध प्रमुख सर्व कलाउं शीखी हुशियार थयो, ते वारे अध्यापके सुरेंद्रदत्त कुमरने लावीने प्रधानने सोंप्यो, प्रधाने पण अध्यापकने सारी रीते दान दइ संतोषीने विसर्जन कस्यो.

एवा अवसरे मथुरानगरीए जितशत्रु राजानी निर्वृत्ति नामे पुत्री छे. ते तरुण अवस्थाने प्राप्त थइ, ते वारे माताए सर्व शणगार पहेरावी तेना बाप पासे मोकली. पिताए तेनी सुरत देखी ए कन्या स्वयंवरने योग्य छे, एम चिंतवीने कह्युं के हे पुत्री !

मन मानता भरतारने तमे वरो. पुत्री बोली, हे पिताजी ! जे राधावेध साधे, तेने हुं वरुं. कुमरीनी एवी प्रतिज्ञा जाणी राजाए गाम गाम दूत मोकली कहेवराव्युं, अने इंद्रदत्तने घणा पुत्र छे माटे तेने तेडवा सारु प्रधान मोकल्यो. तेणे जइ राजाने विनव्यो के स्वामिन् ! तमारा पुत्रो सहित तमे स्वयंवरने विषे पधारो. राजा पण बावीश पुत्रे परवर्यो थको प्रधान सहित स्वयंवरमंडपे आव्यो.

हवे जितशत्रु राजाए शुभ मुहूर्त्ते सर्व नगर शणगार्युं. पोते नगर बहार सर्व परिवार सहित नीकल्यो, मंडप कराव्यो, तेनी वचमां स्तंभ उभो कीधो, उपर सृष्टिसंहारे फरतां आठ आठ चक्र मांड्यां, ते उपर पूतली मांडी, उंधा मुखने धारण करनारी ते पूतली छे तेथी तेनुं नाम राधा पाडेलुं छे, वली हेठल तेलथी भरेली एक कडाइ मांडी. तिहां कन्या पंचवर्णी सुगंध युक्त फूलनी माला लइ थंभनी पासे आवी उभी रही, अने कहे छे के जे पुरुष ए राधावेध साधशे, तेना कंठमां हुं आ माला आरोपण करीश. एम कही सावधान थइ उभी रही.

ते अवसरे इंद्रदत्त राजाए पोतानो मोटो श्रीमाल नामे पुत्र छे तेने दूर लइ जइ कह्युं के हे पुत्र ! तुं राधावेध साध, अने कन्या सहित ए राज्य लइ ले. ते वात

सांभळी ते पुत्र कंपवा लाग्यो. धनुष्य मात्र पण उपाडी न शक्यो, तथापि वळी कांइक साहस आदरी धनुष्य तो प्रयासे करी उपाड्युं, पण ते चडावी शक्यो नहीं, ते वारे विलखो थइने बोल्यो के अरे ! आ कार्य तो माराथी थायज नहीं.

एवामां वळी बीजो कुंअर आव्यो, ते आवी धनुष्य चडावी तुरत पाछो वळ्यो. पछी त्रीजो कुमर आवी दृष्टिए जोइ पाछो वळ्यो, तथा चोथो पुत्र तो अर्ध रस्तेथीज जोइ पाछो वळ्यो, अने पांचमो तो पोताना स्थानकथी उठ्योज नहीं. एम बावीश कुमर विलखा थइ बेठा, ते वारे राजानुं मुख विलखाणुं जोइ प्रधाने कह्युं के स्वामिन् ! दुःखी म थाओ. एक पुत्र तमारो हजी पण छे. तेने राजाए पूछ्युं के ते कयो पुत्र छे ? ते वारे मंत्रीश्वरे सर्व वृत्तांत कही संभलाव्युं अने कागळ लावी नामो वंचाव्यां. राजाए पण ते वात संभारीने प्रधानने कह्युं के ते पुत्रने तरत तेडी लावो. ते वारे मेहेते पण सुरेंद्रदत्तने स्नान शणगार करावी तेडी आणी राजाने पगे लगाड्यो. राजा ते पुत्रने देखी हर्षित मनवालो थयो थको चिंतववा लाग्यो के ॥ यत्रोदकं तत्र वसंति हंसा, यत्रामिषं तत्र पतंति गृध्राः ॥ यत्रार्थिनस्तत्र भवंति वेश्या, यत्राकृतिस्तत्र गुणा वसंति ॥ १ ॥ हवे राजाए कह्युं के हे वत्स ! ए राधावेध साधी कन्या

सहित राज ल्यो. ते कुमरनी मुखाकृति देखी लोक पण चमत्कार पाम्या. कुमर पण राजानो आदेश पामी निश्चल मने गुरुना चरणकमलने नमस्कार करी स्थंभनी नजीक जइ धनुष्यने नमन करी तत्काल धनुष्य चडावी तेलनी कढाइ मांहे नीची दृष्टिए मुख जोते थके ऊपर बाण मूक्युं. ते बाणे राधानी आंख मांहेली कीकी वींधी, जेवी वींधी के तुरत याचक लोकोए जयजयारव कीधो, अने कन्याए वर-माला घाली. राजा अने मंत्रीश्वर ए बे हर्ष पाम्या. तिहां सुरेंद्रदत्त कन्या सहित राज्यलक्ष्मीनां सुख पाम्यो, एवी रीते कोइ कदाचित् राधावेध साधे, पण मनुष्य-भवथी भ्रष्ट थयो ते वली फरीने नरभव न पामे ॥ इति सप्तम चक्रदृष्टांतः ॥ ७ ॥

हवे आठमो कूर्मनो दृष्टांत कहे छेः—कोइक एक लक्ष योजन प्रमाण द्रह छे, तेमां एक मोटो काचबो रहे छे. तेणे एकदा प्रस्तावे वायराने योगे सेवाल फूटे थके आकाशमंडलने विषे आशो सुदि पूनमनी रात्रे सकल कलाए संपूर्ण नयनानंदकारी, समग्र नक्षत्रे करी बिराजमान एवो चंद्रमा दीठो, तेथी मनमां प्रमोद पाम्यो. पछी पोताना कुटुंबने देखाडवा माटे फेरी पाणीमां डुबकी खाइने कुटुंबने तेडी लाव्यो, तेटलामां वायराने प्रसंगे सेवाल मांहोमांहे तेमज मली गइ,

तेथी चंद्र दर्शन थया विना एमज आखा कुटुंबने पाछुं फरवुं पड्युं. ते काचबो वली पण कदाचित् चंद्रमा देखे, पण नरभव हारी गयो, धर्म विना शिथिल थयो ते जीव फरी मनुष्यजन्म न पामे ॥ इत्यष्टम कूर्मदृष्टांतः ॥ ८ ॥

हवे नवमो युगनो दृष्टांत कहे छेः— आ तिर्यग् लोक मांहे लवण समुद्र आदे देइ ठाण बमणां करतां असंख्याता द्वीप समुद्र छे, तेमां छेल्लो स्वयंभूरमण समुद्र अर्ध राज्य प्रमाण भूमि रुंधी रह्यो छे. तेनी पूर्वदिशिए धोंसर नाखीए अने पश्चिमदिशिए खीली समील नाखीए तो कहो ते पाछी केम मले ? अथवा ते समील धोंसराना छिद्र मांहे केवी रीते प्रवेश करे ? कदाचित् देवप्रभावथी ते पण धोंसर मांहे खीली मले, पण जे जीव नरभव थकी भ्रष्ट थयो, ते वली फरीने नरभव न पामे ॥ इति नवम युगदृष्टांतः ॥ ९ ॥

हवे दशमो परमाणुनो दृष्टांत कहे छेः— एक देवताए मोटा पाषाणना थंभने वज्रे करी चूर्ण कर्यो, तेने अत्यंत पीसी वाटी मेरुपर्वते चडी वांसनी नलीमां भरी फूंक साथे उडाड्यो, ते परमाणुआ पाछा एकठा करवा महा दुर्लभ छे तोपण कदाचित् देवना प्रभावे ते पण एकठा मेलवी शकाय, पण मनुष्यभव थकी भ्रष्ट थयेला जीवने

ते मनुष्यजन्म पाछो पामवो अति डुर्लन्न छे ॥ इति परमाणुदृष्टांतः ॥ ए दश दृष्टांत कह्या ॥

हवे मनुष्यन्नवनो सर्वोत्कृष्ट जय कहे छे.

॥ मंदाक्रांतावृत्तम् ॥ स्वर्णस्थाले क्षिपति स रजः पादशौचं विधत्ते, पीयूषेण प्रवरकरिणं वाहयत्यैंधन्नारम् ॥ चिंतारत्नं विकिरति कराद्वायसोड्डायनार्थम्, यो डुःप्रापं गमयति मुधा मर्त्यजन्म प्रमत्तः ॥ ५ ॥

अर्थः—(यः के०) जे पुरुष, (प्रमत्तः के) मद्य, विषय, कषाय, निद्रा, विकथारूप प्रमादने वश थयो थको (डुःप्रापं के०) चोराशी लाख जीवयोनिने विषे न्नमता जीवे महा कष्टे पामवा योग्य एवो (मर्त्यजन्म के०) मनुष्यजन्म, तेने जिनधर्म विना (मुधा गमयति के०) व्यर्थ गमावे छे, (सः के०) ते पुरुष, (स्वर्णस्थाले के०) सुवर्णस्थालने विषे (रजः के०) धूल एटले कचरादिक तेने (क्षिपति के०) नाखे छे, अर्थात् सुवर्णस्थाल समान मनुष्यजन्म जाणवो, तथा रज समान प्रमाद जाणवो. एटले प्रमादवशे मनुष्यजन्म व्यर्थ जाय छे. वली पण ते पुरुष शुं करे

छे ? तो के (पीयूषेण के०) अमृते करीने (पादशौचं के०) पादप्रक्षालनने (विधत्ते के०) करे छे, अर्थात् जे अमृतना बिंदुमात्रनुं पान करवाथी अजरामरत्व प्राप्त थाय छे, ते अमृतने पादप्रक्षालनने माटे वृथा गमाववुं ते अयुक्त जाणवुं. तेम वली ते पुरुष शुं करे छे ? तो के (प्रवरकरिणं के०) उत्तम हस्ती प्रत्ये (ऐंधभारं के०) काष्ठभारने (वाहयति के०) वहन करावे छे. अर्थात् जे हस्तीने पोताना द्वार आगल बांधे छते द्वारनी शोभा थाय छे, ते हाथीए काष्ठ लाववां, ते अयुक्त छे. वली ते पुरुष शुं करे छे ? तो के (वायसः के०) कागडाने (उड्डायनार्थम् के०) उडाडवाने अर्थे (चिंतारत्नं के०) चिंतामणिने (करात् के०) हाथ थकी (विकिरति के०) फेंके छे, अर्थात् मनोवांछित अर्थने देनारुं एवुं चिंतामणि रत्न तेनुं कागडाने उडाडवाने माटे फेंकवुं तें अयोग्य छे, तेम धर्मसाधक पुरुषें मर्त्यजन्मे करी प्रमाद करवो ते अयुक्तज छे. तेथी हे भव्यजनो ! एम जाणीने मनमां विवेक लावी प्रमादनो त्याग करीने धर्मे करीने मनुष्यजन्म सफल करवो. धर्म आचरता एवा सज्जन पुरुषोने जे पुण्य इत्यादि पूर्ववत् ॥ ५ ॥

टीकाः—अथ मनुष्यभवस्य सर्वोत्कृष्टत्वमाह ॥ स्वर्णस्थाल इति ॥ यः पुमान् प्र-

मत्तः सन् प्रमादस्य वशं पतितः सन् मद्यविषयकषायनिद्राविकथारूपप्रमादवशं गतः सन् दुःप्रापं चतुरशीतिलक्षजीवयोनिषु भ्रमति जीवेन दुःखेन महता कष्टेन प्राप्यं यत् मर्त्यजन्म मनुष्यभवं तत् मुधा वृथा श्रीजिनधर्म्मं विना निष्फलं गमयति । स पुमान् स्वर्णस्थाले रजो धूलिं कचवरादि क्षिपति । स्वर्णस्थालतुल्यं मर्त्यजन्म रजःसदृशाः प्रमादाः ॥ पुनः स पुमान् पीयूषेण अमृतेन कृत्वा पादशौचं चरणप्रक्षालनं विधत्ते करोति। पीयूषस्य बिंदुमात्रपानेनाजरामरत्वं स्यात् तत्पादप्रक्षालनार्थं मुधा वृथा गमयतीत्युक्तं ॥ पुनः स पुमान् प्रवरकरिणं प्रधानहस्तिनं ऐंधभारं इंधनकाष्ठसमूहं वाहयति ॥ यस्मिन् गजे द्वारि बद्धेऽपि सति शोभा भवति तेन इंधनानयनमयुक्तं ॥ पुनः स पुमान् वायसोड्डायनार्थं काकस्य उड्डायननिमित्तं चिंतामणिरत्नं करात् हस्तात् विकिरति विक्षिपति ॥ यथा मनोवांछितार्थदायकस्य चिंतामणिरत्नस्य काकउड्डायनार्थं विक्षेपणमयुक्तं तथा धर्मसाधकेन मर्त्यजन्मना प्रमादसेवनमयुक्तं । भो भव्यप्राणिन्! एवं ज्ञात्वा मनसि विवेकमानीय प्रमादं त्यक्त्वा धर्मेण कृत्वा मनुष्यजन्म सफलं कार्यं ॥ धर्ममाचरतां सतां यत् पुण्यमुत्पद्यते तत् पुण्यप्रसादात् उत्तरोत्तरं मांगल्यमाला विस्तरंतु ॥ ५ ॥

भाषाकाव्यः—सवैया त्रेवीशा ॥ ज्यौं मतहीन विवेक विना नर, साजि मतंगज इंधन ढोवै ॥ कंचन भाजन धूलि भरे सठ, मूढ सुधारससुं पग धोवै ॥ वोहित काग उडावन कारन, डारि महामनि मूरख रोवै ॥ त्यों नरदेह दुर्लभ वनारसी, पाइ अजान अकारथ खोवै ॥ ५ ॥

हवे जे संसारना विषय माटे धर्मनो त्याग करे छे, ते मूढ पुरुष जाणवा, ते कहे छे.

॥ शार्दूलविक्रीडितवृत्तम् ॥ ते धत्तूरतरु वपंति भवने प्रोन्मूल्य
कल्पद्रुमम्, चिंतारत्नमपास्य काचशकलं स्वीकुर्वते ते जडाः ॥
विक्रीय द्विरदं गिरींद्रसदृशं क्रीणंति ते रासभं, ये लब्धं परिहृत्य
धर्म्ममधमा धावंति भोगाशया ॥ ६ ॥

अर्थः—(ये के०) जे (अधमाः के०) मूर्ख एवा पुरुषो (लब्धं के०) प्राप्त थयेला एवा (धर्म के०) धर्म जे तेने (परिहृत्य के०) त्याग करीने (भोगाशया के०) भोगविषय वांछनाने अर्थे (धावंति के०) दोडे छे, अर्थात् विषयार्थमां प्रवर्त्ते छे, (ते के०) ते नरो, (भवने के०) पोताना गृहने विषे उत्पन्न थयेला (क-

ल्पद्रुमं के०) कल्पवृक्षने (प्रोन्मूल्य के०) काढी नाखीने (धत्तूरतरुं के०) धंतुराना
वृक्षने (वपंति के०) आरोपण करे छे. वली (ते जडाः के०) ते जड पुरुषो शुं
करे छे ? तो के (चिंतारत्नं के०) चिंतामणि रत्नने (अपास्य के०) त्याग करीने
(काचशकलं के०) काचना कटकाने (स्वीकुर्वते के०) स्वीकार करे छे. वली (ते के०)
ते जड पुरुषो, (गिरींद्रसदृशं के०) पर्वत समान ऊंची कायावाला (द्विरदं के०)
हस्तीने (विक्रीय के०) वेचीने (रासभं के०) गर्दभने (क्रीणंति के०) मूल्ये करीने
ग्रहण करे छे. आ ठेकाणे कल्पवृक्ष सदृश धर्म जाणवो, तथा धंतुराना वृक्ष समान विषय
जाणवा, तेवी रीते सर्वत्र सारां दृष्टांतो धर्मने लगाडवां तथा अन्य दृष्टांतो विषयने लगा-
डवां. माटे हे भव्यजनो ! एम मनने विषे विवेक लावीने कल्पवृक्ष तथा चिंतामणि स-
मान श्रीजिनेश्वरना धर्मनुंज आराधन करवुं. आराधन करनारनुं जे पुण्य इत्यादि पूर्ववत्
टीकाः—ये तु असाराणां विषयाणां कृते धर्म त्यजंति ते मूढा एवेत्याह ॥ ते धत्तूर
इति ॥ ये अधमा मूर्खाः पुरुषाः लब्धं प्राप्तं धर्म्मं परिहृत्य त्यक्त्वा भोगाशया विष-
यवांछया धावंति । विषयार्थं प्रवर्त्तंते, ते नरा भवनने स्वगृहे प्रोद्गतं उत्पन्नं कल्पवृक्षं
प्रोन्मूल्य उत्खाय धत्तूरतरुं वपंति आरोपयंति । पुनस्ते जडाः मूर्खाः चिंतामणिरत्नं

अपास्य त्यक्त्वा दूरीकृत्य काचशकलं काचखंडं स्वीकुर्वंते गृह्णंति ॥ पुनस्ते जडा गिरींद्रसदृशं पर्वतप्रायकायं उच्चं द्विरदं हस्तिनं विक्रीय रासनं गर्दभं क्रीणंति मूल्येन गृह्णंति ॥ अत्र कल्पवृक्षसदृशो धर्म्मः । धत्तूरसदृशा भोगाः एवं सर्वत्रोपनयः । भो भव्यप्राणिन्! एवं ज्ञात्वा मनसि विवेकमानीय कल्पवृक्षचिंतामणिसदृशः श्रीजिनधर्म्म एवाराध्यः आराधयतां यत्पुण्यमुत्पद्यते तत्पुण्यप्रसादात् उत्तरोत्तरं मांगल्यिक्यमाला विस्तरंतु ॥ ६ ॥

॥ भाषाकाव्यः—ज्यौं नरमूल उखारि कल्पतरु, बोवन मूढ कनकको खेत ॥ ज्यौं गजराज वेचि गिरिवर सम, क्रूर कुबुद्धि मोल खर लेत ॥ जैसे छांडि रतन चिंतामनि, मूरख काच खंड मन देत ॥ तैसे धरम विसारी बनारसी, धावत अधम विषय सुख हेत ॥ ६ ॥

कथाः—ए अर्थ उपर शशी सूरनो दृष्टांत कहे छेः—आ भरत क्षेत्र मांहे शुक्तिमती नामे नगरीने विषे शशी नामे राजा राज्य करे छे, ते महाप्रतापी छे, तथा तेनो लघुभाइ सूर एवे नामे छे, ते बेहु भाइ एक दिवस रयवाडीए चड्या, वन मांहे वृक्षनी नीचे साधुने बेठा दीठा, ते वारे अश्वथी उतरी बेहु भाइए साधुने वांद्या, साधुए पण

धर्मलाभ आपी उपदेश देवा मांड्यो ॥ गाथा ॥ माणुस्स खित्त जाई, कुल रूवारोग आउयं बुद्धि ॥ सवण्णुग्गह सिद्धा, संजम लोगंमि दुल्लहो लहियं ॥ १ ॥ माटे तमे सत्पुरुष छो, ते धर्मने विषे प्रमाद म करो ॥ गाथा ॥ चिक्कणघडेण साचिय, ढलीऊणं पाणियं जाई ॥ कोरं कुंभं च भेदइ, तहावि भवजीवाणं ॥ १ ॥ इत्यादि उपदेश सांभली सूर राजा दीक्षा लइ दुष्कर तप करवा तैयार थयो, अने शशी प्रत्ये भाइपणाना हितने माटे कहेवा लाग्यो के हे बांधव ! आ जीवे जन्मोजन्म भोग भोगव्या, समुद्रनी जेटलां पाणी पीधां, मेरु जेटलां धान्य आरोग्यां, तोपण तृप्ति न थइ. तेने शशी कहेवा लाग्यो के हे बांधव ! एवो कोण मूर्ख होय के जे भला राज्यभोग, ललित लोचना स्त्री, पान फूल तंबोलादि उत्तम प्रकारना भोग इत्यादि सामग्री संबंधी जे सुख, तेने त्यागीने परलोकना सुखने अर्थे उपवासादिक कष्ट करे. परलोक छे के नथी ते कोणे जोयो छे ? माटे तमे डाह्या हो तो आ छता भोग भोगवो, पोताना जीवने शाता आपो, अंतराय म करो, यौवन पामेलुं फोकट म गमावो, एवां भाइनां वचन सांभलीने सूर राजा खिन्न थयो. पछी गुरु पासेथी चारित्र ग्रहण करी सर्व परिग्रह छांडी चारित्र पालवामां तत्पर थयो. अंत्यावस्थाए अणसण आराधी स्वर्गे

गयो; अने शशी राजा विषयासक्त थयो थको मरण पामी नरके गयो. सूर राजाए देवलोकने विषे अवधिज्ञानने बले करी पोताना जाइने नरकनां दुःख जोगवतो दीठो, ते वारे देवलोकथी नीकली नरकमां जइ आपणां रूप तेज शक्ति प्रगट कीधां. ते देखी शशी बोल्यो के हे बांधव! अद्यापि ते मारो देह पड्यो छे, माटे तुं जइने ते देहनी यत्न कर के जेम हुं नरक थकी नीकली सुखी थाउं. ते सांजली सूर बोल्यो के अरे मूर्ख! जीवरहित देह पड्यो छे ते शुं सुकृत करशे? प्रथमथीज तें कोइ कष्ट कर्खुं होत तो आ नरकमां तुं पडत नहीं. हवे तुं तारुं मन ठाम राखी कर्म खपाव, करेलां कर्मनो पश्चात्ताप कर, जेथी आगले जवे सुखी थइश. एवुं कही सूर पोताने स्थानके पहोतो. एम कोइक जीव शशीनी पेरे मनुष्यजवमां धर्म न करे, ते आगल पश्चात्ताप पामे; माटे सर्व कोइ धर्म करो ॥ ६ ॥

हवे मनुष्यजन्मनुं तथा धर्मसामग्रीनुं दुर्लजपणुं कहे छे.

॥ शिखरिणीवृत्तम् ॥ अपारे संसारे कथमपि समासाद्य नृज-
वम्, न धर्मं यः कुर्याद्विषयसुखतृष्णातरलितः ॥ ब्रुडन् पारा-

वारे प्रवरमपहाय प्रवहणम्, स मुख्यो मूर्खाणामुपल-
मुपलब्धुं प्रयतते ॥ ७ ॥

अर्थः—(यः के०) जे पुरुष, (विषय के०) शब्द, रूप, रस, स्पर्श, गंध, तेमनां (सुख के०) सुख, तेनी (तृष्णा के०) वांछा, तेणे करीने (तरलितः के०) व्याकुल थयो थको (अपारे के०) अनंत एवा (संसारे के०) संसारने विषे (कथमपि के०) महा कष्टे करीने (नृभवं के०) नरभवने (समासाद्य के०) पामीने (धर्मं के०) धर्मने (न के०) नहि (कुर्यात् के०) करे, (सः के०) ते पुरुष, (पारावारे के०) समुद्रने विषे (ब्रुडन् के०) बूडतो छतो (प्रवरं के०) उत्तम एवुं (प्रवहणं के०) वहाणने (अपहाय के०) त्याग करीने तरवाने माटे (उपलं के०) पाषाणने (उपलब्धुं के०) ग्रहण करवाने (प्रयतते के०) प्रयत्न करे छे, एटले उद्यम करे छे. ते पुरुष केवो जाणवो ? तो के (मूर्खाणां के०) मूर्खोना मध्ये (मुख्यः के०) मुख्य जाणवो. अर्थात् ते पुरुष मूर्खोमां मोटो मूर्ख जाणवो. आ ठेकाणे संसार ते समुद्र जाणवो अने धर्म ते वहाण जाणवुं. विषयो ते पाषाण समान जाणवा.

माटे हे भव्यजनो! आ प्रकारे जाणीने मनमां विवेक लावीने संसारसमुद्रतारक एवा धर्मनुंज आराधन करो. आराधन करता एवा सज्जनोने जे पुण्य उत्पन्न थाय छे, ते पुण्य इत्यादि पूर्ववत् जाणवुं ॥ ७ ॥

टीकाः—अथ नरभवस्य धर्म्मसामग्र्याश्च दुर्लभत्वमाह ॥ अपारे संसारेति ॥ यः पुमान् विषयसुखतृष्णातरलितः सन् विषयाणां कामभोगानां शब्दरूपरसस्पर्शगंधानां सुखस्य तृष्णा वांछा तया तरलितो वाहितो व्याकुलीकृतः सन् अपारे अनंते संसारे कथमपि महता कष्टेन नृभवं मनुष्यजन्म समासाद्य प्राप्य धर्म्मं न कुर्यात् न करोति। स पुमान् पारावारे समुद्रे ब्रुडन् निमज्जन् प्रवरं उत्तमं प्रवहणं पोतं अपहाय त्यक्त्वा तरणार्थं उपलं पाषाणं उपलब्धुं गृहीतुं प्रयतते यत्नं करोति उद्यमं करोति ॥ कथंभूतः सः। मूर्खाणां मुख्यः मूर्खेषु वृद्धमूर्खः। अत्र संसारः समुद्रः। धर्म्मः प्रवहणं। विषयाः पाषाणसदृशा इत्युपनयः ॥ भो भव्यप्राणिन्! एवं ज्ञात्वा मनसि विवेकमानीय संसारसमुद्रतारकः श्रीधर्म्म एव आराध्यः। आराधयतां च सतां यत्पुण्यमुत्पद्यते तत्पुण्यप्रसादात् उत्तरोत्तरं मांगलिक्यमाला विस्तरंतु ॥ ७ ॥

भाषाकाव्यः—सोरठो ॥ ज्यौं जल बूडत कोइ, तजि वाहन पाहन गहैं ॥ त्यौं नर मूरख होइ, धरम छांडि सेवत विषय ॥ ७ ॥

हवे आ ग्रंथमां जेटलां उपदेशनां द्वारो कहेवानां छे ते
उपदेशद्वारे करी सर्व द्वारो कहे छे.

॥ शार्दूलविक्रीडितवृत्तत्रयम् ॥ भक्तिं तीर्थंकरे गुरौ जिनमते
संघे च हिंसानृतं, स्तेयाब्रह्मपरिग्रहाद्युपरमं क्रोधाद्यरीणां
जयम् ॥ सौजन्यं गुणिसंगमिंद्रियदमं दानं तपो भावनां, वै-
राग्यं च कुरुष्व निर्वृतिपदे यद्यस्ति गंतुं मनः ॥ ८ ॥

अर्थः—हे भव्यप्राणीओ ! (यदि के०) जो तमारुं (निर्वृतिपदे के०) मोक्षपदने विषे (गंतुं के०) जवानुं (मनः के०) मन (अस्ति के०) छे, तो तमे १ (तीर्थंकरे के०) तीर्थंकरने विषे एटले श्रीवीतरागने विषे (भक्तिं के०) गुणोत्कीर्त्तनरूप भावपूजाने (कुरुष्व के०) करो. वली २ (गुरौ के०) धर्मोपदेशक गुरुने विषे भक्तिने करो. भक्तिं अने कुरुष्व ए बे पदो सर्वत्र योजवां. वली ३ (जिनमते के०) श्री

जिनशासनने विषे न्नक्तिने करो. वली ४ (संघे के०) चतुर्विध श्री संघने विषे न्नक्तिने करो. (च के०) तथा ५ (हिंसा के०) जीववध, प्राणातिपात, ६ (अनृतं के०) असत्य ते मृषावाद तेने तथा ७ (स्तेय के०) अदत्तादान एटले परवस्तुनुं ग्रहण करवुं, ८ (अब्रह्म के०) स्त्रीसेवा, मैथुन, तथा ९ (परिग्रहादि के०) धन धान्यादि नवविध परिग्रहादि ते थकी (उपरमं के०) निवर्त्तन जे तेने करो. तथा (क्रोधाद्यरीणां के०) १० क्रोध, ११ मान, १२ माया, १३ लोन्न, ते शत्रुर्डनो (जयं के०) जयने करो. तथा १४ (सौजन्यं के०) सुजनन्नाव ते सर्व जीवोने विषे मैत्रिन्नाव तेने करो. तथा १५ (गुणिसंगं के०) गुणवान् मनुष्योनो संग जे संगति तेने करो. तथा १६ (इंद्रियदमं के०) पांच इंद्रियोनुं दमन करो. वली १७ (दानं के०) सुपात्रादि पांच प्रकारनां दानने करो. वली १८ (तपः के०) तप ते अनशन ऊनोदर्यादि बाह्य अने अन्न्यंतर मली बार प्रकारनुं तेने करो. तथा १९ (न्नावनां के०) शुन्नचित्त न्नावने करो. (च के०) वली २० (वैराग्यं के०) संसार थकी न्नोगादिक थकी जे विरक्तन्नाव तेने करो. एटलां वानां मोक्षपददायक जाणीने रुडे प्रकारे आराधन करवां. आराधन करनारा सुजनोनुं जे पुण्य इत्यादि पूर्ववत् जाणवुं ॥ ८ ॥

ए प्रकारे आ काव्यमा सर्व मली वीश द्वार जे आ ग्रंथमां हवे कहेवाशे, ते द्वारनां नाम कह्यां.

टीकाः—अथास्मिन् शास्त्रे एतान्युपदेशद्वाराणि कथयिष्यंते ॥ इत्युपदेशद्वारेण द्वारवृत्तमाह ॥ भक्तिमिति ॥ भो भव्यप्राणिन्! यदि तव निर्वृतिपदे मोक्षे गंतुं मनोऽस्ति । तदा त्वं तीर्थंकरे श्रीवीतरागे भक्तिं भावपूजां गुणोत्कीर्त्तनरूपां कुरुष्व ॥ १ ॥ पुनर्गुरौ धर्म्मोपदेशके भक्तिं कुरुष्व ॥ २ ॥ पुनः जिनमते जिनशासने भक्तिं कुरुष्व ॥ ३ ॥ पुनः चतुर्विधसंघे भक्तिं कुरुष्व ॥ ४ ॥ हिंसाऽनृतस्तेयाऽब्रह्मपरिग्रहाद्युपरमं कुरुष्व ॥ ए ॥ हिंसा जीववधः प्राणातिपातः ॥ १ ॥ अनृतं, असत्यं मृषावादः ॥ २ स्तेयं चौर्यं अदत्तादानं अदत्तपरस्ववस्तुग्रहणं ॥ ३ ॥ अब्रह्म मैथुनं स्त्रीसेवा ॥ ४ ॥ परिग्रहो धनधान्यादि नवविधः ॥ ५ ॥ एज्य उपरमं निवर्त्तनं कुरुष्व ॥ए॥ अत्र व्युपरमोऽपि पाठो भवति। पुनः क्रोधाद्यरीणां क्रोध, ॥१०॥ मान, ॥ ११ ॥ माया, ॥ १२ ॥ लोज, ॥ १३ ॥ रूपारीणां जयं कुरुष्व । पुनः सौजन्यं सुजनभावं सर्वजीवेषु मैत्रिभावं कुरुष्व ॥ १४ ॥ पुनः गुणिसंगं गुणिनां गुणवतां मनुष्याणां संगं संगतिं कुरुष्व ॥ १५ ॥ पुनः इंद्रियदमं पंचेंद्रियाणां दमनं कुरुष्व

॥ १६ ॥ पुनर्दानं सुपात्रादि पंच प्रकारं कुरुष्व ॥ १७ ॥ पुनस्तपोऽनशनमूनोदर्यादि बाह्यं आभ्यंतरं च द्वादशविधं कुरुष्व ॥ १८ ॥ पुनर्भावनां शुद्धचित्तभावं कुरुष्व ॥ १९ ॥ पुनर्वैराग्यं संसारात् भोगादिभ्यश्च विरक्तभावं कुरुष्व ॥ २० ॥ एतानि मोक्षपददायकानि ज्ञात्वा सम्यक्प्रकारेणाराधनीयानि ॥ आराधयतां सतां यदुत्पद्यते पुण्यं तत्पुण्यप्रसादात् उत्तरोत्तरं मांगलिक्यमाला विस्तरंतु ॥ ८ ॥

भाषाकाव्यः—छप्पय ॥ जिन पुजहि गुरु नमहि, जैनमत बैन बखानहि ॥ संगभगति आदरहि, जीवहिंसा नहि जानहि ॥ झूठ कुसील अदत्त, त्याग परिग्रह परिमानहि ॥ क्रोध मान छल लोभ, जीति सज्जन थिति ठानहि ॥ गुन संग करहि इंद्रिय दमहि, देहि दान तप भाव जुत ॥ गही मन विराग इह विधि रहहि, ते जगमें जीवन मुकत ॥ ८ ॥

हवे जेवो उद्देश तेवो निर्देश एवुं वचन छे माटे प्रथमना श्लोकमां
कहेलां जे द्वारो तेने यथाक्रमे विवरे छे, तेमां प्रथम चार श्लोके
करी श्रीतीर्थंकरनी भक्तिनुं द्वार कहे छे.

पापं लुंपति दुर्गतिं दलयति व्यापादयत्यापदम्, पुण्यं संचि-

॥ ३५ ॥

नुते श्रियं वितनुते पुष्णाति नीरोगताम् ॥ सौजाग्यं विद-
धाति पल्लवयति प्रीतिं प्रसूते यशः, स्वर्गं यच्छति निर्वृतिं
च रचयत्यर्चाऽर्हतां निर्मिता ॥ ए ॥

अर्थः—हे जव्यजनो ! (अर्हतां के०) जिनजगवंतोनी (निर्मिता के०) करेली एवी (अर्चा के०) गुणोत्कीर्त्तन, वंदना, पर्युपास्त्यादि एवी जावपूजा जे बे, ते (दुर्गतिं के०) (पापं के०) पापने (लुंपति के०) दूर करे बे. वली ते जावपूजा (दुर्गतिं के०) खंडन करे बे, अर्थात् दुर्गति एटले नरकादिक जे दुष्टगति तेने (दलयति के०) खंडन करे बे, अर्थात् वि- निवारण करे बे. वली ते जावपूजा (आपदं के०) कष्टने (व्यापादयति के०) वि- नाश करे बे. तथा वली ते जावपूजा (पुण्यं के०) पुण्य जे धर्म तेने (संचिनुते के०) वृद्धि पमाडे बे. तथा ते जावपूजा (श्रियं के०) लक्ष्मीने (वितनुते के०) विस्तारे बे. वली ते जावपूजा (नीरोगतां के०) शरीरने विषे जे आरोग्यता तेने (पुष्णाति के०) पोषण करे बे. वली ते जावपूजा (सौजाग्यं के०) सर्व जनोमां जे श्लाघनीयता, तेने (विदधाति के०) करे बे. वली ते जावपूजा (प्रीतिं के०) प्री-

तिने (पल्लवयति के०) उत्पन्न करे छे. वली ते भावपूजा (यशः के०) यशने (प्रसूते के०) प्रसवे छे एटले विस्तारे छे. तथा ते भावपूजा (स्वर्ग के०) देवपदवीने (यच्छति के०) आपे छे. (च के०) तथा ते भावपूजा (निर्वृतिं के) निर्वृतिने (रचयति के०) रचे छे, उत्पन्न करे छे. माटे हे भव्यजनो ! ए प्रकारे विवेक लावीने मनने विषे जाणीने रुडा प्रकारे निर्मलपणाने आपनारी एवी, अने आ लोक तथा परलोक, तेने विषे सर्व सौख्यने देनारी एवी वंदनादि गुणस्तुतिरूप श्रीजिननी भावपूजा करवा योग्य छे. ते भावपूजा करनार सज्जनने जे पुण्य इत्यादि पूर्ववत् जाणवुं ए

टीकाः—अथ यथोद्देशस्तथैव निर्देश इति वचनात् अनुक्रमेण द्वाराणि विवृणोति ॥ तत्र प्रथमं चतुर्निर्वृत्तेः श्रीतीर्थंकरभक्तिद्वारमाह ॥ पापं लुंपतीति ॥ भो भव्याः ! अर्हतां जिनानां भावपूजा, गुणोत्कीर्त्तनवंदनापर्युपास्त्यादि निर्मिता कृता सती पापं लुंपति दूरीकरोति। पुनर्दुर्गतिं नरकादि दुष्टगतिं दलयति खंडयति निवारयति । पुनः आपदं कष्टं व्यापादयति विनाशयति । पुनः पुण्यं धर्म्मं संचिनुते वृद्धिं प्रापयति । पुनः श्रियं लक्ष्मीं वितनुते विस्तारयति । पुनर्नीरोगतां शरीरे आरोग्यं पुष्णाति पोषयति । पुनः सौभाग्यं सर्वजनेषु श्लाघनीयतां विदधाति करोति । पुनः प्रीतिं पल्लवयति ।

उत्पादयति । पुनर्यशः प्रसूते यशो विस्तारयति । पुनः स्वर्गं त्रिदिवं देवपदं यच्छति ददाति । पुनर्निर्वृतिं रचयति ददाति । जो जव्यप्राणिन्! एवं ज्ञात्वा मनसि विवेकमानीय सम्यक्निर्मलविधायिनी इहलोके परलोके च सर्वसौख्यदायिनी वंदनादिगुणस्तुतिः श्रीजिनजावपूजा कार्या । कुर्वतां सतां यत्पुण्यमुत्पद्यते तत्पुण्यप्रसादात् उत्तरोत्तरं मांगलिक्यमाला विस्तरंतु ॥ ए ॥

जाषाकाव्यः—मात्रात्मक कवित्त लोपैं डुरित हरैं डुःख संकट, आपैं रोग रहित नर देह ॥ पुन्न जंमार जरैं जस प्रगटैं, मुगतिपंथसों करै सनेह ॥ रचै सुहाग देहि सोजा जग, परजव पहुंचावैं सुरगेह ॥ कुगति बंध दल बलैं बनारसी, वीतराग पूजा फल एह ॥ए॥

वली पण श्रीजिनवरनी जावपूजाना फलने कहे छे.

स्वर्गस्तस्य गृहांगणं सहचरी साम्राज्यलक्ष्मीः शुजा, सौजाग्यादिगुणावलिर्विलसति स्वैरं वपुर्वेश्मनि ॥ संसारः सुतरः
शिवं करतलक्रोडे लुठत्यंजसा, यः श्रद्धाजरजाजनं जिनपतेः
पूजां विधत्ते जनः ॥ १० ॥

अर्थः—(यः के०) जे (जनः के०) पुरुष, (श्रद्धा के०) पूजारुचि तेनो (भर के०) भार एटले प्रचुरता तेनुं (भाजनं के०) पात्र थयो छतो अर्थात् शुभ भावना युक्त थयो छतो (जिनपतेः के०) श्री वीतरागनी (पूजां के०) भावपूजाने (विधत्ते के०) करे छे, (तस्य के०) ते पुरुषने (स्वर्गः के०) देवलोक, ते (गृहांगणं के०) गृहना आंगणानी पेठे निकट थाय छे. वली (शुभा के०) मनोहर एवी (साम्राज्यलक्ष्मीः के०) साम्राज्यनी ऋद्धि, ते पुरुषने (सहचरी के०) साथे वर्त्तनारी थाय छे. तथा (वपुः के०) शरीर तेज (वेश्मनि के०) घर तेने विषे (सौभाग्यादि के०) सौभाग्य, धैर्य, औदार्यादि (गुणावलिः के०) गुणोनी पंक्ति, ते (स्वैरं के०) पोतानी इच्छाए (विलसति के०) आवीने विलास करे छे, अर्थात् रहे छे. वली (संसारः के०) संसार ते (सुतरः के०) सुखे करीने तरवाने शक्य थाय छे. वली (शिवं के०) मोक्ष, ते (अंजसा के०) अनायासे करी शीघ्र, ते पुरुषना (करतलक्रोडे के०) हस्ततलमध्ये (लुठति के०) हस्तगोचर थाय छे. माटे हे भव्यजनो ! एम जाणीने मनने विषे विवेक लावीने जिनप्रभुनी भावपूजा करो. ते पूजा करनारने जे पुण्य इत्यादि पूर्ववत् जाणवुं ॥ १० ॥

टीकाः—पुनः श्रीजिनस्य नावपूजायाः फलमाह ॥ स्वर्गस्तस्येति ॥ यो जनः श्रद्धा-नरनाजनं सन् श्रद्धा रुचिः तस्या नरः प्रचुरता तस्य नाजनं स्थानं नाजनशब्द-स्याजहल्लिंगत्वान्नपुंसकत्वं शुननावनायुक्तः सन् जिनपतेः श्रीवीतरागस्य नावपूजां विधत्ते करोति तस्य जनस्य स्वर्गो देवलोको गृहांगणं गृहस्यांगणवत् निकटो नवति। पुनः शुना मनोहरा साम्राज्यलक्ष्मीः राज्यकृद्धिस्तस्य सहचरी सार्थवर्तिनी नवति। पुनर्वपुर्वेश्मनि वपुरेव शरीरमेव वेश्म गृहं तस्मिन् सौनाग्यधैर्यौदार्यचातुर्यादिगुणानां आवलिः श्रेणिः स्वैरं स्वेच्छया विलसति आगत्य विलासं करोति तिष्ठतीत्यर्थः। पुनः संसारः सुतरः सुखेन तीर्यते इति सुतरः सुखेन तरीतुं शक्यो नवति। पुनः शिवं मोक्षः अंजसा शीघ्रं तस्य करतलक्रोडे हस्ततलमध्ये लुठति हस्तगोचरो नवतीत्यर्थः ॥ अतो नावार्हतः उत्पन्नकेवलज्ञानाश्चतुस्त्रिंशदतिशयैर्विराजमानाः समवसरणस्थाः इति ॥ यतः ॥ उसरणमवसिरित्ता, चउत्तीसं अइ सए निसेवित्ता ॥ धम्मकहं च कहंता, अरिहंता हुंतु मे सरणं ॥ १ ॥ इति वचनात् ॥ नो नव्यप्राणिन् ! एवं ज्ञात्वा मनसि विवेकमानीय अर्हतां नावपूजा कार्या। कुर्वतां च यत्पुण्यमुत्पद्यते तत्पुण्यप्रसादात् उत्तरोत्तरं मांगलिक्यमाला विस्तरंतु ॥ १० ॥

भाषाकाव्यः—वृत्त उपर प्रमाणे ॥ देवलोक ताको घर अंगन, राजरीद्धि सेवैं तस पाइ ॥ ताके तन सोभाग आदि गुन, केलि विलास करैं नित आइ ॥ सो नर तुरत तरैं भवसागर, निरमल होइ मोक्षपद पाइ ॥ दरव भाव विधि सहित बनारसी, जो जिनवर पूजैं मन लाइ ॥ १० ॥

वली पण भावपूजानुं फल कहे छे.

॥ शिखरिणीवृत्तम् ॥ कदाचिन्नातंकः कुपित इव पश्यत्यभि-
मुखम्, विदूरे दारिद्र्यं चकितमिव नश्यत्यनुदिनम् ॥ विरक्ता
कातेव त्यजति कुगतिः संगमुदयो, न मुंचत्यभ्यर्णं सुहृदिव
जिनार्चां रचयतः ॥ ११ ॥

अर्थः—(जिनार्चां के०) श्रीवीतरागनी वंदनादि भावपूजाने (रचयतः के०) करता एवा पुरुषने (आतंकः के०) भय, ते (कदाचित् के०) कोइ वखत पण (अभिमुखं के०) सन्मुख (न पश्यति के०) न जोवे छे. ते केनी पेठे? तो के जेम कोइ (कुपित इव के०) कोइनी उपर कोपायमान थयो होय ते तेनी सामुं न

जोवे, तेनी पेठे अहीं पण जाणी लेवुं. तथा (दारिद्र्यं के०) दारिद्र्य जे छे ते तेनाथी (अनुदिनं के०) निरंतर (विदूरे के०) घणेज दूर (नश्यति के०) नासे छे, अर्थात् तेनाथी दारिद्र्य दूर जाय छे. केनी पेठे ? तो के (चकितमिव के०) ते दारिद्र्य जाणे के भयभीत थयुं होय नहि ? तेनी पेठे. वली (कुगतिः के०) नरकादि दुर्गति, ते पुरुषना (संगं के०) समीपपणाने (त्यजति के०) त्याग करे छे, एटले तेने मूकी दे छे. केनी पेठे ? तो के (विरक्ता के०) विरक्त थयेली एवी (कांतेव के०) स्त्री जेम होय तेनी पेठे. अर्थात् जेम विरक्त स्त्री स्वामीना संगनो त्याग करे छे, तेनी पेठे. वली (उदयः के०) अभ्युदय, जे प्रताप, ऐश्वर्यादिक ते (अभ्यर्णं के०) ते पुरुषना समीपपणाने (न मुंचति के०) न मूके छे. केनी पेठे ? तो के (सुहृदिव के०) मित्रनी पेठे. ए कारण माटे अर्हत्प्रभुनी भावपूजा जे वंदनादिक ते करवा योग्य छे, माटे हे भव्यजनो ! ए प्रकारे जाणीने मनमां विवेक लावीने श्रीजिनवरनी भावपूजा करवी. करता एवा सुजन पुरुषोने जे पुण्य इत्यादि पूर्ववत् ॥ ११ ॥

टीकाः—पुनर्भावपूजायाः फलमाह ॥ जिनार्चां श्रीवीतरागस्य वंदनादिभावपूजां विरचयतः कुर्वतः पुरुषस्य आतंको भयं कदाचित् अभिमुखं सन्मुखं न पश्यति न वि-

लोकयति । क इव? कुपित इव । यथा कश्चित् कुपितो रुष्टो भवति स यथा तस्य सन्मुखं न पश्यति तथेत्यर्थः॥ पुनर्दारिद्र्यं दरिद्रत्वं अनुदिनं निरंतरं तस्य दूरे नश्यति दूरे याति । किमिव ? चकितमिव भयभीतमिव । पुनर्नरकादिकुगतिस्तस्य संगं समीपं त्यजति मुंचति । का इव? विरक्ता कुपिता रुष्टा कांता इव स्त्री इव । यथा विरक्ता स्त्री भर्तुः संगं त्यजति तथेत्यर्थः । पुनः उदय अभ्युदयः प्रतापैश्वर्यादिवृद्धिस्तस्य अभ्यर्णं समीपं न मुंचति न त्यजति । क इव? सुहृदिव मित्रमिव ॥ अतोऽर्हतां भावपूजा वंदनादि कार्या । भो भव्यप्राणिन् ! एवं ज्ञात्वा मनसि विवेकमानीय श्रीजिनस्य भावपूजा कर्त्तव्या । कुर्वतां च सतां यत्पुण्यमुत्पद्यते तत्पुण्यप्रसादात् उत्तरोत्तरं मांगलिक्यमाला विस्तरंतु ॥ ११ ॥

भाषाकाव्यः—वृत्त उपर प्रमाणे ॥ ज्यौं नर रहे रिसाय कोप करि, ज्यौं चिंताभय विमुख बखानि ॥ ज्यौं कायर संके रिपु देखत, त्यौं दारिद्द भजैं भय मानि ॥ ज्यौं कुमारि परिहरे संढपति, त्यौं दुरगति छंडे पहिचानि ॥ हित ज्यौं विभौ तजैं नहि संगति, वीतराग पूजा फल जानि ॥ ११ ॥

वली पण श्रीजिनपरमेश्वरनी भावपूजानुं माहात्म्य कहे छे.

॥ शार्दूलविक्रीडितवृत्तम् ॥ यः पुष्पैर्जिनमर्चति स्मितसुरस्त्री-लोचनैः सोऽर्च्यते, यस्तं वंदति एकशस्त्रिजगता सोऽहर्निशं वंद्यते ॥ यस्तं स्तौति परत्र वृत्रदमनस्तोमेन स स्तूयते, यस्तं ध्यायति क्लृप्तकर्म्मनिधनः स ध्यायते योगिभिः ॥ १२ ॥

अर्थः—(यः के०) जे पुरुष, (पुष्पैः के०) पुष्पोए करीने (जिनं के०) जिनभगवानने (अर्चति के०) पूजन करे छे, (सः के०) ते पुरुष, (स्मित के०) विकसित एवां (सुरस्त्री के०) देवताउनी स्त्रीउनां (लोचनैः के०) नेत्रोए करीने (अर्च्यते के०) पूजाय छे. अर्थात् जिनपूजन करनारो पुरुष देवलोकने विषे उत्पन्न थाय छे, अने तेने देवलोकनी स्त्रीउ विकसितनेत्रे करी पूजे छे, एटले राग सहित तेनुं अवलोकन करे छे. वली (यः के०) जे पुरुष, (एकशः के०) एक वार (तं के०) ते जिनप्रभुने (वंदति के०) वंदन करे छे, (सः के०) ते पुरुष, (अहर्निशं के०) रात्रि दिवस, (त्रिजगता के०) त्रण भुवने करी (वंद्यते के०) वंदन

कराय छे. अर्थात् जे जगवानने वंदन करे, ते त्रिजतने वंद्य थाय. वळी (यः के०) जे पुरुष, (तं के०) ते श्री जिनवरने (स्तौति के०) स्तवे छे, वर्णन करे छे, (सः के०) ते पुरुष, (परत्र के०) स्वर्गने विषे (वृत्रदमन के०) इंद्रो, तेना (स्तोमेन के०) समूहे करीने (स्तूयते के०) स्तवाय छे, स्तुति कराय छे, एटले पोतानी गुणस्तुतिए वर्णन कराय छे. वळी (यः के०) जे पुरुष, (तं के०) ते परमेश्वरने (ध्यायति के०) पिंडस्थ पदस्थ रूपस्थ रूपातीतन्नेदे करीने ध्यान करे छे, एटले हृदयने विषे जगवानने ध्यानगोचर करे छे, (सः के०) ते पुरुष, (योगिन्निः के०) योगीश्वर जे महामुनिओ तेमणे (ध्यायते के०) ध्यानगोचर कराय छे. हवे ते पुरुष केवो छे? तो के (कृत के०) रचना कस्यो छे (अष्टकर्म के०) आठ कर्मनो (निधनः के०) विनाश जेणे एवो छे. अर्थात् सिद्धावस्थाने प्राप्त थाय छे ॥ १४ ॥ आ प्रकारे आ सिंदूरप्रकार ग्रंथमां चार श्लोके करी न्नावपूजानो प्रथम प्रक्रम कह्यो ॥ इति प्रथम प्रक्रमः ॥ १ ॥ ए परमेश्वरनी पूजा उपर नल राजा अने दमयंतीनी कथा जाणवी, ते सर्वत्र प्रसिद्ध छे ॥ ए श्री तीर्थंकरन्नक्तिनुं प्रथम द्वार संपूर्ण थयुं ॥ १ ॥

इति पूजायाः प्रस्तावः ॥ सिंदूरप्रकराख्यस्य, व्याख्यायां हर्षकीर्त्तिना ॥ सूरिणा विहितायां तु, पूजायाः प्रक्रमोऽजनि ॥ १ ॥ इति जिनवरप्रक्रमः ॥

टीकाः—पुनः श्रीजिनजावपूजायाः माहात्म्यमाह ॥ यः पुरुषः पुष्पैः कृत्वा जिनं श्रीवीतरागं अर्च्चति पूजयति स पुरुषः स्मितसुरस्त्रीलोचनैः अर्च्यते पूज्यते । स्मितानि विकसितानि यानि सुरस्त्रीणां देवांगनानां लोचनानि नेत्राणि तैः । देवलोके देवत्वेनोत्पन्नः स देवांगनाजिर्विकसितनेत्रैः अर्च्यते पूज्यते । सरागं अवलोक्यते इत्यर्थः । पुनर्यः पुमान् एकशः एकवारं श्रीजिनं वंदति स अहर्निशं दिवारात्रौ त्रिजगता त्रिजुवनेन वंद्यते । यो जिनं वंदति स त्रिजगद्वंद्यो जवतीत्यर्थः। पुनर्यः पुमान् तं श्रीजिनं स्तौति वर्णयति स पुमान् परत्र परलोके वृत्रदमनस्तोमेन वृत्रदमनानां इंद्राणां स्तोमेन समूहेन स्तूयते। गुणस्तुत्या कृत्वा वर्ण्यते । पुनर्यस्तं श्रीजिनं ध्यायति पिंडस्थपदस्थरूपस्थरूपातीतजेदैर्हृदये ध्यानगोचरं करोति स पुमान् योगिजिर्योगीश्वरैर्महामुनिजिर्ध्यायते ध्यानगोचरः क्रियते । कथंजूतः सः । कृतकर्म्मनिधनः कृतं रचितं अष्टानां कर्म्मणां निधनं विनाशो येन सः कृतकर्म्मनिधनः ॥ सिद्धावस्थां प्राप्त इत्यर्थः ॥१४॥ इति पूजायाः प्रस्तावः

भाषाकाव्यः—वृत्त उपर प्रमाणे ॥ जो जिनंद पूजैं मूलनसों, सुर नैननि पूजा तिसु होइ ॥ वंदैं भाव सहित जो जिनवर, वंदनीक त्रिजुवनमें सोइ ॥ जो जिन सुजस करैं जन ताकी, महिमा इंद्र करैं सुर लोइ ॥ जो जिनध्यान करंत बनारसी, ध्यावैं मुनि ताके गुन जोइ ॥ १२ ॥

हवे चार श्लोके करी गुरुभक्तिनुं द्वार कहे छे.

॥ वंशस्थवृत्तम् ॥ अवद्यमुक्ते पथि यः प्रवर्त्तते प्रवर्त्तयत्यन्य-
जनं च निःस्पृहः ॥ स एव सेव्यः स्वहितैषिणा गुरुः, स्वयं
तरंस्तारयितुं क्षमः परम् ॥ १३ ॥

अर्थः—(स्वहितैषिणा के०) पोताना हितना वांछक पुरुषे (स एव के०) तेज (गुरुः के०) गुरु (सेव्यः के०) सेवन करवा योग्य छे. ते केवा गुरु सेववा योग्य छे ? तो के (अवद्यमुक्ते के०) अवद्य जे पाप ते थकी मुक्ते एटले मूकायेला एटले सत्य एवा (पथि के०) मार्गने विषे (यः के०) जे गुरु (प्रवर्त्तते के०) प्रवर्त्ते छे. (च के०) वली (अन्यजनं के०) अन्य जनने शुद्ध मार्गने विषे (प्रवर्त्तयति के०) प्रवर्त्तावे छे. वली

निःस्पृहः के०) परिग्रहादि वांछा रहित छता जे गुरु (स्वयं के०) पोते (तरन् के०) संसारसमुद्र तरता छता (परं के०) अन्यने (तारयितुं के०) तारवाने (क्षमः के०) समर्थ होय छे. ये गुरु शब्दनो अर्थ शुं छे? तो के गृणाति एटले कहे छे जे तत्त्वने तेने गुरु कहीए. अर्थात् जे तत्त्वोपदेशक शुद्ध प्ररूपक ते गुरु जाणवा. ए माटे जे शुद्ध प्ररूपक तथा जिनाज्ञाराधक होय ते गुरु सेववा योग्य छे; परंतु जमाल्यादिक कुगुरुउं सेववा योग्य नहि. कुगुरु केवा होय छे? तो के उत्सूत्रना प्ररूपक, स्वछंदी, पोतानी मतिए कल्पित एवा मतने करनारा तथा जिनाज्ञाना विराधक अने मायावी होय छे. माटे हे भव्यजीवो! ए प्रकारे जाणी मनने विषे विवेक लावीने जे शुद्ध प्ररूपक तथा जिनाज्ञाराधक एवा गुरु होय, तेने सेववा. सेवन करनारने० ॥ १२ ॥

टीकाः—अथ चतुर्निर्वृत्तैर्गुरुभक्तिद्वारमाह ॥ अवद्यमुक्तेति ॥ आत्महितवांछकेन पुरुषेण स एव गुरुः सेव्यः । कः सः? यः अवद्यमुक्ते पापवर्जिते सत्ये पथि धर्म्ममार्गे स्वयं प्रवर्त्तते प्रचलति । च पुनः अन्यजनं अन्यलोकं शुद्धमार्गे प्रवर्त्तयति । गुरुर्निःस्पृहः परिग्रहादिवांछारहितः सन् पुनर्यः स्वयं संसारसमुद्रं तरन् सन् परं अन्यं तारयितुं क्षमः समर्थः ॥ गृणाति कथयति तत्त्वमिति गुरुः तत्त्वोपदेशकः शुद्धप्ररूपकइत्यर्थः ॥

जणचित्तग्गहणत्थं, करंति
यतः ॥ हीणस्सविसुद्ध परू, वगस्स नाणाहियस्स कायव्वं ॥ जणचित्तग्गहणत्थं, करंति लिंगाविसेसं तु ॥ १ ॥ अन्यच्च ॥ दंसण भठो भठो, दंसण भठस्स नत्थि निवाणं ॥ सिझंति चरण रहिया, दंसण रहिया न सिझंति ॥१४॥ अतः कारणात् यः शुद्धप्ररूपकः जिनाज्ञाराधकः स गुरुः सेव्यः न तु जमाल्यादयः कुगुरवः सेव्याः । अहाछंदाः उत्सूत्रप्ररूपकाः स्वमतिकल्पितमतकर्त्तारः जिनाज्ञाविराधकाः मायाविनस्ते तु कुगुरवः॥ एवं जो भव्यप्राणिन्! इति ज्ञात्वा मनसि विवेकमानीय शुद्धप्ररूपको जिनाज्ञाराधको गुरुः सेव्यः ॥ सेव्यमानानां यत् पुण्यमुत्पद्यते तत्पुण्यप्रसादात् उत्तरोत्तरं मांगलिक्यमाला विस्तरंतु ॥ १२ ॥

जाषाकाव्यः—आजानक छंद ॥ पाप पंथ परहरहि, धरहि शुजपंथ मग ॥ पर उपगार निमित्त, वखानहि मोख मग ॥ सदा अवंछित चित्त जु, तारन तरन जग ॥ ऐसे गुरुकों सेवत, जागहिं कर्म खग ॥ १२ ॥

वली फरीने पण गुरुसेवानुं फल कहे छे.

॥ मालिनीवृत्तम् ॥ विदलयति कुबोधं बोधयत्यागमार्थम्, सुग-

तिकुगतिमार्गौ पुण्यपापे व्यनक्ति ॥ अवगमयति कृत्याकृत्य-
भेदं गुरुर्यो, भवजलनिधिपोतस्तं विना नास्ति कश्चित्॥२४॥

अर्थः—हे भव्यजनो ! (तं विना के०) ते गुरु विना बीजो (कश्चित् के०) कोइ पण, (भवजलनिधि के०) संसाररूप जे समुद्र तेने विषे (पोतः के०) नाव समान (नास्ति के०) नथी. अर्थात् संसारसमुद्र तरवामां नाव समान गुरु विना बीजो कोइ नथी. ते गुरु केवा छे? तो के (यः के०) जे (गुरुः के०) गुरु, (कुबोधं के०) कुत्सित बोध ते कुत्सित ज्ञान जे मिथ्यात्व, तेने (विदलयति के०) विशेषे करी नाश करे छे. वली जे गुरु (आगमार्थं के०) सिद्धांतोना अर्थने (बोधयति के०) जणावे छे, तथा जे गुरु (पुण्यपापे के०) पुण्य अने पाप ते धर्म अने अधर्म ए बेने पण (व्यनक्ति के०) प्रगट करे छे, एटले आ पुण्य छे अने आ पाप छे, ए प्रकारे प्रगट करे छे. ते पुण्य अने पाप केवां छे? तो के (सुगतिकुगतिमार्गौ के०) पुण्य ते देवनरादि सुगतिमार्ग, पाप ते नरकतिर्यग्रूप कुगतिमार्ग जाणवो. वली पण जे गुरु, (कृत्याकृत्य के०) करवाने योग्य ते कृत्य अने न करवाने योग्य ते अकृत्य, तेना (भेदं के०) विवेक एटले विचार तेने (अवगमयति के०) जणावे छे. जेम प्रदेशी

राजा महानास्तिकमति हतो, तेने केशी गणधर गुरुए प्रतिबोध करीने तत्त्वमार्गने विषे स्थापन कर्यो. माटे हे भव्यप्राणीओ! ए प्रकारे जाणीने मनमां विवेक लावीने संसारसमुद्र तरवाने माटे नाव समान एवा श्रीगुरुनी सेवा करनार सुजनोने जे पुण्य इत्यादि पूर्ववत् जाणवुं ॥ १४ ॥

टीकाः—अथ पुनरपि गुरुसेवायाः फलमाह ॥ विदलयतीति ॥ भो भव्याः! तं गुरुं विनाऽन्यः कश्चित् भवजलनिधिपोतः प्रवहणं नास्ति । भव एव संसार एव जलनिधिः समुद्रस्तत्र पोतः प्रवहणं संसारसमुद्रतारणे प्रवहणसमानं गुरुं विनाऽन्यः कश्चिन्नास्ति । यो गुरुः कुबोधं कुत्सितज्ञानं मिथ्यात्वं विदलयति । पुनर्यो गुरुः आगमार्थं सिद्धांतानां अर्थं बोधयति ज्ञापयति । पुनर्यो गुरुः पुण्यपापे पुण्यं च पापं च पुण्यपापे ते धर्म्माधर्म्मौ द्वे अपि व्यनक्ति प्रकटयति । इदं पुण्यमिदं पापमिति । कथंभूते पुण्यपापे सुगतिकुगतिमार्गौ सुगतिश्च कुगतिश्च सुगतिकुगती तयोर्मार्गौ पुण्यं देवनरादिसुगतिमार्गः पापं नरकतिर्यग्रूपं कुगतिमार्गः । पुनर्यो गुरुः कृत्याऽकृत्यभेदं अवगमयति कर्त्तुं योग्यं कृत्यं कर्त्तुमयोग्यं अकृत्यं । कृत्यं च अकृत्यं च कृत्याकृत्ये तयोर्भेदो विवेको विचारस्तं ज्ञापयति ॥ यथा प्रदेशी नृपः महानास्तिकमतिः केशि-

गणधरगुरुणा प्रतिबोध्य तत्त्वमार्गे स्थापितः ॥ भो भव्यप्राणिन् ! इति ज्ञात्वा मनसि विवेकमानीय संसारसमुद्रतारणाय प्रवहणसमानश्रीगुरोः सेवा कार्या । गुरोः सेवां कुर्वतां च सतां यत्पुण्यमुत्पद्यते तत् पुण्यप्रसादात् उत्तरोत्तरं मांगल्यिक्यमाला विस्तरंतु ॥ १४ ॥

भाषाकाव्यः—हरिगीतछंद ॥ मिथ्यात दलन सिद्धांत साधक, मुगति मारग जान ए ॥ करनी अकरनी सुगति दुर्गति,पुन्न पाप बखान ए ॥ संसारसागर तरन तारन, गुन जिहाज विसेखियें ॥ जगमांहि गुरु सम कहि बनारसी, और कोउ न देखियें ॥१४॥

कथाः—श्रीगुरु कुबोधना विदलन करनार छे, तेनी उपर सूर्याभदेवनी कथा कहे छेः—एकदा श्रीमहावीर देव अमलकप्पा नगरीए समोसर्या. तिहां सूर्याभ विमान थकी सूर्याभदेवता वांदवा आव्या. प्रभु आगल बत्रीश बद्ध नाटक करी स्वस्थानके गया. पछी गौतमस्वामीए भगवानने पूछ्युं के महाराज! एवी ऋद्धि एणे केम पामी ? ते वारें भगवान् कहेता हवा के श्वेतंबिका नगरीमां प्रदेशी राजा, तेनी सूरिकांता भार्या, तेनो चित्र नामे सारथी हतो, ते एकदा सावत्थी नगरीए गयो. तिहां केशी कुमारने देखी वांद्या अने धर्मकथा सांभली. श्रावकधर्म पडिव-

ज्यो. पछी ते चित्र सारथीए पोताना राजाने प्रतिबोध आपवा माटे श्वेतंबीए पधारवा विनंति करी त्यारे गुरुए कह्युं के अन्नोदक संबंधे जणाशे. पछी केटलेक दिवसे गुरु श्वेतंबीए आव्या, तेनी चित्र सारथीने खबर पडी. ते वारे गुरुने वांदवा गया, उतारो आपी सारथीए कह्युं के हे स्वामिन्! राजा नास्तिक छे, तेने प्रतिबोधजो. हुं पण कोइ उपाय करी तेने इहां लावीश. अन्यदा घोडा फेरववाने मिषे राजाने चित्र सारथी तिहां तेडी लाव्यो. तिहां गुरुने ठूकडाज व्याख्यान करता देखीने चित्र सारथी प्रत्ये राजा कहेवा लाग्यो के, जो खलु मुंड पज्जुवासंति? अणायरिया खलु जो अणायरियं पज्जुवासंति? ते वारे सारथीए कह्युं के हे स्वामिन्! चालो, आपणे जइ पूछीए. राजा पण तिहां गुरु पासे जइ पूछवा लाग्यो, हे मूंड! शरीर मांहे आत्मा तो नथी तो धर्म करेलो कोण जोगवे? गुरु कहे, तमारा कहेवा प्रमाणे प्रत्यक्ष देखाय ते प्रमाण अने जे प्रत्यक्ष न देखाय ते अप्रमाण. तो तमारां मातापिता पण देखातां नथी माटे अप्रमाण थयां? राजा बोल्यो, जो धर्म अधर्मादिक छे, तो मारो पिता अनेक जीवोनो संहार करनार हतो, माटे नरके गयो हशे; अने मारी माता धर्मिष्ठ हती, माटे स्वर्गे गइ हशे. तो हे जिक्षाचर! हुं तो तेनो अत्यंत

वल्लभ पुत्र हतो, ते मने आवीने धर्मनो प्रतिबोध आपे तो परलोक पण छे तथा पुण्य पाप पण छे, इत्यादि सर्व वात हुं सत्य करी मानुं. ते वारे आचार्य बोल्या के हे राजन्! बंधीवाननी पेठे तारो पिता कर्मपाशे करी बंधाणो छे ते शी रीते अहीं तारी पासे आवी शके? राजा बोल्यो तो मारी माताजीने स्वर्गथी आवतां शी हरकत नडे छे? सूरि बोल्या के ते तो संपूर्ण वांछित सुख भोगवे छे, तेथी नहीं आवे. तथा वळी मनुष्यलोकनो दुर्गंध ऊंचो ऊछळे छे, ते तेनाथी सहन थाय नहीं. त्यारे राजा बोल्यो के में एक चोरने पकडी पथरानी कोठी मांहे नाखी द्वार ढांकी दीधुं, पछी केटलेक दिवसे खोली जोयुं तो चोरनुं शरीर तिलतिलनी पेठे दीठुं, परंतु मांहे जीव तो दीठो नहीं; माटे जीव नथी, तथा एक चोरने तोळीने पछी फांसी आपी मारी नाखी फरी तोल्यो तो कांइ पण वध्यो घट्यो नहीं, माटे शरीर मांहे जीव नथी, ते वारे सूरि बोल्या के निःछिद्र कोठी मांहे पेसी कोइक शंख वजावे, ते शंखनो शब्द बहार केम संभळाय छे? तेम जीवनो पण एज स्वभाव जाणवो. तथा अरणीना लाकडा मांहे फाडी जोतां थका अग्नि देखातो नथी, पण उपायने योगे अग्नि पामीए छीए. इत्यादि अनेक दृष्टांत आपी राजाने प्रतिबोध्यो. राजा

श्रावक थयो, सम्यक्त्वमूल बार व्रतनो उच्चार कर्यो, यावत् एनी स्त्री सूरिकांताए निःस्वार्थ जाणी विष दीधुं. राजा अनशन लेइ सूर्याभ विमानने विषे सूर्याभ नामे देव थयो. तिहांथी च्यवी महाविदेहे अवतरी मोक्षसुख पामशे ॥ इति प्रदेशी राजानो दृष्टांत ॥ १४ ॥

वली पण गुरुसेवानुं फल कहे छे.

॥ शिखरिणीवृत्तम् ॥ पिता माता भ्राता प्रियसहचरी सूनु-
निवहः, सुहृत्स्वामी माद्यत्करिभटरथाश्वः परिकरः ॥ निम-
ज्जंतं जंतुं नरककुहरे रक्षितुमलम्, गुरोर्धर्माऽधर्म्मप्रकटनप-
रात्कोऽपि न परः ॥ १५ ॥

अर्थः—(नरककुहरे के०) नरकविवरनी मध्ये (निमज्जंतं के०) डूबता एटले पडता एवा (जंतुं के०) जीवने (गुरोः के०) गुरु थकी (परः के०) बीजो (कोऽपि के०) कोइ पण (रक्षितुं के०) रक्षण करवाने (न के०) नहि (अलं के०) समर्थ होय; केमके (पिता के०) पिता ते पण तेनुं रक्षण करवाने न समर्थ

होय छे, तथा (माता के०) जननी ते पण तेनुं रक्षण करवाने न समर्थ होय. तथा (भ्राता के०) सहोदर ते पण तेनुं रक्षण करवाने न समर्थ होय. तथा (प्रियसहचरी के०) अत्यंत वल्लभ एवी स्त्री पण तेनुं रक्षण करवाने न समर्थ होय छे. तथा (सूनुनिवहः के०) पुत्रसमूह पण तेनुं रक्षण करवाने न समर्थ होय छे. तथा (सुहृत् के०) मित्र पण तेनुं रक्षण करवाने न समर्थ होय छे. तथा (स्वामी के०) नायक पण तेनुं रक्षण करवाने न समर्थ होय छे. ते नायक केवो छे? तो के (माद्यत् के०) मदोन्मत्त एवा (करि के०) हस्ती (भट के०) सुभट (रथ के०) रथ तथा (अश्वः के०) घोडाओ छे जेमने एवो छे अर्थात् एवी सर्व सामग्री सहित एटले बलवान् एवो स्वामी पण रक्षण करवाने समर्थ थाय नहि. तथा (परिकरः के०) मोटो सेवकादि वर्ग, ते पण रक्षण करवाने समर्थ न होय छे, अर्थात् नरकमां पडता जीवोने ए पूर्वोक्त सर्व रक्षण करवाने समर्थ न होय छे, पण मात्र एक गुरु जे छे,तेज नरकमां पडता जंतुने रक्षण करवाने समर्थ थाय छे. गुरु विना कोइ पण नरकमां पडता जीवने रक्षण करवाने समर्थ नथी. ते गुरु केवा छे? तो के (धर्माधर्म के०) पुण्य अने पाप, तेनुं (प्रकटन के०) प्रकाशन, तेने विषे (परात् के०) तत्पर एवा छे. वली गुरु जे छे, ते

धर्म अधर्म ए बेने बतावे छे. ते जेमकेः—जे प्राणी धर्मने अंगीकार करे छे, ते नरकने विषे पडता नथी, अर्थात् सुगतिने भजनारा थाय छे; अने जे अधर्मने अंगीकार करे छे, ते प्राणी नरकमां पडे छे, अर्थात् कुगतिने भजनारा थाय छे. माटे हे भव्यजनो! एम जाणीने मनने विषे विवेक लावीने नरकपात थकी रक्षण करवाने समर्थ गुरु छे, ते सेववा योग्य छे, बाकी पूर्ववत् जाणवुं ॥ १५ ॥

टीकाः—पुनः गुरुसेवायाः फलमाह ॥ पिता मातेति ॥ नरककुहरे नरकविवरमध्ये निमज्जंतं ब्रुडंतं पतंतं संतं जंतुं जीवं गुरोः परोऽन्यः कोऽपि रक्षितुं अलं न । कोऽपि न समर्थः । कथं? पिता जनको रक्षितुं नालं । माता जननी रक्षितुं नालं । भ्राता सहोदरो रक्षितुं नालं । प्रिया अत्यंतवल्लभा सहचरी स्त्री रक्षितुं नालं । सूनुनिवहः पुत्रगणोऽपि रक्षितुं नालं । सुहृत् मित्रमपि रक्षितुं नालं न समर्थः । स्वामी नायकोऽपि रक्षितुं नालं । किंभूतः स्वामी? माद्यत्करिभटरथाऽश्वः । माद्यंतो मदोन्मत्ताः करिणो गजाः भटाः सुभटाः रथः अश्वाश्च यस्य स एवंविधो बलवान् यः स्वामी स रक्षितुं नालं । पुनः परिकरः प्रभूतसेवकादिवर्गोऽपि नरके पतंतं संतं रक्षितुं अलं समर्थो न । किंतु एको गुरुरेव नरके पतंतं जीवं रक्षितुं समर्थः । गुरोः परः कोऽपि नरके पतंतं

जीवं रक्षितुं न समर्थः । किंविशिष्टात् गुरोः । धर्म्माधर्म्मप्रकटनपरात् । धर्म्मश्च अधर्म्मश्च धर्म्माधर्म्मौ पुण्यपापे तयोः प्रकटने प्रकाशने परस्तत्परो यः सः तस्मात् । गुरुर्धर्म्माऽधर्मौ द्वावपि दर्शयति । ततश्च यः प्राणी धर्म्ममंगीकरोति स नरके न पतति । किंतु ? सुगतिभाग्भवति ॥ यतः ॥ नरय गय गमण पडिहए, कए तह पएसिणा रन्ना ॥ अमरविमाणं पत्तं, तं आयरिय प्पभावेणं ॥१॥ भो भव्यप्राणिन्! एवं ज्ञात्वा मनसि विवेकमानीय नरकपतनात् रक्षणीयः समर्थो गुरुरेव सेव्यः ॥ सेव्यमानानां च यत्पुण्यमुत्पद्यते तत् पुण्यप्रसादात् उत्तरोत्तरं मांगल्यिक्यमाला विस्तरंतु ॥ १५ ॥

भाषाकाव्यः—सवैया त्रेवीशा ॥ मात पिता सुत बंधु सबी जन, मीत हितू सुख कामिनी फीके ॥ सेवकराजि मतंगज वाजि, महा दल साजि रथी रथ नीके ॥ डुर्गति जाइ डुःखी विललाइ, परै सिर आइ अकेलहि जीके ॥ पंथ कुपंथ गुरु समुझावत, और सगे सब स्वारथहीके ॥ १५ ॥

हवे गुरुनी आज्ञानुं माहात्म्य कहे छे.

॥ शार्दूलविक्रीडितवृत्तम् ॥ किं ध्यानेन भवत्वशेषविषयत्यागैस्तपोभिः कृतम्, पूर्णं भावनयाऽलमिंद्रियदमैः पर्याप्तमा-

सागमैः ॥ किं त्वेकं भवनाशनं कुरु गुरुप्रीत्या गुरोः शासनम्, सर्वे येन विना विनाथवलवत् स्वार्थाय नाऽलं गुणाः ॥ १६ ॥ इति द्वितीय गुरुसेवनप्रक्रमः ॥ २ ॥

अर्थः—हे भव्यप्राणी ! गुरुनी आज्ञा विना (ध्यानेन के०) ध्यान करवाथी (किं के०) शुं ? तो के कांइ नहि. तथा (अशेषविषय के०) समस्त विषयो, तेना (त्यागैः के०) त्यागे करीने (भवतु के०) हो एटले संपूर्ण थयुं, अर्थात् समस्त विषयत्यागे करीने पण कांइ नहि. वली गुरुनी आज्ञा विना (तपोभिः के०) तप जे षष्ठ, अष्टम, दशम, द्वादशादि, पक्षक्षपण, मासक्षपण, सिंहनिक्रीडितादिक तप तेणे करीने पण शुं (कृतं के०) कर्युं ? एटले पूर्ण थयुं, अर्थात् तेणे करीने पण कांइ नहि. तथा (भावनया के०) शुभ भावे करीने पण (पूर्णं के०) पूर्ण थयुं, अर्थात् तेणे करीने पण कांइ नहि. वली (इंद्रियदमैः के०) इंद्रियोना दमने करीने पण (अलं के०) परिपूर्ण, अर्थात् तेणे करीने पण कांइ नहि. वली (आसागमैः के०)

सूत्रसिद्धांतना पठने करीने पण (पर्याप्तं के०) पूर्ण थयुं, अर्थात् तेणे करीने पण काइ नहि. त्यारे (तु के०) वली (किं के०) शुं करवुं ? के जे थकी ते पूर्वोक्त सर्व सफल थाय ? तो के (गुरुप्रीत्या के०) अत्यंत प्रीतिए करीने (एकं के०) एक, (गुरोः के०) गुरुनुं (शासनं के०) शासन जे शीखामणवचन तेने (कुरु के०) हे नव्यजीव ! तुं कर, अर्थात् गुरुनीज शुद्ध आज्ञाने पालन कर. ते गुरुनुं शासन केवुं छे ? तो के (नवनाशनं के०) संसारभ्रमणने नाश करनारुं छे; कारण के (येन के०) जे (एकेन के०) एक गुरुशासन (विना के०) विना (सर्वे के०) सर्व (गुणाः के०) पूर्वोक्त ध्यानादिक गुणो पण (स्वार्थाय के०) पोतपोताना फलसाधनने माटे (अलं न के०) समर्थ थता नथी, अर्थात् सर्व निष्फल थाय छे. केनी पठे ? तो के (विनाथवलवत् के०) सैन्याधिपति रहित सैन्यनी पेठे, अर्थात् जेम निर्नायक सैन्य जयसाधक थतुं नथी, तेम गुरुनी आज्ञा विना क्रियानुष्ठानादिक सर्व निष्फल थाय छे. गोशालक, जमालि, कुलवालक निह्नवादिकनी पेठे. अहीं गोशालकादिकनो दृष्टांत लेवो. माटे एवी रीते जाणीने गुरुनी आज्ञा सहित सर्व कर्म करवा योग्य छे. तेथी हे नव्यप्राणी ! ए प्रकारे जाणी मनमां विवेक लावीने श्रीगुरुसेवा करवी.

गुरुसेवा करनार एवा सुजनने जे पुण्य इत्यादि पूर्ववत् जाणवुं ॥ १६ ॥ ए गुरुसेवा
नामे बीजुं द्वार संपूर्ण थयुं ॥ २ ॥ ॥ किं ध्यानेनेति ॥ भो भव्याः! गुरोः

टीकाः—अथ गुरोराज्ञायाः माहात्म्यमाह ॥ अपितु न किमपि फलं । पुनः
आज्ञां विना चेत् ध्यानं कृतं? तर्हि तेन ध्यानेन किं । अपितु न किमपि फलं । पुनः
अशेषविषयत्यागैर्नैवतु पूर्णं जातं । समस्तविषयाणां त्यागेऽपि किमपि न फलं । पुनः
गुरोराज्ञां विना तपोभिः कृतं । षष्ठाष्टमदशमद्वादशादिपक्षक्षपणमासक्षपणसिंहनि-
क्रीडितादिभिस्तपोभिः कृतं संपूर्णं जातं ॥ अर्थान्न किमपि । पुनर्भावनया शुभभावे-
नापि पूर्णं जातं । पुनः इंद्रियदमैः पंचेंद्रियाणां दमनैः कृत्वा अलं पूर्णं जातं । पुनः
आप्तागमैः सूत्रसिद्धांतपठनैरपि पर्याप्तं पूर्णं जातं । तर्हि किं? किंतु गुरुप्रीत्या
गरिष्ठवात्सल्येन अधिकादरेण एकं गुरोः शासनं कुरु । गुरोरेवाज्ञां शुद्धां पालय ।
किंभूतं गुरोः शासनं? भवनाशनं । संसारपरिभ्रमणवारकं । यतो येनैकेन गुरोः
शासनेन आज्ञया विना सर्वेऽपि गुणाः पूर्वोक्ता ध्यानादयः स्वार्थाय स्वस्वफल-
साधनाय अलं न । समर्था न । किंतु निष्फला इत्यर्थः ॥ किंवत्? विनाथबलवत् ।
निर्नायकसैन्यवत् यथा निर्नायकं सैन्यं जयसाधकं न तथा गुरोराज्ञां विना क्रियानु-

ध्यानादिकं सर्वं निष्फलं। गोशालकजमालिकुलवालकनिह्नवादिवत् ॥ एवं ज्ञात्वा
गुर्वाज्ञासहितं सर्वं कर्त्तव्यं ॥ यदुक्तं श्रीकल्पसूत्रे ॥ असणंवा आहारेत्तए ॥ उच्चार
पासवणं वा परिठ्वेत्तए ॥ सज्झायं वा करित्तए ॥ धम्मजागरियं वा जागरित्तए ॥ णो
सेकप्पइ अणापुछित्ता ॥ भिक्खु इछेवा अन्नायरं तवो कम्मं उवसंपजित्ताणं विहरि-
त्तए ॥ तं चेव सव्वं जणियव्वं ॥ जो जव्यप्राणिन्! एवं ज्ञात्वा मनसि विवेकमानीय
श्रीगुरुसेवा कर्त्तव्या ॥ कुर्वतां च यत्पुण्यप्रसादात् उत्तरोत्तरं मांगलिक्यमाला विस्त-
रंतु ॥ इति ॥ १६ ॥ सिंदूरप्रकराख्यस्य, व्याख्यायां हर्षकीर्त्तिना ॥ सूरिणा विहितायां
तु, गुरुसेवनप्रक्रमः ॥ २ ॥ इति गुरुसेवनप्रक्रमः॥ २ ॥

जाषाकाव्यः—वस्तुछंद ॥ ध्यान धारन ध्यान धारन, विषै सुख त्याग ॥ करुना रस
आदरन, जूमिशयन इंद्रिय निरोधन ॥ व्रत संयम दान तप जगति, जाव सिद्धंत
सोधन ॥ ए सब काम न आवही, ज्यों विनु नायक सैन ॥ सिवसुख हेत बनारसी,
करु प्रतीत गुरु बैन ॥ १६ ॥

कथाः—इहां गुरुसेवानो करनार मोक्षे जाय, तेनी उपर श्रीगौतमस्वामीनी कथा
कहे छेः—एकदा प्रस्तावे श्रीवर्द्धमानस्वामीए व्याख्यान करतां करतां उपदेश दीधो,

जे अष्टापद पर्वत उपर भरतचक्रवर्तीनी भरावेली मानोपेत चोवीश तीर्थंकरनी प्रति-
माओ छे, तेने जे पोतानी लब्धिना बले जइ वांदे, ते प्राणी तद्भवे मोक्षे जाय. ते
सांभली श्रीगौतमस्वामी पोताने मोक्ष जवानो निर्णय करवा माटे प्रभुनी आज्ञा
मागी अष्टापद भणी चाल्या. तेमने कौडिन्यादिक तापसोए आवता दीठा, ते वारे
तापसो मांहोमांहे कहेवा लाग्या के आ मोटा मुनीश्वर आवे छे, पण योजन प्रमाण
पावडी शी रीते चढी शकशे ? अमे महा तपस्याना करनार पांचसें एक जण ते एक
उपवासे करी सूके पत्रे पारणुं करी एक पावडी चड्या, पण आगल जइ शकता नथी.
एवो विचार करे छे, एवामां गौतमस्वामी चड्या. यावत् दर्शन करी पाछा फर्या, ते
वारे श्रीगौतमस्वामी पासेथी सर्व पन्नरसें ने त्रण तापसोए दीक्षा लीधी, शासनदे-
वीए साधुनो वेश आणी आप्यो. पछी मार्गे आवतां सर्वने पूछ्युं के तमारे आजे शेनुं
पारणुं करवुं छे ? ते वारे तापस बोल्या के खीर खांड घृतनुं पारणुं करीए तो सारुं.
पछी गौतमस्वामी पात्रुं भरी वहोरी लाव्या. अक्षीणमहानिशि लब्धिने बले करी
सर्व तापसोने पारणुं कराव्युं. एवो चमत्कार देखी पोतानां मन मांहे गुरुतत्त्वनी
भावना भावतां भावतां पांचसें ने एक तापसोने केवलज्ञान उपन्युं अने पाचसें ने

एकने समोसरण देखतां केवलज्ञान उपन्युं, तथा पांचसें ने एकने श्रीवीरनी वाणी सांभलतां केवलज्ञान उपन्युं. ते सर्व १५०३ तापस केवली थया थका श्रीवीरने वांदीने केवलीनी सभामां बेठा, ते जोइ श्रीगौतमस्वामीने शंका उपनी जे आजना दीक्षितने केवलज्ञान उपन्युं बे, अने हुं निर्वाण पामीश ते वारे तुजने केवलज्ञान उपजशे. ते सांभली श्रीगौतमस्वामी संतोष पाम्या. अनुक्रमे केवलज्ञान पामी मोक्षसुख पाम्या, अने तापस पण मोक्षसुख पाम्या. एवुं गुरुसेवानुं फल जाणी हे भव्यलोको ! तमे धर्मना दायक एवा गुरुनी सेवा करो, के जे थकी संसार तरो ॥ १६ ॥ इति गुरुसेवाधिकारे श्रीगौतमस्वामीकथा समाप्ता ॥

हवे चार श्लोकोए करीने जिनमत जे जिनोक्त सिद्धांत, तेनुं माहात्म्य कहे बे.

॥ शिखरिणीवृत्तम् ॥ न देवं नादेवं न शुभगुरुमेवं न कुगुरुम्, न धर्म्मं नाधर्म्मं न गुणपरिणद्धं न विगुणम् ॥ न कृत्यं नाऽकृत्यं न हितमहितं नाऽपि निपुणम्, विलोकंते लोका जिनवचनचक्षुर्विरहिताः ॥ १७ ॥

अर्थः—(जिनवचन के०) जिनशास्त्ररूप (चक्षुः के०) चक्षु जे नेत्र, तेणे करी (विरहिताः के०) रहित एवा (लोकाः के०) लोको जे छे, ते हवे कहेवाशे ते एवी वस्तुने (न विलोकंते के०) न देखे छे, अर्थात् नहि जाणे छे. शुं शुं नथी जाणता ? तो के (देवं के०) सर्वज्ञ, जितरागादि लक्षणोए युक्त जे सुदेव, तेने न जाणे छे. वली ते (अदेवं के०) कुदेव एटले स्त्री, शस्त्र, अक्ष, सूत्रादि लक्षणोपेत जे कुदेव तेने पण (न के०) न जाणे छे. वली ते (एवं के०) ए प्रकारे (शुनगुरुं के०) सुगुरु जे छे तेने एटले शुद्ध मार्गप्ररूपक एवा सुगुरुने (न के०) न जाणे छे. वली (कुगुरुं के०) पंचाचाररहित एटले उत्सूत्रप्ररूपक एवा कुगुरुने (न के०) न जाणे छे. तथा (धर्मं के०) धर्मने (न के०) न जाणे छे, तथा (अधर्मं के०) अधर्मने न जाणे छे. अर्थात् धर्माधर्मना अंतरने ते पुरुष जाणता नथी. वली (गुणपरिणऊं के०) गुणे करीने परिपूर्ण अर्थात् गुणवानने (न के०) न जाणे छे, तथा (विगुणं के०) गुणरहित एटले निर्गुण तेने (न के०) न जाणे छे. अर्थात् गुणवान् अने निर्गुण जनने समानज देखे छे. वली (कृत्यं के०) करवा योग्य कार्य तेने (न के०) न जाणे छे. तथा (अकृत्यं के०) जे करवाने अयोग्य कार्य तेने (न के०) न जाणे

छे. अर्थात् कृत्याकृत्यविवेकने जाणे नहि. वली (निपुणं के०) चातुर्य जेम रुडे प्रकारे होय तेमज (हितं के०) पोतानुं हित जे सुख तेनुं कारण, तेने (न के०) नहि जाणे छे. तथा (अहितमपि के०) अशुजनुं जे कारण, तेने पण (न के०) नहि जाणे छे. अर्थात् ते लोको जिनवचनश्रवण विना शुजाशुजना अंतरने जाणता नथी. इहां विलोकंते ए क्रियापद सर्व नकारनी साथे लगाडवुं. माटे हे जव्यजीव ! ए प्रकारे जाणीने श्रीजिनप्रणीत सिद्धांतोनुं श्रवण करवुं. जिनवचन श्रवण करता एवा सुजनने जे पुण्य इत्यादि पूर्ववत् जाणवुं ॥ १७ ॥

टीकाः—अथ चतुर्भिर्वृत्तैर्जिनमतस्य जिनोक्तसिद्धांतस्य च माहात्म्यमाह ॥ न देवमिति ॥ लोकाः जिनवचनमेव चक्षुर्नेत्रं तेन रहिताः संतः एतानि वस्तूनि न विलोकंते । न पश्यंति । न जानंतीत्यर्थः॥ किं किं न विलोकंते । ते देवं सर्वज्ञो जितरागादिरित्यादिलक्षणोपेतं न विलोकंते । पुनः अदेवं कुदेवं ये स्त्रीशस्त्राक्षसूत्रादिलक्षणोपेतं कुदेवं न विलोकंते । पुनः शुजगुरुं सुगुरुं शुद्धं प्ररूपकं गुरुं न जानंति । पुनः कुगुरुं पंचाचाररहितं उत्सूत्रप्ररूपकं न जानंति । पुनः धर्म्मं अधर्म्मं च न जानंति । धर्माधर्मयोरंतरं न विदंतीत्यर्थः ॥ पुनः गुणपरिणद्धं गुणैः परिपूर्णं गुणवंतं न जानंति ॥

पुनर्विगुणं गुणरहितं निर्गुणं च न जानंति । गुणवंतं निर्गुणं च सदृशमेव पश्यंति । पुनः कृत्यं करणीयं कर्त्तुं योग्यं वस्तु न जानंति । पुनः अकृत्यं कर्तुमनुचितं अयोग्यं च न जानंति । कृत्याऽकृत्यविवेकं न जानंतीत्यर्थः ॥ पुनर्निपुणं सचातुर्यं च सम्यग् यथास्यात्तथा आत्मनो हितं सुखकारणमपि न जानंति । पुनः अहितं च अशुभका- रणं च न जानंति । जिनवचनश्रवणं विना शुभाऽशुभयोरंतरं न जानंति ॥ यतः ॥ सुच्चा जाणइ कल्लाणं, सुच्चा जाणइ पावगं ॥ उभयंपि जाणई सुच्चा, जं सेयं तं समा- यरे ॥ १ ॥ भो भव्यप्राणिन् ! एवं ज्ञात्वा श्रीजिनप्रणीतसिद्धांतानां श्रवणं कर्त्तव्यं । कुर्वतां च सतां यत्पुण्यमुत्पद्यते तत्पुण्यप्रसादात् उत्तरोत्तरं मांगलिक्यमाला विस्तरंतु १७

भाषाकाव्यः—कुंडलियाछंद ॥ देव अदेवहि नहीं लखैं, सुगुरु कुगुरु नहि सूझ ॥ धर्म अधर्म गिनैं नहीं, कर्म अकर्म न बूझ ॥ कर्म अकर्म न बूझ गूझ, गुन अगुन न जानहि ॥ हित अनहित न सदहै, निपुन मूरख नहि मानहि ॥ कहत वनारसी ज्ञान, दृष्टि नहि अंध अवेतहि ॥ जैन वचन दृग हीन, लखैं नहि देव अदेवहि ॥१७॥

॥ शार्दूलविक्रीडितवृत्ताष्टकम् ॥ मानुष्यं विफलं वदंति हृदयं
व्यर्थं वृथा श्रोत्रयो--निर्माणं गुणदोषभेदकलनां तेषामसंभा-

विनीम् ॥ दुर्वारं नरकांधकूपपतनं मुक्तिं बुधा दुर्लभाम्, सा-
र्वज्ञः समयो दयारसमयो येषां न कर्णातिथिः॥ १८ ॥

अर्थः– (सार्वज्ञः के०) सर्वज्ञदेवप्रणीत अर्थात् श्रीवीतरागदेवे कहेलो एवो (स-मयः के०) आगम, (येषां के०) जे पुरुषोने (कर्णातिथिः के०) कर्णगोचर (न के०) नथी थतो, अर्थात् जेणे जिनागम श्रवण कर्यो नथी, हवे ते केवो जिनागम छे ? तो के (द-यारसमयः के०) कृपा जे तेज छे रस जेमां एवो छे. हवे ते जिनागम श्रवण न करनारा जे पुरुषो (तेषां के०) ते पुरुषोनो (मानुष्यं के०) मनुष्यजन्म जे छे तेने (बुधाः के०) जे पंडितो छे, ते (विफलं के०) निष्फल (वदंति के०) कहे छे. अर्थात् पंडितो ते पुरुषोने मनुष्यजन्म प्राप्त थयो, तोपण न थया जेवुं कहे छे. तथा ते पुरुषोनुं (हृदयं के०) चित्त तेने (व्यर्थं के०) निरर्थक अर्थात् शून्य कहे छे. वली ते पुरुषोने (श्रोत्रयोः के०) बेहु काननुं (निर्माणं के०) निर्माण जे करवुं तेने (वृथा के०) निष्फल कहे छे. तथा तेमने (गुण के०) गुणो तथा (दोष के०) दोषो तेनो जे (भेद के०) भेद तेनी (कलनां के०) विचारणा जे छे तेने (असंभाविनीं के०) दुर्लभ एवी कहे छे, तथा ते पुरुषोनुं (नरकांधकूप के०) नरक तेज अंधकूप एटले घासं अने वेलाढंए

आछादित कूप तेने विषे (पतनं के०) पडवुं, ते (डुर्वारं के०) वारवाने अशक्य कहे छे, अने ते पुरुषोने (मुक्तिं के०) मुक्ति ते (डुर्लभां के०) डुर्लभ कहे छे. अर्थात् जिनागमश्रवण विना जीवो मोक्षने पामता नथी. ए कारण माटे सर्व जनोए जिनागमनुं श्रवण करवुं. कदाचित् भाव न होय तोपण जिनागमश्रवण हितने माटे थाय छे. आ श्लोकमां वदंति ए क्रियापद सर्वे पदोने जोडवुं. एवं प्रकारे जाणीने जिनवचन श्रवण करवुं. ते करनार एवा जे सुजनो तेमने जे पुण्य इत्यादि पूर्ववत् जाणवुं ॥ १७ ॥

टीकाः—मानुष्यमिति । भो भव्यप्राणिन् ! सार्वज्ञः सर्वज्ञप्रणीतः श्रीवीतरागदेवेन भाषितः समय आगमो येषां पुरुषाणां कर्णातिथिः कर्णगोचरो न जातो यैर्न श्रुतः । किंविशिष्टः समयः दयारसमयः कृपा एव रसः स्वरूपं यस्य । बुधाः पंडितास्तेषां मनुष्याणां मानुष्यं मनुष्यजन्म विफलं निष्फलं वदंति । लब्धमप्यलब्धं कथयंति । तेषां हृदयं चित्तं व्यर्थं निरर्थकं शून्यं वदंति । पुनस्तेषां श्रोत्रयोः कर्णयोर्निर्माणं करणं वृथा निष्फलं वदंति । पुनस्तेषां गुणानां दोषाणां च यो भेदो अंतरं तस्य कलनां विचारणां असंभाविनीं अर्थात् डुर्लभां वदंति । पुनः नरकमेव अंधकूपस्तृणवल्लीवितानाछादितः

कूपस्तत्र पतनं डुर्वारं वारयितुमशक्यं कथयंति । पुनस्तेषां मुक्तिं डुर्लजां कथयंति ।
जिनागमश्रवणं विना मुक्तिं मोक्षं न प्राप्नुवंति । अतः श्रीजिनागमश्रवणमेव कर्त्तव्यं ।
जावं विनाऽपि श्रुतं हिताय जवति ॥ यथा ॥ द्वेषेऽपि बोधकवचः श्रवणं विधाय,
स्याद्रौहिणेय इव जंतुरुदारलाजः ॥ क्वाथोऽप्रियोऽपि सरुजां सुखदो रविर्वा,
संतापकोऽपि जगदंगभृतां हिताय ॥ १ ॥ किं तद्वचः ? ॥ यतः ॥ अणिमिस नयणामण
क, ज्ज साहणाः पुप्फदाम अमिलाणा ॥ चउरंगुलेण जूमिं, न बिवंति सुरा जिणा
विंती ॥ १ ॥ इति ज्ञात्वा जिनवचनस्य श्रवणं कर्त्तव्यं । कुर्वतां च सतां यत् पुण्यमु-
त्पद्यते तत्पुण्यप्रसादात् उत्तरोत्तरं मांगलिक्यमाला विस्तरंतु ॥ १७ ॥

जाषाकाव्यः—मात्रात्मककविता ॥ ताको मनुजजनम सब निःफल, निःफल मन
निःफल जुग कान ॥ गुन अरु दोष विचार जेद विधि, तांहि महा डुर्लज यह ज्ञान
॥ ताकों सुगम नरक डुःख संकट, आगम पंथ पदइ निरवान ॥ जिनमत वचन
दयारस गर्जित, जे नहि सुनत सिद्धांत बखान ॥ १७ ॥

कथाः—एनी उपर रोहणीया चोरनो दृष्टांत कहे छेः—राजगृही नगरीने पाखती वैजा-
रगिरि पर्वतनी गुफा मांहे लोहखुरो चोर वसे छे. ते सर्वदा पापकर्मनो करनार नगर मांहे

चोरी करे, सात व्यसन सेवे, चोरीनो विधि संपूर्ण जाणे, धर्म उपर लगारमात्र वांछा नहीं, तेने रोहिणीनक्षत्रने योगे पुत्र थयो. तेनुं नाम रोहणीयो एवुं स्थाप्युं. अनुक्रमे यौवनावस्था पाम्यो, ते वारे अनेक विद्यार्जनो अभ्यास कीधो, सर्व कलाउंमां निपुण थयो. एकदा तेना पिताने मरणनुं कष्ट आव्युं, ते वारे पुत्रने कहेवा लाग्यो के हे वत्स ! तुं मारुं वचन अंगीकार कर, तो हुं मरुं. जे माटे तुं केवारे पण श्रीमहावीर देवनी वाणी सांजलीश मां. रोहणीये तेमज कबूल कर्युं, ते वारे लोहखुरो मरण पाम्यो, तेनुं मृतकार्य करी नगरमां चोरी करतो फरचा करे.

हवे एकदा श्रीमहावीरस्वामी विहार करता तिहां समोसर्या, देवताए समोसरणनी रचना करी, ते समोसरणमां बेसी जगवान् देशना देवा लाग्या, ते समये रोहणीयो पण पर्वतमांथी नीकली राजगृही नगरी तरफ जतां मार्गमां समोसरण देखी चिंतववा लाग्यो जे ए मार्गे जतां माराथी वीरवचन जरूर संजलाशे, तो पितानी आज्ञानो जंग थशे, अने बीजे मार्गे जइश तो वखत घणो लागशे. तेम गया विना पण चालशे नहीं. तेथी बे कानमां आंगली घाली बेहु पगरखां हाथमां लइ एकदम दोड्यो अने समोसरण नजीक आव्यो, ते वारे पगमां कांटो लाग्यो, तेने काढवा

माटे कानमांथी आंगली काढीने नीचो नम्यो, ते वखत सर्व संदेहनी हरनारी अमृ-
ततुल्य एवी श्रीवीरनी वाणी श्रवणे सांभली. ते वाणीमां देवताना स्वरूपनुं वर्णन ते
समये आवेलुं हतुं, ते जेमकेः—॥ गाथा ॥ केसट्ठि मंस नह रो, म रुहिर वस चम्म
मुत्त पुरिसेहिं ॥ रहिया निम्मल देहा, सुगंध नीसास गयलेवा ॥ १ ॥ अंतमुहुत्तेणं
चिय, पज्जत्ता तरुणपुरिस संकासा ॥ सव्वंग भूसण धरा, अजरा निरुया समा देवा
॥ २ ॥ अणिमिस नयणा मण क, ज्ज साहणाः पुप्फदाम अमिलाणा ॥ चउरंगुलेण
भूमिं, न छिवंति सुरा जिणा बिंती ॥ ३ ॥ कांटो काढतां ए गाथार्ध सांभलीने ते
वचनने घणांए वीसारवा मांड्यां, पण कोइ रीते वीसरे नहीं. पछी गाममां जइ
चोरी करी लोकोने संतापीने चोर स्वस्थानके गयो. एकदा तिहांनी सर्व प्रजाए रा-
जानी आगल विनंति करी के स्वामिन् ! आ गाममां चोरनी आगल अमाराथी रही
शकाय नहीं. ते सांभली राजाए सेवकोने बोलावी कह्युं के अरे ! तमे चोरनो निग्रह
केम नथी करता ? ते सांभली सेवको बोल्या के स्वामिन् ! अमे तो घणाय प्रपंच कर्या,
परंतु ए चोर क्षणमां देखाय अने क्षणमां न देखाय, तेथी अमारा हाथमांज आ-
वतो नथी. ते वारे राजाए अभयकुमारने कह्युं. अभयकुमारे कोटवालने कह्युं के

नगरना दरवाजामां कोइ नवीन माणस प्रवेश करे, अथवा बहार नीकले, तो ओल-खीने जवा देजो. कोटवाले पण गुप्तपणे दरवाजे रही चोकसी करतां एकदा रात्रिने वखते रोहणीयाने नगरमां प्रवेश करतां अंगित आकारे चोर जाणीने पकड्यो. बां-धीने राजा आगल आण्यो. राजाए अभयकुमारने पूछ्युं के एने केवी शिक्षा करीए? ते वारे कुमरे कह्युं के चोरेली वस्तु हाथ लाग्या विना शिक्षा थइ शके नहीं. रा-जाए चोरने पूछ्युं के तुं क्या गामनो रहेवासी छो अने तारुं नाम शुं छे? तथा धंधो शुं छे? ते कहे. चोर बोल्यो, मारुं नाम दुर्गचंड छे, जाते कुणबी छुं अने शालिग्रा-ममां रहुं छुं. कोइ कामविशेषे अहीं आव्यो छुं. आवतां असुर थयुं तेथी तलारे मने पकड्यो. ते सांभली राजाए प्रछन्नपणे ते वातनो निश्चय करवा माटे शालिग्रामे माणस मोकल्यो, पण चोरे ते ग्रामना सर्व माणसो साथे प्रथमथी संकेत करेलो हतो, माटे तिहांना रहेवासीए तेमज तेनुं नाम ठाम सर्व ते माणसने कही संभ-लाव्युं. ते वारे माणसे फरी आवी राजा आगल सर्व समाचार कह्या. ते सांभली अ-भयकुमारे विचार्युं जे ए चोर छे, पण महा कपटी छे. पछी तेने दिलासो आपी पोतानी पासे राख्यो.

जे वारे अजयकुमार सामायिक पोसह प्रमुख करे, ते वारे ते पण तेमज अजय-
कुमारनी साथे श्रावकनी करणी करे, तेना मनोगत नाव कोइ जाणे नहीं ॥ यतः ॥
राम उवाच ॥ पश्य लक्ष्मण पंपायां, बकः परमधार्मिकः ॥ शनैश्च मुंचते पादौ,
जीवानामनुकंपया ॥ १ ॥ मत्स्य उवाच ॥ सहवास्येव जानाति, सहवासिविचेष्टितम् ॥
प्रशंस्यते च रामेण, तेनाहं नकुलीकृतः ॥ २ ॥ मुखथी मिष्ट वचन बोले अने संसा-
रमां तो मिष्ट वचन वल्लन लागे तेथी कोयलनी पेठे अवगुण ढंकाइ जाय ॥ यतः
॥पिकस्तावत् कृष्णः, परमरुणया पश्यति दृशा ॥ परापत्यद्वेषी, स्वसुतमपि नो पाल-
यति यः ॥ तथाऽप्येषोऽमीषां, सकलजगतां वल्लनतमो ॥ न दोषा गण्यंते, मधुरवच-
नानां कचिदपि ॥ १ ॥

हवे अजयकुमारे एक आवास कराव्यो, तेमां विचित्र चित्रामण कराव्यां, नाना
प्रकारना चंडुवा बंधाव्या, आवासनी उपर अत्यंत सुंदर ध्वजाउ बंधावी, मांहे सेला-
रस, अगरचंदन लेपन कराव्यां, धूपपरिमल विस्तार्या, द्वारमां तोरण बंधाव्यां,
अपूर्व शय्या पथरावी, फुलपगर नराव्या, तथा सोल वर्षना वयवाली अत्यंत रूप-
वंत एवी आठ गणिकाउने सोल शणगार करावीने तेना हाथमां मृदंग आपी तिहां

ज्ञी राखी. पढी ते आवासमां अज्ञयकुमारे ते चोरने साधर्मीवाइना नाताथी जमवा बोलाव्यो. जमाफतां जमाफतां वचमां चंड्रहास्य मदिरानुं पान कराव्युं, तेथी विह्वल थयो. ते वारे ते आवासनी शय्या उपर तेने सुवाफी मूक्यो. चार घफी वीत्या पढी सचेतन थयो. ते वारे ते गणिकाउं "जयजयनंदा जयजयज्ञद्दा" एवा शब्दो बोलती थकी बत्रीशबद्ध नाटक करवा लागी, अने ते चोरने पूढ्युं के तमे शी पुण्याइ कीधी के जे थकी अमारा स्वामी थया ? अने देवलोकनी पदवी पाम्या ? ते वखते तिहां रोहणीयो चोर विचारवा लाग्यो जे आ ते शी वात ! जे में तो जन्मांतरने विषे कांइ पण पुण्य कर्युं नथी, तो हुं देवता शी रीते थयो ! वली विचार्युं जे वीरवचन तो एवुं ढे के देवता होय तेने तो 'अणिमिसनयणा' इत्यादि चिह्न होय, ते तो ए देवांगनाउंमां देखातां नथी, माटे देव श्यो ! आ सर्व प्रपंच अज्ञयकुमारे कर्यो हशे ! एम जाणी विचारे ढे के हवे आपणे पण इहां कपटज्ञावज ज्ञजवो, कपटकथा करवी. एम विचारीने कहेवा लाग्यो के हे स्त्रीउं ! में पाढले ज्ञवे दान, पुण्य, धर्म, सात व्यसन रहित थकां नियम, व्रत, जीर्णोद्धारादि पुण्यकरणी करेली ढे तेथी तमारो स्वामी हुं थयो ढुं. ते वारे देवांगनाने रूपे वेश्याउं बोली के मनुष्यज्ञवमां कांइ पाप

कर्युं होय तो ते पण अमने कह्यो. ते वारे रोहणीओ बोल्यो के में मनुष्यभवे केवल
धर्मज कीधो छे, पण पापकर्म कोइ कीधुं नथी. ए वात सर्व प्रछन्नपणे सांभळीने
अभयकुमारे जाण्युं जे आ मोटो बुद्धिमान् छे. एना जेवा बुद्धिमान् तो कोइ विर-
लाज हशे. पछी श्रेणिक राजाने पूछीने अभयकुमारे ते चोरने विसर्जन कर्यो. रोह-
णीयो पण घेर जइ विचारवा लाग्यो के मरवानुं कष्ट मोटुं हतुं तेथी हुं उगरत नहीं,
परंतु में पगमांथी कांटो काढतां जे श्रीवीतरागनी थोडी शी वाणी सांभळी ते पण
मुने गुणकारी थइ, अणवांछतां थका पण जिनवाणी में सांभळी ते मुने आडी आवी,
माटे वीतरागने शरणे जवुं तेज उत्तम छे. पछी तिहां थकी श्रीवर्द्धमानस्वामी पासे
आवी नमस्कार करी कहेवा लाग्यो के हे प्रभो! तमारी थोडी शी वाणी मने नासतां
नासतां श्रवणे पडी, तेथी हुं उगर्यो. माटे हवे हे महाराज! कृपा करी मारा बेहु
भव सुधरे, तेवो उपाय कह्यो. ते वारे परमेश्वरे तेने धर्मोपदेश कर्यो. ते सांभळी
चारित्र लेवा माटे सावधान थयो. पछी भगवानने विनव्या के हे महाराज! हुं श्रेणिक
राजाने मळी आवीने पछी चारित्र लइश. एम कही राजानी पासे आवी कहेवा
लाग्यो के हे स्वामिन्! हुं रोहणीयो नामक चोर, महा पापी छउं, परंतु श्रीवीरनां

वचन सांजलतां हुं उगस्यो छुं. हवे मने चारित्र लेवानो जाव छे, माटे वैजारगिरिनी गुफा मांहे में चोरी लावेलुं धन राखेलुं छे, ते तमे मारी साथे तिहां पधारीने सर्व प्रजाने उंलखावी उंलखावीने जे जे धणीनुं होय ते ते धणीने तमे हवाले करो. राजाए पण तेमज कर्युं. सर्व प्रजाने जेनुं जेनुं धन हतुं तेने तेने उंलखावी उंलखावीने दीधुं. पछी रोहणीये स्वकुटुंब प्रतिबोधी तेमनी आज्ञा पामी चारित्र लीधुं. अंत्यावस्थाए अणसण करी देवलोके देवता थयो. ए रोहणीयानी पेठे जे जिनवचनने सद्दहे, ते सुखने पामे ॥ १७ ॥

पीयूषं विषवज्जलं ज्वलनवत्तेजस्तमःस्तोमव—न्मित्रं शात्रव-
वत् स्रजं जुजगवत् चिंतामणिं लोष्ठवत् ॥ ज्योत्स्नां ग्रीष्मज-
घर्मवत् स मनुते कारुण्यपण्यापणम्, जैनेंद्रं मतमन्यद-
र्शनसमं यो दुर्मतिर्मन्यते ॥ १८ ॥

अर्थः—(यः के०) जे (दुर्मतिः के०) मूर्ख पुरुष, (जैनेंद्रं मतं के०) जिनेंद्रशासन, तेने (अन्यदर्शनसमं के०) अन्यदर्शन जे बौद्ध, नैयायिक, सांख्य, वैशे-

विक, जैमिनीयादिक दर्शनो तेनी समान जो (मन्यते के०) माने छे, तो (सः के०) ते मूर्ख पुरुष, केवुं माने छे ? तो के (पीयूषं के०) अमृत जे तेने (विषवत् के०) विष समान (मनुते के०) माने छे. तथा ते मूर्ख पुरुष (जलं के०) परम शीतल जल जे तेने (ज्वलनवत् के०) अग्नि समान माने छे. तथा ते मूर्ख पुरुष (तेजः के०) तेज जे तेने (तमःस्तोमवत् के०) अंधकारसमूहनी पेठे माने छे. तथा वली ते मूर्ख पुरुष (मित्रं के०) सखाइने (शात्रववत् के०) वैरी समान माने छे. वली ते मूर्ख पुरुष (स्रजं के०) पुष्पमालाने (भुजगवत् के०) सर्प समान माने छे. वली ते मूर्ख पुरुष (चिंतामणिं के०) चिंतामणि रत्नने (लोष्ठवत् के०) पाषाण समान माने छे. वली ते मूर्ख पुरुष (ज्योत्स्नां के०) चंद्रकांतिने (ग्रीष्मजघर्मवत् के०) उष्णकालना तडका जेवी माने छे. आ ठेकाणे अमृतादि सरखो जिनमत जाणवो, अने विषादि समान अन्यदर्शन जाणवां. हवे ते जैनेंद्रमत केवो छे ? तो के (कारुण्य के०) दयापणुं ते रूप (पण्य के०) वेचवाने लायक वस्तु तेनुं (आपणं के०) हाट छे. अहीं मनुते ए क्रियापद सर्व ठेकाणे योजन करवुं. एवी रीते मानीने श्रीजिनमत अंगीकार करवो. अंगीकार करनारने जे पुण्य इत्यादि पूर्ववत् ॥ १९ ॥

टीकाः—पीयूषमिति ॥ यो डुर्मतिर्मूर्खः पुमान् जैनेंद्रं मतं श्रीजिनशासनं अन्यदर्शनसमं । अन्यदर्शनैर्बौद्धनैयायिकसांख्यवैशेषिकजैमिनीयादिभिः समं सदृशं मन्यते गणयति स मूर्खः पीयूषं अमृतं विषवत् विषेण तुल्यं मनुते गणयति । पुनर्जलं परमशीतलं पानीयं ज्वलनवत् अग्नितुल्यं गणयति । पुनः तेजः उद्योतं तमःस्तोमवत् अंधकारपुंजवत् मनुते । पुनर्मित्रं सखायं शात्रववत् वैरिसदृशं मनुते जानाति । पुनः स्रजं पुष्पमालां भुजगवत् सर्पतुल्यां गणयति । पुनः स चिंतामणिं लोष्ठवत् पाषाणसदृशं गणयति । पुनः स ज्योत्स्नां कौमुदीं चंद्रकांतिं ग्रीष्मजघर्मवत् उष्णकालआतपवत् मनुते । अत्र पीयूषादिसमं जिनदर्शनं । विषादिसदृशान्यदर्शनानीत्युपनयः । किंभूतं जैनेंद्रं मतं कारुण्यपण्यापणं । दयारूपक्रय्यस्य हट्टं ॥ एवं मत्वा श्रीजिनमतमेवांगीकर्त्तव्यं कुर्वतां च सतां यत् । शेषं प्राग्वत् ॥ १९ ॥

भाषाकाव्यः—छप्पय ॥ अमृत कहं विष कहैं, नीर कहं पावक मानैं ॥ तेज तिमिर सम गिनै, मित्त कहं शत्रु बखानै ॥ पुहुपमाल कहं नाग, रतन पथर सम तुल्लै ॥ चंद्र किरन आतप सरूप, इह भांति जु भुल्लै ॥ करुना निधान अमलान गुन, प्रगट बनारसी जैन मत ॥ पर मत समान जो मन धरत, सो अजान मूरख अपत ॥ १९ ॥

धर्म्मं जागरयत्यघं विघटयत्युत्थापयत्युत्पथम्, छित्ते मत्सरमुच्छिनत्ति कुनयं मथ्नाति मिथ्यामतिम् ॥ वैराग्यं वितनोति पुष्यति कृपां मुष्णाति तृष्णां च य–त्तज्जैनं मतमर्चति प्रथयति ध्यायत्यधीते कृती ॥ २० ॥

अर्थः–(कृती के०) पंमित पुरुष (यत् के०) जे (जैनं मतं के०) जैनेंद्रमत जे जिनशासन, एटले जिनप्रवचन तेने (अर्चति के०) पूजे छे, (प्रथयति के०) विस्तारे छे. वली (ध्यायति के०) ध्यान करे छे, एटले चिंतवन करे छे. वली (अधीते के०) पठन करे छे. (तत् के०) तो ते पूर्वोक्त रीते करेलुं एवुं जिनशासन शुं करे छे? तो के (धर्मं के०) धर्मने (जागरयति के०) जागरण जे उद्दीपन तेने करे छे. वली (अघं के०) पाप जे तेने (विघटयति के०) दूर करे छे. वली (उत्पथं के०) उन्मार्ग जे अनाचार तेने (उत्थापयति के०) निवारण करे छे. तथा (मत्सरं के०) गुणी पुरुषोने विषे द्वेषभावने (छित्ते के०) नाश करे छे. वली (कुनयं के०) कुत्सित नय जे अन्याय, तेने (उच्छिनत्ति के०) उच्छेद करे छे. वली (मिथ्यामतिं के०) कूट

बुद्धि जे तेने (मथ्नाति के०) सर्वथा दूर करे छे. वली (वैराग्यं के०) वैराग्यने (वितनोति के०) विस्तार करे छे. वली (कृपां के०) दयाने (पुष्यति के०) पोषण करे छे. (च के०) वली (तृष्णां के०) स्पृहा एटले लोजने (मुष्णाति के०) टाले छे. अर्थात् जेणे जिनमत आराधन कर्यो, तेणे पूर्वोक्त सर्व वानां कर्यां, एम जाणवुं. ए प्रकारे जाणीने श्रीजिनमत जे जिनप्रणीत सिद्धांत तेनुं आराधन करवुं. आराधन करनारने जे पुण्य थाय इत्यादि पूर्ववत् जाणवुं ॥ २० ॥ ए त्रीजो जिनमत प्रक्रम थयो ॥ ३ ॥

टीकाः—धर्म्ममिति ॥ कृती पंकितः जैनं मतं जैनेंद्रमतं श्रीजिनशासनं जिनोक्तप्रवचनं अर्चति पूजयति । पुनः प्रथयति विस्तारयति । पुनर्ध्यायति चिंतयति । पुनः अधीते पठति । तत् धर्म्मं जागरयति धर्म्मस्य जागरणं उद्दीपनं करोति । पुनः अघं पापं विघटयति दूरीकरोति । पुनः उत्पथं उन्मार्गं अनाचारं उत्थापयति निवारयति । पुनः मत्सरं गुणिषु द्वेषजावं चित्ते जेदयति विनाशयति । पुनः कुनयं कुत्सितनयं अन्यायं उच्छिनत्ति । पुनः मिथ्यामतिं मथ्नाति कूटबुद्धिं विलोड्य दूरीकरोति । पुनः वैराग्यं वितनोति विस्तारयति । पुनः कृपां दयां पुष्यति पोषयति । पुनः तृष्णां स्पृहां लोजं मुष्णाति निराकरोति । अर्थात् येन जिनमतमाराधितं तेन एतानि वस्तूनि कृ-

तानीत्यर्थः ॥ इति ज्ञात्वा श्रीजिनमतं जिनप्रणीतसिद्धांतश्च सम्यगाराधनीयः ॥ आराधयतां च सतां यत्पुण्यं० ॥२०॥ इति सिंदूरप्रकराख्यस्य, व्याख्यायां हर्षकीर्त्तिना ॥ विहितायां जिनमत,—प्रक्रमः पूर्णतामितः ॥३॥ इति तृतीयो जिनमतप्रस्तावः ॥ ३ ॥

भाषाकाव्यः ॥ महरठा छंद ॥ शुभ धर्म विकासैं, पाप विनासैं, कुपथ उथापनहार मिथ्या मत खंडैं, कुनये विहंडैं, मंडैं दया अपार ॥ तिष्ना मद मारैं, राग विदारैं, यह जिन आगम सार ॥ जो पूजैं ध्यावैं, पढैं पढावैं, सो जगमांहि उदार ॥ २ ॥

हवे चार श्लोकोए करीने संघना महिमाने कहे छे.

रत्नानामिव रोहणक्षितिधरः खं तारकाणामिव, स्वर्गः कल्प-
महीरुहामिव सरः पंकेरुहाणामीव ॥ पाथोधिः पयसामि-
वेंडुमहसां (शशीव महसां) स्थानं गुणानामसा,—वित्यालो-
च्य विरच्यतां भगवतः संघस्य पूजाविधिः ॥ २१ ॥

अर्थः—हे भव्यजनो! (इति के०) आ प्रकारे (आलोच्य के०) जोइने अर्थात् विचार करीने (भगवतः के०) पूजन करवा योग्य एवा (संघस्य के०) संघ

जे छे, तेनो (पूजाविधिः के०) पूजानो विधि, (विरच्यतां के०) करीए, अर्थात् करो. हवे शा प्रकारे विचार करीने? तो के (असौ के०) आ साधु, साध्वी, श्रावक, श्राविकारूप चतुर्विध संघ जे छे, ते (गुणानां के०) ज्ञान, दर्शन, चारित्र अने विनयादिक जे सर्व गुणो तेनुं (स्थानं के०) निवासस्थानक छे. केनी पेठे? तो के (रत्नानां के०) रत्नोनुं स्थानक (रोहणक्षितिधरः के०) रोहणाचल पर्वत (इव के०) जेम छे, तेम. तथा (खं के०) आकाश, ते (तारकाणां के०) ताराउंनुं निवासस्थान (इव के०) जेम छे, तेम. तथा (कल्पमहीरुहां के०) कल्पवृक्षोनुं निवासस्थानक (स्वर्गः के०) स्वर्ग (इव के०) जेम छे, तेम. तथा (पंकेरुहाणां के०) कमलोनुं निवासस्थानक (सरः के०) तलाव (इव के०) जेम छे, तेम. वली (पाथोधिः के०) समुद्र जे छे, ते (पयसां के०) जलोनुं निवासस्थानक (इव के०) जेम छे, तेम. हवे ते जल केवां छे? तो के (इंदुमहसां के०) चंद्रमा समान निर्मल छे. अथवा (शशीव महसां के०) शशीव महसां एवो पाठ जो होय तो (महसां के०) तेजनुं निवासस्थानक (शशी के०) चंद्रमा (इव के०) जेम होय, तेम. अर्थात् पूर्वोक्त वस्तुउं जेम बीजी कहेली वस्तुउंनुं निवासस्थानक छे, तेम आ श्री चतुर्विध

संघ पण ज्ञान, दर्शन; चारित्रने रहेवानुं निवासस्थानक छे. आ प्रकारे विचार
करीने चतुर्विध संघनुं पूजन करवुं, एज नावार्थ छे. अहीं (स्थानं) ए पद सर्वत्र
योजन करवुं. माटे एम जाणीने श्रीसंघनी नक्ति करवा योग्य छे, अने ते नक्ति
करवानुं जे पुण्य थाय इत्यादि पूर्ववत् जाणवुं ॥ २१ ॥

टीकाः—अथ चतुर्भिर्वृत्तैः संघस्य महिमानमाह ॥ रत्नानामिवेति ॥ नो नव्याः । इतीति
इत्यालोच्य इति विचार्य्य नगवतः पूज्यस्य संघस्य पूजाविधिर्विरच्यतां क्रियतां । इतीति
किं? यतः असौ संघः साधुसाध्वीश्रावकश्राविकारूपश्चतुर्विधसंघः गुणानां ज्ञानदर्श-
नचारित्रविनयादीनां स्थानं निवासः । कः केषामिव? रोहणक्षितिधरः रोहणश्चासौ
क्षितिधरश्च पर्वतो रत्नानामिव । यथा रोहणाचलो रत्नानां स्थानं तथेत्यर्थः । पुनः खं
आकाशं तारकाणामिव । पुनर्यथा स्वर्गः कल्पमहीरुहां कल्पवृक्षाणां स्थानं तथेत्यर्थः ।
पुनर्यथा सरस्तडागः पंकेरुहाणां कमलानां स्थानं तथा । पुनर्यथा पाथोधिः समुद्रः
पयसां पानीयानां स्थानं तथा । किंभूतानां पयसां । इंडुमहसां इंडुवन्निर्मलानां ।
अथवा शशीव महसां इति पाठः । यथा शशी चंद्रो महसां तेजसां स्थानं तथाऽसौ
संघो गुणानां स्थानं । अथ वा किंभूतानां गुणानां इंडुमहसां इंडुवत् महो येषां तानि

इंडुमहांसि तेषां । एवं श्रीचतुर्विधसंघः सर्वगुणानां स्थानं । इति ज्ञात्वा श्रीसंघस्य भक्तिः कार्या । कुर्वतां च सतां यत्पुण्यं० ॥ २१ ॥

भाषाकाव्यः—कवित्त मात्रात्मक ॥ जैसे नभमंडल तारागन, रोहन सिखर रतनकी खान ॥ ज्यौं सुरलोक भूरि कल्पद्रुम, ज्यौं सुरवर अंबुज बन जान ॥ ज्यौं समुद्र पूरन जल मंडित, ज्यौं ससि छवि समूह सुखदानि ॥ तैसें संग सकल गुन मंदिर, सेवहु भाव भगति मन आनि ॥ २१ ॥

यः संसारनिरासलालसमतिर्मुक्त्यर्थमुत्तिष्ठते, यं तीर्थं कथ-
यंति पावनतया येनाऽस्ति नाऽन्यः समः ॥ यस्मै तीर्थपतिर्न-
मस्यति सतां यस्माच्छुभं जायते, स्फूर्त्तिर्यस्य परा वसंति च
गुणा यस्मिन्स संघोऽर्च्यतां ॥ २२ ॥

अर्थः—हे भव्यजनो ! तमोए (सः के०) ते चतुर्विध संघ (अर्च्यतां के०) पूजाय- अर्थात् तमे चतुर्विध संघने पूजो. ते केवो संघ छे ? तो के (यः के०) जे संघ, (संसार के०) संसार तेनो (निरास के०) निराकरण एटले त्याग तेने विषे (लाल-

समतिः के०) इछावाळी छे बुद्धि जेनी एवो छतो (मुक्त्यर्थं के०) मुक्तिना साधन माटे (उत्तिष्ठते के०) सावधान थाय छे. तथा (यं के०) जे संघने (पावनतया के०) पवित्रपणाए करीने (तीर्थं के०) तीर्थभूत एवो (कथयंति के०) कहे छे. तथा (येन के०) जे संघनी संघाते (समः के०) समान, (अन्यः के०) बीजो कोइ (नास्ति के०) नथी. वळी (यस्मै के०) जे संघने (तीर्थपतिः के०) तीर्थंकर पोते (नमस्यति के०) नमस्कार करे छे. एटले व्याख्यानावसरने विषे " नमोतिछस्स " एवुं जणे छे. तथा (यस्मात् के०) जे संघ थकी (सतां के०) सज्जनोनुं (शुभं के०) कल्याण (जायते के०) उत्पन्न थाय छे. (च के०) वळी (यस्य के०) जे संघनी (स्फूर्त्तिः के०) महिमा (परा के०) उत्कृष्ट वर्त्ते छे. वळी (यस्मिन् के०) जे संघने विषे (गुणाः के०) गांभीर्य, धैर्य, औदार्यादिक मूलोत्तर गुणो (वसंति के०) वसे छे. आ श्लोकमां सात विभक्तिनो अनुक्रमे समावेश करेलो छे. ते जेमके आरंभमां (यः) ए पद लइने (यस्मिन्) ए पद पर्यंत जोइ लेवुं, माटे ए प्रमाणे जाणीने हे भव्यप्राणी ! मनमां विवेक लावीने श्रीसंघनी पूजा भक्ति करवी. ते पूजा भक्ति करनारने जे पुण्य इत्यादि पूर्ववत् जाणवुं ॥ २२ ॥

टीकाः—यः संसारेति ॥ भो भव्याः! भवद्भिः सः श्रीचतुर्विधसंघो अर्च्यतां पूज्यतां। सः कः? यः संघः संसारनिरासलालसमतिः सन् संसारस्य निरासे निराकरणे त्यागे लालसा इच्छा यस्या सा ईदृशी मतिर्बुद्धिर्यस्य स ईदृशः सन् मुक्त्यर्थं मुक्तिसाधनार्थं उत्तिष्ठते सावधानो भवति। पुनर्यं संघं पावनतया पवित्रत्वेन तीर्थं तीर्थभूतं कथयंति। पुनर्येन संघेन समः सदृशोऽन्यः कोऽपि नास्ति। पुनर्यस्मै संघाय तीर्थपतिः तीर्थंकरः स्वयं नमस्यति नमस्कारं करोति। व्याख्यानावसरे नमो तित्थस्सेति भणनात्। पुनर्यस्मात् संघात् सतां सज्जनानां शुभं कल्याणं जायते उत्पद्यते। पुनर्यस्य संघस्य स्फूर्तिर्महिमा परा उत्कृष्टा वर्त्तते। पुनर्यस्मिन् संघे गुणा गांभीर्यधैर्यौदार्यादयः मूलगुणोत्तरगुणाश्च वसंति तिष्ठंति। एवं ज्ञात्वा भो भव्यप्राणिन्! मनसि विवेकमानीय श्रीसंघस्य पूजा भक्तिश्च प्रकर्त्तव्या। कुर्वतां च सतां० ॥ २२ ॥

भाषाकाव्यः—वृत्त उपर प्रमाणे ॥ जे संसार भोग आसा तजी, ठानत मुकति पंथकी दौर ॥ जाकी सेव करत सुख उपजत, जिन समान उत्तम नहि और ॥ इंद्रादिक जाके पद वंदत, जो जंगम तीरथ सुचि ठौर ॥ जाने नित निवास सुख संपत्ति, सो सिरि संघ जगत सिर मोर ॥ २२ ॥

लक्ष्मीस्तं स्वयमभ्युपैति रभसा कीर्त्तिस्तमालिंगति, प्री-
तिस्तं भजते मतिः प्रयतते तं लब्धुमुत्कंठया ॥ स्वःश्रीस्तं
परिरब्धुमिच्छति मुहुर्मुक्तिस्तमालोकते, यः संघं गुणराशिके-
लिसदनं श्रेयोरुचिः सेवते ॥ २३ ॥

अर्थः—(यः के०) जे पुरुष, (श्रेयोरुचिः के०) श्रेय एटले कल्याण तेने विषे वा धर्मने विषे छे रुचि जेनी एवो छतो (संघं के०) चतुर्विध संघ जे तेने (सेवते के०) सेवन करे छे,(तं के०) ते पुरुषने (लक्ष्मीः के०) संपत्ति, ते (रभसा के०) वेगे करीने अर्थात् शीघ्रताथी (स्वयं के०) पोतानी मेळे (अभ्युपैति के०) सन्मुख आवे छे. वळी (कीर्त्तिः के०) कीर्त्ति जे छे, ते (तं के०) ते पुरुषने (आलिंगति के०) आलिंगन दे छे, अर्थात् कीर्त्ति प्राप्त थाय छे. तथा वळी (प्रीतिः के०) स्नेह जे छे, ते (तं के०) ते पुरुषने (भजते के०) भजे छे, एटले सेवे छे. वळी (मतिः के०) बुद्धि जे छे, ते (उत्कंठया के०) उत्सुकताए करीने (तं के०) तें पुरुषने (लब्धुं के०) प्राप्त थवाने (प्रयतते के०) प्रयत्न करे छे. वळी (स्वःश्रीः के०) स्वर्गनी लक्ष्मी

(तं के०) ते पुरुषने (मुहुः के०) वारंवार (परिरब्धुं के०) आलिंगन देवाने (इछति के०) इछा करे छे. वली (मुक्तिः के०) मोक्ष, (तं के०) ते पुरुषने (आलोकते के०) जुवे छे. हवे ते संघ केवो छे? तो के (गुणराशि के०) गुणनो जे समूह तेनुं (केलिसदनं के०) क्रीडागृह छे. अर्थात् ते सर्व गुणोने रमवानुं स्थानक छे. माटे एम जाणीने मनने विषे विचार करीने चतुर्विध संघ जे छे ते सेववा योग्य छे. ते सेवन करता सुजनोने जे पुण्य इत्यादि पूर्ववत् जाणवुं ॥ २२ ॥

टीकाः—लक्ष्मीति ॥ यः पुमान् श्रेयोरुचिः सन् श्रेयसि कल्याणे धर्मे वा रुचिरभिलाषो यस्य स श्रेयोरुचिः । ईदृशः सन् श्रीसंघं सेवते । तं पुरुषं लक्ष्मीः संपत् रभसा वेगेन स्वयमात्मना अभ्युपैति सन्मुखमायाति । पुनः कीर्त्तिस्तं पुरुषं आलिंगति आलिंगनं ददाति । पुनः प्रीतिः स्नेहस्तं भजते सेवते । पुनर्मतिर्बुद्धिः उत्कंठया उत्सुकतया कृत्वा तं नरं लब्धुं प्राप्तुं प्रयतते यत्नं करोति । पुनः स्वःश्रीः स्वर्गलक्ष्मीस्तं मुहुर्वारंवारं परिरब्धुं आलिंगितुं इछति । मुक्तिर्मोक्षस्तं पुरुषं आलोकति पश्यति । किं विशिष्टं संघं ? गुणराशिकेलिसदनं गुणसमूहस्य क्रीडागृहं । एवं ज्ञात्वा संघः सेव्यः शेषं पूर्ववत् २२

भाषाकाव्यः—वृत्त उपर प्रमाणे ॥ ताकों आइ मिलै सुख संपत्ति, कीरति रहै तिहूं

जग छाई ॥ जिनसौं प्रीति बढे ताके घट, दिन दिन धरम बुद्धि अधिकाई ॥ छिन छिन ताहि लखै शिव सुंदरि, सुरग संपदा मिलै सुजाई ॥ वानारसी गुनरासि संघकी, जो नर जगति करैं मन लाइ ॥ ३३ ॥

कथाः—अयोध्या नगरीए जरत चक्रवर्त्ती अन्याय वर्जतो राज्य पाले छे. एकदा श्रीआदिनाथने केवलज्ञान उपने थके चोराशी गणधर सहित विहार करता अयोध्याना उद्यानमां समोसस्या, उद्यानपालके वधामणी दीधी, तेने साडीबार क्रोडनुं दान दीधुं. पछी जरत राजाए विचार्युं जे आज रुषजदेव पधास्या छे, तेने सपरिकर जोजन कराउं. एम चिंतवी घणां गाडां पक्वान्नादिके जरी समोसरणे आवी जगवानने वांदीने विनंति करी के महाराज! आज सर्व कुटुंब सहित आप मारुं जोजन करो. ते वारे जगवान् बोल्या के हे जरत! साधुने राज्यपिंड अग्राह्य छे. वळी आधाकर्मी तथा सामो आण्यों ते पण अग्राह्य छे. एवी वाणी सांजली जरत पश्चात्ताप करवा लाग्यो, ते वारे जगवान् बोल्या के हे राजेंद्र! असंतोष म कर, पहेलुं पात्र वीतराग, बीजुं पात्र साधु, त्रीजुं पात्र अणुव्रतधारी अने चोथुं पात्र दर्शनधर, माटे तुं अणुव्रतधारी श्रावकनी जक्ति कर, जे थकी संसार-

रूप समुद्र चुलूक समान थाय. एवुं सांजली जरत राजा हर्षे पाम्यो थको स्वस्थानके आव्यो. श्रावकमात्रने जमवा माटे नोतरां दीधां. निरंतर सर्व लोक जमवा आवे, केमके ते वखते लोक सर्व रुजु जरू हता. माटे हरहमेश आववा लाग्या, ते वारे रसोइ करनाराए राजाने विनव्यो के महाराज! प्रजा सर्व उलटी पमी ठे, केने जमामीए अने केने न जमामीए! ते वारे राजाए परीक्षा करी शुद्ध श्रावकने ज्ञान, दर्शन अने चारित्ररूप त्रण रेखा कांगणीरत्नथी कीधी. एम करी अवतार सफल करवा लाग्यो, तथा श्रीशत्रुंजयनो प्रथम उद्धार कर्यो, संघवीनी पदवी पाम्यो. वली अष्टापद पर्वत उपर रुषजदेव प्रमुख आगामी काले थनारा चोवीश तीर्थंकरनां प्रासाद करी मानोपेत प्रतिमा जरावी. ए रीते श्रीसंघनी जक्ति करी अनुक्रमे आरीसाजवनमां रूप जोतां अनित्यजावना जावतां मनमां वैराग्य वृद्धि करतां आ संसारमां सार ते एक धर्मज ठे. एम कहेतां कहेतां केवलज्ञान पाम्या. तेनो देवताए महोत्सव कर्यो. चोराशी लाख पूर्वनुं आयु जोगवी मोक्षे गया. तेमनो पुत्र श्रीसूर्ययश थयो, तेणे पण जरतेश्वरनी पेठेज श्रीसंघनी जक्ति करी. उर्वशी प्रमुख देवांगनाए परीक्षा कीधी, पण चलायमान थयो नहीं. तेमने पण आ-

रीसामां रूप जोतां केवलज्ञान उपन्युं अने मोक्षे गयो: तेमनो पुत्र महायश, तेमनो पुत्र अतिबल, तेमनो पुत्र बलभद्र, तेमनो पुत्र बलवीर्य, तेमनो पुत्र कृतवीर्य, तेमनो पुत्र जलवीर्य, तेमनो पुत्र आठमे पाटे दंडवीर्य, ए सर्व त्रण खंडना जोक्ता थया, चतुर्विध श्रीसंघनी जक्तिना करनार थया. इहां जरतनी पाछल छ कोडी पूर्व वर्ष गयां, ते वारे सौधर्मेंद्र अवधिज्ञानने प्रमाणे स्तवना करी पोते अयोध्या मांहे आवी ज्ञानादिक गुण जणाववा माटे यज्ञोपवित धारी बार व्रतनां बार तिलक कर्यां. ते अवसरे दंडवीर्य राजाए इंद्रने श्रावकरूपे दीठो, ते देखीने हर्षवंत थयो. पछी जमवानी निमंत्रणा कीधी, रसोयाने कह्युं के साधर्मिकने रूडी रीते जोजन करावो. इंद्र पण श्रावकरूप धरतो घर मांहे आव्यो, पच्चरकाण पारी श्रावकोनी पंक्तिमां जमवा बेठो. एक क्रोड श्रावकने अर्थे जेटलुं अन्न निपजाव्युं हतुं तेटलुं ते एकलो जम्यो. वली रसोयाने कह्युं के हुं जुख्यो छुं, माटे अन्न आप. रसोयाए राजानी आगल सर्व वात कही. राजा तिहां आव्यो, तेने श्रावकरूप धारक इंद्रे कह्युं के ए रसोइ करनार सर्वने जूख्या राखे छे. राजाए वली सो मूडा अन्न रंधावी पीरस्युं, ते तत्काल जमीने वली कहेवा लाग्यो के मारी जूख गइ नथी. ए रीते राजानुं अपमान

करवा लाग्यो के हुं तृप्त थतो नथी. ते वारे राजाए मनमां खेद कर्यो के माराथी संघनी पूर्ण भक्ति थती नथी, माटे मुने धिक्कार छे. सेवक बोल्या, महाराज! ए कोइ देवस्वरूपी छे, ते वारे राजाए धूपादिके संतोषी नमस्कार करी पूछ्युं के हे स्वामिन्! प्रसन्न थाओ. साधर्मीनी भक्ति माराथी केम थइ शके ? एहवुं सांभली इंद्र पोतानुं प्रगट रूप कीधुं. दंडवीर्यनी प्रशंसा करवा लाग्यो ने कह्युं के हे दंडवीर्य! तें युगादि देवनो वंश उजाळ्यो, धन्य छे तुजने जे तुं आवी रीते साधर्मीनी भक्ति करे छे. उक्तं च ॥ ते पुत्रा ये पितुर्भक्ताः, स पिता यस्तु पोषकः ॥ तन्मित्रं यत्र विश्वासः, सा भार्या यत्र निर्वृतिः ॥ १ ॥ इत्यादि स्तवना करी इंद्र देवलोके गयो. दंडवीर्य पण संघभक्ति करी जन्म सफल करी मोक्षे पहोतो. एम जाणी संघभक्ति करो, सात क्षेत्रे धन वावरी अवतार सफल करो ॥ २३ ॥

यद्भक्तेः फलमर्हदादिपदवी मुख्यं कृषेः सस्यवत्, चक्रित्वं त्रिद-
शेंद्रतादि तृणवत् प्रासंगिकं गीयते ॥ शक्तिं यन्महिमस्तुतौ
न दधते वाचोऽपि वाचस्पतेः, संघः सोऽघहरः पुनातु चरण-
न्यासैः सतां मंदिरम् ॥ २४ ॥ संघप्रक्रमः ॥ ४ ॥

अर्थः–(सः के०) ते (संघः के०) चतुर्विध संघ (चरणन्यासैः के०) पोताना पदस्थापने करीने (सतां के०) भक्तियुक्त मनुष्योनुं (मंदिरं के०) मंदिर जे घर तेने (पुनातु के०) पवित्र करो. ते संघ केवो छे ? तो के (यद्भक्तेः के०) जे संघनी भक्तिनुं (अर्हदादि के०) तीर्थंकरादि एवी (पदवी के०) जे पदनी प्राप्ति तेज (मुख्यं के०) मुख्य एवुं (फलं के०) फल छे. ते केनी पेठे ? तो के (कृषेः के०) क्षेत्रादिना (सस्यवत् के०) धान्यनी पेठे. अर्थात् जेम कृषि करनार मनुष्यने धान्य-प्राप्तिरूप मुख्य फल छे तेम अहीं श्रीसंघनी भक्तिनुं मुख्य फल अर्हदादि पदवीज छे, अने (चक्रित्वं के०) चक्रवर्त्तीपणुं तथा (त्रिदशेंद्रतादि के०) देवेंद्रादिपदपणुं तो (प्रासंगिकं के०) प्रसंगथीज आव्युं, एम (गीयते के०) कहेवाय छे. केनी पेठे ? तो के (तृणवत् के०) क्षेत्रना घासनी परे. अर्थात् जेम कृषि करनारने विना प्रयासे क्षेत्रथी घासनी प्राप्ति थाय छे, तेम अहीं संघभक्तिकारक पुरुषने चक्रवर्त्तित्व अने देवेंद्रत्व पदवी ते विना प्रयासेज प्राप्त थाय छे. वली (यन्महिमस्तुतौ के०) जे संघना प्रभाववर्णनने विषे (वाचस्पतेः के०) बृहस्पतिनी (वाचोऽपि के०) वाणीओ पण (शक्तिं के०) सामर्थ्य जे तेने (न दधते के०) धारण करी शकती नथी. वली ए संघ

केवो छे ? तो के (अघहरः के०) पापने हरण करनारो छे, माटे ते संघ अघहर
छे. एम जाणीने श्रीसंघने पोताने घेर आमंत्रण करीने पूजन करवुं अने तेनी पूजानुं
जे पुण्य थाय इत्यादि पूर्ववत् जाणवुं ॥ २४ ॥ आ चतुर्थ संघभक्तिनो प्रस्ताव थयो ४

टीकाः—यद्भक्तेरिति ॥ सः श्रीसंघश्चरणन्यासैः स्वपादस्थापनैः कृत्वा सतां सत्पुरुषाणां साधुमनुष्याणां मंदिरं गृहं पुनातु पवित्रयतु । सः कः? यद्भक्तेर्यस्य भक्तेः अर्हदादिपदवी मुख्यं तीर्थंकरादिपदप्राप्तेर्मुख्यं फलं वर्त्तते ॥ किंवत्? क्षेत्रादेः सस्यवत् धान्यवत् । चक्रित्वं त्रिदशेंद्रतादि । चक्रवर्त्तित्वं इंद्रपदत्वादिकं च प्रासंगिकं प्रसंगादागतं फलं गीयते कथ्यते । किंवत्? कृषेस्तृणवत् पलालादिवत् । पुनर्यन्महिमस्तुतौ यस्य संघस्य प्रभाववर्णने वाचस्पतेरपि वाचो वाण्यः शक्तिं सामर्थ्यं न दधते न धारयंति । किंविशिष्टः संघः? अघहरः अघं पापं हरति यः सः अघहरः । इति ज्ञात्वा श्रीसंघः स्वगृहे आहूय सम्यक् पूजनीयः । शेषं प्राग्वत् ॥ २४ ॥ सिंदूरप्रकराख्यस्य, व्याख्यायां हर्षकीर्त्तिना ॥ सूरिणा विहितायां तु, श्रीसंघप्रक्रमोऽजनि ॥४॥
इति चतुर्थः संघभक्तिप्रस्तावः ॥ ४ ॥

भाषाकाव्यः—वृत्त उपर प्रमाणे ॥ जाके भगत सुगति पद पावत, इंद्रादिक पद

गनत न कोइ ॥ ज्यौं कृषि करत धान फल उपजत, सहज प्रयास घास तुस होइ ॥ जाके गुन जस संपन कारन, सुरगुरु थकित होत मद खोइ ॥ सो सिरि संघ पुनीत बनारसी, डुरित हरन विचरत तुअ लोइ ॥ २४ ॥

हवे हिंसाना निषेधे करीने सर्व प्राणीउने विषे स्वसमानतानुं ध्यान करो, ते कहे छे.

क्रीडाजूः सुकृतस्य डुःकृतरजःसंहारवात्या जवो-दन्वन्नौव्यं-
सनाग्निमेघपटली संकेतदूती श्रियाम् ॥ निःश्रेणिस्त्रिदिवौकसः
प्रियसखी मुक्तेः कुगत्यर्गला, सत्त्वेषु क्रियतां कृपैव जवतु क्ले-
शैरशेषैः परैः ॥ २५ ॥

अर्थः—हे जव्यप्राणीउ ! (सत्त्वेषु के०) जीवोने विषे (कृपैव के०) कृपा जे दया तेज (क्रियतां के०) कराय, अर्थात् करो. वली ते कृपा (परैः के०) बीजा (अशेषैः के०) समस्त एवा (क्लेशैः के०) कायाना कष्टे करीने पण (जवतु के०) हो. अर्थात् पोताना देहने कष्ट आपीने पण जीवदया पालवी. ए जीवदया केवी छे? तो के (सुकृतस्य के०) सुकृत जे तेनी (क्रीडाजूः के०) क्रीडानुं स्थानक छे. तथा

वली केवी छे? तो के (दुःकृत के०) पाप तेज (रजः के०) रज जे धूळ, तेना (संहार के०) हरण करवामां (वात्या के०) वायुना विंटोळीया समान छे, अर्थात् कर्मरजने उडाडवामां जीवदया विंटोळीया जेवी छे. पापने धूळनी उपमा केम आपी? तो के ते पापज कर्ममलनुं कारण छे. वली केवी छे? तो के (भवोदन्वन् के०) संसाररूप जे समुद्र तेमां (नौः के०) नाव समान छे. अर्थात् संसारसमुद्र तरवामां नाव समान छे. वली केवी छे? तो के (व्यसनाग्नि के०) कष्टरूप जे अग्नि तेने विषे (मेघपटली के०) मेघघटा तुल्य अर्थात् अग्निने बुझाववामां जेम मेघ छे, तेम दुःखाग्नि बुझाववामां जीवदया छे, माटे मेघ सरखी कही. वली केवी छे? तो के (श्रियां के०) संपत्तिओनी (संकेतदूती के०) संकेतस्थानमां पहोंचाडनारी दूती समान छे. वली केवी छे? तो के (त्रिदिवौकसः के०) स्वर्गरूप जे घर तेनी उपर चडवानी (निःश्रेणिः के०) निसरणी जेवी छे. वली ते केवी छे? तो के (मुक्तेः के०) मुक्तिरूप स्त्रीनी (प्रियसखी के०) वहाली सखी छे. वली केवी छे? तो के (कुगत्यर्गला के०) दुर्गतिना द्वारने आडी देवानी भोगल समान छे, एम जाणीने जीवोने विषे दया करवी ॥ २५ ॥

टीकाः—अथ हिंसानिषेधेन सर्वसत्वेषु दयैव क्रियतामित्याह ॥ क्रीमाजूरिति ॥ जो जव्याः! जीवेषु कृपा एव दया एव क्रियतां । परैरन्यैरशेषैः समस्तैः क्लेशैः कायकष्टकरणैः जवतु पूर्णतया क्रियतामित्यर्थः ॥ कथंजूता कृपा ? सुकृतस्य पुण्यस्य क्रीमाजूः क्रीमास्थानं । पुनः कथंजूता ? डुःकृतरजःसंहारवात्या डुःकृतं पापं तदेव कर्ममलहेतुत्वात् रज इव रजस्तस्य संहारे संहरणे वात्या वायुसमूहतुल्या । पुनः कथंजूता? जवोदन्वन्नौः जव एव संसार एव उदन्वानिव उदन्वान् समुद्रः तत्र नौः नौका । पुनः कथंजूता ? व्यसनाग्निमेघपटली व्यसनानि कष्टान्येव तापहेतुत्वात् अग्नयो वह्नयः तत्र मेघपटली मेघघटा समाना । पुनः किंजूता ? श्रियां संपदां संकेतदूती संकेतस्थानप्रापका संकेतिका दूती । पुनः कथंजूता ? त्रिदिवौकसः निःश्रेणिः । त्रिदिवं स्वर्ग एव ओको गृहं तस्य सोपानपंक्तिः । पुनः कथंजूता? मुक्तेः प्रियसखी वल्लजवयस्या । पुनः कथंजूता? कुगत्यर्गला कुगतेर्दुर्गतेः अर्गला द्वारपरिघः । इति ज्ञात्वा जीवेषु कृपा क्रियतां ॥ २५ ॥

जाषाकाव्यः—सवैय्या इकतीसा ॥ सुकृतकी खानी इंद्रपुरीकी निसानी जानी, पाप रज खंमनकों पौनरासि पेखियें ॥ जवडुःख पावक बुजायवेकों मेघमाला, कमला

मिलायवेकों दूती ज्यौं विशेषियें ॥ मुगतिवधूसों प्रीति पालवेकों आली सम, कुगतिके वार दिढ आगलसी देखियें ॥ ऐसी दया कीजैं चित्त तिहुं लोक प्रानीहित, और कर तूति काहु लेखेमें न लेखियें ॥

॥ शिखरिणीवृत्तम् ॥ यदि ग्रावा तोये तरति तरणिर्यद्युद्-
यति, प्रतीच्यां सप्तार्चिर्यदि व्रजति शैत्यं कथमपि ॥ यदि
क्ष्मापीठं स्यादुपरि सकलस्याऽपि जगतः, प्रसूते सत्त्वानां
तदपि न वधः क्वाऽपि सुकृतम् ॥ २६ ॥

अर्थः—(यदि के०) जो (ग्रावा के०) पाषाण, ते (तोये के०) जलने विषे (तरति के०) तरे छे, वली (यदि के०) जो (तरणिः के०) सूर्य, ते (प्रतीच्यां के०) पश्चिम दिशाने विषे (उदयति के०) उगे छे, वली (यदि के०) जो (सप्तार्चिः के०) अग्नि, ते (शैत्यं के०) शीतपणाने (व्रजति के०) व्रजे छे, वली (यदि के०) जो (कथमपि के०) कोइ पण रीते (क्ष्मापीठं के०) पृथ्वीमंडल, ते (सकलस्यापि के०) समग्र एवुं पण (जगतः के०) जगत जे तेना (उपरि के०) उ-

परने विषे (स्यात् के०) थाय, (तदपि के०) तोपण (सत्त्वानां के०) जीवोना (वधः के०) नाशरूप जे हिंसा ते (कापि के०) द्रव्य, क्षेत्र, कालादिकने विषे कांइ पण (सुकृतं के०) पुण्यने (न प्रसूते के०) उत्पन्न करती नथी. अर्थात् ते पूर्वोक्त सर्व अघटित घटना कदाचित् थाय, तोपण जीवहिंसा कोइ रीते पुण्यकारक थाय नहीं. माटे हे भव्यजनो ! सर्व जनोए जीवहिंसानो त्याग करवो ॥ २६ ॥

टीकाः—यदि ग्रावेति ॥ यदि ग्रावा पाषाणः तोये जले तरति । पुनर्यदि तरणिः सूर्यः प्रतीच्यां पश्चिमायां दिशि उदयति । पुनर्यदि सप्तार्चिः अग्निः शैत्यं शीतलत्वं भजति । पुनर्यदि कथमपि क्ष्मापीठं पृथ्वीमंडलं सकलस्यापि जगतो विश्वस्य उपरि स्यात् भवेत् ॥ तदपि सत्त्वानां वधः हिंसा कापि द्रव्यक्षेत्रकालादौ सुकृतं पुण्यं न प्रसूते न जनयति । शेषं प्राग्वत् ॥ २६ ॥

भाषाकाव्यः—आभानक छंद ॥ जो पश्चिम रवि उगै, तिरैं पाषान जल ॥ जो उलटे भुअ लोक, होइ शीतल अनल ॥ जो सुमेरु डगमगै, सिद्ध कहं लगनमल ॥ तबहूं हिंसा करत, न उपजै पुन्न फल ॥ २६ ॥

॥ मालिनीवृत्तम् ॥ स कमलवनमग्नेर्वासरं भास्वदस्ता–दमृ-
तमुरगवक्रात्साधुवादं विवादात् ॥ रुगपगममजीर्णाज्जीवितं
कालकूटा–दभिलषति वधाद्यः प्राणिनां धर्ममिच्छेत् ॥ २७ ॥

अर्थः–(यः के०) जे पुरुष, (प्राणिनां के०) जीवोना (वधात् के०) वध जे हिंसा ते थकी (धर्म के०) धर्मने (इच्छेत् के०) इच्छे छे, अर्थात् माने छे, (सः के०) ते पुरुष शुं इच्छे छे ? तो के (अग्नेः के०) अग्नि थकी (कमलवनं के०) कमलोना वनने (अभिलषति के०) अभिलाष करे छे. अर्थात् ते पुरुष अग्निमांथी कमलवनने जोवानी इच्छा करे छे. तथा (भास्वदस्तात् के०) सूर्य अस्त थया पछी (वासरं के०) प्रभातने इच्छे छे. वली ते (उरगवक्रात् के०) सर्पना मुख थकी (अमृतं के०) अमृतने इच्छे छे. तथा ते पुरुष, (विवादात् के०) कलह थकी (साधुवादं के०) कीर्त्तिने इच्छे छे. वली ते पुरुष, (अजीर्णात् के०) अजीर्ण थकी (रुगपगमं के०) रोगना नाशनी इच्छा करे छे. वली ते पुरुष, (कालकूटात् के०) विष थकी (जीवितं के०) जीवितव्यने इच्छे छे. अर्थात् जे पुरुष जीवहिंसा थकी धर्म माने छे, ते

पुरुष आ श्लोकमां कहेला अग्नि वगेरे पदार्थो थकी कमलवन वगेरे पदार्थोने इछे छे एम जाणवुं. एटले ते पुरुष अज्ञानी जाणवो. आ श्लोकमां अभिलषति ए क्रियापद छे, ते इछे छे एवा अर्थमां सर्वत्र योजन करवुं.

टीकाः—स कमलेति ॥ यः पुमान् प्राणिनां वधात् धर्म्मं इछेत् सः अग्नेः सकाशात् कमलवनं अभिलषति वांछति। तथा भास्वदस्तात् सूर्यास्तगमनात् वासरं अभिलषति। तथा उरगवक्रात् सर्प्पमुखात् अमृतं पीयूषं अभिलषति। पुनः विवादात् कलहात् साधुवादं कीर्त्तिं अभिलषति ॥ तथा अजीर्णात् रुगपगमं रोगस्य अपगमं विनाशं अभिलषति। पुनः कालकूटात् विषात् जीवितं प्राणधारणं अभिलषति। शेषं पूर्ववत्॥ २७ ॥

भाषाकाव्यः--सवैय्या इकतीसा ॥ अगनिमें जैसे अरविंद न विलोकियत, सूर अथमत जैसे वासर न मानियें ॥ सापके वदन जैसे अमृत न उपजत, कालकूट खाये जैसे जीवन न जानियें ॥ कलह करत नहि पाइयें सुजस जेसे, वाढत रसांस रोग नास न वखानिये ॥ प्रानी वधमांहि तैसे धर्मकी निसानी नांही, याहीतें बनारसी विवेक मन आनीयें ॥ २७ ॥

शार्दूलविक्रीडितवृत्तद्वयम् ॥ आयुर्दीर्घतरं वपुर्वरतरं गोत्रं ग-
रीयस्तरम्, वित्तं भूरितरं बलं बहुतरं स्वामित्वमुच्चैस्तरम् ॥
आरोग्यं विगतांतरं त्रिजगतः श्लाघ्यत्वमल्पेतरम्, संसारांबुनिधिं
करोति सुतरं चेतः कृपार्द्रांतरम् ॥२७॥ इत्यहिंसाप्रक्रमः ॥ ५ ॥

अर्थः--(कृपा के०) जीवदया तेणे करीने (आर्द्र के०) भीनो छे, (अंतरं के०) मध्य भाग जेनो एवुं मनुष्यनुं (चेतः के०) चित्त जे छे, ते शुं करे छे? तो के (आयुः के०) जीवितने (दीर्घतरं के०) अधिकाधिक (करोति के०) करे छे. तथा वली ते चित्त, (वपुः के०) शरीरने (वरतरं के०) अतिश्रेष्ठ एवाने करे छे. तथा ते चित्त, (गोत्रं के०) नाम अने कुल तेने (गरीयस्तरं के०) अत्यंत गरिष्ठ ते उच्च गोत्ररूप एवाने करे छे. तथा वली ते चित्त, (वित्तं के०) धनने (भूरितरं के०) अत्यंत वृद्धिगतने करे छे. वली ते चित्त, (बलं के०) बलने (बहुतरं के०) अत्यंतात्यंत एवाने करे छे. तथा वली ते चित्त, (स्वामित्वं के०) प्रभुत्व, तेने (उच्चैस्तरं के०) अत्यंत उत्कृष्ट एटले सर्वोत्कृष्ट एवाने करे छे. वली ते

चित्त, (आरोग्यं के०) नीरोगपणाने (विगतांतरं के०) अंतररहित एवाने करे छे, अर्थात् कोइ दिवस रोग न आवे, एवी रीते करे छे. तथा वली ते चित्त, (त्रिजगतः के०) त्रण जगतने एटले त्रिभुवनने (श्लाघ्यत्वं के०) वखाणवापणाने (अल्पेतरं के०) घणुंज करे छे. तथा वली ते चित्त, (संसारांबुनिधिं के०) संसाररूप समुद्रने (सुतरं के०) सुखथी तरवाने शक्तिमान् करे छे. अर्थात् जे पुरुषनुं चित्त हिंसा विरहित छे, ते पुरुषने सर्व पदार्थ प्राप्त थाय छे, (करोति) ए क्रियापद जे छे ते करे छे, एवा अर्थमां सर्वत्र योजन करवुं. आ ठेकाणे मेघरथ राजानो अने हरिबल पाराधीनो दृष्टांत ग्रहण करवो ॥ २७ ॥ आ पांचमो अहिंसाप्रक्रम संपूर्ण थयो ॥ ५ ॥

टीकाः--आयुर्दीर्घतरमिति ॥ कृपया आर्द्रं अंतरं मध्यं यस्य ईदृशं चेतः आयुर्जीवितं दीर्घतरं अधिकं करोति। तथा वपुः शरीरं वरतरं अतिप्रधानं करोति। तथा गोत्रं नाम कुलं वा गरीयस्तरं अति गरिष्ठं उच्चैर्गोत्ररूपं करोति । तथा वित्तं धनं भूरितरं अतिप्रचुरं करोति । तथा बलं बहुतरं प्राज्यं करोति । तथा स्वामित्वं प्रभुत्वं उच्चैस्तरं सर्वोत्कृष्टं करोति । तथा आरोग्यं नीरोगत्वं विगतांतरं अंतररहितं करोति । तथा त्रिजगतः त्रिभुवनस्य श्लाघ्यत्वं श्लाघनीयत्वं अल्पेतरं प्रचुरं करोति । तथा संसारां-

बुनिधिं भवसमुद्रं सुतरं सुखेन उत्तरितुं शक्यं करोति ॥ अत्र मेघरथराज्ञः हरिबलधीवरस्य च दृष्टांतः ॥ २८ ॥ सिंदूरप्रकराख्यस्य, व्याख्यायां हर्षकीर्त्तिना ॥ सूरिणा विहितायां तु, हिंसायाः प्रक्रमोऽजनि ॥ ५ ॥ इति अहिंसाप्रस्तावः ॥ ५ ॥

भाषाकाव्यः—कवित्त मात्रात्मक छंद ॥ दीरघ आउ नाम कुल उत्तम, गुन संपति आनंद निवास ॥ उन्नत विभौ सुगम भव सागर, तीन भुवन महिमा परगास ॥ भुज बलवंत अनंतरूप छवि, रोगरहित नित भोग विलास ॥ जिनके चित्त दया तिन्हके रुख, सब सुख होत बनारसी दास ॥ २८ ॥

कथाः—एक भरतक्षेत्रमां गजपुर नगरे सुनंद एवे नामे कुलपुत्र रहे छे. तिहां धर्मवंत प्राणी जिनदासनी साथे तेने महा प्रीति छे. एकदा ते बेहु मित्र वनमां गया, तिहां सुराचार्य समान धर्माचार्यने देखी नमस्कार कस्यो. तेणे दयामूल धर्मनो उपदेश दीधो, ते उपदेश सांभली गुरुने कह्युं के हुं मांसभक्षणनुं पच्चरकाण तो करुं, पण माराथी मारो कुलाचार केम मूकाशे ? गुरुए कह्युं के धर्माचार खरो समजवो. धर्मनी वेलाए कांइ आलंबन न करवुं. ते सांभली सुनंदे तरत जीवदयाव्रत आदर्युं, मांसभक्षणनो नियम लीधो, सर्व जीवने पोताना आत्मा सरखा जाणतो

ठतो सुखे व्रत पाले छे. एम करतां घणो काल थयो. एकदा दुर्भिक्ष पड्यो, सर्वत्र धान्य मोंघुं थयुं. ते अवसरे सुनंदनी स्त्री कहेवा लागी के हे स्वामिन्! स्वकुटुंब पालवा माटे माछलां पकडी लइ आवो. तेने सुनंदे कह्युं के हे मूंढी! मारी आगल एवी वातज करवी नहीं. गमे तेवुं कष्ट प्राप्त थशे, तोपण हुं हिंसा आदरीश नहीं. तेनी स्त्रीए कह्युं के तुं महानिर्दयी छो. कुटुंबने कष्ट करवाथी लोकमां अपयश थशे. एम कही तेनो सालो बलात्कारथी तेने माछलां पकडवा माटे लइ गयो. तिहां जाल नाखी तेमां माछलां आव्यां, पण व्रत साचववा माटे ते पाछां पाणीमां नाखी दीधां, घेर खाली हाथे आव्यो. वली बीजे दिवसे स्त्रीनी प्रेरणाथी गयो, ते दिवसे पण तेमज माछलां मेली घेर आव्यो. त्रीजे दिवसे स्त्रीनी प्रेरणाथी गयो, पण तिहां माछलां पकडतां माछलानी पांख भांगी, तेथी त्रास पाम्यो. पछी सगांने कही अनशन करी मरण पामी राजगृही नगरीए नरवर्म राजा राज्य करे छे, तिहां मणीयार नामे शेठनी सुयशा नामे भार्या तेनी कूखे आवी सुनंदनो जीव पुत्रपणे उपन्यो. तेनुं दामन्नक एवुं नाम पाड्युं. ते आठ वर्षनो थयो, ते वारे शेठने घेर महामारीनो उपद्रव थयो, तेथी घरनां माणस सर्व मरण पाम्यां. आयुने योगे एक दामन्नक जीवतो

रह्यो. राजाए तेने घेर चोकी राखी, दामन्नक क्षुधातुर थको घर घर भिख मागवा लाग्यो. एकदा सागरपोत नामे व्यवहारीआने तिहां भिख मागवा माटे आव्यो, एवामां ते व्यवहारीआने घेर साधु वहोरवा आव्या, तेमां एक वकेराए सामुद्रिक लक्षण जोइने कह्युं के आ भिखारी ए शेठना घरनो मालीक थशे. एवी रीतनी वाणी सागरशेठे भींतने अंतरे सांभली दुःखाक्रांत थइने विचार्युं जे शुं मारा घरनो ए धणी थशे? तो हवे हुं कोइक उपाय करीने एने मारी नखावुं, एटले मारी लक्ष्मी मारा पुत्र पौत्रादिक भोगवे. एम विचारी कोइक चांडालने घणुं द्रव्य आपवुं कबूल करीने कह्युं के दामन्नकने मारी नाखजे.

ते चंडाल पण मोदकनी लालच देखाडी ठगीने दामन्नकने बहार जंगलमां लइ गयो, पण तिहां ते मुग्ध बालने देखीने चंडाल मनमां चिंतववा लाग्यो के अरे! आ बालके केवो शेठनो अपराध कर्यो छे के जे थकी शेठे मने आने मारवानो आदेश दीधो! अथवा मारा जेवो बीजो महा पापी पण कोण हशे जे द्रव्यनी लालचे आवा बच्चाने मारवानी कबूलात आपे. तो हवे ए काम करवुं मारे युक्त नथी! एवो निश्चय करी बालकने कह्युं के हे मूर्ख! तुं इहांथी नासी जा. जो इहां

रहीश तो तुजने सागरपोत मारी नाखशे. एवो जय देखाड्यो, तेथी दामन्नक नासी गयो, केमके संसारमां जीवितव्य सर्वने वल्लभ छे ॥ यतः ॥ मरण समं नत्थि जयं, खुहा समा वेयणा नत्थि ॥ १ ॥ दारिद्द समो परिभवो नत्थि ॥ पंथ समा नत्थि जरा, दामन्नक पण चंमाले दामन्नकनी आंगली कापी नीसानी लइ शेठने आपी दीधी. लोहीए जरती आंगली लइ तिहांथी नाठो, ते सागरपोतना गोकुल मांहे गयो. कर्मयोगे तिहां नंदगोकुलपति अपुत्रीओ हतो, तेणे तेने पोताने घेर पुत्र करी राख्यो. दामन्नक अनुक्रमे यौवनावस्था पाम्यो, शूरवीर थयो.

एकदा प्रस्तावे ते सागर श्रेष्ठी स्वगोकुल मांहे आव्यो, तिहां दामन्नकने दीठो. नंदगोकुलीयाने पूछ्युं के ए कोण छे? ते जेटलुं वृत्तांत दामन्नकनुं जाणतो हतो ते- टलुं तेणे सर्व कह्युं; ते सांभली शेठ विचारवा लाग्यो के रखेने साधुवचन अन्यथा न थाय. एम चिंतवी जेवो आव्यो तेवोज पाछो घर भणी जवा लाग्यो, ते वारे नंद गोवालीयाए बोल्यो के तमे शीघ्रपणे केम जाओ छो? शेठे कह्युं, घेर काम छे. नंद गोवालीयाए कह्युं के मारा पुत्रने घेर मोकलो, ते तमारुं कार्य करी आवशे. ते सांभली शेठे का- गल लखी आप्यो ने कह्युं के ए कागल मारा पुत्रने आपजे. दामन्नक पण कागल

लइ चाल्यो. वाटे आवतां थाकी गयो, ते वारे गाम नजीक कामदेवना देरामां जइ सूतो. एवामां तेज शेठनी विषा एवे नामे पुत्री छे, ते पण तिहांज कामदेवनी पूजा करवा आवी छे. तेणे दामन्नक सूतेलो दीठो, अने तेना अंगरखानी कसे कागल बांधेलो दीठो, ते लइने वांचवा मांड्यो. तेमां स्वस्तिश्री गोकुलात् समुद्रदत्तयोग्यं सानंदं लिख्यते. एं दामन्नकने अपीत पाणीए शीघ्र विष देजो, एमां कांइ विमासण करशो नहीं. एवो कागल वांची कन्याए विचार्युं जे मारो पिता कागल लखतां निश्चेथी एक कानो चूकी गयो छे, केमके विषा मारुं नाम छे, ते स्थानके विष देजो, एवुं भूलथी लखाइ गयुं छे. पछी आंखनुं काजल काढी सलीए करी कानो दइ विषने स्थानके विषा करी पाछो कागल तेनी कसमां बांधीने कन्या पोताने घेर आवी. पाछलथी दामन्नक पण जाग्यो, ते चालतो चालतो अनुक्रमे शेठने घेर आव्यो, पुत्रने कागल दीधो, तेणे कागल वांची तत्काल महोत्सवपूर्वक पोतानी बहेन विषा तेने परणावी दीधी. केटलेक दिवसे सागरदत्त पण गोकुलथी घेर आव्यो. वात सांभली मनमां विषाद उपन्यो अने चिंतववा लाग्यो जे में शुं विचार्युं अने इहां शुं नीपन्युं ॥ यतः ॥ अन्नं चिंतिजाइ अन्नं हुइ, अन्न विढवइ अन्नं खाइ ॥

ऊचालु ते थिर थया, थिर वासो ते जाइ ॥ १ ॥ में लाजने माटे मूल पण खोयो ! तथापि हजी कांइ उपाय तो करुं के जेम ए विपत्ति पामे. एम चिंतवी शेठ वली चांमालने घेर गयो, अने कह्युं के अरे पापी चांमाल ! आ ते तें शुं कर्युं ? जे तें दामन्नकने जीवतो मूक्यो ? पण अद्यापि जो आटलुं काम करे तो जेटलुं ड्रव्य तुं माग, तेटलुं हुं आपुं. ते वारे चांडाल बोल्यो के हे स्वामिन् ! तमे देखामो, तेने हणुं. तमारी इछा सफल करुं. शेठे संकेत कीधो के संध्यानी वेलाए हुं जेने मातरने देरे मोकलुं, तेने हणजे. एम कही घेर आवी शेठ कहेवा लाग्यो के अरे मूर्खो ! हजी सुधी तमे मातरनी पूजा नथी कीधी ? काम तो पूजाथी सराके चडे. ते सांजली पुष्पादिके छाब जरी मातर पूजवा माटे संध्यासमये जमाइने मोकल्यो. तेने मार्गे जतां रस्तामां सालो मल्यो, तेणे पोताना बनेवीने तिहांज उजो राख्यो, अने पोते मातर पूजवा तेनी पासेथी छाब लइने गयो. ते जेटले देरा मांहे प्रवेश करे ले तेटले जेखंगिले तेने खड्ग करी मारी नाख्यो; ते वखते मोटो कोलाहल थयो. लोके उंलख्यो जे आ शेठनो पुत्र बे. ते वात शेठे सांजली, शेठने हृदयस्फाट डुःख थयुं, तेथी मरण पाम्यो. पडी राजाना आदेशथी दामन्नक घरनो

धणी थयो. पुण्यानुसारे लक्ष्मीवान् थयो, साते क्षेत्रे धन वावरवा लाग्यो, अने त्रिवर्ग साधन करतो सुखमां रहे छे.

एकदा कोइ एक भाटे आवीने दामन्नक आगल गाथा कही ते आ प्रमाणेः—तस्स न हवइ दुक्खं, कयावि जस्सत्थि निम्मलं पुन्नं ॥ अक्खयरत्तं दवं, भुंजइ अन्नो जणो जेण ॥१॥ इति ॥ ए गाथा सांभली दामन्नके ते भाटने त्रण लक्ष द्रव्य आप्युं, ते देखी लोकोने मोटो द्वेष उपज्यो. त्यारे राजाए तेने पूछ्युं के एटलुं मोटुं दान तें केम दीधुं ? ते वारे राजा आगल सर्व पोतानी वातनी उत्पत्ति कही. ते सांभली राजाए दामन्नकने नगरशेठ कर्यो. अनुक्रमे दामन्नक दयाधर्म आराधी देवलोके गयो, माटे हे भव्यजीवो ! तमे दामन्नकनी पेठे दयादान द्यो के जेथी सुखश्रेय पामो ॥२८॥ इति जीवदया उपर दामन्नक कथा ॥

हवे चार श्लोके करीने सत्य बोलवाना प्रभावने कहे छे.

विश्वासायतनं विपत्तिदलनं देवैः कृताराधनम्, मुक्तेः पथ्यदनं
जलाग्निशमनं व्याघ्रोरगस्तंभनम् ॥ श्रेयःसंवननं समृद्धिजननं

सौजन्यसंजीवनम्, कीर्त्तेः केलिवनं प्रभावभवनं सत्यं वचः पावनम् ॥ २ए ॥

अर्थः—हे भव्यजीवो ! तमो (सत्यं के०) सत्य एवुं अने प्रियकारी तथा हितकारी एवुं (वचः के०) वचनने बोलो. ए सत्य वचन केवुं छे? तो के (विश्वासायतनं के०) विश्वासनुं आयतन एटले घर छे, अर्थात् जे पुरुष सत्य वचन बोले छे, ते जगतमां विश्वासपात्र थाय छे. वली केवुं छे ? तो के (विपत्तिदलनं के०) आपत्तिने नाश करनारुं छे, अर्थात् जे पुरुष सत्यवक्ता होय, ते आपत्तिने पामे नहि. वली ते केवुं छे ? तो के (देवैः के०) देवताउंए (कृताराधनं के०) कर्युं छे आराधन एटले सेवन जेनुं एवुं छे, अर्थात् सत्यवक्ता पुरुषनुं देवताउं पण सेवन करे छे. तथा ते सत्य वचन केवुं छे ? तो के (मुक्तेः के०) मुक्ति जे सिद्धि तेना (पथि के०) मार्गने विषे (अदनं के०) संबल छे, अर्थात् जेम कोइ पुरुष ग्रामांतरे जाय, तेने रस्तामां भातुं विगेरे संबल जोइए, तेम मुक्तिमार्गमां जनारने सत्य वाक्य तेज संबल

समान जाणवुं. एटले जे सत्यवक्ता थाय, तेने मुक्तिप्राप्ति थाय. वली ते सत्य वचन केवुं छे ? तो के (जलाग्निशमनं के०) जल अने अग्नि तेने उपशमन करनारुं छे, अर्थात् सत्यवक्ता पुरुषने जल अग्निनो नय मटे छे. वली ते सत्य वचन केवुं छे ? तो के (व्याघ्रोरगस्तंजनं के०) व्याघ्र जे सिंह तथा उरग जे सर्प तेने (स्तंजनं के०) स्तंजन करनारुं छे, अर्थात् सत्यवक्ता पुरुष सिंह अने सर्प तेनो स्तंजनकारक थाय छे. तथा वली ते सत्य वाक्य केवुं छे ? तो के (श्रेयः के०) कल्याण जे मोक्ष तेनुं (संवननं के०) वशीकरण छे, अर्थात् सत्य बोलनार पुरुषने मोक्ष जे छे, ते वश थाय छे. वली ते सत्य वचन केवुं छे ? तो के (समृद्धिजननं के०) संपत्तिने उत्पन्न करनारुं छे, अर्थात् सत्य वाणीवालाने संपत्ति स्वतः प्राप्त थाय छे. वली ते सत्य वचन केवुं छे ? तो के (सौजन्य के०) सुजनपणानुं (संजीवनं के०) उत्पन्न करनारुं छे, अर्थात् सत्यवक्ता पुरुषने सुजनता प्राप्त थाय छे. वली ते सत्य वचन केवुं छे ? तो के (कीर्त्तेः के०) यशनुं (केलिवनं के०) क्रीडा करवानुं वन छे, अर्थात् सत्यवक्ता पुरुष जे छे, ते यशस्वी थाय छे. वली ते सत्य वचन केवुं छे ? तो के (प्रनावनवनं के०) प्रनाव जे महिमा तेनुं गृह छे, अर्थात् सत्यवक्ता पुरुषनो महिमा पण अधिक

होय छे. वली ते सत्य वचन केवुं छे? तो के (पावनं के०) पवित्र करनारुं छे, अर्थात् सत्यवक्ता पुरुष निरंतर पवित्रज गणाय छे. माटे ए सत्य वचन सर्वथा सर्व मनुष्योए बोलवुं ॥ ३९ ॥

टीकाः—अथ सत्यवचनस्य प्रभावं कथयति ॥ विश्वासायतनमित्यादि ॥ भो भव्याः सत्यं वचो हितं प्रियं वचनं वदंत्विति शेषः ॥ कथंभूतं सत्यं वचः? विश्वासायतनं विश्वासस्य आयतनं स्थानं । पुनः कथंभूतं सत्यं वचः विपत्तिदलनं विपत्तीनां आपदानां फेटकं । पुनः कथं० देवैः सुरैः कृताराधनं कृतं आराधनं सेवनं यस्य तत् । पुनः मुक्तेः सिद्धेः पथि मार्गे अदनं संबलं । तथा जलाग्निशमनं जलाग्न्यो उपशामकं । पुनः व्याघ्रोरगस्तंभनं व्याघ्राणां सिंहानां उरगाणां सर्पाणां च स्तंभनकारकं । पुनः श्रेयसो मोक्षस्य कल्याणस्य वा संवननं वशीकरणं । पुनः समृद्धिजननं समृद्धीनां संपदां संपादकं । पुनः सौजन्यसंजीवनं सुजनतायाः संजीवनं समुत्पादकं । तथा कीर्त्तेर्यशसः केलिवनं क्रीडारामं । पुनः प्रभावभवनं प्रभावस्य महिम्नो गृहं । पुनः पावनं पवित्रकारकमित्यर्थः ॥ ३९ ॥

भाषाकाव्यः—छप्पय छंद ॥ गुननिवास विश्वास, वास दारिद दुःख खंडन ॥ देव आराधन जोग, मुगति मारग मुख मंडन ॥ सुजस केलि आराम, धाम सज्जन

मन रंजन ॥ नाग वाघ वसिकरन, नीर पावक भय भंजन ॥ महिमा निधान संपत्ति सदन, मंगल नीति पुनीत मग ॥ सुख रासि वनारसी दास भनि, सत्य वचन जयवंत जग ॥ २९ ॥

॥ शिखरिणीवृत्तम् ॥ यशो यस्माद्भस्मीभवति वनवह्नेरिव वनम्, निदानं दुःखानां यदवनिरुहाणां जलमिव ॥ न यत्र स्याच्छायातप इव तपःसंयमकथा, कथंचित्तन्मिथ्यावचनमभिधत्ते न मतिमान् ॥ ३० ॥

अर्थः—(मतिमान् के०) बुद्धिमान् पुरुष, (कथंचित् के०) कोइ वखत कष्ट आवे छते पण (तन्मिथ्यावचनं के०) ते मिथ्यावचन एटले असत्य वचन तेने (न अभिधत्ते के०) नहि बोले छे. ते केम नथी बोलता ? तो के (यस्मात् के०) जे मिथ्यावचन थकी (यशः के०) कीर्त्ति, ते (भस्मीभवति के०) भस्म थाय छे, अर्थात् नाश पामे छे. केनी पेठे ? तो के (वनवह्नेः के०) दावाग्नि थकी (वनमिव के०) वनज जेम. अर्थात् वनाग्नि थकी जेम वन दाह पामे छे तेम मिथ्यावचन थकी

कीर्त्ति नाश पामे छे. वली ते मतिमान् पुरुष क्यारे पण केम मिथ्यावाक्य नथी बोलता? तो के (यत् के०) जे मिथ्यावचन (दुःखानां के०) दुःखोनुं (निदानं के०) कारण छे. केनी पेठे? तो के (अवनिरुहाणां के०) वृक्षोनुं (जलमिव के०) जल जेम कारण छे. अर्थात् जेम वृक्षोनुं कारण जल छे तेम दुःखोनुं कारण असत्यज छे. वली ते मतिमान् पुरुष क्यारे पण केम मिथ्यावाक्य नथी बोलता? तो के (यत्र के०) जे मिथ्यावचनने विषे (तपःसंयमकथा के०) तपनी अने चारित्रनी कथा पण (न के०) नहि (स्यात् के०) होय. केनी पेठे? तो के (आतपे के०) सूर्यना तडकाने विषे (छाया इव के०) छाया जे छे तेज जेम. अर्थात् असत्य वाक्य थकी आ श्लोकमां कहेलां कीर्त्यादिकनो नाश थाय छे. केनी पेठे? तो के आ श्लोकमां कहेलां वनाग्नि वगेरेनी पेठे जाणवुं. माटे हे भव्यजनो! सत्यज बोलवुं, परंतु असत्य नज बोलवुं ॥२०॥

टीकाः—यशो यस्मादिति ॥ मतिमान् बुद्धिमान् पुमान् कथंचित् कष्टेऽपि सति तत् मिथ्यावचनं असत्यवचनं न अभिधत्ते न जल्पति । तत् किं? यस्मान्मिथ्यावचनात् यशः कीर्त्तिर्भस्मीभवति विनश्यति । कस्मात् किमिव? वनवह्नेर्दावाग्नेर्वनमिव । यथा दावानलात् वनं भस्मीभवति तथा । पुनर्यन्मिथ्यावचनं दुःखानां निदानं कारणं ।

केषां किमिव ? अवनिरुहाणां वृक्षाणां कारणं जलमिव । यथा जलं वृक्षाणां कारणं तथा । पुनर्यत्र मिथ्यावचने तपःसंयमकथा तपश्चारित्रयोर्वार्त्ताऽपि न । कस्मिन् केव ? आतपे सूर्यातपे छाया इव । यथाऽतपे छाया न स्यात् तथा ॥ ३० ॥

भाषाकाव्यः—कवित्त मात्रा० ॥ जोज समान करै निज कीरति, ज्यौं वन अगनि दहै वन सोइ ॥ जांके संग अनेक डुःख उपजत, वढे विरख ज्यौं सींचत तोइ ॥ जामे धरमकथा नहिं सुनियत, ज्यौं रविवीच छांह नहिं होइ ॥ सो मिथ्यात वचन वानारसी, गहत न तांहि विचक्षन कोइ ॥ ३० ॥

वंशस्थवृत्तम् ॥ असत्यमप्रत्ययमूलकारणम्, कुवासनासद्म
समृद्धिवारणम् ॥ विपन्निदानं परवंचनोर्जितम्, कृतापराधं
कृतिभिर्विवर्जितम् ॥ ३१ ॥

अर्थः—(कृतिभिः के०) पंडितो जे तेमणे (असत्यं के०) असत्य बोलवुं ते (विवर्जितं के०) त्याग करेलुं छे. ते शा माटे त्याग करेलुं छे ? तो के ते असत्य वाक्य जे छे ते (अप्रत्यय के०) अविश्वास तेनुं (मूलकारणं के०) मूल कारण छे.

वली केवुं बे ? तो के (कुवासना के०) माठी वासना जे पापबुद्धि तेनुं (सद्म के०) घर बे. वली केवुं बे ? तो के (समृद्धि के०) लक्ष्मी तेने (वारणं के०) वारनारुं बे. वली केवुं बे ? तो के ते (विपन्निदानं के०) कष्टनुं करनारुं बे. वली केवुं बे ? तो के (परवंचनोर्जितं के०) अन्य जनने ठगवामां अति बलवान् बे. वली केवुं बे ? तो के (कृतापराधं के०) कस्यो बे अपराध जेणे एवुं बे. ते माटे सुज्ञ जनोए अति निंद्य एवुं असत्य वाक्य बोलवुं नहि ॥ ३१ ॥

टीकाः—पुनरसत्यवचनस्य दोषानाह ॥ असत्यमिति ॥ इति कारणात् कृतिभिः पंमितैः असत्यं कूटं विशेषेण वर्जितं परिहृतं । यतोऽसत्यं अप्रत्ययमूलकारणं अविश्वासस्य मूलके हेतुः । पुनः कुवासनायाः पापबुद्धेः सद्म गृहं । पुनः समृद्धिवारणं समृद्धेर्लक्ष्म्याः वारणं निराकरणं । पुनर्विपन्निदानं विपदां कष्टानां निदानं कारणं । पुनः परवंचनोर्जितं परेषां वंचने विप्रतारणे ऊर्जितं बलिष्ठं । पुनः कृतापराधं कृतागसं कृतोऽपराधो येन असत्येन तत्कृतापराधं अत एव असत्यवचनं कृतिभिः पंमितैर्न वक्तव्यं ॥ ३१ ॥

नाषाकाव्यः—रोडकछंद ॥ कुमति कुरीति निवास, प्रीति परतीति निवारन ॥

रिद्धि सिद्धि सुखहरन, विपत्ति दारिद्र दुःख कारन ॥ परवंचनी उतपत्ति, सहज अपराध कुलछन ॥ सो यह मिथ्यात वचन, नहिं आदरत विचछन ॥ ३१ ॥

वली पण सत्य वचननो प्रनाव कहे छे.

शार्दूलविक्रीडितवृत्तम् ॥ तस्याऽग्निर्जलमर्णवः स्थलमरिर्मित्रं सुराः किंकराः, कांतारं नगरं गिरिर्गृहमहिर्माल्यं मृगारिर्मृगः ॥ पातालं बिलमस्त्रमुत्पलदलं व्यालः शृगालो विषम्, पीयूषं विषमं समं च वचनं सत्यांचितं वक्ति यः॥३१॥ अनृतप्रक्रमः॥६॥

अर्थः--(यः के०) जे पुरुष, (सत्यांचितं के०) सत्ययुक्त एवुं (वचनं के०) वचन जे तेने (वक्ति के०) बोले छे, (तस्य के०) ते पुरुषने (अग्नि के०) अग्नि जे छे, ते (जलं के०) जल सरखो थाय छे. वली ते पुरुषने (अर्णवः के०) समुद्र, ते (स्थलं के०) द्वीप थाय छे. वली ते पुरुषने (अरिः के०) शत्रु, ते (मित्रं के०) मित्र तुल्य थाय छे. तथा ते पुरुषने (सुराः के०) देवताओ, ते (किंकराः के०) किंकर तुल्य थाय छे. वली ते पुरुषने (कांतारं के०) वन, ते (नगरं के०) नगर

(गिरि के०) पर्वत, ते (गृहं के०) घर समान तुल्य थाय छे. वली ते पुरुषने (माल्यं के०) पुष्पमाला तुल्य थाय छे. वली ते पुरुषने (अहिः के०) सर्प, ते (मृगः के०) हरिण सथाय छे. वली ते पुरुषने (मृगारिः के०) मृगनो अरि जे सिंह, ते (बिलं के०) बिल तुल्य छे. वली ते पुरुषने (पातालं के०) रसातल, ते (उत्पलदलं के०) कमलपत्र समान थाय छे. तथा ते पुरुषने (अस्त्रं के०) शस्त्र, ते (शृगालः के०) शियाल थाय छे. वली ते पुरुषने (व्यालः के०) मदोन्मत्त हस्ती, ते (पीयूषं के०) अमृत तुल्य थाय छे. वली ते पुरुषने (विषं के०) विष, ते (समं के०) सरखुं थाय जेवो थाय छे. वली ते पुरुषने (विषमं के०) विषम स्थानक, ते (समं के०) सरखुं थाय छे. तथा ते पुरुषने (विषमं के०) विषम स्थानक, ते (समं के०) सरखुं थाय छे. (च के०) चकार पादपूर्णार्थ छे. एटले आ श्लोकमां जाव एटलोज छे के सत्यवक्ता पुरुषने सर्व सुखरूप थाय छे, माटे सत्यज बोलवुं ॥ ३२ ॥ आ छट्ठुं मिथ्यावचन प्रकरण संपूर्ण थयुं ॥

टीकाः—अथ सत्यप्रजावं दर्शयति ॥ तस्याग्निरिति ॥ यः पुमान् सत्यांचितं सत्ययुक्तं वचनं वचो वक्ति ब्रूते । तस्य पुंसोऽग्निर्वह्निः सत्यप्रजावाज्जलं । तथाऽर्णवः समुद्रः स्थलं स्यात् । तथा अरिः शत्रुर्मित्रं स्यात् । पुनः सुराः देवाः किंकराः सेवका

आदेशकारिणः स्युः । पुनः कांतारमरण्यं नगरं स्यात् । तथा गिरिः पर्वतो गृहं स्यात् । पुनरहिः सर्प्पो माल्यं स्रक् स्यात् । तथा मृगारिः सिंहो मृगो हरिण इव स्यात् । तथा पातालं रसातलं बिलं बिलरूपं स्यात् । तथाऽस्त्रं शस्त्रं उत्पलदलं कमलपत्रसदृशं स्यात् । तथा व्यालो दुष्टगजः शृगाल इव स्यात् । पुनर्विषं हालाहलं पीयूषं अमृतं स्यात् । तथा विषमं संकटं स्थानं संपद्रूपं स्यात् सत्यप्रभावतः । अतः सत्यं वक्तव्यं । अत्र वसुराज्ञः क्षीरकदंबकोपाध्यायपुत्रपर्वतकनारदयोर्दृष्टांतः ॥ सिंदूरप्रकराख्यस्य, व्याख्यायां हर्षकीर्त्तिना ॥ सूरिणा विहितायां तु, मिथ्यावचनप्रक्रमः ॥ ३१ ॥

इति षष्ठो मिथ्यावचनप्रक्रमः ॥ ६ ॥

भाषाकाव्यः—सवैया इकतीसा ॥ पावकतें जल होइ वारिधितें थल होइ, शस्त्रतें कमल होइ ग्राम होइ वनतें ॥ कांतार नगर होइ पर्वततें घर होइ, वासवतें दास होइ हेतू दुरजनतें ॥ सिंहतें कुरंग होइ व्याल स्याल अंग होइ, विषतें पीयूष होइ माला अहि फनतें ॥ विषमतें सम होइ संकट न व्यापे कोइ, एते गुन होइ सत्यवादी दरसनतें ॥ ३१ ॥

कथाः—शुक्तिमती नगरीए अभिचंद्र नामे राजा तेनो वसु नामे पुत्र छे. ते न्हान-

पणथी सत्य वचननो बोलनार छे. ते नगरीमां क्षीरकदंबक उपाध्याय सर्व शास्त्रनो जाणनार छे, तेनो पुत्र पर्वतक नामे छे. ते स्वभावे कुटिलाशयवालो छे. एक पर्वतक, बीजो वसु राजा अने एक त्रीजो नारद ए त्रणे क्षीरकदंबक उपाध्याय पासे भणे छे. अन्यदा ते त्रणे शिष्य अगासीमां सूता छे, उपाध्याय अगासीमां बेठो जागे छे, एवामां आकाशमार्गे बे चारण मुनिओ वातो करता चाल्या जाय छे, तेमांथी एक मुनि बोल्यो के आ त्रणमां बे तो नरकगामी छे अने एक स्वर्गगामी छे. ए वाणी सांभली उपाध्याय उद्वेग पाम्या. पछी कोण स्वर्गगामी अने कोण नरकगामी छे? तेनी परीक्षा करवा माटे जूदा जूदा लोटना त्रण कुर्कुट बनावीने त्रणे शिष्यने दीधा, अने कह्युं के जिहां कोइ देखे नहि, तिहां एने हणी आवजो. तेमां वसु राजा अने पर्वतक ए बे जण तो जंगलमां जइ कोइ एकांत जग्याए कुकडानो विनाश करीने आव्या, अने नारदे तो घणां स्थानक जोयां पण क्यांहि कोइ न देखे एवुं स्थानक दीठुं नहि. ते वारे कुकडाने पाछो आण्यो. उपाध्याये पूछ्युं के केम पाछो लाव्यो? ते वारे नारद बोल्यो के देव, दानव, निगोद अथवा ज्ञानी जिहां तिहां देखी रह्या छे तेमज मारो आत्मा पण देखतो हतो, माटे शी रीते तमारी आज्ञानो भंग करी एनो विनाश करुं!

ते सांभळी उपाध्याये चिंतव्युं के ए स्वर्गगामी छे, अने पहेला बे नरकगामी छे. अनुक्रमे उपाध्याय आयुष्य पूर्ण करी देवलोके गया. पछी तेने पाटे पर्वतक बेठो अने वसुने राज्य मळ्युं, नारद पोताने घेर गयो.

एकदा एक आहेडीए वनमां जइ कोइ मृगनी उपर बाण नाख्युं, आगल जइ जोयुं तो मृगने स्थानके स्फाटिकनी शिला दीठी, तेणे राजाने आवी कह्युं के तरत राजाए ते शिला छानी मगावी, पीठिका मंडावी, उपर सिंहासन थापी पोते बेसवा मांड्युं, लोक सर्व जाणवा लाग्या के वसु राजा सत्य वचनने बळे करी अधर बेसे छे, तेथी सीमाडीया राजा प्रमुख सेवामां रह्या, मोटो प्रतिष्ठावंत सत्यवादी एवो वसु राजा कहेवाणो.

एकदा पर्वतकने मलवा माटे नारद कोइ ग्रामांतरथी तिहां आव्यो, पोतपोतामां मळीने बेठा, ते समये शिष्यने जणावतां अज शब्दनो अर्थ छागनो होम करवो एवो पर्वतके कह्यो, ते वारे नारद बोल्यो के गुरुए तो आपणने जणावतां अज शब्दनो अर्थ त्रण वर्षनी जूनी व्रीहि कही छे, तो तमे अज शब्दनो अर्थ छाग केम कहो छो? पर्वतके ना कही. एम पोतपोतामां विवाद करतां जे खोटो ठरे, तेनी जीभ छेदी

नाखवी, एवी प्रतिज्ञा करी. ते वखत पर्वतकनी माताए जाण्युं जे नारद कहे ले, ते वात खरी ले; माटे हुं जइ वसु राजानी पासेथी पुत्रनिक्षा मागी लउं, कारण के साक्षी दाखल वे जण वसु राजा पासे जवाना ले, एवुं विचारी वसु राजा पासे जइने कालावाला कीधा. अनुक्रमे ते वेहु जण वाद करता वसु राजा पासे अर्थ पूछवा आव्या. राजाए पण मिश्र वचन बोलीने कह्युं के अज शब्दनो अर्थ बोकडो पण थाय ले, अने नेदांतरे व्रीहि पण थाय ले. एवुं सांजलतांज तत्क्षण देवताए पाटु-प्रहारे करी वसु राजाने सिंहासनथी नीचे पाडी मारी नाख्यो, विपत्ति पामी मरीने नरके गयो. पाछल पर्वतक पण आयु पूर्ण थये नरके गयो. नारद शील पाली सत्य व-चनना प्रनावे देवलोके गयो. ए सत्य वचन उपर वसु राजानो दृष्टांत कह्यो ॥ ३२ ॥

हवे अदत्तादान व्रत कहे ले.

मालिनीवृत्तम् ॥ तमनिलषति सिद्धिस्तं वृणीते समृद्धि-स्त-
मनिसरति कीर्तिर्मुच्यते तं नवार्त्तिः ॥ स्पृहयति सुगतिस्तं
नेक्षते डुर्गतिस्तम्, परिहरति विपत्तं यो न गृह्णात्यदत्तम् ॥ ३३ ॥

अर्थः–(यः के०) जे पुरुष, (अदत्तं के०) न दीधेलुं एवुं जे पारकुं वित्त तेने (न गृह्णाति के०) न ग्रहण करे छे, (तं के०) ते पुरुषने (सिद्धिः के०) मुक्ति (अभिलषति के०) इछा करे छे. वली (तं के०) ते पुरुषने (समृद्धिः के०) चक्रित्वादि संपत्ति ते (वृणीते के०) वरे छे. तथा (तं के०) ते पुरुष प्रत्ये (कीर्त्तिः के०) यश ते (अभिसरति के०) आवे छे. तथा वली (तं के०) ते पुरुषने (भववार्त्तिः के०) संसारव्यथा (मुच्यते के०) मूके छे, एटले त्याग करे छे. तथा (सुगतिः के०) देवमनुष्यरूपगति, ते (तं के०) ते पुरुषने (स्पृहयति के०) स्पृहा करे छे, एटले वांछा करे छे. तथा (दुर्गतिः के०) नरकतिर्यगादिक गति (तं के०) ते पुरुषने (नेक्षते के०) नथी जोती. तथा (विपत् के०) आपत्ति ते (तं के०) ते पुरुषने (परिहरति के०) त्याग करे छे. अर्थात् अदत्त वस्तुने जे जीव ग्रहण करतो नथी, तेने सर्व सुख प्राप्त थाय छे ॥ ३३ ॥

टीकाः–अथादत्तादानव्रतमाह ॥ तमभीति ॥ यः पुमान् अदत्तं अवितीर्णप्रस्तावात् परवित्तं किंचिद्वस्तु वा न गृह्णाति तं पुरुषं सिद्धिर्मुक्तिरभिलषति वांछति । पुनस्तं समृद्धिश्चक्रित्वादिसंपत् वृणीते । तथा कीर्तिर्यशस्तं अभिसरति प्रत्यागच्छति । तथ

भवार्त्तिः संसारपीडा तं मुञ्चते त्यजति । तथा सुगतिर्देवमनुष्यरूपा तं स्पृहयति वांछति । तथा दुर्गतिर्नरकतिर्यग्रूपा तं पुरुषं नेक्षते न पश्यति । तथा विपद् आपद् तं परिहरति त्यजति ॥ तं कं ? यो अदत्तं न गृह्णाति ॥ ३३ ॥

भाषाकाव्यः—रोमकछंद ॥ ताहि रिद्धि अनुसरे, सिद्धि अभिलाष धरे मन ॥ विपत्ति संग परिहरे, जगत विस्तरे सुजसघन ॥ भव आरति तिहिं तजै, कुगति छंडे न एक छिन ॥ सो सुरसंपत्ति लहै, गहै नहिं जो अदत्त धन ॥ ३३ ॥

वळी पण अदत्तादानना परम गुणो कहे छे.

शिखरिणीवृत्तम् ॥ अदत्तं नादत्ते कृतसुकृतकामः किमपि यः,
शुभश्रेणिस्तस्मिन् वसति कलहंसीव कमले ॥ विपत्तस्मा-
द्दूरं व्रजति रजनीवांबरमणे—र्विनीतं विद्येव त्रिदिवशिवलक्ष्मी-
र्भजति तम् ॥ ३४ ॥

अर्थः—(यः के०) जे पुरुष, (कृतसुकृतकामः के०) कर्यो छे सुकृत विषे अभिलाष जेणे एवो छतो (किमपि के०) कांइ पण (अदत्तं के०) न दीधेला एवा पदार्थने

(नादत्ते के०) न ग्रहण करे छे, (तस्मिन् के०) ते पुरुषने विषे (शुभश्रेणिः के०) कल्याणनी पंक्ति (वसति के०) वसे छे. केनी पेठे ? तो के (कमले के०) कमलने विषे (कलहंसीव के०) राजहंसीनी पेठे रहे छे. वली (तस्मात् के०) ते पुरुष थकी (विपत् के०) विपत्तिर्ज ते (दूरं के०) दूरने विषे (व्रजति के०) जाय छे. केनी पेठे ? तो के (अंबरमणेः के०) सूर्य थकी (रजनीव के०) रात्रिज जेम नाश पामे छे तेम, अर्थात् जेम रात्रि सूर्य थकी नाश पामे छे तेम जाणवुं. तथा (तं के०) ते पुरुषने (त्रिदिवशिवलक्ष्मीः के०) स्वर्गापवर्गनी लक्ष्मी जे छे, ते (व्रजति के०) सेवे छे. केनी पेठे ? तो के (विनीतं के०) नम्र पुरुषने (विद्येव के०) विद्याज जेम आवे छे, अर्थात् विद्या जेम विनयसंपन्न पुरुषने प्राप्त थाय छे, तेम स्वर्गापवर्गनी लक्ष्मी पण ते पुरुषने प्राप्त थाय छे ॥ ३४ ॥

टीकाः—भूयोप्यऽदत्तादानस्य परमगुणानाह ॥ अदत्तमिति ॥ यः पुमान् कृतः सुकृते पुण्येऽभिलाषो येन ईदृशः सन् अदत्तं परकीयं किमपि वस्तु न आदत्ते न गृह्णाति तस्मिन् पुंसि शुभश्रेणिः कल्याणपरंपरा वसति निवासं करोति । कस्मिन् केव ? कमले कलहंसीव । यथा कमले राजहंसी वसति तथा । पुनस्तस्मात् पुरुषात् विपत् कष्टं दूरं

व्रजति दूरे याति । कस्मात् केव? अंबरमणेः सूर्यात् रजनीव । यथा सूर्याद्रात्रिर्दूरे व्रजति तथा । पुनस्त्रिदिवशिवयोः स्वर्गापवर्गयोर्लक्ष्मीः श्रीस्तं व्रजति सेवते । कं केव? विनीतं विद्येव । यथा विद्या विनीतं विनयान्वितं पुरुषं व्रजति आगच्छति तथा ॥ ३४ ॥

भाषाकाव्यः—कवित्त मात्रा० ॥ ताकों मिलैं देवपद शिवपद, ज्यौं विद्याधन लहै विनीत ॥ तामें आइ रहै शुभ पंकति, ज्यौं कलहंस कमल सोभीत ॥ तांहि विलोकि दुरै दुःख दारिद, ज्यौं रवि आगम रयनि वितीत ॥ जो अदत्त धन तजत बनारसी, पुन्नवंत सो पुरुष पुनीत ॥ ३४ ॥

हवे जे बुद्धिमान् पुरुष अदत्तनो त्याग करे छे, ते पण कहे छे.

॥ शार्दूलविक्रीडितवृत्तम् ॥ यन्निर्वर्त्तितकीर्तिधर्मनिधनं सर्वागसां साधनम्, प्रोन्मीलद्वधबंधनं विरचितक्लिष्टाशयोद्बोधनम्॥ दौर्गत्यैकनिबंधनं कृतसुगत्याश्लेषसंरोधनम्, प्रोत्सर्प्पत्प्रधनं जिघृक्षति न तद्धीमानदत्तं धनम् ॥ ३५ ॥

अर्थः—(धीमान् के०) विद्वान् पुरुष (तत् के०) ते (अदत्तं के०) रकीय (ध-

नं के०) वस्तु जे तेने (न जिघृक्षति के०) ग्रहण करवाने इछता नथी. ते केवुं छे ? तो के (यत् के०) जे (निर्वर्त्तित के०) कर्यो छे (कीर्त्तिधर्मनिधनं के०) कीर्त्ति अने धर्मनो नाश जेणे एवुं छे. वली (सर्वागसां के०) सर्व अपराधोनुं (साधनं के०) साधन एटले हेतुरूप छे. वली (प्रोन्मीलत् के०) प्रगट छे (वधबंधनं के०) वध जे लाकडी वगेरेथी ताडन तथा बंधन जे रज्ज्वादिकथी बंधन ते जेने विषे. वली केवुं छे ? तो के (विरचित के०) कर्युं छे (क्लिष्टाशय के०) दुष्ट अंतःकरणनुं (उद्बोधनं के०) प्रगटपणुं जेणे अर्थात् दुष्ट विचारनुं करवावालुं छे.वली ते केवुं छे ? तो के (दौर्गत्य के०) दुर्गतिपणुं तेनुं (एकनिबंधनं के०) अद्वितीय कारणभूत छे. वली केवुं छे ? तो के (कृत के०) करेलुं छे (सुगति के०) सारी गति तेनुं जे (आश्लेष के०) मलवुं तेनुं (संरोधनं के०) निवारण जेणे एवुं छे. वली केवुं छे ? तो के (प्रोत्सर्पत् के०) प्रसरतुं छे (प्रधनं के०) मरण जे थकी एवुं छे. अर्थात् एतादृश दुःखकारी जे अदत्त तेनी पंक्तितो इछा करता नथी ॥ ३५ ॥

टीकाः—व्यतिरेकेणाह ॥ यन्निर्वर्त्तितेति ॥ धीमान् विद्वान् पुमान् तत् अदत्तं धनं परकीयं वस्तु न जिघृक्षति ग्रहीतुं नेछति । तत् किं? यत् अदत्तं निर्वर्त्तितकीर्त्ति-

धर्मनिधनं स्यात् निर्वर्त्तितं कृतं कीर्त्तिधर्मयोर्निधनं विनाशो येन तत् । तथा सर्वागसां साधनं सर्वाणि च तानि आगांसि च सर्वागांसि तेषां सर्वापराधानां साधनं हेतुः स्यात् । पुनः प्रोन्मीलद्वधबंधनं वधो लकुटादिताडनं बंधनं रज्ज्वादिना बंधनं प्रोन्मीलंति प्रकटीजवंति वधबंधनानि यत्र तं । पुनर्विरचितक्लिष्टाशयोद्बोधनं विरचितं क्लिष्टाशयस्य दारुणाजिप्रायस्य उद्बोधनं प्रकटनं येन तत् । पुनर्दौर्गत्यैकनिबंधनं दौर्गत्यस्य दारिद्र्यस्य एकं अद्वितीयं निबंधनं कारणं । पुनः कृतसुगत्याश्लेषसंरोधनं कृतं सुगतेराश्लेषस्य आलिंगनस्य संरोधनं निवारणं येन तत् । पुनः प्रोत्सर्प्पत्प्रधनं प्रोत्सर्प्पत् प्रसरत् प्रधनं मरणं यस्मात् तत्तथा । ईदृशं अदत्तं धीमान् न जिघृक्षति ॥ ३५ ॥

जाषाकाव्यः—मरहठा छंद ॥ जो कीरति गोपै, धरम विलोपै, करै महा अपराध ॥ जो शुज गति तोरै, डुरगति लोरै, जोरै युद्ध उपाधि ॥ जो संकट आनै, डुरमति ठानै, वध बंधनको गेह ॥ सब उंगुन मंकित, गहै न पंडित, सो अदत्त धन एह ॥३५॥

वली पण अदत्तना दोषो कहे छे.

॥ हरिणीवृत्तम् ॥ परजनमनःपीडाक्रीडावनं वधजावना—जवनमवनिव्यापिव्यापल्लताघनमंडलम् ॥ कुगतिगमने मार्गः

स्वर्गापवर्गपुरार्गलम्, नियतमनुपादेयं स्तेयं नृणां हितकां-
क्षिणाम् ॥ ३६ ॥ इति स्तेयप्रक्रमः ॥ ७ ॥

अर्थः—(नियतं के०) निश्चये (हितकांक्षिणां के०) हितनी वांछाना करनारा एवा (नृणां के०) पुरुषोने (स्तेयं के०) चौर्य एटले चोरीनुं कर्म ते (अनुपादेयं के०) ग्रहण करवा योग्य नथी. ते अदत्त केवुं छे ? तो के (परजनमनः के०) अन्य जनोनां मन जे चित्त तेमनी (पीडा के०) बाधा तेमनुं (क्रीडावनं के०) रमण करवानुं उद्यान छे. वली (वधभावना के०) हिंसानी जे भावना एटले चिंतवन तेनुं (भवनं के०) घर छे. वली (अवनि के०) पृथ्वी तेने विषे (व्यापि के०) व्यापी रहेली एवी जे (व्यापत् के०) आपत्तिउ तेज (लता के०) लताउ जे व-धीउं, तेनुं (घनमंडलं के०) मेघमंडलरूप छे. वली (कुगतिगमने के०) माठी गतिने विषे गमन करवानो (मार्गः के०) मार्ग छे. वली (स्वर्गापवर्गपुर के०) स्वर्ग अने मोक्ष तेरूप जे नगर तेने (अर्गलं के०) भोगल सरखुं छे. माटे आ श्लो-कनो भावार्थ ए छे जे दुःखदायक एवुं जे चौर्य तेनो सर्वथा सर्व जनोए त्याग करवो ॥ ३६ ॥ आ सातमो चौर्यप्रक्रम थयो ॥ ७ ॥

टीकाः—पुनरदत्तदोषमाह ॥ परजनेति ॥ नियतं निश्चितं हितकांक्षिणां हितवांछितां नृणां पुरुषाणां स्तेयं चौर्य्यं अनुपादेयं अग्राह्यं भवति अदत्तं अग्रहणीयं स्यात् । किंभूतं अदत्तं ? परे च ते जनाश्च तेषां मनांसि चित्तानि तेषां पीडा बाधा तस्याः क्रीडावनं रमणायोद्यानं । पुनः वधभावनाभवनं वधस्य हिंसायाः भावना चिंतनं तस्याः भवनं गृहं । पुनः अवनिव्यापिव्यापल्लताघनमंडलं अवन्यां व्यापिनी प्रसरणशीला या व्यापत् आपत् सैव लता वल्ली तस्याः घनमंडलं मेघपटलं । पुनः कुगतिगमने मार्गो अध्वा । पुनः स्वर्गापवर्गपुरार्गलं स्वर्गापवर्गावेव देवलोकमोक्षावेव पुरं नगरं तत्र अर्गला परिघः ॥ ईदृशं स्तेयं हितकांक्षिणां नृणां अग्राह्यं स्यात् ॥ ३६ ॥ सिंदूरप्रकराख्यस्य, टीकायां हर्षकीर्त्तिभिः ॥ सूरिभिर्विहितायां तु, संपूर्णः स्तेयप्रक्रमः ॥ ७ ॥ इति सप्तमः स्तेयप्रक्रमः ॥ ७ ॥

भाषाकाव्यः—कवित्त मात्रात्मक ॥ जो परजन संताप केलिवन, जो वध बंध कुबुद्धि निवास ॥ जो जग विपत्ति वेलि घनमंडल, जो दुरगति मारग परगास ॥ जो सुरलोक बार दिढ अर्ग्गल, जो अपहरन मुगति सुखवास ॥ जो अदत्त धन तजत साधु जन, निज हित हेत बनारसी दास ॥ ३६ ॥

कथाः—एज ज्ञरतक्षेत्र मांहे वाणारसी नगरीए महा विख्यात पराक्रमनो धणी जितशत्रु राजा राज्य जोगवे छे. तिहां एक धनदत्त नामे व्यवहारी अत्यंत धनवंत रहे छे. तेनी धनश्री नामे स्त्री छे, तेनो पुत्र नागदत्त करीने छे, ते गुणरूप रत्ननो ज्ञंमार छे, तेना हृदयरूप सरोवर मांहे राजहंसनी पेठे दया रमे छे. हवे ते नगरमां वीजो कोइ प्रियमित्र एवे नामे व्यवहारीओ वसे छे, ते सौज्ञाग्यसुंदर चातुर्यकलासागर छे, तेने नागवसु एवे नामे पुत्री छे. एकदा नागदत्त देवगृह मांहे देव वांदतो हतो, तेने नागवसु कन्याए दीठो, ते वारे विचार्युं जे पुरंदर समान ए पुरुष कोण हशे ? एवा कंदर्पावतार ज्ञरतार विना स्त्रीनुं यौवन वकरीना गलाना स्तननी पेठे निष्फल जाणवुं, माटे मारे तो आ ज्ञवे एहज ज्ञरतार करवो. नहीं तो चारित्र लेवुं, पण वीजो ज्ञरतार न करवो. एम चिंतवी नागवसु कन्या पोताने घेर आवी, पण कोइ स्थानके रति पामे नहीं. जोजन निद्रा मूकीने रात्रि दिवस नागदत्तनुंज ध्यान कर्या करे. एवी पुत्रीनी अवस्था जोइने तेनां मातापिताए बलात्कारथी वारंवार पूछ्युं, ते वारे तेनी सज्ञान सखीए कह्युं जे ए नागदत्तनी प्रार्थना करे छे. पिताए पुत्रीनो ज्ञाव जाणी नागदत्तने घेर जइ विवाह मेलव-

करे, ए
वानी वात करीने कह्युं के सरखे सरखी जोडी छे माटे बेहु जन्म सफल करे, ए वात सांजलीने पिताने वाक्यो
युक्त छे. नागदत्तना पिताए मान्युं, परंतु नागदत्ते ते वात सांजलीने पिताने वाक्यो ए संसार
अने कह्युं के स्वामिन्! मारुं सगपण करशो नहीं, हुं तो चारित्र लइश. ए संसार
असार छे, माटे विषयसुखथी सर्युं! कन्याए ते वचन सांजल्युं अने ते कन्या तो
मन वचनथी एनी उपरज मोहित थयेली छे ॥ यतः॥ संसारे ते नरा धन्याः, ये मोहे
नैव मोहिताः ॥ मोहमोहितचित्तानां, न जने न वने रतिः ॥ १ ॥

एकदा ते कन्याने मार्गे जती कोटवाले देखीने तेना पिता पासेथी मागणी करी.
ते वारे पिताए कह्युं के ए कन्या नागदत्त उपर रागिणी छे, माटे तेने दीधी छे. ते
सांजली नगरनो कोटवाल नागदत्तनां छिद्र जोवा लाग्यो. प्रायः पापी जे होय छे,
ते पोताना स्वार्थ माटे सज्जननां छिद्र जोतोज रहे छे ॥ यतः ॥ मृगमीनसज्जनानां,
तृणजलसंतोषविहितवृत्तीनाम् ॥ लुब्धकधीवरपिशुनः, निःकारणवैरिणो जगति ॥ २ ॥

एवा समयमां राजानुं रत्नजडित कुंडल गयुं, ते वखते नागदत्तने पोषधशालामां
आवश्यक करतां कोटवाले दीठो, अने रस्ते मार्गमां कुंडल पड्युं पण दीठुं, ते
उपाडी पोतानी पासे राख्युं. पछी छल करीने रात्रिने समये कोटवाले ते कुंडल

लावी नागदत्तना कानमां घाल्युं. प्रनाते नागदत्तने पकडी राजा आगल लइ गया. कुंमलनी चोरीनुं आल दीधुं. राजाए तत्काल मारवानी आज्ञा दीधी, तेने कोटवाले मुख कालुं करी रासन ऊपर चढावी अनेक जातिनी विटंबना करी नगरमां फेरवी शूलारोपणने स्थानके (मसाणे) आण्यो. ते वात नागवसु स्त्रीए सांजली, ते वारे महा दुःख धरती थकी तेनुं कष्ट निवारण करवा माटे शासनदेवीनुं स्मरण करी काउस्सग्ग कस्यो अने विचाखुं के जे वारे ए नागदत्त मूकाशे, ते वारे हुं काउस्सग्ग पारीश ! एम निश्चल ध्यानमां थिर रही, ते अवसरे नागदत्तने शूलीए दीधो के शूली जांगी पमी, पण नागदत्तने अंगे न लागी, ते वारे कोटवालना आदेशथी नागदत्तने खड्गे करी हण्यो, परंतु ते खड्ग पण फूलमाला जेवुं तेने लाग्युं, ते वारे राजपुरुषे विस्मय पामी ते वात राजा आगल कही. राजा पोते तिहां आव्यो, ते विचार प्रत्यक्ष देखी नागदत्तने सर्व विचार खरेखरो पूछवाथी नागदत्ते यथास्थित वात कही. ते सांजली राजा मोटा महोत्सवपूर्वक नागदत्तने नगरमां लइ आव्यो, अने पोतानो अपराध खमावी कोटवालने देश बहार काढ्यो, तेना घरनुं सर्वस्व लइ लीधुं. जे माटे अति

उग्र पुण्य पापनां फल तत्काल प्राप्त थाय छे ॥ यतः ॥ त्रिभिर्वर्षैस्त्रिभिर्मासै-, स्त्रिभिः पक्षैस्त्रिभिर्दिनैः ॥ अत्युग्रपुण्यपापाना-, मिहैव लभ्यते फलम् ॥ २ ॥

पछी नागदत्ते नागवसुना काउस्सग्गनुं सर्व वृत्तांत सांभली पोतानी उपर तेनो घणोज स्नेह जाणीने ते कन्यानुं पाणिग्रहण कर्युं, अने चिरकाल तेनी साथे विषयसुख भोगवी वृद्धावस्थाए वैराग्य पामी दृढ चित्ते चारित्र लइ देवलोके पहोतो; माटे जे भाग्यवंत पुरुष अदत्त वस्तु न लीए, ते नागदत्तनी पेठे इहलोके परलोके मनोवांछित फलने पामे ॥ २६ ॥

हवे मैथुनव्रत आश्रय करीने उपदेश कहे छे.

॥ शार्दूलविक्रीडितवृत्तद्वयम् ॥ कामार्त्तस्त्यजति प्रबोधयति वा
स्वस्त्रीं परस्त्रीं न यो, दत्तस्तेन जगत्यकीर्त्तिपटहो गोत्रे मषीकू-
र्चकः ॥ चारित्रस्य जलांजलिर्गुणगणारामस्य दावानलः, सं-
केतः सकलापदां शिवपुरद्वारे कपाटो दृढः ॥ पाठांतरं ॥ शीलं
येन निजं विलुप्तमखिलं त्रैलोक्यचिंतामणिः ॥ २७ ॥

अर्थः—(यः के०) जे पुरुष (कामार्त्तः के०) कामे करी पीमित थको (स्वस्त्रीं के०) पोतानी स्त्रीने (न प्रबोधयति के०) न बोलावे वे (वा के०) अने (परस्त्रीं के०) पारकी स्त्रीने (न त्यजति के०) न त्याग करे वे, अर्थात् पोतानी स्त्री बतां परस्त्रीनो संग करे वे, परंतु परस्त्रीनो त्याग करतो नथी, (तेन के०) ते पुरुषे (जगति के०) विश्वने विषे (अकीर्त्तिपटहः के०) पोतानी अपकीर्त्तिरूप ढोल (दत्तः के०) दीधो एटले वगाड्यो. अर्थात् तेनी विश्वमां अपकीर्त्तिज थाय. वली ते पुरुषे निर्मल एवा पोताना (गोत्रे के०) गोत्रने विषे (मषीकूर्चकः के०) मषनो कूचो दीधो. अर्थात् पोताना निष्कलंक कुलने लांबन लगाड्युं. वली ते पुरुषे (चारित्रस्य के०) देशविरति सर्वविरतिरूप संयमने (जलांजलिः के०) जलनी अंजलि दीधी. अर्थात् तेणे चारित्रनो पण नाश कीधो. वली ते पुरुषे (गुणगणारामस्य के०) गुणना गण जे समूह तेरूप आराम जे बगीचो तेने (दावानलः के०) वनाग्नि दीधो. अर्थात् तेणे गुणोने पण नाश कर्या. वली (सकलापदां के०) समग्र आपत्तिउने (संकेतः के०) मलवाने स्थानक दीधुं. अर्थात् तेणे आपत्तिउने आववाने मार्ग पूरतो कर्यो. वली ते पुरुषे (शिवपुरद्वारे के०) मोक्षपुरना द्वारने विषे (दृढः के०) मजबूत अति

उग्र पुण्य पापनां फल तत्काल प्राप्त थाय छे ॥ यतः ॥ त्रिभिर्वर्षैस्त्रिभिर्मासै-, स्त्रिभिः
पक्षैस्त्रिभिर्दिनैः ॥ अत्युग्रपुण्यपापाना-, मिहैव लभते फलम् ॥ २ ॥

पछी नागदत्ते नागवसुना काउस्सग्गनुं सर्व वृत्तांत सांभली पोतानी उपर तेनो घणोज स्नेह जाणीने ते कन्यानुं पाणिग्रहण कर्युं, अने चिरकाल तेनी साथे विषय-सुख भोगवी वृद्धावस्थाए वैराग्य पामी दृढ चित्ते चारित्र लइ देवलोके पहोतो; माटे जे भाग्यवंत पुरुष अदत्त वस्तु न लीए, ते नागदत्तनी पेठे इहलोके परलोके मनो-वांछित फलने पामे ॥ ३६ ॥

हवे मैथुनव्रत आश्रय करीने उपदेश कहे छे.

॥ शार्दूलविक्रीडितवृत्तद्वयम् ॥ कामार्त्तस्त्यजति प्रबोधयति वा
स्वस्त्रीं परस्त्रीं न यो, दत्तस्तेन जगत्यकीर्त्तिपटहो गोत्रे मषीकू-
र्चकः ॥ चारित्रस्य जलांजलिर्गुणगणारामस्य दावानलः, सं-
केतः सकलापदां शिवपुरद्वारे कपाटो दृढः ॥ पाठांतरं ॥ शीलं
येन निजं विलुप्तमखिलं त्रैलोक्यचिंतामणिः ॥ ३७ ॥

अर्थः—(यः के०) जे पुरुष (कामार्त्तः के०) कामे करी पीडित थको (स्वस्त्रीं के०) पोतानी स्त्रीने (न प्रबोधयति के०) न बोलावे छे (वा के०) अने (परस्त्रीं के०) पारकी स्त्रीने (न त्यजति के०) न त्याग करे छे, अर्थात् पोतानी स्त्री छतां परस्त्रीनो संग करे छे, परंतु परस्त्रीनो त्याग करतो नथी, (तेन के०) ते पुरुषे (जगति के०) विश्वने विषे (अकीर्त्तिपटहः के०) पोतानी अपकीर्त्तिरूप ढोल (दत्तः के०) दीधो एटले वगाड्यो. अर्थात् तेनी विश्वमां अपकीर्त्तिज थाय. वली ते पुरुषे निर्मल एवा पोताना (गोत्रे के०) गोत्रने विषे (मषीकूर्चकः के०) मषनो कूचो दीधो. अर्थात् पोताना निष्कलंक कुलने लांछन लगाड्युं. वली ते पुरुषे (चारित्रस्य के०) देशविरति सर्वविरतिरूप संयमने (जलांजलिः के०) जलनी अंजलि दीधी. अर्थात् तेणे चारित्रनो पण नाश कीधो. वली ते पुरुषे (गुणगणारामस्य के०) गुणना गण जे समूह तेरूप आराम जे बगीचो तेने (दावानलः के०) वनाग्नि दीधो. अर्थात् तेणे गुणोने पण नाश कस्या. वली (सकलापदां के०) समग्र आपत्तिउने (संकेतः के०) मलवाने स्थानक दीधुं. अर्थात् तेणे आपत्तिउने आववाने मार्ग पूरतो कस्यो. वली ते पुरुषे (शिवपुरद्वारे के०) मोक्षपुरना द्वारने विषे (दृढः के०) मजबूत अति

कठिन (कपाटः के०) कमाड दीधां. अर्थात् ते जीवे मोक्षमां जवानो रस्तो अत्यंत बंध कीधो. वळी पाठांतरमां (येन के०) जे पुरुषे (त्रैलोक्यचिंतामणिः के०) त्रण लोकने विषे चिंतामणिरूप एवुं (निजं के०) पोतानुं (शीलं के०) ब्रह्मचर्य, ते (अखिलं के०) संपूर्ण (विलुप्तं के०) लोप्युं छे, तो ते पुरुषे पूर्वोक्त सर्व वस्तु करी. एटले आ श्लोकमां जाव ए छे जे शील रहित पुरुषनुं जे कांइ कर्म, ते सर्व व्यर्थ थाय छे ३७

टीकाः—अथ मैथुनव्रतमाश्रित्योपदेशमाह ॥ दत्त इति ॥ यः पुमान् कामार्त्तः कामपीडितः स्वस्त्रीं न प्रबोधयति वा इति तर्के परस्त्रीं परनारीं न त्यजति तेन पुंसा जगति विश्वे अकीर्त्तिपटहो दत्तः वादितः । निर्मले गोत्रे स्वकीये वंशे मषीकूर्चको दत्तः । पुनः चारित्रस्य देशविरतिसर्वविरतिरूपसंयमस्य जलांजलिर्दत्तः । गुणानां गणः समूहः स एव आरामस्तस्य दावानलो वनदवः वनदवाग्निर्दत्तः । पुनस्तेन सकलापदां समस्तकष्टानां संकेतो दत्तः । मलिनस्थानं कथितं । पुनस्तेन शिवपुरद्वारे मुक्तिनगरद्वारे दृढः कपाटो दत्तः । शीलरहितस्य मुक्तिगमनायोगात् ॥ पाठांतरे तु ॥ शीलं येन निजं विलुप्तं तेन एतासमखिलं त्रैलोक्यचिंतामणिः । येन त्रैलोक्यचिंतामणिः निजं शीलं विलुप्तं तेन एतानि वस्तूनि कृतानि ॥ ३७ ॥

भाषाकाव्यः—अथ शीलको अधिकार ॥ सो अपजसको डंक बजावत, लावत कुलकलंक परधान ॥ सो चारितकौं देत जलांजलि, गुनवनकौं दावानल दान ॥ सो शिवपंथके बार बनावत, आपत विपत्ति मिलनको स्थान ॥ चिंतामनि समान जग जो नर, सीलरतन निज करत मलान ॥ ३७ ॥

वली पण शीलना गुणो कहे छे.

व्याघ्रव्यालजलानलादिविपदस्तेषां व्रजंति क्षयम्, कल्याणानि समुल्लसंति विबुधाः सान्निध्यमध्यासते ॥ कीर्त्तिः स्फूर्तिमियर्ति यात्युपचयं धर्मः प्रणश्यत्यघम्, स्वर्निर्वाणसुखानि संनिदधते ये शीलमाबिभ्रते ॥ ३८ ॥

अर्थः—(ये के०) जे मनुष्यो (शीलं के०) ब्रह्मचर्यने (आबिभ्रते के०) धारण करे छे, (तेषां के०) ते मनुष्योने (व्याघ्र के०) वाघ, (व्याल के०) दुष्ट गज वा सर्प, (जल के०) नदी समुद्रादि, (अनलादि के०) अग्नि आदिक जे (विपदः के०) विपत्तिओ छे ते (क्षयं के०) क्षय प्रत्ये (व्रजंति के०) पामे छे. वली ते पुरु-

षोने (कल्याणानि के०) कल्याणो (समुल्लसंति के०) रुडे प्रकारे प्राप्त थाय छे. वली ते पुरुषोने (विबुधाः के०) देवताओ (सान्निध्यं के०) संनिधिपणा प्रत्ये (अध्यासते के०) प्राप्त थाय छे, एटले तेनी देवता सहाय करे छे. वली ते पुरुषोनी (कीर्त्तिः के०) कीर्त्ति ते (स्फूर्त्तिं के०) विस्तारने (इयर्ति के०) पामे छे. वली ते पुरुषोनो (धर्मः के०) धर्म ते (उपचयं के०) पोषणने (याति के०) पामे छे. वली ते पुरुषोनुं (अघं के०) पाप ते (प्रणश्यति के०) नाशने पामे छे. वली ते पुरुषोने (स्वर्निर्वाणसुखानि के०) स्वर्गमोक्षनां सुखो (संनिदधते के०) समीप आवे छे. अर्थात् जे शीलने धारण करे छे, तेमने एटलां वानां थाय छे ॥ ३७ ॥

टीकाः—शीलगुणानाह ॥ व्याघ्रेति ॥ ये नराः शीलं ब्रह्मचर्यं आबिभ्रते धरंति तेषां पुंसां व्याघ्रव्यालजलानलादिविपदः क्षयं यांति । व्याघ्रः प्रसिद्धः । व्यालो दुष्टगजः सर्पो वा । जलं पानीयं नदी समुद्रादि । अनलो वह्निस्तेषां विपदः कष्टानि । तैः कृता विपदः क्षयं व्रजंति क्षयं यांति । पुनः कल्याणानि श्रेयांसि समुल्लसंति वृद्धिं प्राप्नुवंति । पुनस्तेषां विबुधा देवाः सान्निध्यं अध्यासते साहाय्यं कुर्वंति । पुनस्तेषां कीर्त्तिः स्फूर्त्तिं इयर्ति विस्तारं याति । पुनस्तेषां धर्मो दानादिविधिरुपचयं पोषं याति ।

पुनस्तेषां अघं पापं प्रणश्यति नाशं याति । पुनस्तेषां स्वर्निर्वाणसुखानि स्वर्गाऽपवर्गसुखानि संनिदधते समीपमायांति । ये शीलं आविभ्रते तेषां एतानि भवंति ॥ ३७ ॥

भाषाकाव्यः—सवैया त्रेवीसा ॥ तांहि न वाघ भुयंगमको भय, पानि न बोरै न पावक जाले ॥ ताके समीप रहै सुर किन्नर, सो सुभ रीतिं करै अघ टाले ॥ तासु विवेक बढै घट अंतर, सो सुरके शिवके सुख भाले ॥ ताकि सुकीरति होइ तिहूं जग, जों नर शील अखंमित पाले ॥ ३७ ॥

॥ मालिनीवृत्तम् ॥ हरति कुलकलंकं लुंपते पापपंकम्, सुकृत-
मुपचिनोति श्लाघ्यतामातनोति ॥ नमयति सुरवर्ग्गं हंति दु-
र्गोपसर्गम्, रचयति शुचिशीलं स्वर्गमोक्षौ सलीलम् ॥३९ ॥

अर्थः--(शुचिशीलं के०) निर्मल एवुं ब्रह्मव्रत ते (कुलकलंकं के०) कुलनुं कलंक जे मलिनता तेने (हरति के०) नाश करे छे. वली (पापपंकं के०) पापरूप कचराने (लुंपते के०) छेदे छे. वली (सुकृतं के०) सुकृत जे तेने (उपचिनोति के०) वधारे छे. वली (श्लाघ्यतां के०) प्रशंसाने (आतनोति के०) विस्तारे छे. वली (सु-

रुडे प्रकारे प्राप्त थाय छे. षोने (कल्याणानि के०) कल्याणो (समुल्लसंति के०) रुडे प्रकारे प्राप्त थाय छे.

षोने (कल्याणानि के०) कल्याणो (समुल्लसंति के०) रुडे प्रकारे प्राप्त थाय छे. संनिधिपणा प्रत्ये (अ-

वली ते पुरुषोने (विबुधाः के०) देवताओ (सान्निध्यं के०) संनिधिपणा प्रत्ये (अ-
ध्यासते के०) प्राप्त थाय छे, एटले तेनी देवता सहाय करे छे. वली ते पुरुषोनी
(कीर्त्तिः के०) कीर्त्ति ते (स्फूर्तिं के०) विस्तारने (श्रयति के०) पामे छे. वली ते
पुरुषोनो (धर्मः के०) धर्म ते (उपचयं के०) पोषणने (याति के०) पामे छे. वली
ते पुरुषोनुं (अघं के०) पाप ते (प्रणश्यति के०) नाशने पामे छे. वली ते पुरुषोने
(स्वर्निर्वाणसुखानि के०) स्वर्गमोक्षनां सुखो (संनिदधते के०) समीप आवे छे.

अर्थात् जे शीलने धारण करे छे, तेमने एटलां वानां थाय छे ॥ ३७ ॥

टीकाः—शीलगुणानाह ॥ व्याघ्रेति ॥ ये नराः शीलं ब्रह्मचर्यं आबिभ्रते धरंति तेषां
पुंसां व्याघ्रव्यालजलानलादिविपदः क्षयं यांति । व्याघ्रः प्रसिद्धः । व्यालो दुष्टगजः
सर्प्पो वा । जलं पानीयं नदी समुद्रादि । अनलो वह्निस्तेषां विपदः कष्टानि । तैः
कृता विपदः क्षयं व्रजंति क्षयं यांति । पुनः कल्याणानि श्रेयांसि समुल्लसंति वृद्धिं
प्राप्नुवंति । पुनस्तेषां विबुधा देवाः सान्निध्यं अध्यासते साहाय्यं कुर्वंति । पुनस्तेषां
कीर्त्तिः स्फूर्तिं श्रयति विस्तारं याति । पुनस्तेषां धर्मो दानादिविधिरुपचयं पोषं याति ।

पुनस्तेषां अघं पापं प्रणश्यति नाशं याति । पुनस्तेषां स्वर्निर्वाणसुखानि स्वर्गाऽपवर्गसुखानि संनिदधते समीपमायांति । ये शीलं आबिभ्रते तेषां एतानि भवंति ॥ ३७ ॥

भाषाकाव्यः—सवैया त्रेवीसा ॥ तांहि न वाघ भुयंगमको भय, पानि न बोरै न पावक जाले ॥ ताके समीप रहै सुर किन्नर, सो शुभ रीति करै अघ टाले ॥ तासु विवेक बढे घट अंतर, सो सुरके शिवके सुख भालें ॥ ताकि सुकीरति होइ तिहूं जग, जो नर शील अखंडित पाले ॥ ३७ ॥

॥ मालिनीवृत्तम् ॥ हरति कुलकलंकं लुंपते पापपंकम्, सुकृतमुपचिनोति श्लाघ्यतामातनोति ॥ नमयति सुरवर्गं हंति दुर्गोपसर्गम्, रचयति शुचिशीलं स्वर्गमोक्षौ सलीलम् ॥३९ ॥

अर्थः—(शुचिशीलं के०) निर्मल एवुं ब्रह्मव्रत ते (कुलकलंकं के०) कुलनुं कलंक जे मलिनता तेने (हरति के०) नाश करे छे. वली (पापपंकं के०) पापरूप कचराने (लुंपते के०) छेदे छे. वली (सुकृतं के०) सुकृत जे तेने (उपचिनोति के०) वधारे छे. वली (श्लाघ्यतां के०) प्रशंसाने (आतनोति के०) विस्तारे छे. वली (सु-

नमावे छे. तथा (दुर्गोपसर्गं के०) जयंकर
रवर्ग्ग के०) देववर्गने (नमयति के०) नमावे छे. तथा (दुर्गोपसर्गं के०) स्वर्ग अने मोक्ष तेने (स-
उपद्रवने (हंति के०) हणे छे. वली (स्वर्गमोक्षौ के०) स्वर्ग अने मोक्ष तेने (स-
लीलं के०) लीलामात्रमांज (रचयति के०) आपे छे. ए माटे सर्व सुखनुं देवावालुं
एवुं जे शीलव्रत, तेने कदापि छोरुवुं नहीं ॥ ३ए ॥

टीकाः—पुनश्च हरति कुलेति ॥ शुचि निर्मलं शीलं ब्रह्मव्रतं कुलस्य कलंकं मलि-
नतां हरति नाशयति । पुनः शीलं पापमेव पंकं कर्दमं लुंपते छिनत्ति। पुनः शुचि निर्मलं
शुद्धं शीलं सुकृतं पुण्यं उपचिनोति वर्द्धयति । पुनः शीलं श्लाघ्यतां प्रशस्यतां आत-
नोति विस्तारयति । पुनः शीलं सुरवर्ग्गं नमयति । देवसमूहं नम्रीकरोति ॥ पुनः
शीलं दुर्गोपसर्ग्ग रौद्रोपसर्गं उपद्रवं हंति । पुनः शीलं कर्तृ सलीलं यथा स्यात्तथा
लीलयैव हेलामात्रेण स्वर्गमोक्षौ रचयति ददातीत्यर्थः ॥ ३ए ॥

नाषाकाव्यः—रोरुकछंद ॥ कुल कलंक दल मिटै, पापदल पंक पखारै ॥ दारुन सं-
कट हरै, जगत महिमा विस्तारै ॥ सरग मुगति पद रचै, सुकृत संचै करुनारसी ॥
सुर गन वंदहि चरन, शील गुन कहत बनारसी ॥ ३ए ॥

॥ शार्दूलविक्रीडितवृत्तद्वयम् ॥ तोयत्यग्निरपि स्रजत्यहिरपि व्याघ्रोऽपि सारंगति, व्यालोऽप्यश्वति पर्वतोऽप्युपलति क्ष्वेडोऽपि पीयूषति ॥ विघ्नोऽप्युत्सवति प्रियत्यरिरपि क्रीडातडागत्यपां,-नाथोऽपि स्वगृहत्यटव्यपि नृणां शीलप्रभावाद् ध्रुवम् ॥ ४० ॥

अर्थः—(नृणां के०) मनुष्योने (ध्रुवं के०) निश्चे (शीलप्रभावात् के०) शीलना प्रभाव थकी (अग्निरपि के०) अग्नि पण (तोयति के०) जलनी समान थाय छे. वली (अहिरपि के०) सर्प पण (स्रजति के०) पुष्पमाला समान थाय छे. तथा शीलना प्रभावथी (व्याघ्रोऽपि के०) सिंह पण (सारंगति के०) हरिण समान थाय छे. तथा (व्यालोऽपि के०) दुष्ट गज पण (अश्वति के०) अश्व तुल्य थाय छे. तथा (पर्वतोऽपि के०) पर्वत पण (उपलति के०) पत्थर सदृश थाय छे. अने (क्ष्वेडोऽपि के०) विष पण (पीयूषति के०) अमृत तुल्य थाय छे. तथा (विघ्नोऽपि के०) अंतराय पण एटले आपत्तिर्ठ पण (उत्सवति के०) उत्सव तुल्य थाय छे. तथा (अरिरपि के०) शत्रु पण (प्रियति के०) प्रिय समान थाय छे. तथा (अपांनाथोऽपि के०)

समुद्र पण (क्रीमातमागति के०) क्रीमाना तलावनी तुल्य थाय छे. (अटव्यपि के०) अरण्य पण (स्वगृहति के०) पोताना घर समान थाय छे. अर्थात् मनुष्यने शीलप्रजाव थकी पूर्वोक्त डुःख सर्व सुखरूप थाय छे ॥ ४० ॥ आ ठेकाणे दृष्टांतमां सुदर्शन श्रेष्ठीनी तथा वंकचूलनी तथा रावणनी कथा जाणवी. ते प्रसिद्ध छे माटे अहीं लखी नथी. आ आठमो शीलनो प्रक्रम संपूर्ण थयो ॥ ८ ॥ इति ॥

टीकाः—पुनः शीलप्रजावात् इहलोकेऽपि कष्टानि यांतीत्याह ॥ तोयत्यग्निरिति ॥ नृणां मनुष्याणां ध्रुवं निश्चितं शीलप्रजावात् अग्निरपि तोयति तोयमिवाचरति जलवत् शीतलं स्यात् । तथा अहिरपि सर्पोऽपि स्रजति स्रक् इव पुष्पमालेव आचरति । पुनः शीलप्रजावात् व्याघ्रोऽपि सिंहोऽपि सारंगति सारंग इव हरिण इवाचरति । पुनर्व्यालोऽपि डुष्टगजोऽपि अश्वति अश्व इवाचरति । विषमः पर्वतोऽपि उपलति उपल इवाचरति सामान्यपाषाण इवाचरति । क्ष्वेडोऽपि विषमपि पीयूषति अमृतं जवति । विघ्नोऽप्यंतरायोऽपि आपदपि उत्सवति उत्सव इवाचरति । विघ्नोऽप्युत्सव एव जवति । तथा अरिरपि शत्रुरपि प्रियति प्रिय इवाचरति । शत्रुरपि प्रिय एव

भवति । तथा अपांनाथोऽपि समुद्रोऽपि क्रीडातडागति क्रीडातडागमिवाचरति खेलनसरोवरमिवाचरति । अटव्यपि अरण्यमपि स्वगृहति स्वगृहमिवाचरति । नृणां शीलप्रभावादेतानि वस्तूनि भवंति ॥ अत्र सुदर्शनश्रेष्ठिकथा १ वंकचूलकथा २ रावणकथा ३ ॥ ४० ॥ सिंदूरप्रकराख्यस्य, व्याख्यायां हर्षकीर्त्तिभिः ॥ सूरिभिर्विहितायां तु, शीलस्य प्रक्रमोऽजनि ॥ ८ ॥ इत्यब्रह्मप्रक्रमः ॥ ८ ॥

भाषाकाव्यः—छप्पयछंद ॥ अगनि नीर सम होइ, माल सम होइ भुअंगम ॥ नाहर मृग सम होइ, कुटिल गज होइ तुरंगम ॥ विष पीयूष सम होइ, सिखर पाषान खंड मित ॥ विघन उलटि आनंद, होइ रिपु पलटि होइ हित ॥ लीला तलाव सम उदधि जल, गृह अटवी विकट ॥ इह विध अनेक दुःख होइ सुख, शीलवंत नरके निकट ॥४०॥

हवे परिग्रहना दोषो कहे छे.

कालुष्यं जनयन् जडस्य रचयन् धर्म्मद्रुमोन्मूलनम्, क्लिश्यन्नीतिकृपाक्षमाकमलिनीर्लोभांबुधिं वर्द्धयन् ॥ मर्यादातटमुद्रुजन्

शुभ्रमनोहंसप्रवासं दिशन्, किं न क्लेशकरः परिग्रहनदी-
पूरः प्रवृद्धिं गतः ॥ ४१ ॥

अर्थः–(परिग्रह के०) धन, क्षेत्र, गृह, रूप्य, सुवर्ण, कुप्य, द्विपद, चतुःपद, ए नवविध परिग्रहरूप जे (नदीपूरः के०) नदीनो प्रवाह, ते (प्रवृद्धिं गतः के०) अति वृद्धिने पामतो छतो (किं के०) शुं (क्लेशकरः के०) क्लेशने करवावालो (न के०) नथी थतो ? अर्थात् थायज छे. हवे परिग्रहने नदीना प्रवाहनी सादृश्यता कहे छे. परिग्रहरूप नदीप्रवाह शुं करतो छतो वृद्धिंगत थाय छे ? तो के (जडस्य के०) जड पुरुषोना (कालुष्यं के०) क्लिष्ट अध्यवसायने (जनयन् के०) उत्पन्न करतो छतो वृद्धिंगत थाय छे, अने नदीनो प्रवाह पण (जडस्य के०) जलना (कालुष्यं के०) कलुषितपणाने (जनयन् के०) उत्पन्न करे छे. "जडस्य" ए पदमां डकार छे, तेथी जल एवो अर्थ न थाय, परंतु व्याकरणने नियमे करी डका-रने लकारनुं ऐक्य छे तेथी थाय. वली (धर्मद्रुमोन्मूलनं के०) धर्मरूप वृक्षनुं जे उन्मूलन तेने (रचयन् के०) करतो छतो वृद्धिंगत थाय छे अने नदीप्रवाह पण पृथ्वीगत वृक्षोने उखेडी नाखतो छतो वृद्धिने पामे छे. वली (नीतिकृपाक्षमा के०)

न्याय, दया अने क्षांति तेरूप (कमलिनीः के०) कमलिनी जे तेने (क्लिश्यन् के०) क्लेश पमाकतो छतो वृद्धि पामे छे, अने नदीनो प्रवाह पण कमलिनीने पीका पमाके छे. वली (लोजांबुधिं के०) लोजरूप समुद्रने (वर्द्धयन् के०) वधारतो छतो वृद्धि पामे छे, अने नदीनो प्रवाह पण समुद्रने वधारनारो छे. वली (मर्यादातटं के०) धर्मरूप मर्यादानो तट जे चारित्रादिक तेने (उद्रुजन् के०) पीका पमाकतो छतो वृद्धि पामे छे, अने नदीनो प्रवाह पण वृद्धि पामतो छतो नदीना तटने पाकी नाखे छे. तथा (शुजमनोहंसप्रवासं के०) धर्मध्यानयुक्त जे मन, तेरूप हंस, तेने परदेशगमन प्रत्ये (दिशन् के०) देतो छतो वृद्धिपणाने पामे छे, अने नदीनो प्रवाह पण हंसोने उकाकतो थको वृद्धिने पामे छे. माटे मूर्छारूप परिग्रह जे छे, तेनो सर्व जीवे त्याग करवो ॥ ४१ ॥

टीकाः—अथ परिग्रहदोषमाह ॥ कालुष्यमिति । परिग्रहो धन—धान्य—क्षेत्र—गृह—रूप्य—कुप्य—द्विपद—चतुःपदानां संग्रहो मूर्छा स एव नदीपूरः सरित्प्रवाहः । प्रवृद्धिं गतः उपचयं प्राप्तः सन् किं क्लेशकरः कष्टदायी न स्यात् ? अपि तु स्यादेव । किं कुर्वन् ? जकस्य परिग्रहं संग्रहं कर्तुं मूर्खजनस्य कालुष्यं क्लिष्टाध्यवसायत्वं जनयन्

उत्पादयन्। अन्योऽपि नदीपूरो वृद्धः सन् जलस्य पानीयस्य कालुष्यं जनयति। जल-
योरैक्यं जडस्य जलस्य। पुनः किं कुर्वन्? धर्म्म एव द्रुमो वृक्षस्तस्योन्मूलनं उत्पा-
टनं रचयन् कुर्वन्। अन्योऽपि नदीपूरः प्रवृद्धो वृक्षाणां उत्पाटनं करोति। पुनः किं
कुर्वन्? नीतिकृपाक्षमाकमलिनीः। नीतिर्न्यायः। कृपा दया। क्षमा क्षांतिः। ता एव
कमलिन्यः ताः क्लिश्यन् पीडयन्। अन्योऽपि नदीपूरः कमलिनीः पीडयति। पुनः
किं कुर्वन्? लोभांबुधिं वर्द्धयन्। लोभ एव अंबुधिः समुद्रस्तद्वर्द्धयन् वृद्धिं नयन्
॥ जहा लाहो तहा लोहो, लाहाल्लोहो पवड्ढइ ॥ दोमासा कणयं कज्जं, कोडिएवि
न निट्ठियं ॥ १ ॥ इति ॥ पुनः किं कुर्वन्? धर्मस्य मर्यादा एव तटं चरणविधिरूपं
तटं उद्रुजन् पीडयन् भंजयन्। अन्योऽपि नदीपूरः प्रवृद्धः सन् तटं पातयति। पुनः
किं कुर्वन्? शुभमनोहंसप्रवासं दिशन्। शुभं धर्मध्यानसहितं यन्मनस्तदेव हंस-
स्तस्य प्रवासं परदेशगमनं दिशन् आदिशन्। अन्योऽपि नदीपूरो हंसान् उड्डाप-
यति। ईदृशो मूर्छापरिग्रहः क्लेशकरः स्यात् ॥ ४१ ॥

भाषाकाव्यः—कवित्त मात्रा० ॥ अंतर मलिन होइ निज जीवन, विनसै धरम
तरूवर मूल ॥ किसलयलता नीतिनलिनीवन, धरै लोभ सागर तन थूल ॥ उठै वाद

मरजाद मिटे सब, सुजन हंस नहिं पावहिं कूल ॥ बढत पूर पूरे दुःख संकट, यह परिग्रह समता सम तूल ॥ ४१ ॥

वली पण परिग्रहना दोषो कहे छे.

मालिनीवृत्तम् ॥ कलहकलभविंध्यः क्रोधगृध्रश्मशानम्, व्यसनभुजगरंध्रं द्वेषदस्युप्रदोषः ॥ सुकृतवनदवाग्निर्मार्दवांभोदवायु,-र्नयनलिनतुषारोऽत्यर्थमर्थानुरागः ॥ ४२ ॥

अर्थः—(अत्यर्थं के०) अत्यंत (अर्थानुरागः के०) धननो अभिलाष जे छे, ते केवो छे? तो के (कलहकलभविंध्यः के०) क्लेशरूप जे बालहस्ती तेने रहेवाने माटे विंध्याचल जेवो छे. अर्थात् जेम बालहस्तीने क्रीडा करवानुं स्थानक विंध्याचल छे, तेम क्लेशने क्रीडा करवानुं स्थानक अर्थानुराग छे. वली केवो छे ? तो के (क्रोधगृध्रश्मशानं के०) क्रोधरूप जे गीध पक्षीओ तेने रहेवाने श्मशान तुल्य, अर्थात् गीध पक्षीओ जेम श्मशानमां रहे छे, तेम क्रोध पण अर्थानुरागमां रहे छे. वली (व्यसनभुजगरंध्रं के०) व्यसन जे कष्ट तेरूप जे सर्प

तेना राफडा सरखो छे, अर्थात् जेम सर्पने रहेवानुं स्थानक राफडो छे, तेम कष्टने रहेवानुं स्थानक द्रव्यानुराग छे. वली (द्वेषदस्युप्रदोषः के०) द्वेषरूप चोरने चोरी माटे संध्यासमय समान छे, अर्थात् जेम चोरनुं जोर संध्यासमयमां वधे छे, तेम ज्यां अर्थानुराग होय त्यां द्वेषरूप चोरनुं जोर वधे छे. तथा (सुकृतवनदवाग्निः के०) सुकृत एटले पुण्य तेरूप जे वन, तेने वनना अग्नि समान, अर्थात् जेम वननो अग्नि वनने बाले छे, तेम ए अर्थानुराग पण सुकृतने बाली नाखे छे. वली (मार्दवांभोदवायुः के०) मृदुपणारूप जे मेघ तेने विषे वायु समान छे, अर्थात् वायु थकी जेम मेघ नाश पामे छे, तेम अर्थानुराग थकी मृदुत्व जे विनयपणुं ते नाश पामे छे. वली (नयनलिनतुषारः के०) न्यायरूप जे कमल तेने हिम समान छे, अर्थात् कमलनो जेम हिम नाश करे छे, तेम न्यायनो नाश अर्थानुराग करे छे. माटे सर्वे जीवे अत्यंत अर्थ एटले द्रव्य तेनी उपर अनुरागनो त्याग करवो ॥ ४२ ॥

टीकाः—भूयोऽपि परिग्रहदोषानाह ॥ कलहेति ॥ अत्यर्थं अर्थानुरागः परिग्रहोपरि मूर्छारागः ईदृशोऽस्ति । कथंभूतः ? कलह एव कलभो बालहस्ती तस्य विंध्यो विंध्याचलः । यथा विंध्याचले कलभः क्रीडति तथाऽत्यर्थं अर्थानुरागे द्रव्यरागे कलहो

जवति । तथा क्रोधगृध्रश्मशानं क्रोधः एव गृध्रः पक्षिविशेषस्तस्य श्मशानं प्रेतवनं । गृध्रः श्मशाने रमते तथात्र क्रोधः । पुनः व्यसनमेव कष्टमेव जुजगः सर्पस्तस्य बिलं । पुनर्द्वेष एव दस्युश्चौरस्तस्य प्रदोषः संध्यासमयः प्रदोषे चौराणां बलं जवति तथा । पुनः सुकृतमेव पुण्यमेव वनं तस्य दावाग्निर्दावानलः । पुनर्मार्दवांजोदवायुः मार्दवं मृदुत्वं कोमलत्वं तदेव अंजोदो मेघस्तत्र वायुः । पुनर्नयो न्याय एव नलिनं कमलं तत्र तुषार इव तुषारो हिमं । अत्यर्थं इ्गानुरागो लोजः ईदृशोऽस्ति । अतो न कर्त्तव्यः ॥४२॥

जाषाकाव्यः–सवैया इकतीसा ॥ कलह गयंद उपजायवेको विंधगिरि, कोप गिधके अघायवेकों सुमसान है ॥ संकट जुजंगके निवास करवेकों बिल, वेरजाव चोरकों महा-निसा समान है ॥ कोमल सुगुन घन खंरूवेकों महा पौन, पुन्नवन दाहवेकों दावानल दान है ॥ नीति नय नीरज नसायवेकों हिमरासि, ऐसो परिग्रह राग दुःखको निधान है४२

वली पण परिग्रहना दोषो कहे छे.

शार्दूलविक्रीडितवृत्तत्रयम् ॥ प्रत्यर्थी प्रशमस्य मित्रमधृतेर्मो-
हस्य विश्रामभूः, पापानां खनिरापदां पदमसद्ध्यानस्य लीला-

वनम् ॥ व्याक्षेपस्य निधिर्मदस्य सचिवः शोकस्य हेतुः कलेः,
केलीवेश्म परिग्रहः परिहृतेर्योग्यो विविक्तात्मनाम् ॥ ४२ ॥

अर्थः—(विविक्तात्मनां के०) विवेकवान् पुरुषोने (परिग्रहः के०) परिग्रह जे छे, ते (परिहृतेः के०) परिहार करवाने (योग्य के०) योग्य छे. अर्थात् विवेकी जनोए परिग्रहनो त्याग करवो. ते परिग्रह केवो छे ? तो के (प्रशमस्य के०) उपशमने (प्रत्यर्थी के०) शत्रु समान छे. वली (अधृतेः के०) असंतोषने (मित्रं के०) मित्र समान छे. वली (मोहस्य के०) मूढनुं एटले मोहनीयकर्मनुं (विश्रामभूः के०) विश्रांतिस्थानक एटले मोहने रहेवानुं विश्रामस्थानक छे. तथा वली (पापानां के०) अशुद्ध कर्मोनी (खनिः के०) खाण छे. वली (आपदां के०) आपत्तिओनुं (पदं के०) स्थानक छे. वली (असद्ध्यानस्य के०) आर्त्तरौद्रध्याननुं (लीलावनं के०) क्रीडावन छे. वली (व्याक्षेपस्य के०) व्याकुलपणानो (निधिः के०) जंडार छे. वली (मदस्य के०) अहंकारनो (सचिवः के०) मंत्री छे. वली (शोकस्य के०) शोकनुं (हेतुः के०) कारण छे. वली (कलेः के०) कलह जे छे तेनुं (केलीवेश्म के०) क्रीडागृह छे. माटे परिग्रहनो त्याग करवो ॥ ४२ ॥

टीकाः—पुनः परिग्रहदोषमाह ॥ जो जव्याः ! अयं परिग्रहो मूर्छाधिक्यं विविक्तात्मनां विवेकवतां पुंसां परिहृतेः परिहारस्य योग्यः। परिग्रहः कीदृशः ? प्रशमस्योपशमस्य प्रत्यर्थी शत्रुः । पुनः अधृतेः असंतोषस्य मित्रं सुहृत् । पुनर्मोहस्य मूढस्य मोहनीयकर्मस्यैव विश्रामस्थानं । पुनः पापानां अशुजकर्मणां खनिः खानिः । पुनरापदां कष्टानां पदं आस्पदं । पुनरसद्ध्यानस्य आर्त्तरौद्रध्यानस्य लीलावनं क्रीडावनं । पुनर्व्याक्षेपस्य व्याकुलत्वस्य निधिर्निधानं । पुनर्मदस्याऽहंकारस्य सचिवो मंत्री । पुनः शोकस्य हेतुः कारणं । पुनः कलेः कलहस्य केलिवेश्म क्रीडागृहमित्यर्थः ॥ ४२ ॥

जाषाकाव्यः—वृत्त उपर प्रमाणे ॥ प्रसमको अहित अधीरजको बाल मित्त, महामोहराजकी प्रसिद्ध राजधानी है ॥ भ्रमको निधान डुरध्यानको विलासवन, विपत्तिको थान अजिमानकी निसानी है ॥ डुरितको खेत रोग सोग उतपत्ति हेत, कलह निकेत डुरगतिको निदानी है ॥ ऐसो परिग्रह जोग सबनको त्याग जोग, आतमगवेषी लोग याकी जांति जानी है ॥ ४२ ॥

वली पण परिग्रहना त्यागने कहे छे.

वह्निस्तृप्यति नेंधनैरिह यथा नांजोजिरंजोनिधि,—स्तद्वन्मोह-

घनो घनैरपि धनैर्जंतुर्न संतुष्यति ॥ न त्वेवं मनुते विमुच्य विभवं निःशेषमन्यं भवम्, यात्यात्मा तदहं मुधैव विदधाम्येनांसि भूयांसि किम् ॥ ४४ ॥

अर्थः—(वह्निः के०) अग्नि (इह के०) आलोकने विषे (यथा के०) जेम (न के०) नहि (घनैरपि के०) घणां एवां पण (इंधनैः के०) काष्ठोए करीने (अंभोनिधिः के०) समुद्र जेम (न के०) नहि (घनैरपि के०) घणा एवा पण (अंभोभिः के०) जलोए करीने (तृप्यति के०) तृप्ति पामे छे. वली (तद्वत् के०) तेनी पेठे (जंतुः के०) जीव (घनैरपि के०) घणा एवा पण (धनैः के०) धने करीने (न के०) नहि (संतुष्यति के०) संतुष्ट थाय छे. ते प्राणी केवो छे ? तो के (मोहघनः के०) मोहे करी व्याप्त छे. (तु के०) वली ते जीव (एवं के०) ए प्रकारे (न मनुते के०) नथी मानतो के (आत्मा के०) जे जीव छे, ते (निःशेषं के०) समस्त (विभवं के०) द्रव्यने (विमुच्य के०) मूकीने (अन्यं के०) बीजा (भवं के०) जन्मने (याति के०) पामे छे, (तत् के०) ते कारण माटे (अहं के०) हुं (मुधैव के०)

वृथाज (भूयांसि के०) घणां (एनांसि के०) पापोने (किं के०) शामाटे (विदधामि के०) करुं छुं? एम प्राणी जाणतो नथी, माटे परिग्रहनो त्याग करवो. अहीं नंद राजा तथा मुम्मणनी कथानो दृष्टांत जाणवो ॥ ४४ ॥

टीकाः—वह्निरिति ॥ यथा वह्निरग्निः घनैरपि इंधनैः समिद्भिर्न तृप्यति न तृप्तिं याति। पुनर्यथा अंभोनिधिः समुद्रः अंभोभिर्जलैः कृत्वा न तृप्यति। तद्वत् यो जंतुः प्राणी कदाचित् घनैरपि बहुभिर्धनैर्द्रव्यैः कृत्वा न संतुष्यति। कथंभूतो जंतुः? मोहेन घनो निबिडः। तु पुनः जंतुः एवं न मनुते न जानाति। यदयं आत्मा जीवो निःशेषं समस्तं विभवं द्रव्यं विमुच्य त्यक्त्वा अन्यं भवं अपरं जन्म परभवं याति। तत्तस्मात् कारणात् अहं मुधैव वृथैव भूयांसि प्रचुराणि एनांसि पापानि किमर्थं विदधामि करोमि? एवं न जानाति ॥ ४४ ॥ सिंदूरप्रकराख्यस्य, व्याख्यायां हर्षकीर्त्तिभिः ॥ सूरिभिर्विहितायां तु, प्रक्रमोऽयं परिग्रहे ॥ ए ॥ इति परिग्रहप्रक्रमः ॥ ए ॥ अत्र नंदराज मम्मणकथा ॥

भाषाकाव्यः—छप्पयछंद ॥ ज्यौं नहिं अगनि अघाय, पाय इंधन अनेक विधि ॥ ज्यौं सरिता घननीर, तृपति नहिं होय नीरनिधि ॥ त्यों असंख धन बढत,

मूढ संतोष न मानै ॥ पाप करत नहिं डरहिं, बंध कारन मन आनै ॥ परतक्ख विलोकी जनम मरन, अथिर रूप संसार क्रम ॥ समुझै न पाप परताप गुन, प्रगट बनारसी मोहभ्रम ॥ ४४ ॥

कथाः--मगधदेशे राजगृही नगरीमां श्रेणिक राजा छे, तेनी चेलणा नामे राणी छे. एकदा प्रस्तावे भाद्रपद मासे चेलणा राणी राजानी साथे गोखमां बेठी थकी वैभारगिरि सामुं जोवा लागी. तिहां अनेक निर्झरणां वहे छे, ठाम ठाम दर्दुर स्वर थइ रह्या छे, बपैया बोली रह्या छे, मोर नृत्य करे छे, पाणीना प्रवाह वहेता नदीमां समाता नथी. ए अवसरे कोइ एक पुरुषने नदीप्रवाहनी मांहेथी मोटी महेनते काष्ठ काढतां चेलणाए दीठो, तेथी मनमां विषाद करती राजा प्रत्ये बोली के हे स्वामिन् ॥ भरियाने सहु को भरे, वूठां वरसे मेह ॥ सधन सनेहा सहु करे, निर्धन दाखे छेह ॥ १ ॥ ए उखाणो जे जगमां कहेवाय छे, ते साचो छे. राजाए पूछ्युं के केम? ते वारे राणीए कह्युं के हे स्वामिन्! ए एक दरिद्री पुरुष छे, तेने उदर भरवुं दोहेलुं छे. एणे परभवे पुण्य कर्युं नथी, माटे तमे सर्वने दान आपो छो, पण एवा दुःखीने कां देता नथी? ते वारे राजाए सेवक मोकली तेने तेडाव्यो, ते पण आवी नमस्कार करी

ऊभो रह्यो. राजाए कह्युं के हे पुरुष! तुं दुःखित थको काष्ठ कापे छे, माटे दुःख नहीं भोगव, तुजने जोइए ते हुं आपुं. तेणे कह्युं के स्वामिन्! हुं मम्मण नामे वाणीयो छुं, मुजने बे बलद जोइए छीए. तेमां एक तो मेलव्यो छे, पण बीजाने मेलववा माटे उद्यम करुं छुं. राजाए कह्युं के अमारे घेर हजारो बलद छे, तेमां जे सारो होय, ते तुं ले. वणिक बोल्यो के मारां बलदीया अन्य जातिना छे, तमारा तेवा नथी; अने मने तो मारा बलद जेवोज बलद जोइए. ते सांभली तेना बलदने जोवा माटे राजा ते वणिकने घेर आव्यो, घरमां अत्यंत ऋद्धि दीठी, तथा सुवर्ण-मय रत्ने जडित एक बलद पण दीठो. ते जोइ राजा विस्मयने पाम्यो अने ते सर्व समाचार राणीने जइ कह्या. चेलणा पण तिहां बलद जोवा सारु आवी, बलद देखीने मम्मण प्रत्ये बोली. एवां लाकडां कापवाथी तारे एवो वृषभ केम प्राप्त थशे? ते बोल्यो के एवा वृषभने अर्थे में समुद्र मांहे प्रवहण पूर्यां छे, ते परदेशमां ए लाकडां वेचीने तेनां नाणांनां रत्न लइ आवशे. ते वारे वृषभ नीपजशे. ए काष्ठ जे छे, ते बावनाचंदन छे, एनो मर्म जे परीक्षक होय, तेज जाणे. हुं पण बीजा कोइने शीखवतो नथी. पछी राजा राणी तेना लोभनो विचार देखी विषाद धरतां

पाडां घेर आव्यां. हवे ते मम्मण शेठ अतिलोजना वश थकी आर्त्तध्यान धरतो विपत्ति पामतो अपूर्ण मनोरथेज मरण पामी तिर्यंचादिकने विषे घणा घणा जव पर्यंत जम्यो. एम जाणी जविकजीवे परिग्रहनी विरति करवी ॥ इति परिग्रह विषे मम्मणकथा समाप्ता ॥ ४४ ॥

हवे क्रोधजयने माटे उपदेश कहे छे.

यो मित्रं मधुनो विकारकरणे संत्रासंसंपादने, सर्प्पस्य प्रतिबिंब-
मंगदहने सप्तार्चिषः सोदरः ॥ चैतन्यस्य निषूदने विषतरोः
सब्रह्मचारी चिरं, स क्रोधः कुशलाजिलाषकुशलैः प्रोन्मूलमु-
न्मूल्यताम् ॥ ४५ ॥

अर्थः—हे लोको ! (कुशलाजिलाषकुशलैः के०) पोताना जीवना श्रेयनी वांछामां चतुर एवा पुरुषोए (सः के०) ते (क्रोधः के०) क्रोध, (प्रोन्मूलं के०) समूल-बीज जेम होय तेम (उन्मूल्यतां के०) उछेदन करवो. ते क्रोध केवो छे ? तो के (यः के०) जे क्रोध (विकारकरणे के०) चित्तादिने विकारना करवामां (मधुमः

के०) मद्यनो (मित्रं के०) मित्र छे. वली जे क्रोध (संत्राससंपादने के०) संत्रास मेलववामां एटले जय उत्पन्न करवामां (सर्पस्य के०) सर्पना (प्रतिबिंबं के०) प्रतिबिंबरूप अथवा सर्प समान छे. वली जे क्रोध (अंगदहने के०) शरीरदहनमां (सप्तार्चिषः के०) अग्निनो (सोदरः के०) भ्राता छे. वली जे क्रोध (चैतन्यस्य के०) ज्ञानना (निषूदने के०) नाश करवामां (चिरं के०) अतिशयपणाए करी (विषतरोः के०) विषवृक्षनो (सब्रह्मचारी के०) साधर्मिक छे. अर्थात् ज्ञानना नाश करवाने विषे विष समान छे. माटे ते क्रोधनो त्याग करवो ॥ ४५ ॥

टीकाः—अथ क्रोधजयार्थमुपदेशमाह ॥ यो मित्रमिति ॥ जो लोकाः ! कुशलाभिलाषकुशलैः आत्मनः श्रेयोवांछाचतुरैर्नरैः सः क्रोधः कोपो निर्मूलं समूलं यथास्यात्तथा उन्मूल्यतां उच्छिद्यतां । सः कः ? यः क्रोधः विकारकरणे चित्तादिविकारविधाने मधुनो मद्यस्य मित्रं सुहृत् । पुनर्यः क्रोधः संत्राससंपादने जयजनने सर्पस्य प्रतिबिंबं सर्पसदृशं । पुनर्यः क्रोधोऽगदहने शरीरप्रज्वालने सप्तार्चिषोऽग्नेः सोदरः अग्नेर्भ्राता । पुनर्यःक्रोधश्चैतन्यस्य ज्ञानस्य निषूदने नाशने विषतरोर्विषवृक्षस्य चिरमतिशयेन सब्रह्मचारी सार्थी ॥ ४५ ॥

ञाषाकाव्यः—गीताछंद ॥ मात्रा ढवीश ॥ जो सुजन चित्त विकार कारन, मनहुं मदिरा पान ॥ जो ञरम ञय चिंता वढावन, असित सरप समान ॥ जो जंतुजीवन हरन विष सम, जग दहन दवदान ॥ सो कोपरासि विनासि ञवि जन, लहत शिवसुख थान ॥ ४५ ॥

वली पण क्रोधजयने माटे कहे ढे.

॥ हरिणीवृत्तम् ॥ फलति कलितश्रेयःश्रेणिप्रसूनपरंपरः, प्रशमपयसा सिक्तो मुक्तिं तपश्चरणद्रुमः ॥ यदि पुनरसौ प्रत्यासत्तिं प्रकोपहविर्भुजो, भजति लञते ञस्मीञावं तदा विफलोदयः ॥ ४६ ॥

अर्थः— (तपश्चरणद्रुमः के०) तप चारित्ररूप जे वृक्ष ते (मुक्तिं के०) मोक्षने (फलति के०) निष्पादन करे ढे. ते केवुं वृक्ष ढे ? तो के (कलितश्रेयःश्रेणिप्रसूनपरंपरः के०) उत्पन्न करी ढे जाणे कल्याणनीज पंक्ति होय नहीं तेम पुष्पनी पंक्ति जेणे. वली ते वृक्ष केवुं ढे ? तो के (प्रशमपयसा के०) उपशमरूप जले करी

(सिक्तः के०) सिंचेलुं छे, तोपण (पुनः के०) वली (असौ के०) ए वृक्ष (यदि के०) जो (प्रकोपहविर्भुजः के०) प्रकोपाग्निनी (प्रत्यासत्तिं के०) समीपताने (भजति के०) आश्रय करे छे, (तदा के०) तो (भस्मीभावं के०) भस्मभावने (लभते के०) प्राप्त थाय छे. ते केवुं छतुं प्राप्त थाय छे? तो के (विफलोदयः के०) गयो छे फलनो उदय जे थकी अर्थात् फलोदय रहित छतुं भस्मभावने प्राप्त थाय छे. माटे क्रोधनो त्याग करवो ॥ ४६ ॥

टीकाः—फलतीति ॥ तपश्चारित्ररूप एव द्रुमो वृक्षः मुक्तिं मोक्षं फलति निष्पादयति । कथंभूतः? कलिताश्रेयःश्रेणिप्रसूनपरंपरः । कलिता उत्पादिता श्रेयसां पुण्यानां कल्याणानां श्रेणिः राजिरेव प्रसूनानां पुष्पाणां परंपरा पंक्तिर्येन सः । पुनः कथंभूतः? प्रशमपयसा उपशम एव जलं तेन सिक्तः सेकं प्रापितः यदि पुनः परंतु असौ तपश्चरणद्रुमः प्रकोपहविर्भुजः क्रोधवह्नेः प्रत्यासत्तिं समीपं भजति आश्रयति, तदा भस्मीभावं भस्मरूपतां लभते प्राप्नोति । कथंभूतः? विफलोदयः विगतः फलस्य उदयो यस्मात् फलोदयरहितः ॥ ४६ ॥

भाषाकाव्यः—कवित्त मात्रा० ॥ जब मुनि कोइ बोइ तप तरुवर, उपसम जल सिंचत

चित्त खेत ॥ उदित ज्ञान साखा गुन पल्लव, मंगल पुहप सुगति फल हेत ॥ तव तहिं कोप दावानल उपजत, महा मोह दल पवन समेत ॥ सो जसमंत करत छिन अंतर, दाहत विरख सहित मुनिचेत ॥ ४६ ॥

शार्दूलविक्रीडितवृत्तद्वयम् ॥ संतापं तनुते भिनत्ति विनयं सौहार्दमुत्सादय,–त्युद्वेगं जनयत्यवद्यवचनं सूते विधत्ते कलिम् ॥ कीर्तिं कृंतति डुर्मतिं वितरति व्याहंति पुण्योदयम्, दत्ते यः कुगतिं स हातुमुचितो रोषः सदोषः सताम् ॥ ४७ ॥

अर्थः–(सः के०) ते (रोषः के०) क्रोध (सतां के०) सत्पुरुषोने (हातुं के०) त्यागवाने (उचितः के०) योग्य छे. ए केवो क्रोध छे? तो के (यः के०) जे रोष, (सदोषः के०) अनेक दोषोए सहित छे. तथा (संतापं के०) चित्तोद्वेगने (तनुते के०) विस्तारे छे. वली (विनयं के०) विनयगुणने (भिनत्ति के०) भेदे छे. वली (सौहार्द के०) मित्रभावने (उत्सादयति के०) विनाश करे छे. वली (उद्वेगं के०) उद्वेगने (जनयति के०) उत्पन्न करे छे. वली (अवद्यवचनं के०) असत्य वचनने

(सूते के०) उत्पन्न करे छे. वली (कलिं के०) कलहने (विधत्ते के०) धारण करे छे. वली (कीर्त्तिं के०) यशने (कृंतति के०) छेदे छे. वली (दुर्मतिं के०) दुष्ट बुद्धिने (वितरति के०) विस्तारे छे. वली (पुण्योदयं के०) धर्मना उदयने (व्याहंति के०) विनाश करे छे. वली (कुगतिं के०) नरकतिर्यग्गतिने (दत्ते के०) आपे छे. माटे ते क्रोध सज्जने त्याग करवा योग्य छे ॥ ४७ ॥

टीकाः—पुनः क्रोधस्य दोषमाह ॥ संतापमिति ॥ स रोषः क्रोधः सतां सत्पुरुषाणां हातुं त्यक्तुं उचितो योग्योऽस्ति । कथंभूतः रोषः ? सदोषः अनेकदोषैः सहितः । सः कः ? यो रोषः संतापं चित्तोद्वेगं तनुते विस्तारयति । पुनर्यो रोषो विनयं विनयगुणं भिनत्ति विदारयति विनाशयति । पुनर्यः सौहार्दं मित्रभावं उत्सादयति विनाशयति । पुनर्यः उद्वेगं उच्चाटं जनयति । पुनर्यः अवद्यवचनं असत्यवचनं सूते उत्पादयति । पुनर्यः कलिं कलहं विधत्ते करोति । पुनर्यो रोषः कीर्त्तिं यशः कृंतति छिनत्ति । पुनर्यो दुर्मतिं दुष्टबुद्धिं वितरति दत्ते । पुनर्यो पुण्योदयं धर्मस्य उदयं व्याहंति विनाशयति । पुनर्यः कुगतिं नरकतिर्यग्गतिं दत्ते । स रोषः सतां हातुं उचितः ॥ ४७ ॥

भाषाकाव्यः—वस्तुछंद ॥ कलह मंडन कलह मंडन करन उद्वेग, जस खंडन

हित हरन दुःख विलाप संताप साधन ॥ दुरवैन समुच्चरन धरम पुन मारग विराधन ॥ विनय दमन दुरगति गमन, कुमति हरन गुन लोप ॥ ए सब लछन जानि मुनि, तजहिं ततछन कोप ॥ ૪૭ ॥

वली पण क्रोधना दोषो कहे छे.

> यो धर्म्मं दहति द्रुमं दव इवोन्मथ्नाति नीतिं लताम्, दंतीवेंदुकलां विधुंतुद इव क्लिश्नाति कीर्तिं नृणाम् ॥ स्वार्थं वायुरिवांबुदं विघटयत्युल्लासयत्यापदम्, तृष्णां घर्म इवोचितः कृतकृपालोपः स कोपः कथम् ॥ ૪૮ ॥

अर्थः—(सः के०) ते (कोपः के०) क्रोध, (कथं के०) कये उपाये करी टालवाने (उचितः के०) योग्य छे? अर्थात् कोइ उपायथी टालवा लायक नथी. (यः के०) जे कोप (धर्म के०) धर्मने (दहति के०) जस्म करे छे. केनी पेठे ? तो के (द्रुमं के०) वृक्षने (दव इव के०) दावानल जे तेज जेम. अर्थात् जेम दावानल वृक्षने बाले छे तेम. वली (नीतिं के०) न्यायने (उन्मथ्नाति के०) उन्मूलन करे

छे. केनी पेठे? तो के (दंती के०) हस्ती (लतामिव के०) लतानेज जेम. अर्थात् हाथी जेम लताने उखेडी नाखे छे तेम. वली जे क्रोध (नृणां के०) मनुष्योनी (कीर्त्तिं के०) कीर्त्तिने (क्लिश्नाति के०) क्लेश पमाडे छे. अर्थात् कीर्त्तिनो नाश करे छे. केनी पेठे? तो के (विधुंतुदः के०) राहु, (इंदुकलामिव के०) चंद्रकलानेज जेम. वली जे क्रोध (स्वार्थं के०) स्वार्थने (विघटयति के०) नाश करे छे. केनी पेठे? तो के (वायुः के०) वायु जे छे, ते (अंबुदमिव के०) मेघनेज जेम. वली जे क्रोध (आपदं के०) कष्टने (उल्लासयति के०) विस्तारे छे. केनी पेठे? तो के (घर्मः के०) गरमी (तृष्णामिव के०) तृषानेज जेम. अर्थात् जेम तापमां तृषा वधे छे तेम. वली ते कोप केवो छे? तो के (कृतकृपालोपः के०) कर्यो छे कृपानो नाश जेणे एवो छे ॥ ४७ ॥ क्रोधप्रक्रम संपूर्ण ॥

टीकाः—यो धर्म्ममिति ॥ सः कोपः क्रोधः कथं केनोपायेनोचितो योग्यः स्यात्? अपि तु न कथमप्युचितः । सः कः ? यः कोपो धर्म्मं श्रेयो दहति भस्मीकरोति । कः कमिव? दवो दावानलो द्रुममिव । यथा दावानलो द्रुमं वृक्षं दहति । पुनर्यो नीतिं न्यायं उन्मन्थाति उन्मूलयति । कः कामिव? दंती हस्ती लतामिव । यथा हस्ती

लतामुन्मूलयति । पुनर्यो नृणां मनुष्याणां कीर्त्तिं क्लिश्नाति पीकयति गमयति । कः कामिव? विधुंतुदो राहुरिंदुकलां चंद्रलेखामिव । पुनर्यो रोषः स्वार्थं विघटयति स्फेटयति । कः कमिव? वायुरंबुदमिव । यथा वायुर्मेघं विघटयति । पुनर्यः आपदं कष्टं उल्लासयति विस्तारयति । कः कामिव? घर्मः ग्रीष्मः तृष्णामिव । यथातपो तृषां वर्द्धयति । कथंभूतः कोपः? कृतः कृपायाः लोपो विनाशो येन सः ॥ ४७ ॥ सिंदूरप्रकराख्यस्य, व्याख्यायां हर्षकीर्त्तिभिः ॥ सूरिभिर्विहितायां तु, क्रोधस्य प्रक्रमोऽजनि ॥ १० ॥ इति दशमः क्रोधप्रक्रमः ॥ १० ॥

भाषाकाव्यः—छप्पयछंद ॥ कोप धर्म धन दहै, अगनि जिम विरख विनासै ॥ कोप सुजस आवरै, राहु जिम चंद गिरासै ॥ कोप नीति दलमलै, नाग जिम लता विहंडै ॥ कोप काज सब हरै, पवन जिम जलधर खंडै ॥ संचरत कोप दुःख उपजै, वढै तृषा जिम धूपमहं ॥ करुना विलोप गुन गोप जुत, कोप निसिद्ध महंत कह ॥४७॥

कथाः—क्रोधत्याग उपर गजसुकुमारनी कथा ॥ सौराष्ट्र देशे द्वारिका नगरी छे, तिहां कृष्णवासुदेव राज्य करे छे. एकदा देवकीजीए गवाक्षे बेठां थकां कोइ स्त्रीने पोताना बालकने रमाडती दीठी, ते जोइने मनमां चिंतव्युं जे मुजने पुत्र होय तो

हुं पण हुलरावुं. एम धारी चिंतातुर थइ रही. तिहां श्रीकृष्णे चिंतानुं कारण पूछ्युं. देवकीजीए बलात्कारथी पोतानुं अभिलषित कह्युं. पछी माताने संतोषी पोषधशालाए आवी अठम तप करी हरणीगमेषी देवता आराध्यो, ते प्रसन्न थइने कहेवा लाग्यो के तमारी माताने पुत्र थशे, पण ते यौवनावस्थामां दीक्षा लेशे. पछी देवप्रभावे नव मासे देवकीजीने पुत्र थयो, गजसुकुमार नाम दीधुं. अनुक्रमें सकल कला भण्यो, यौवनावस्था पाम्यो, सोमिल ब्राह्मणनी पुत्री परण्यो, एवामां श्रीनेमिनाथ समोसर्या, तेमनी पासेथी उपदेश सांभली माताने समजावी दीक्षा लीधी. द्विविध शिक्षा पामीने प्रभुने पूछ्युं के महाराज! शीघ्र मोक्ष आपो. प्रभु बोल्या के श्मशानमां काउस्सग्ग करीए, क्षमाथी उपसर्ग सहन करीए, तो तरत मोक्षप्राप्ति थाय. ते सांभली प्रभुनी आज्ञा मागी मसाणमां जइ काउस्सग्ग कर्यो. ते वारे गामथी आवतां सोमिल ब्राह्मणे जमाइने दीठो के तरत क्रोध उपन्यो, जे एणे मारी पुत्रीने दुःखी करी तो हुं पण एने दुःखी करुं. एम विचारी शीशथी मस्तक सुधी माटीनी पाल बांधी, मांहे खेरना अंगारा भर्या. गजसुकुमारे चिंतव्युं के ए मारो उपकारी थयो छे, एना उपसर्गथी मारां कर्म क्षय थशे. एम निश्चल ध्यान धरी केवलज्ञान पामी

मोक्षे गयो. प्रभाते श्रीकृष्णे भगवानने पूछ्युं के मारो लघु बंधव क्यां छे ? ते कहो. भगवाने सर्व वृत्तांत कह्युं. ते वारे श्रीकृष्णे पूछ्युं के मारनार कोण छे ? भगवाने कह्युं के हमणां मार्गे जतां तुजने देखशे तरत तेनुं हृदय फाटी जशे अने मरण पामशे. श्रीकृष्ण पण भगवानने वांदी पाछा वळ्या अने मार्गमां तेमज दीठुं, ते वारे मनमां खेद पाम्या. ए रीते गजसुकुमार क्रोध जीतवाथी मोक्षे गयो, अने सोमिल ब्राह्मण मरी छ- ठ्ठीतिए गयो. ए माटे क्रोधनो जय करवो ॥ इति क्रोधजयोपरि गजसुकुमारकथा ॥४७॥

हवे अहंकारना दोषो कहे छे.

॥ मंदाक्रांतावृत्तम् ॥ यस्मादाविर्भवति विततिर्दुस्तरापन्नदी-
नाम्, यस्मिन् शिष्टाभिरुचितगुणग्रामनामापि नास्ति ॥
यश्च व्याप्तं वहति वधधीधूम्यया क्रोधदावम्, तं मानाद्रिं
परिहर दुरारोहमौचित्यवृत्तेः ॥ ४७ ॥

अर्थः—हे भव्यप्राणी ! (औचित्यवृत्तेः के०) उचित आचरण करवाथी अर्थात् योग्य विनय करवाथी (तं के०) ते (मानाद्रिं के०) अहंकाररूप पर्वतने (परिहर

के०) त्याग कर. ते मानाद्रि एटले मानरूप पर्वत केवो छे ? तो के (यस्मात् के०) जे थकी (दुस्तरा के०) न तराय एवी (आपन्नदीनां के०) विपत्तिरूप नदीनी (विततिः के०) पंक्ति, ते (आविर्भवति के०) प्रगट थाय छे. जेम बीजा पर्वतो थकी पण नदीनी श्रेणि उत्पन्न थाय छे तेम. वली (यस्मिन् के०) जे मानरूप पर्वतने विषे (शिष्टाभिरुचितगुणग्रामनामापि के०) उत्तम पुरुषोने प्रीतिदायक एवा जे ज्ञानादिक गुणो अथवा औदार्यादिक जे गुणो तेनो जे समूह, तेनुं जेमां नाम पण (नास्ति के०) नथी. (च के०) वली (यः के०) जे मानाद्रि (क्रोधदावं के०) क्रोधरूप दावानलने (वहति के०) वहन करे छे. ते क्रोधदावानल केवो छे ? तो के (वधधीधूम्यया के०) हिंसाबुद्धिरूप धूमे करीने (व्याप्तं के०) व्याप्त छे. वली (दुरारोहं के०) उपर चढवाने अशक्य अर्थात् जेनो पार पामवाने पण अशक्य थवाय छे. अथवा बीजो अर्थ करवो. ते जेमके (औचित्यवृत्तेः के०) उचिताचरण करनारने (दुरारोहं के०) ते मानाद्रि चढवाने अशक्य छे. अर्थात् उचिताचरण करनारने मानाद्रिनो अभाव छे ॥ ४ए ॥

टीकाः—अथ मानस्य अहंकारस्य दोषानाह ॥ यस्मादिति । जो भव्यप्राणिन् ! औचि-

त्यवृत्तेः उचिताचारकरणात् तद्योग्यविनयविधानात् । तं मानाद्रिं मान एव अहंकार एव अद्रिस्तं अहंकारपर्वतं परिहर त्यज मुंच । तं कं? यस्मान्मानाद्रेर्दुस्तरा तरीतुं अशक्या। आपन्नदीनां कष्टरूपनदीनां विततिः श्रेणिराविर्भवति प्रकटीभवति। अन्यस्मादप्यद्रेर्नदीविततिः प्राडुर्भवति । तथा यस्मिन्मानाद्रौ शिष्टाभिरुचितगुणग्रामनामापि नास्ति । शिष्टानां उत्तमानां अभिरुचिताः प्रीतिदायिनो ये गुणा ज्ञानादयः औदार्यादयो वा तेषां ग्रामः समूहस्तस्य नामापि नास्ति । गुणानां लवलेशोऽपि न । पुनर्यो मानाद्रिः क्रोधदावं क्रोधदावानलं वहति धत्ते । कथंभूतं क्रोधदावं ? वधधीधूम्यया व्याप्तं हिंसाबुद्धिधूमसमूहेनालीढं । पुनः कथंभूतं क्रोधदावं ? डुरारोहं आरोढुमशक्यं । अथवा औचित्यवृत्तेः योग्यवृत्तेः डुरारोहं ॥ ४ए ॥

भाषाकाव्यः—कवित्त मात्रा० ॥ जातें निकसि विपति सरिता सब, जगमें फैलि रही चिहुं ओर ॥ जाके ढिग गुन गाम नाम नहिं, माया कुमति गुफा अति घोर ॥ जह वधबुद्धिधूमरेखा सम, उदित कोप दावानल जोर ॥ सो अभिमान पहार पटंतर, तजत तांहि सर्वज्ञ किसोर ॥ ४ए ॥

शिखरिणीवृत्तम् ॥ शमालानं भंजन् विमलमतिनाडीं विघट्टयन्, किरन् दुर्वाक्पांशूत्करमगणयन्नागमशृणिम् ॥ भ्रमन्नूर्व्यां स्वैरं विनयनयवीथीं विदलयन्, जनः कं नानर्थं जनयति मदांधो द्विप इव ॥ ५०॥

अर्थः—(मदांधः के०) अहंकारे करी गयां छे आवरूप नेत्र जेनां एवो (जनः के०) प्राणी (कं के०) कया (अनर्थं के०) अनर्थने (न जनयति के०) नथी उत्पन्न करतो ? अर्थात् सर्व अनर्थने उत्पन्न करे छे. केनी पेठे ? तो के (द्विप इव के०) मदोन्मत्त हाथीज जेम. शुं करतो छतो अनर्थने उत्पन्न करे छे ? तो के (शमालानं के०) शमतारूप आलान एटले गजबंधनस्तंभ तेने (भंजन् के०) भांजतो छतो. वली शुं करतो छतो ? तो के (विमलमतिनाडीं के०) निर्मल बुद्धिरूप नाडी जे बंधनरज्जु तेने (विघट्टयन् के०) त्रोडतो छतो. वली (दुर्वाक्पांशूत्करं के०) दुर्वचनरूप जे धूड तेनो जे समूह तेने (किरन् के०) विक्षेपण करतो छतो. वली (आगमशृणिं के०) सिद्धांतरूप अंकुशने (अगणयन् के०) न गणतो छतो. वली (ऊर्व्यां के०)

पृथ्वीने विषे (स्वैरं के०) स्वेछाए करी (भ्रमन् के०) भमतो छतो. वली (विनयनयवीथीं के०)
विनयरूप न्यायश्रेणि तेने (विदलयन् के०) विनाश करतो छतो अनर्थने उत्पन्न करे
छे. अर्थात् जेम मदांध पुरुष उपर कहेली वात करतो छतो अनर्थ उत्पन्न
करे छे, तेम मदांध हाथी पण एटली वस्तु उत्पन्न करतो छतो अनर्थने करे छे ॥५०॥

टीकाः— भूयोऽपि मानदोषानाह ॥ शमालानमिति ॥ मदेन अहंकारेण अंधो ग-
तत्त्वावेक्षणो जनः कं कं अनर्थं न जनयति नोत्पादयति ? अपि तु सर्वं अनर्थं जनय-
ति । क इव ? द्विप इव । मतंगज इव । यथा मदांधो द्विपोऽनर्थं उपद्रवं जनयति ।
किं कुर्वन् ? शमालानं भंजन् शम एव उपशम एवालानः गजबंधनस्तंभस्तं भंजन् उ-
न्मूलयन् । पुनः किं कुर्वन् ? विमलमतिनाडीं निर्मलबुद्धिमेव नाडीं बंधनरज्जुं वि-
घट्टयन् त्रोटयन् । पुनः किं कुर्वन्? दुर्वाक्पांशूत्करं दुर्वागेव दुर्वचनमेव पांशुर्धूलि-
स्तस्याः उत्करं समूहं किरन् विक्षिपन् । पुनः आगम एव सिद्धांत एव शृणिः अंकु-
शस्तं अगणयन् अविचारयन् अवमानयन् । ऊर्व्यां पृथ्व्यां स्वैरं स्वेछया भ्रमन् वि-
चरन् । पुनर्विनयनयवीथीं विनय एव नयवीथीः न्यायश्रेणिस्तं विदलयन् विध्वंस-
यन् । अन्योऽपि मदांधो हस्ती एतानि वस्तूनि करोति ॥ ५० ॥

भाषाकाव्यः--रोलकछंद ॥ भंजे उपसम थंभ, सुमति जंजीर विहंडे ॥ कुवचन-रज संग्रहे, विनय वन पंकति खंडे ॥ जगमें फिरे सुछंद, वेद अंकुश नहि माने ॥ गज ज्यों नर मद अंध, सहज सब अनरथ ठाने ॥ ५० ॥

वली पण मानना दोषो कहे छे.

शार्दूलविक्रीडितवृत्तम् ॥ औचित्याचरणं विलुंपति पयोवाहं नभस्वानिव, प्रध्वंसं विनयं नयत्यहिरिव प्राणस्पृशां जीवितम् ॥ कीर्तिं कैरविणीं मतंगज इव प्रोन्मूलयत्यंजसा, मानो नीच इवोपकारनिकरं हंति त्रिवर्गं नृणाम् ॥ ५१ ॥

अर्थः--(मानः के०) अहंकार (नृणां के०) मनुष्यना (त्रिवर्गं के०) धर्म, अर्थ, काम, ए त्रण वर्ग जे तेने (हंति के०) नाश करे छे. केनी पेठे? तो के (नीचः के०) नीच पुरुष (उपकारनिकरमिव के०) उपकारसमूहनेज जेम हणे छे तेम. वली ते मान (औचित्याचरणं के०) योग्य एवा आचरणने (विलुंपति के०) नाश करे छे. केनी पेठे? तो के (नभस्वान् के०) वायु (पयोवाहमिव के०) मेघ

नेज जेम. वली (प्राणस्पृशां के०) प्राणीना (विनयं के०) अभ्युत्थानादिक विनयने (प्रध्वंसं के०) क्षय प्रत्ये (नयति के०) पमाडे छे. केनी पेठे ? तो के (अहिः के०) सर्प (जीवितमिव के०) जीवतरने जेम क्षय पमाडे छे तेम. अर्थात् जेम सर्प जीवितने क्षय पमाडे छे तेम ते मानी पुरुष विनयनो नाश करे छे. वली (अंजसा के०) वेगे करी (कीर्त्तिं के०) कीर्त्तिने (प्रोन्मूलयति के०) उन्मूलन करे छे. केनी पेठे ? तो के (मतंगज इव के०) मदोन्मत्त हस्ती (कैरविणीं के०) कमलिनीनेज जेम. अर्थात् हस्ती जेम कमलिनीने उन्मूलन करे छे तेम कीर्त्तिनुं उन्मूलन मान करे छे ॥ ५१ ॥

टीकाः—औचित्येति ॥ पुनराह ॥ मानोऽहंकारो नृणां पुंसां त्रिवर्गं धर्मार्थकामरूपं हंति नाशयति । कः किमिव ? नीचः मनुष्यः उपकारनिकरमिव । यथा नीचः उपकारसमूहं हंति तथा । पुनर्मानः औचित्याचरणं योग्याचारं विलुंपति स्फेटयति । कः कमिव ? नभस्वान् वायुः पयोवाहमिव । पुनर्मानः प्राणस्पृशां प्राणिनां विनयं अभ्युत्थानादिकं प्रध्वंसं क्षयं नयति । कः किमिव ? अहिः सर्पो जीवितमिव । यथा

सर्प्पो जीवितं हयं नयति । पुनरंजसा वेगेन कीर्तिं यशः प्रोन्मूलयति । कः कामिव? मतंगजो हस्ती कैरविणीं कमलिनीं यथा प्रोन्मूलयति ॥ ५१ ॥

भाषाकाव्यः—कल्खाछंद ॥ मान सवि उचित आचार भंजन करै, पवन संचार जिम घन विहंडै ॥ मान आदरत नय विनय लोपै सकल, भुजग विष नीर जिम मरन मंडै ॥ मानके उदित जगमांहि विनसै सुजस, कुपित मातंग जिम कुमुद खंडै ॥ मानकी रीति विपरीत करतूति जिम, अधमकी प्रीति नर नीति छंडै ॥ ५१ ॥

वली पण मानना दोषो कहे छे.

वसंततिलकावृत्तम् ॥ मुष्णाति यः कृतसमस्तसमीहितार्थ,
—संजीवनं विनयजीवितमंगभाजाम् ॥ जात्यादिमानविषजं
विषमं विकारम्, तं मार्दवामृतरसेन नयस्व शांतिम् ॥ ५२ ॥
इति मानप्रक्रमः ॥ ११ ॥

अर्थः—(यः के०) जे अहंकार (अंगभाजां के०) प्राणीना (विनयजीवितं के०) विनयगुणरूप जीवितने (मुष्णाति के०) उछेदन करे छे. ए केवुं विनयजीवित छे ?

तो के (कृतसमस्तसमीहितार्थसंजीवनं के०) कर्युं छे समस्त वांछितार्थनुं संजीवन जेणे एवुं छे. माटे (तं के०) ते (जात्यादिमानविषजं के०) जाति, लाभ, कुल, ऐश्वर्य, बल, रूप, तप, श्रुत, तेनो अहंकार तेरूप जे विष, ते थकी उत्पन्न थयेला एवा (विषमं के०) घोर एवा (विकारं के०) विकारने (मार्दवामृतरसेन के०) मृदुतारूप अमृतरसे करी (शांतिं के०) उपशम प्रत्ये (नयस्व के०) पमाडो, अर्थात् मानने नम्रतारूप रसे करी शांति प्रत्ये पमाडो ॥५१॥ इति एकादशो मानप्रक्रमः ॥११॥

टीकाः—सूयश्चाह ॥ मुष्णातीति ॥ यो मानोऽगप्राजां प्राणिनां विनयजीवितं विनयगुणरूपं जीवितं मुष्णाति उच्छिनत्ति । कथंभूतं विनयजीवितं ? कृतसमस्तसमीहितार्थसंजीवनं । कृतं समस्तानां समीहितार्थानां वांछितार्थानां संजीवनं येन तत् । तं जात्यादिमानविषजं जातिलाभकुलैश्वर्यबलरूपतपःश्रुतानां मानोऽहंकारः स एव विषं तस्मात्समुद्भवं उत्पन्नं विषमं घोरं विकारं मार्दवाऽमृतरसेन मृदुतासुधारसेन शांतिं उपशमं नयस्व प्रापय ॥ मानत्यागे बाहुबलि नंदीषेण दृष्टांतः ॥ ५१ ॥ सिंदूरप्रकराख्यस्य, व्याख्यायां हर्षकीर्त्तिभिः ॥ सूरिभिर्विहितायां तु, मानस्य प्रक्रमोऽजनि ॥ ११ ॥ इति मानप्रक्रमः ॥ ११ ॥

भाषाकाव्यः—चोपाई ॥ मान विषम विष तन संचरे, विनय विनासे वंछित हरे ॥ कोमल गुन अमृत संयोग, विनसै मान विषम विष रोग ॥ ५२ ॥

कथाः—मगधदेशे राजगृह नगरीए श्रेणिक राजा छे, तेनो नंदीषेण नामे पुत्र गुणे करी पवित्र छे, तिहां गुणशैल चैत्ये श्रीमहावीर समोसर्या, नंदीषेणे भगवानने वांद्या, धर्मदेशना सांभलीने दीक्षा लेवानो भाव थयो. ते वारे शासनदेवताए कह्युं के हजी तमारे भोगावली कर्म शेष रह्यां छे, ते भोगव्या पछी चारित्र लेजो; कारण के अवसरे सर्व रुडुं कहेवाय अने अवसरेज फलदायक थाय, एम शासनदेवताए समजाव्युं. तेमनुं वचन अप्रमाण करी भवितव्यताने वशे तेणे दीक्षा लीधी. ते घणां वर्ष पाली, घणी लब्धिओ उपनी. एकदा पारणे वहोरवा माटे वेश्याने घेर आवीने धर्मलाभ दीधो, वेश्याए अर्थलाभ कह्यो. ते वारे नंदीषेणे तरणुं ताणीने साडी बार क्रोड द्रव्यनो वरसाद वरसाव्यो, यावत् भोगावली कर्मथी तिहां रह्या. वेश्या साथे भोग भोगववा लाग्या. तिहां बार वर्ष वही गयां. नित्य प्रत्ये दश दश माणसने प्रतिबोध पमाडी श्रीवीरनी पासे दीक्षा लेवा मोकले.

एकदा भोगावली कर्मनो क्षय थवाथी उपदेश देतां नव जणने प्रतिबोध पमाडी

श्रीवीर पासे मोकल्या, पण दशमो सोनी प्रतिबोध न पाम्यो. तेणे कह्युं के जेम मुजने उपदेश आपो बो, तेम तमे केम आदरता नथी? एवामां भोजनवेला थवाथी स्त्रीए आवीने रीसथी भोजन करवाने बोलाव्या. ते वारे नंदीषेण बोल्यो के दशमो हुं. एम कही श्रीवीर पासे चालवा मांड्युं. स्त्रीए घणी रीते समजाव्यो, परंतु तेने पण प्रतिबोधी दीक्षा लइ सद्गतिए गयो. एम नंदीषेणे अहंकार कर्यो, तो चारित्रथी पड्यो. इति मानत्याग उपर नंदीषेणनी कथा ॥११॥ माटे मान त्यागवुं ॥ ५२॥

हवे मायात्यागनो प्रक्रम कहे बे.

मालिनीवृत्तम् ॥ कुशलजननवंध्यां सत्यसूर्यास्तसंध्याम्, कु-
गतियुवतिमालां, मोहमातंगशालाम्, ॥ शमकमलहिमानीं
दुर्यशोराजधानीम्, व्यसनशतसहायां, दूरतो मुंच मायाम् ॥५३॥

अर्थः—हे भव्यजन! (मायां के०) कपटने (दूरतो के०) दूर थकी (मुंच के०) मूक. ए माया केवी बे? तो के (कुशल के०) क्षेमना (जनन के०) उत्पन्न करवामां (वंध्यां के०) वंध्या स्त्री समान, तथा (सत्यसूर्यास्तसंध्यां के०) सत्यवचन-

रूप जे सूर्य तेना अस्तने माटे संध्या समान छे, वली (कुगतियुवतिमालां के०) कुगतिरूप जे स्त्री तेने पहेरवानी माला समान छे, वली (मोहमातंगशालां के०) मोहरूप हस्तीने बांधवानी शाला समान छे, वली (शमकमलहिमानीं के०) उपशमरूप जे कमलो तेनी उपर पमवामां हिम समान छे, वली (दुर्यशोराजधानीं के०) अपकीर्त्तिने रहेवाने निवासनगरी छे, वली (व्यसनशतसहायां के०) सहस्त्र गमे कष्टोनी सहायभूत छे, माटे मायानो दूरथीज त्याग करवो ॥ ५३ ॥

टीकाः—अथ मायात्यागमाह ॥ कुशलेति ॥ भो भव्यजन ! मायां कपटं दूरतो मुंच त्यज । कथंभूतां मायां ? कुशलस्य क्षेमस्य जनने उत्पादने वंध्यां वंध्यास्त्रीरूपां। पुनः सत्यमेव सूर्यस्तस्याऽस्तमनाय संध्या तां। पुनः किंभूतां ? कुगतिरेव युवतिस्तस्याः वरमाला तां । पुनः किंभूतां ? मोह एव मातंगस्तस्य शाला बंधनस्थानं तां । पुनः किंभूतां ? शम एव उपशम एव कमलानि तेषां हिमानी हिमसंहतिः तां । पुनः किंभूतां ? दुर्यशसः अपकीर्त्तेः राजधानी निवासनगरी तां । पुनः किंभूतां ? व्यसनानां कष्टानां शतानि तेषां सहायो यस्याः सा तां । ईदृशीं मायां दूरतो मुंच ॥ ५३ ॥

भाषाकाव्यः—रोडकछंद ॥ कुशल जनन कहुं वांझ, सत्त रवि हरन सांझ थिति ॥

कुगति जुवति उर माल, मोह कुंजर निवास छिति ॥ शमवारिज हिमरासि, पाप संताप सहायिनी ॥ अजस खानि जग जानि, तजहुं माया दुःखदायिनी ॥ ५३ ॥

वळी पण मायाना दोषो कहे छे.

उपेंद्रवज्रावृत्तम् ॥ विधाय मायां विविधैरुपायैः, परस्य ये वंचनमाचरंति, ते वंचयंति त्रिदिवापवर्ग,–सुखान्महामोह-सखाः स्वमेव ॥ ५४ ॥

अर्थः–(ये के०) जे जनो (विविधैः के०) अनेक प्रकारना (उपायैः के०) उपायोए करीने (मायां के०) कपटने (विधाय के०) करीने (परस्य के०) बीजा जननुं (वंचनं के०) वंचनने एटले अन्य जनोने ठगवानुं (आचरंति के०) आचरण करे छे, (ते के०) ते जनो (महामोहसखाः के०) महामोह छे सखाइ जेनो एवा छता अर्थात् अज्ञानयुक्त छता, (त्रिदिवापवर्गसुखात् के०) देवलोक तथा मोक्षसुख थकी (स्वमेव के०) पोतेज पोताना आत्माने (वंचयंति के०) छेतरे छे ॥५४॥

टीकाः–पुनराह ॥ विधायेति ॥ ये जनाः विविधैर्नानाप्रकारैरुपायैर्मायां कपटं वि-

धाय कृत्वा परस्यान्यजनस्य वंचनं आचरंति कुर्वंति ते जनाः महामोहसखाः महदज्ञानयुक्ताः संतः त्रिदिवापवर्गसुखात् देवलोकमोक्षसुखात् स्वयमेवात्मानमेव वंचयंति विप्रतारयंति ॥ ५४ ॥

भाषाकाव्यः—वेसरिछंद ॥ मोह मगन माया मन संचै, करी उपाय औरनकों वंचै ॥ अपनी हानि लखै नहि सोइ, सुगति हरै डुर्गतिदुःख होइ ॥ ५४ ॥

वली पण मायाना दोषो कहे छे.

इंद्रवंशावृत्तम् ॥ मायामविश्वासविलासमंदिरं, डुराशयो यः
कुरुते धनाशया ॥ सोऽनर्थसार्थं न पतंतमीक्षते, यथा बि-
डालो लगुडं पयः पिबन् ॥ ५५ ॥

अर्थः—(यः के०) जे (डुराशयः के०) डुष्टचित्तयुक्त एवो जीव (धनाशया के०) डव्यनी आशाए करी अर्थात् डव्यलोभे करी (मायां के०) कपटने (कुरुते के०) करे छे, (सः के०] ते प्राणी (पतंतं के०) आवता एवा (अनर्थसार्थं के०) कष्टना समूहने (न ईक्षते के०) नथी जोतो. केनी पेठे ? तो के (बिडालः के०) बिलाडो

ते (पयः के०) दूधने (पिबन् के०) पीतो बतो (लगुरुं के०) दंरुप्रहारने (यथा के०) जेम जोतो नथी. ते केवी माया बे ? तो के (अविश्वासविलासमंदिरं के०) अविश्वास जे अप्रतीति तेने रमवानुं गृह बे. माटे मायानो त्याग करवो ॥ ५५ ॥

टीकाः—पुनर्मायादोषमाह ॥ यो दुराशयो दुष्टचित्तो जनो धनाशया ऽन्यस्य वांछया लोजेन मायां कपटं कुरुते विदधाति । स जनः आत्मनोऽनर्थसार्थं कष्टानां समूहं पतंतं आगछंतं नेक्तते नालोकते । कथं ? यथा बिमालो मार्जारः पयो दुग्धं पिबन् सन् लगुरुं दंरुप्रहारं नेक्तते नालोकते । कथंजूतां मायां ? अविश्वासस्य अप्रतीतेः क्रीमागृहं । मंदिरशब्दस्याजहल्लिंगत्वं ॥ ५५ ॥

जाषाकाव्यः—पद्धमीबंद ॥ माया अविसास विलास गेह, जो करै मूढ जन धन सनेह ॥ सो कुगति बंध नहि लखै एम, तजी जय बिलाज पय पिवै जेम ॥ ५५ ॥

वली मायाना दोषो कहे बे.

॥ वसंततिलकावृत्तम् ॥ मुग्धप्रतारणपरायणमुज्जिहीते, यत्पा-

टवं कपटलंपटचित्तवृत्तेः ॥ जीर्यत्युपप्लवमवश्यमिहाप्यकृत्वा,
नापथ्यभोजनमिवामयमायतौ तत् ॥५६॥ इति मायाप्रक्रमः ॥१२॥

अर्थः—(कपटलंपटचित्तवृत्तेः के०) मायाने विषे वांछायुक्त छे चित्तवृत्ति जेनी एवा पुरुषनुं (यत्पाटवं के०) जे चातुर्य (उज्जिहीते के०) प्रकाश थाय छे, (तत् के०) ते चातुर्य (अवश्यं के०) निश्चे करी (आयतौ के०) आवता समयने विषे (इहापि के०) अहीं पण (उपप्लवं के०) उपद्रवने (अकृत्वा के०) न करीने (न जीर्यति के०) परिणाम पामतुं नथी. अर्थात् ते मायाकृत चातुर्य कांइ पण उपद्रव कर्या सिवाय परिणाम पामतुं नथी. केनी पेठे ? तो के (अपथ्यभोजनं के०) कुपथ्य भोजन (आमयं इव के०) रोगनेज जेम. अर्थात् कुपथ्य भोजन आगामि कालने विषे रोगने उत्पन्न कर्या सिवाय परिणाम पामतुं नथी, तेम मायाकृत चातुर्य पण जाणवुं. हवे ते मायाकृत चातुर्य केवुं छे ? तो के (मुग्धप्रतारणपरायणं के०) मूर्ख जनने छेतरवाने तत्पर छे ॥५६॥ इति मायाप्रक्रमः ॥१२॥ ए माया उपर श्रीमल्लीनाथजीना पूर्वभवनी कथा जाणवी. ते प्रसिद्ध छे, माटे अहीं लखी नथी ॥१२॥

टीकाः—पुनराह ॥ मुग्धप्रतारणेति ॥ कपटे मायायां लंपटा वांछायुक्ता चित्तवृत्तिर्मनोव्यापारो यस्य तस्य पुरुषस्य यत्पाटवं चातुर्यं उज्जिहीते उल्लासति । तत्पाटवं अवश्यं निश्चयेन आयतौ आगामिनि काले उपप्लवं उपद्रवं अकृत्वा अविधाय न जीर्यति परिणामं न याति । किं कुतः ? तस्य विपाको जवत्येव । किमिव ? अपथ्यजोजनं आमयमिव । यथा अपथ्यं जोजनं जेमनं आमयं रोगं अकृत्वा आयतौ न जीर्यति । कथंजूतं पाटवं ? मुग्धानां मूर्खाणां प्रतारणे वंचने परायणं तत्परं ॥ अत्र मल्लीनाथजीवमहाबलदृष्टांतः ॥ ५६ ॥ इति ॥ सिंदूरप्रकराख्यस्य, व्याख्यायां हर्षकीर्त्तिजिः ॥ सूरिजिर्विहितायां तु, मायायाः प्रक्रमोऽजनि ॥ १२ ॥ इति द्वादशो मायाप्रक्रमः ॥ १२ ॥

जाषाकाव्यः—आजानकछंद ॥ ज्यौं रोगी करी कुपथ, बढावे रोग तन ॥ स्वाद लंपटी जयो, कहै मुऊ जनम धन ॥ त्यौं कपटी करी कपट, मूढको धन हरै ॥ करै कुगतिकों बंध, हरष मनमें धरै ॥ ५६ ॥

हवे लोजत्यागनो उपदेश करे छे.

शार्दूलविक्रीडितवृत्तद्वयम् ॥ यद्दुर्गामटवीमटंति विकटं क्रामंति
देशांतरम्, गाहंते गहनं समुद्रमतनुक्लेशां कृषिं कुर्वते ॥ से-

वंते कृपणं पतिं गजघटासंघट्टदुःसंचरम्, सर्पंति प्रधनं धनांधितधियस्तल्लोभविस्फूर्जितम् ॥ ५७ ॥

अर्थः—(धनांधितधियः के०) धने करी अंध थयेली छे बुद्धि जेनी एवा पुरुषो अर्थात् लोभी जनो (यत् के०) जे धनने माटे (दुर्गां के०) न जवाय एवी (अटवीं के०) अरण्य प्रत्ये (अटंति के०) अटन करे छे, एटले अरण्यमां फरे छे. वली (विकटं के०) विस्तीर्ण एवा (देशांतरं के०) देशांतर प्रत्ये (क्रामंति के०) भ्रमण करे छे. वली (गहनं के०) कोइथी न अवगाहन थाय एवा (समुद्रं के०) समुद्र प्रत्ये (गाहंते के०) अवगाहन करे छे. वली (अतनुक्लेशां के०) बहु कष्टे करी साध्य थाय एवी (कृषिं के०) खेतीने (कुर्वंते के०) करे छे. वली (कृपणं के०) अदाता एवा (पतिं के०) स्वामीने (सेवंते के०) सेवे छे. वली (गजघटासंघट्टदुःसंचरं के०) हस्तिसमूहना यूथे करी जेमां न जवाय एवा (प्रधनं के०) युद्ध प्रत्ये (सर्पंति के०) जाय छे. (तत् के०) ते पूर्वोक्त सर्व (लोभविस्फूर्जितं के०) लोभनुं विचेष्टित जाणवुं. अर्थात् लोभवशे करी प्राणी सर्व चेष्टा करे छे. माटे लोभनो त्याग करवो ॥ ५७ ॥

टीकाः—अथ लोभत्यागोपदेशमाह ॥ यद्दुर्गामिति ॥ धनेन वित्तेनांधिता अंधप्राय- कृता धीर्बुद्धिर्येषां ते ईदृशाः पुरुषाः । यत् दुर्गां विषमां अटवीं अरण्यं अटंति क्रामं- ति । पुनर्यत् विकटं विस्तीर्णं देशांतरं क्रामंति भ्रमंति । पुनर्यत् गहनं दुरवगाहं समुद्रं गाहंते उल्लंघयंति । पुनर्यत् अतनुक्लेशां बहुकष्टसाध्यां कृषिं कर्षणं क्षेत्रादि कुर्वंते विद- धते । पुनर्यत् कृपणं अदातारं पतिं स्वामिनं सेवंते । पुनर्यत् गजघटानां हस्तिसमूहा- नां संघट्टेन दुःसंचरं गंतुमशक्यं प्रधनं युद्धं प्रति सर्पंति गच्छंति । तत् सर्वं लोभस्य विस्फूर्जितं । लोभस्य चेष्टितं जानीहि । लोभवशादेतानि वस्तूनि कुर्वंति अतःकारणा- ल्लोभः संत्याज्य एव ॥ ५७ ॥

भाषाकाव्यः—सवैय्या इकतीसा ॥ सहै घोर संकट समुद्रकी तरंगनिमें, कंपै चित्त भीत पंथ गाहै वींज वनमें ॥ ठानै कृषिकर्म जामें शर्मको न लेश कहुं, संकलेश रू- प व्हैके फूकि मरै रनमें ॥ तजै निज धामकों विराम परदेश धावै, सेवैं प्रभु कृपन मलिन रहै मनमें ॥ डोलै धन कारज अनारज मनुज मूढ, ऐसी करतूति करै लोभकी लगनमें ॥ ५७ ॥

वली पण लोजना दोषो कहे छे.

मूलं मोहविषद्रुमस्य सुकृतांभोराशिकुंभोद्भवः, क्रोधाग्नेररणिः प्रतापतरणिप्रच्छादने तोयदः ॥ क्रीडासद्म कलेर्विवेकशशिनः स्वर्भाणुरापन्नदी,—सिंधुः कीर्त्तिलताकलापकलभो लोभः पराभूयताम् ॥५८॥

अर्थः—हे भव्यलोको ! (लोभः के०) लोभ जे छे ते (पराभूयतां के०) पराभव करीए, एटले लोभनो त्याग करीए. ते लोभ केवो छे ? तो के (मोहविषद्रुमस्य के०) अज्ञानरूप जे विषतरु तेनुं (मूलं के०) मूल छे. वली (सुकृतांभोराशिकुंभोद्भवः के०) पुण्यरूप समुद्रना शोषणने विषे अगस्ति ऋषि समान छे. वली (क्रोधाग्नेः के०) क्रोधरूप जे अग्नि तेनुं (अरणिः के०) काष्ठ छे, एटले क्रोधाग्निनुं उत्पत्तिस्थानक छे. वली (प्रतापतरणिप्रच्छादने के०) प्रतापरूप सूर्यने ढांकवामां (तोयदः के०) मेघ समान छे. वली (कलेः के०) कलहनुं (क्रीडासद्म के०) लीलागृह छे. वली (विवेकशशिनः के०) पुण्यापुण्यना विचाररूप चंद्रमा जे तेने (स्वर्भाणुः के०) राहु समान छे. वली (आपन्नदीसिंधुः के०) आपत्तिरूप नदीओ जे छे तेने धारण करवामां समुद्र समान

छे. अर्थात् आपत्तिनुं स्थानक छे. वली (कीर्त्तिलताकलापकलभः के०) कीर्त्तिरूप जे वल्ली तेनो जे समूह तेना नाशने विषे हस्तीना बच्चा समान छे. एवो पूर्वोक्त दुर्गुण युक्त जे लोभ तेनो त्याग करवो ॥ ५७ ॥

टीकाः--पुनराह ॥ मूलमिति ॥ भो भव्याः! लोभ पराभूयतां निराक्रियतां त्यज्यतां। मूलशब्दस्याजहल्लिं-
मोह एव अज्ञानमेव विषद्रुमो विषतरुः तस्य मूलं जटारूपं । पुण्यमेवांभोराशिः समुद्रस्तस्य शोषणे कुंभो-
गत्वं । पुनः कथंभूतो लोभः? सुकृतमेव पुण्यमेवांभोराशिः समुद्रस्तस्य शोषणे कुंभो-
द्भवोऽगस्तिरिव । पुनः क्रोधाग्नेः अरणिः क्रोध एव अग्निस्तस्य अरणिः काष्ठं उत्पत्ति-
स्थानं । पुनः प्रताप एव तरणिः सूर्यस्तस्याच्छादने तोयदो मेघोऽभ्रं । पुनः कलेः कल-
हस्य क्रीडासद्म लीलागृहं । पुनर्विवेक एव पुण्यापुण्यविचार एव शशी चंद्रस्तस्य
स्वर्भाणुः राहुः । पुनः आपन्नदीसिंधुः आपदः कष्टान्येव नद्यस्तासां सिंधुः समुद्र-
स्तासां स्थानरूपत्वात् । पुनः किंभूतो लोभः? कीर्त्तिरेव लता वल्ली तस्याः कलापः
समूहस्तस्य विनाशे कलभो हस्तिशावः । ईदृशो लोभो जीयतां ॥ ५७ ॥

भाषाकाव्यः--वृत्त उपर प्रमाणे ॥ पूरन प्रताप रवि रोकवेकों धाराधर, सुकृत समुद्र शोषवेकों कुंभनंद है ॥ कोप दव पावक जननको अरनि दारू, मोह विष

रूहको महा दृढ कंद है ॥ परम विवेक निसिमनि असिवेकों राहु, कीरति लता कलाप दलन गयंद है ॥ कलहको केलि भौन आपदा नदीको सिंधु, ऐसो लोभ याहिको विपाक दुःख दंद है ॥ ५८ ॥

फरीने पण लोभना दोषो कहे छे.

वसंततिलकावृत्तम् ॥ निःशेषधर्मवनदाहविजृंभमाणे, दुःखौघभस्मनि विसर्पदकीर्त्तिधूमे ॥ बाढं धनेंधनसमागमदीप्यमाने, लोभानले शलभतां लभते गुणौघः ॥ ५९ ॥

अर्थः—(लोभानले के०) लोभरूप अग्निने विषे (गुणौघः के०) ज्ञानादिक गुणोनो समूह (शलभतां के०) पतंगपणाने (लभते के०) प्राप्त थाय छे. अर्थात् अग्निमां जेम पतंग पडीने बले छे, तेम गुणसमूह ते लोभरूप अग्निमां पडीने बले छे. हवे ते लोभानल केवो छे ? तो के (निःशेषधर्मवनदाहविजृंभमाणे के०) समस्त धर्मरूप जे वन तेने बालवे करी विस्तार पामेलो एवो. वली (दुःखौघभस्मनि के०) दुःखना समूहरूप छे भस्म जेमां एवो. वली (विसर्पदकीर्त्तिधूमे के०) प्रसरती जे

अतिशये करी (धनेंधनस-
अपकीर्त्ति तेरूप छे धूम जेमां एवो. वली (बाढं के०) अतिशये करी (धनेंधनस-
मागमदीप्यमाने के०) धनरूप जे काष्ठ तेना समागमे दीप्यमान अर्थात् अत्यंत धनरूप
इंधने करी जाज्वल्यमान एवो छे. तेमां सर्वे गुणो पतंगनी पेठे बली जाय छे ॥ ५९॥

टीकाः—पुनराह ॥ निःशेषेति ॥ लोज एवानलोऽग्निस्तस्मिन् लोजानले गुणौघो
ज्ञानादिगुणानां ओघः समूहः शलजतां पतंगत्वं लजते । पतंगवज्ज्वलति । कथंजूते
लोजानले ? निःशेषं समस्तं यद्धर्म एव वनं तस्य दाहेन विजृंजमाणः विस्तारं प्राप्नु-
वन् तस्मिन् । पुनः कथंजूते ? डुःखानां ओघः समूह एव जस्म रक्षा यत्र स तस्मिन् ।
पुनः कथंजूते ? विसर्पत् प्रसरत् अपकीर्त्तिरेव धूमो यस्मात् सः तस्मिन् । पुनः कथं-
जूते ? बाढं अतिशयेन धनान्येव डव्याण्येव इंधनानि एधांसि तेषां समागमेन आगम-
नेन दीप्यमानोऽत्यंतं प्रज्वलत् वृद्धिं प्राप्नुवत् तस्मिन् । सर्वे गुणाः पतंगवत् जवंति ॥५९॥

जाषाकाव्यः—उप्पयछंद ॥ परम धरम वन दहै, डुरित अंबर गति धारे ॥ कुजस
धूम उद्गिरै, जूरि जय जस्म विदारै ॥ डुःख फुलिंग फुंकरै, तरल तिस्ना कल कढै ॥
धन इंधन आगम, संयोग दिन दिन अति बढै ॥ लह लहै लोज पावक प्रबल,
पवन मोह उद्धत वहै ॥ दजहिं उदारता आदि बहु, गुन पतंगको दाव है ॥ ५९ ॥

संतोषे करी लोज निवारण करवा योग्य छे; माटे संतोषना गुणो कहे छे.

शार्दूलविक्रीडितवृत्तम् ॥ जातः कल्पतरुः पुरः सुरगवी तेषां प्रविष्टा गृहम्, चिंतारत्नमुपस्थितं करतले प्राप्तो निधिः संनिधिम् ॥ विश्वं वश्यमवश्यमेव सुलजाः स्वर्गापवर्गश्रियो, ये संतोषमशेषदोषदहनध्वंसांबुदं बिज्रते ॥ ६० ॥ इति लोजप्रक्रमः ॥ १३ ॥

अर्थः—(ये के०) जे मनुष्यो (संतोषं के०) तृष्णानो जे निरोध करवो तेने (बिज्रते के०) धारण करे छे; (तेषां के०) ते पुरुषोना (पुरः के०) अग्रने विषे (कल्पतरुः के०) कल्पवृक्ष (जातः के०) उत्पन्न थयुं छे. वली ते पुरुषोना (गृहं के०) गृह प्रत्ये (सुरगवी के०) कामधेनु (प्रविष्टा के०) प्रवेश थयेली छे. अर्थात् आवेली छे. वली तेना (करतले के०) हस्ततलने विषे (चिंतारत्नं के०) चिंतामणि रत्न (उपस्थितं के०) प्राप्त थयुं छे. वली ते पुरुषोने (निधिः के०) ऊव्यजंमार (सन्निधिं के०) समीपताने (प्राप्तः के०) प्राप्त थाय छे. वली ते मनुष्यने (विश्वं के०)

जगत् (अवश्यं के०) अवश्य (वश्यमेव के०) वशज थाय छे. अने वळी ते पुरुषोने (स्वर्गापवर्गश्रियः के०) देवलोकनी अने मोक्षनी संपत्ति ते (सुलभाः के०) रुडे प्रकारे प्राप्त थाय छे. हवे ते संतोष केवो छे? तो के (अशेषदोषदहन के०) समग्र दोषरूप जे अग्नि तेना (ध्वंस के०) नाश करवाने माटे (अंबुदं के०) मेघ समान छे. अर्थात् मेघ जेम अग्नि बुझाववामां प्रचुर छे तेम दोषोना नाश करवामां संतोष छे. ते माटे संतोषज कर्त्तव्य छे ॥६०॥ अहीं सागरश्रेष्ठीनी कथा जाणवी ॥१३॥

टीकाः—संतोषेण लोभो निवार्यः स्यादतः संतोषगुणानाह ॥ जात इति ॥ ये जनाः संतोषं तृष्णानिरोधं बिभ्रते धारयंति तेषां पुरोऽग्रे कल्पतरुः कल्पवृक्षो जातः प्रत्यक्षोऽभूत् । पुनस्तेषां गृहं सुरगवी कामधेनुः प्रविष्टा आगता । पुनस्तेषां करतले चिंतामणिरत्नं उपस्थितं आगतं । पुनस्तेषां निधिः द्रव्यस्य निधिः सन्निधिं समीपं प्राप्तः । पुनः विश्वं जगत् अवश्यं निश्चितं तेषां वश्यं जातं । पुनस्तेषां स्वर्गापवर्गश्रियः देवलोकमोक्षसंपदः सुलभाः सुप्राप्याः स्युः । कथंभूतं संतोषं? अशेषदोषदहनध्वंसांबुदमशेषाश्च ते दोषाश्च अशेषदोषाः त एव दहनः अशेषदोषदहनस्तस्य ध्वंसाय अंबुदं । अतः संतोष एव कर्त्तव्यः । अत्र सुभूमचक्रवर्त्ती सागरश्रेष्ठी कथा ॥ ६० ॥

सिंदूरप्रकराख्यस्य, व्याख्यायां हर्षकीर्त्तिभिः ॥ सूरिभिर्विहितायां तु, लोभस्य प्रक्रमोऽजनि ॥ इति त्रयोदशो लोभप्रस्तावः ॥ १३ ॥

भाषाकाव्यः—कवित्त मात्रात्मक ॥ विलसै कामधेनु ताके घर, पूरे कलपवृक्ष सुखपोष ॥ अखय भंडार भरै चिंतामनि, तिनकों सुगम सुरग अरु मोख ॥ ते नर वश्य करै त्रिभुवनकों, तिनसों विमुख रहै दुःख दोष ॥ वसै निधान सदा तिनके ढिग, जिनके हृदय वसत संतोष ॥ ६० ॥

कथाः—लोभ उपर सागरश्रेष्ठीनी कथा कहे छे. आ जंबूद्वीपने विषे भरतक्षेत्रमां पद्मपुर नामे नगर छे, त्यां अतिधनाढ्य सागर नामे श्रेष्ठी वसे छे. ते एवो कृपण छे के एठे हाथे कागडाने पण उडाडे नहीं. ते एम जाणे के जो उच्छिष्ट हाथे कागडाने उडाडीश तो मारा हाथमां लागेला अन्ननुं एठुं कागडाउने मलशे. एवो ते कदरी छे. तेने सुशीला गुणवती नामे स्त्री छे. तेनो एक सोमदत्त, बीजो जयदत्त, त्रीजो धनदत्त, चोथो अमरदत्त, एवा चार पुत्रो छे. ते यौवनावस्थाने पाम्या, त्यारे तेना पिताए परणाव्या. ते चारे पुत्रो पोतपोतानी स्त्रीउ साथे विषयसुख भोगवता छता काल गमा-

वता हता. अनुक्रमे शेठनी स्त्री गुणवती मरण पामी, तेथी सागरश्रेष्ठी दुःख पामवा
लाग्यो, ते वारे तेनां सगांवहालांओए दिलासो आपी शोकमुक्त कर्यो.
एक दिवसे ते सागरश्रेष्ठीना चारे पुत्रो बापना आदेशथी वहाणमां बेसी वे-
पार माटे देशांतरे गया. पाछलथी सागरश्रेष्ठीने छोकराओनी वहूरोनो विश्वास न
आववाथी पोते घर आगल खाटलो ढाली हाथमां लाकडी लइ बेसे. एक दिवसे
ते सागरश्रेष्ठीने राजाए रत्नोनी परीक्षा करवा माटे बोलाव्यो. तेवामां फरतो फरतो
कोइक योगी तेने घेर आव्यो. तेने छोकराओनी वहूए मिष्टान्नपाने करी तृप्त कर्यो.
ते वारे जोगीए संतुष्ट थइ ते स्त्रीओने एक मंत्र आप्यो, अने कह्युं के तमे कोइ पण
लाकडा उपर बेसीने आ मारो आपेलो मंत्र जपी ते लाकडा उपर अरूदना दाणा
छांटीने पछी तमारे ज्यां जवुं होय, ते स्थलनुं नाम लइने कहेशो जे अमने तुं आ
स्थानके पहोंचाड, तो ए लाकडुं ज्यां जवा इच्छशो, त्यां पहोंचाडशे. एम सर्व मंत्रनो
प्रभाव कहीने ते योगी गयो. पछी चारे स्त्रीओए मली एक मोटुं लाकडुं घरने विषे
राख्युं, पण ते वातनी सागरश्रेष्ठीने कांइ पण खबर नथी. हवे सागरश्रेष्ठीनी पग
चंपी वगेरे चाकरी करवा माटे एक हजाम निरंतर आवे. एक दिवस ते

हजामे घरमां पडेलुं ते मोटुं लाकडुं नजरे जोयुं. ते वारे विचारवा लाग्यो के आ लाकडुं अहींथी बीजे स्थले लइ जवाने कोइ समर्थ न थाय एवुं मोटुं छे. ते अहीं घर आगल पड्युं छे, माटे आमां कांइ चमत्कार तो नहीं होय ? एम विमासणमां ते हजामने शेठनी चाकरी करतां ते दिवसे घणो वखत थइ गयो. घणी रात्रि गया पछी शेठने निद्रा आववा लागी त्यारे नापितने रजा आपी के तुं जा, तोपण ते नापित त्यां छानोमानो शेठना ढोलीयानी नीचे सुइ गयो. शेठे नापित गयो जाणीने घरनां कमाडो बंध कर्यां अने पोते सुतो. ते ज्यारे घोर निद्रामां आव्यो, ते वखते चारे स्त्रीओ ते लाकडा उपर बेसीने मंत्रना जोरथी रत्नद्वीपमां जइ पोताना मनोरथ पूर्ण करी पाछली राते पाछी घेर आवी. तेने जोइने हजाम विचारवा लाग्यो के अरे! आ स्त्रीओ किहां गइ हशे ! आ स्त्रीओनुं केवुं साहस छे !! एम चिंतवतो पोताने घेर गयो. बीजे दिवसे पण पूर्वोक्त रीते ते नापिते कर्युं, अने शेठने सुवा वखत थइ, त्यारे ते लाकडाना पोलाणमां पेठो ॥ कह्युं छे के ॥ नराणां नापितो धूर्त्तः, पक्षिणां धूर्त्तो वायसः ॥ वणीनां वणिको धूर्त्तो, नारीणां गणिका मता ॥ १ ॥ सागरश्रेष्ठीए हजाम गयो जाणी बारणां बंध कर्यां. पूर्वोक्त

रीते स्त्रीउं पण लाकडा पर बेसीने रत्नद्वीपे गइ. त्यां लाकडाथी उतरीने पोताना मनोरथ पूर्ण कर्या. ते सर्व नापिते जोयुं, अने पोते लाकडानी पोलमांथी नीकलीने रत्नद्वीपमांथी घणांक अमूल्य रत्नो लइ पाछो लाकडामां पेठो, अने स्त्रीउंनी साथे पाछो घेर आव्यो. स्त्रीउं लाकडा उपरथी उतरी घरमां गइ. पाछलथी नापित पण लाकडामांथी बहार नीकली पोताने घेर गयो, पण बीजे दिवसे धनवान् थवाथी सागरश्रेष्ठीनुं आनुचर्य करवा आव्यो नहीं. एक दिवस ते शेठ पासे नापिते आवीने नमस्कार करी पोतानुं दर्पण शेठने बताव्युं. ते वखते शेठे घणे दिवसे आवेला नापितने जोइने ठपको आप्यो, त्यारे खोटा साचा जवाब आपीने पोतानी पासे रत्नद्वीपमांथी आणेलुं जे रत्न हतुं, ते बताव्युं. ते जोइने शेठे कह्युं के अरे दुष्ट ! आ रत्न देवतानुं, घणाज मौल्यवालुं, सकल भूमंडलाधिपतिने पण न मले तेवुं तुने क्यांथी मल्युं ! ते मने कहे ! ! ! ते वारे तेणे कह्युं के तमाराज घरमांथी मने ए रत्न मलेलुं छे. शेठे कह्युं के हे मूर्ख ! तुं खोटुं बोल नहीं. मारा घरमां आवुं रत्न होय क्यांथी ? ते सांभलीने हजामे यथास्थित जेवी वात बनी हती तेवी सविस्तर कही संभलावी. त्यारे शेठे कह्युं के मने पण तेम करवुं छे. तो ते नापितनी प्रमाणे शेठे

॥ ११५ ॥

पण रत्नद्वीपमां गमन कर्युं अने लाकडामांथी नीसरीने पोते लोभ [illegible]
घणांज रत्नो लइ गांसडी बांधीने पाछो लाकडामां पेठो. पाछलथी स्त्रीओ पण आवी बेठी. लाकडुं उड्युं, परंतु घणां रत्नोनो तथा शेठनो भार होवाथी लाकडुं हलवे हलवे चालवा मांड्युं. तेने जोइने स्त्रीओ विचारवा लागी के अरे ! आज काष्ठ बराबर चालतुं नथी ने नमतुं जाय छे माटे जो घेर जवा वखत लागशे तो आपणने सासरो खीजशे, माटे हवे शो उपाय करवो ? एम परस्पर कहेवा लागी. त्यारे लाकडाना कोतरमां रहेलो श्रेष्ठी कहेवा लाग्यो के तमे लगार पण भय राखशो नहीं. जेनो तमने भय छे, ते तो हुं सागरश्रेष्ठी तमारी साथेज छउं ! आ वात सांभली सर्व स्त्रीओ आश्चर्य पामी विचारवा लागी जे अरे ! आ क्यांथी आपणी साथे आव्यो ! माटे हवे जो ते पाछो घेर आवशे तो आपणने फजेत करशे, तेथी तेने आ समुद्रमांज नाखी द्यो. एम विचारी काष्ठने हलावीने ते शेठने रत्न सुधां समुद्रमां नाखी दीधो. त्यां शेठ डूबी मरण पाम्यो, माटे अति लोभ करवाथी सागरश्रेष्ठी जेवा हवाल थाय छे, तेथी लोभ करवो नहीं ॥ ए लोभने विषे सागरश्रेष्ठीनी कथा कही ॥ ६० ॥

हवे सौजन्यता राखवा विषे उपदेश करे छे.

॥ शिखरिणीवृत्तम् ॥ वरं क्षिप्तः पाणिः कुपितफणिनो वक्त्रकुहरे, वरं झंपापातो ज्वलदनलकुंडे विरचितः ॥ वरं प्रासप्रांतः सपदि जठरांतर्विनिहितो, न जन्यं दौर्जन्यं तदपि विपदां सद्म विदुषा ॥ ६१ ॥

अर्थः—(कुपित के०) कोपायमान थयेला एवा (फणिनः के०) सर्पना (वक्त्रकुहरे के०) मुखविवरने विषे (पाणिः के०) हाथ (क्षिप्तः के०) नाख्यो होय ते (वरं के०) श्रेष्ठ, वली (ज्वलदनलकुंडे के०) प्रज्वलित एवा अग्निकुंडने विषे (झंपापातः के०) झंपापात (विरचितः के०) कर्यो होय ते (वरं के०) श्रेष्ठ, वली (प्रासप्रांतः के०) कुंतणानो अग्रभाग ते (सपदि के०) तत्काल (जठरांतः के०) उदरना मध्य भागने विषे (विनिहितः के०) नाख्यो होय ते (वरं के०) श्रेष्ठ, (तदपि के०) तोपण (विदुषा के०) पंडितजने (दौर्जन्यं के०) पैशुन्य (न जन्यं के०) न करवुं. ते

केवुं दौर्जन्य छे ? तो के (विपदां के०) आपत्तिनुं (सद्म के०) गृह छे, अर्थात् विपत्तिनुं स्थानक छे ॥ ६१ ॥

टीकाः—अथ सौजन्यविधानोपदेशमाह ॥ वरमिति ॥ कुपितस्य फणिनः क्रुद्धस्य सर्पस्य वक्त्रकुहरे मुखविवरे पाणिर्हस्तः क्षिप्तो निक्षिप्तः सन् वरं श्रेयान् । पुनर्ज्वलदनलकुंडे प्रज्वलत्अग्निकुंडे झंपापातो विरचितः कृतो वरं श्रेष्ठः । पुनः प्रासस्य कुंतस्य प्रांतो अग्रं जठरांतः उदरमध्ये सपदि क्षिप्तो वरं श्रेष्ठः । तदपि विदुषा पंडितेन दौर्जन्यं पैशुन्यं न जन्यं न कर्त्तव्यमेव । किंभूतं दौर्जन्यं ? विपदां आपदां कष्टानां सद्म गृहं स्थानमित्यर्थः । अतः कारणात् सौजन्यमेव विधेयं ॥ ६१ ॥

भाषाकाव्यः—चौपाइछंद ॥ वरु अहिवदन हाथ निज डारहिं, अगनिकुंडमहिं तन परजारहिं ॥ दारहिं उदर करहिं विष भक्षन, पैं दुष्टता न गहै विचक्षन ॥ ६१ ॥

वली पण सौजन्यने माटे उपदेश करे छे.

वसंततिलकावृत्तम् ॥ सौजन्यमेव विदधाति यशश्चयं च,
स्वश्रेयसं च विभवं च भवक्षयं च ॥ दौर्जन्यमावहसि यत्
कुमते तदर्थम्, धान्येऽनलं दिशसि तज्जलसेकसाध्ये ॥ ६२ ॥

अर्थः—(यत् के०) जे (सौजन्यमेव के०) सुजनपणुं तेज (पुंसां के०) पुरुषोना (यशश्चयं के०) कीर्त्तिसमूहने (विदधाति के०) धारण करे छे. (च के०) वली (स्वश्रेयसं के०) स्वकल्याणने करे छे. (च के०) वली (विभवं के०) द्रव्यवैभवने करे छे. (च के०) वली (भवक्षयं के०) संसारनो क्षय जे मोक्ष तेने करे छे, ते माटे (कुमते के०) हे कुमतिजन ! (तदर्थं के०) यशश्चयादिकने माटे (दौर्जन्यं के०) पिशुनताने (आवहसि के०) तुं वहन करे छे, तो (धान्ये के०) धान्यना क्षेत्रने विषे (अनलं के०) अग्निने (दिशसि के०) आपे छे. (तत् के०) ते धान्य केवुं छे ? तो के (जलसेकसाध्ये के०) जलसिंचने करी साध्य छे, तेवा धान्ययुक्त क्षेत्रने विषे दवाग्नि देवानी तुं इछा करे छें ॥ ६२ ॥

टीकाः—पुनराह । सौजन्यमेव सुजनतैव पुंसां यशश्चयं कीर्त्तिसमूहं विदधाति करोति । पुनः स्वश्रेयसं स्वकल्याणं विदधाति । पुनर्विभवं द्रव्यं विदधाति । पुनर्भवक्षयं संसारक्षयं मोक्षं विदधाति । ततो हे कुमते ! हे कुबुद्धे ! यत् तदर्थं यशश्चयाद्यर्थं दौर्जन्यं पिशुनतां आवहसि धरसि । तत् धान्ये धान्यक्षेत्रेऽनलं अग्निं दिशसि

ददासि । कथंभूते धान्ये ? जलसेकसाध्ये जलस्य सेकेन सिंचनेन साध्ये निःपादनीये । तत्र द्रवं ददासि ॥ ६२ ॥

भाषाकाव्यः—सवैया तेइसा ॥ ज्यौं कृषिकार भयो चित्त चातुल, सो कृषिकी करनी इम ठाने ॥ बीज बवे न करे जल सिंचन, पावकसों फलकों थल भाने ॥ त्यौं कुमती निज स्वारथके हित, दुर्जन भाव हियेमह आने ॥ संपत्ति कारन बंध विदारन, सज्जनता सुख मूल न जाने ॥ ६२ ॥

दारिद्र्यमां पण सुजनताज श्रेष्ठ छे, ते कहे छे.

पृथ्वीवृत्तम्॥ वरं विभववंध्यता सुजन(स्वजन)भावभाजां नृणा,
—मसाधुचरितार्जिता न पुनरूर्जिताः संपदः॥कृशत्वमपि शोभते
सहजमायतौ सुंदरम्, विपाकविरसा न तु श्वयथुसंभवा स्थूलता ॥६३॥

अर्थः—(सुजनभावभाजां के०) सौजन्य सहित एवा (नृणां के०) मनुष्योने (विभव के०) वैभवनी (वंध्यता के०) निर्धनता तेज (वरं के०) श्रेष्ठ छे, (पुनः के०) परंतु (असाधुचरितार्जिताः के०) दुर्जनपणाए करी संपादन करेली एवी (संपदः के०) संपत्तिओ ते (वरं के०) श्रेष्ठ (न के०) नथी. ते केवी संपत्तिओ

छे ? तो के (ऊर्जिताः के०) अति बलिष्ठ छे. त्यां दृष्टांत कहे छे के (सहजं के०) स्वाभाविक (कृशत्वमपि के०) दौर्बल्यत्व पण (शोभते के०) शोभे छे, (तु के०) परंतु (श्वयथुसंभवा के०) शरीरमां सोजो उत्पन्न थवाथी थयेली जे (स्थूलता के०) पुष्टता ते (न के०) नथी शोभती. ए केवुं कृशत्व छे ? तो के (आयतौ के०) उत्तरकालने विषे (सुंदरं के०) शोभायमान छे, अने ते स्थूलता केवी छे? तो के (विपाकविरसा के०) परिणाममां दारुण छे. माटे सौजन्य रहित एवा धनवानने पण धिक्कार छे ॥ ६३ ॥

टीकाः—दारिद्र्येऽपि सुजनतैव श्रेष्ठेत्याह ॥ वरमिति ॥ सुजनभावभाजां सौजन्यसहितानां । अत्र स्वजनभावभाजामपि पाठोऽस्ति । नृणां पुंसां विभवस्य वंध्यता निष्फलता निर्द्रव्यता दारिद्र्यमेव वरं श्रेष्ठं । परंतु असाधुचरितेनाऽर्जिताः दौर्जन्येन उपार्जिताः संपदः श्रियोऽपि न वरं न श्रेष्ठाः न श्लाघ्याः । कथंभूताः संपदः ? ऊर्जिताः बलिष्ठाः प्रचुराः । तत्र दृष्टांतमाह । सहजं स्वाभाविकं कृशत्वं दौर्बल्यमपि शोभते । तु पुनः श्वयथुसंभवा शोफाज्जाता स्थूलता पीनताऽपि न वरं न श्रेष्ठा । कथंभूतं कृ-

शत्वं ? आयतौ उत्तरकाले आगामिकाले सुंदरं शोभनं । कथंभूता स्थूलता ? विपाके परिणामे अंत्ये विरसा दारुणा ॥ ६३ ॥

भाषाकाव्यः—आभानकछंद ॥ वर दारिद्रता होत करत सज्जनकला, दुराचारसों मिले राज सो नहिं भला ॥ ज्यौं शरीर कृश सहज सुशोभा देतु है, सूजे थूलता बढे मरनको हेतु है ॥ ६३ ॥

हवे सुजनतायुक्त जनोना गुणो कहे छे.

शार्दूलविक्रीडितवृत्तद्वयम् ॥ न ब्रूते परदूषणं परगुणं वक्त्यल्प-
मप्यन्वहम्, संतोषं वहते परर्द्धिषु पराबाधासु धत्ते शुचम् ॥
स्वश्लाघां न करोति नोज्झति नयं नौचित्यमुल्लंघय,-त्यु-
क्तोऽप्यप्रियमक्षमां न रचयत्येतच्चरित्रं सताम् ॥ ६४ ॥

इति सुजनप्रक्रमः ॥ १४ ॥

अर्थः—(सतां के०) सज्जन पुरुषोनुं (एतच्चरित्रं के०) आ चरित्र एटले चेष्टित छे. आ चरित्र ते कयुं चरित्र ? तो के सज्जन जन जे छे, ते (परदूषणं के०)

पारका दोषने (न ब्रूते के०) बोलता नथी, अने (अल्पमपि के०) थोमा एवा पण (परगुणं के०) पारका गुणने (अन्वहं के०) निरंतर (वक्ति के०) कहे छे. वली (परर्द्धिषु के०) परसंपत्तिने विषे (संतोषं के०) अनभिलाष एटले अमत्सरने (वहते के०) धारण करे छे. वली (पराबाधासु के०) परपीमाने विषे (शुचं के०) शोकने (धत्ते के०) धारण करे छे. तथा (स्वश्लाघां के०) आत्मप्रशंसाने (न करोति के०) न करे छे. वली (नयं के०) विनयने (नोज्झति के०) त्याग करता नथी. वली (औचित्यं के०) योग्यताने (नोल्लंघयति के०) उल्लंघन करता नथी. तथा (अप्रियं के०) अहित प्रत्ये (उक्तोऽपि के०) कह्या होय तोपण (अक्षमां के०)- क्रोधने (न रचयति के०) रचना करता नथी. माटे सौजन्ययुक्त जनना एवा गुणो छे ॥ ६४ ॥ ए चौदमो सुजनप्रक्रम संपूर्ण थयो ॥ १४ ॥

टीकाः—सौजन्यजाजां गुणानाह ॥ न ब्रूत इति ॥ सतां साधूनां सज्जनानां एतच्चरित्रं चेष्टितं अस्ति ॥ एतदिति किं ? सज्जनः परदूषणं परदोषं न ब्रूते। पुनरल्पमपि तुच्छमपि परगुणं अन्यगुणं अन्वहं निरंतरं वक्ति कथयति। पुनः परेषां ऋद्धिषु सं-

पत्तु संतोषं अनभिलाषं अमत्सरं वहते धत्ते । पुनः परबाधासु परपीडासु शुचं शोकं धत्ते । पुनः स्वश्लाघां आत्मप्रशंसां न करोति । पुनर्नयं न्यायं नोज्झति न त्यजति । पुनरौचित्यं योग्यतां नोल्लंघयति नातिक्रामति । पुनरप्रियं विरूपं अहितं भक्तोऽपि भाषितोऽपि अक्षमां क्रोधं न रचयति । सतां एतच्चरित्रं वर्त्तते ॥ ६४ ॥ सिंदूरप्रकर- ग्रंथ,--व्याख्यायां हर्षकीर्त्तिभिः ॥ सूरिभिर्विहितायां तु, सौजन्यप्रक्रमोऽजनि ॥ १४ ॥

भाषाकाव्यः--छप्पयछंद ॥ नहिं जंपै पर दोष, अल्प पर गुन बहु मानहिं ॥ हृदय धरहिं संतोष, दीन लखि करुना आनहिं ॥ उचित रीति आदरहिं, विमल नय नीति न छंडहिं ॥ निज जसलहन परहरहिं, राम रची विषय विहंडहिं ॥ मंडहिं न कोप डुर्वचन सुनी, सहज मधुर धुनि उच्चरहिं ॥ कही कवर पाल जग जाल वस, ए चरित्र सज्जन करहिं ॥ ६४ ॥

कथाः--सुजनता उपर कथा कहे छे. उज्जयणी नगरीए विक्रमादित्य राजाने घेर शीलालंकाररूप कमलावती नामे भार्या छे. एकदा राजा सभा मांहे हर्षोत्कर्षे बिराजमान थइ सभाना लोकोने कहेवा लाग्यो के संसार मांहे एवुं कोइ ज्ञान प्रवर्त्तमान छे, के जे मारा राज्यने विषे नज होय ? ते सांभली एक कलावंत देशांतरी

पुरुष बोल्यो के हे राजन्! तमारा राज्यमां लक्ष्मीवान्, विद्यावान्, गुणवान् एवा अनेक पुरुषो छे, अने तमे पोते पण लक्ष्मी अने विद्याए करी सहित छो. तमारी स्त्री सरस्वती सदृश छे, दातार शिरोमणि छे, परंतु एक परकाया प्रवेशकारिणी विद्या तमारी पासे नथी. ते सांजली राजा ससंभ्रम थइ बोल्यो के ते विद्या क्यां छे? ते बोल्यो के हे स्वामिन्! गिरनार पर्वतनी उपर एक सिद्धेश्वर छे, तेनी पासे ए विद्या छे. ते सांजली विक्रमादित्य पोताना प्रधानने राज्य जलावी एकाकी ते पर्वत जणी चाल्यो. अनुक्रमे घणां कष्ट सहन करी ते पर्वत उपर गयो. तिहां सिद्धेश्वर योगीने देखी मनमां हर्ष पामी योगीने नमस्कार करी सेवा जक्ति करवा लाग्यो. योगी पण राजानी शुद्ध मनथी सेवा जक्ति देखी तुष्टमान थयो ॥ यतः ॥ विणर्ज सासणे मूलं, विणर्ज संजमो तवो ॥ विणयाइं विप्पमुक्कस्स, कर्ज धम्मो कर्ज तवो ॥ १ ॥ हवे ते अवसरे तिहां सिद्धेश्वरनी पासे बीजो पण परकाया प्रवेशकारिणी विद्यानो अर्थी एक ब्राह्मण प्रवर्त्तमान छे, तेने पण घणा दिवस सेवा जक्ति करतां थया छे. ते पण घणो विनय करे छे, पण तेने कुपात्र जाणी योगी विद्या आपतो नथी ॥ यतः ॥ विद्यया सह मर्त्तव्यं, न तु देया कुशिष्यके ॥ विद्यया

लालितो मूर्खः, पश्चात्संपद्यते रिपुः ॥ १ ॥ माटे ते सिद्धेश्वर विक्रमादित्यने तत्काल तुष्टमान थयो, पण घणी सेवा करनार एवा विप्रने तुष्टमान न थयो. विक्रमादित्यने कहेवा लाग्यो के हे वत्स ! तुं गुणज्ञ छे, राजा जेवो देखाय छे, दूर देशांतरथी आव्यो देखाय छे, हुं तारी करेली भक्तिथी संतोष पाम्यो छुं; माटे परकाया प्रवेशकारिणी विद्या ले. ते वचनो सांभली राजा बे हाथ जोडी बोल्यो के हे स्वामिन् ! ए विप्रने पण आपनी सेवा करतां घणा दिवस थया, माटे जेम मारी उपर तुष्टमान थया, तेम एनी उपर पण तुष्टमान थइ विद्या आपो. ते वारे सिद्धेश्वर बोल्यो के हे परदुःखभंजक सत्पुरुष ! सर्पने दूध पीवराववाथी शो फायदो थाय ? तोपण राजाए घणी प्रार्थना करी प्रणिपत्य करीने ब्राह्मणने पण विद्या अपावी. पछी राजा तथा ब्राह्मण बेहुने विद्या साधवानो विधि कह्यो, ते प्रमाणे विद्या साधी; विद्या सिद्ध करी गुरुनी आज्ञा मागी राजा अने ब्राह्मण बेहु उज्जयणीनी बहार आव्या, ते वखत राजाए ब्राह्मणने त्यांज बेसाड्यो अने पोते राज्यस्थिति जोवा भणी नगरी मांहे आव्यो. तिहां प्रथम प्रजाना समाचार जोइ पछी राज्यमंदिरमां आव्यो. तिहां पट्टहाथीना मरणथी राजलोक आकुल थयेला दीठा. राजा फरी ब्राह्मण पासे आव्यो.

विद्यानी परीक्षा करवा सारु पोताना शरीर मांहेथी जीव काढी निर्जीव काया करी ते कलेवर विप्रने चलावीने पोतानो जीव हाथीना खोलीया मांहे जइ घाल्यो, तेथी हाथी तत्काल उन्नो थयो. राजलोक सर्व हर्ष पाम्या. एवामां दुष्ट बुद्धिथी विप्र विचारवा लाग्यो के जो हुं हमणां मारो जीव राजाना शरीर मांहे प्रवेश करावुं, तो राजा बनी राज्य पालुं. एम विमासी तत्काल विद्यानुं स्मरण करी राजाना शरीर मांहे पोतानो जीव घाल्यो, पोतानी काया प्रच्छन्न करीने नगर मांहे आव्यो. लोको राजा आव्यो देखी वधामणां कर्यां, राज्यमंदिरमां जइ सन्ना मांहे बेठो, परंतु जाते ब्राह्मण छे, माटे राज्यस्थितिनी रीतन्नात कांइ पण जाणतो नथी. तेने जंगली हरणना जेवो देखी प्रधान प्रमुख चिंतववा लाग्या के ए शुं राजानुं चित्त चलचल थयुं छे ! अथवा कोइ व्यंतरविशेष राजानुं रूप करी आव्यो छे के शुं थयुं छे ! एम विचारवा लाग्या. पछी जे वारे अंतेउरमां ते ब्राह्मण आव्यो, ते वारे पट्टराणी तो तेने देखतांज मूर्छा पामी. तेने घणा उपचार करी दासीए उठाडी बेठी कीधी, ते वारे कृत्रिम राजा बोल्यो के अहो देवि ! मुजने देखी तमे मूर्छा केम पाम्यां ? ते सांन्नली राणीने पण तत्काल बुद्धि उपनी, तेथी एवुं बोली के स्वामिन् ! तमे जे

वारे देशांतरे चाल्या हता, ते वारे में गोत्रदेवीने कह्युं हतुं के जो राजा कुशल क्षेमे घेर आवशे तो हे कुलदेवि ! हुं तमारी पूजा कर्या विना नेत्रे करी राजा सामुं जोइश नहीं. ते वरांसे में हमणां तमारी सामुं जोयुं तेथी मारी उपर देवीनो कोप थयो, माटे हवे देवीनी पूजा कर्या विना तमारुं मुख जोइश नहीं. एम सांभली कृत्रिम राजा पाछो सभाए जइ बेठो. तेने हाथीए दीठो, ते वारे हाथी मनमां चिंतववा लाग्यो जे आ पापी ब्राह्मणे मारी साथे विश्वासघात कीधो छे, पण एनुं भलुं न थाय, मने पण गुरुआज्ञा उल्लंघननुं पाप लाग्युं, गुरुए मने वार्यो तोपण में एने विद्या देवरावी तेनुं फल हुं एनो विश्वास करवाथी पाम्यो ॥ यतः ॥ मित्रद्रोही कृतघ्नश्च, यश्च विश्वासघातकः ॥ त्रयोऽपि नरकं यांति, यावच्चंद्रदिवाकरौ ॥ १ ॥ हुं पंडित मूर्ख थयो अथवा दैव वक्र थवाथी मने कुबुद्धि उपनी, भलुं करतां माठुं थयुं ॥ यतः ॥ दैवे वक्रे भवेत्पुंसां, सुकृतं दुःकृतोपमम् ॥ न सिध्यंति स्वकार्याणि, विधिना रचितान्यपि ॥ १ ॥ सर्व लोकने पुत्र मित्र कलत्रादिक परलोके गया पछी परायां थाय, पण हुं तो आ जन्ममांज पुत्रादिक सर्वथी विपर्यास पाम्यो, एवुं विमासी आलानस्तंभने उन्मूलीने हाथी वन भणी नीकल्यो, लोक तेनी पछवाडे चाल्यां. घणा उपाय

कीधा, पण हाथी पाछो वळ्यो नहीं, वनमां जतो रह्यो. लोक पाछां फरी घेर आव्यां. हाथी थाक्यो ते वारे एक वटवृक्ष नीचे जइ ऊभो रह्यो. तिहां एक पुरुष गोलीथी सूडाने मारतो हतो. ते देखी पोतानो जीव सूडाना शरीर मांहे घालीने बोल्यो. अरे ! बापडा वराक, जीव मारवाथी तुजने शुं लाभ थवानो छे ? माटे तुं मुजने ऊजायणी लइ जा अने बजारमां जइ सहस्र दिनारनुं मूल्य करजे, ते तुजने आपीने कोइ पण लइ जशे. एवुं सांभळी आहेडी हर्षवंत थइ सूडाने लइ ऊजायणीए आवी राजमार्गे जइ ऊभो रह्यो. जो कोइ मूल्य पूछे, तो तेने सहस्र टका सुवर्ण कहे. ते अवसरे कमलावती राणीनी दासी तिहां आवी, तेणे ते सूडो दीठो. तेणे केटलाएक श्लोक पूछ्या, ते वारे सूडे पण तत्काल अनेक श्लोक भण्या. दासीए जइ राणीनी आगल सूडाना समाचार कह्या. राणीए पण दासीने कह्युं के तमे तरत जइने ते सूडो लइ आवो. दासीए आवी मूल्य आपी सूडो लीधो. वधक पैसा लइ पोताने घेर गयो. दासी सूडाने राणी पासे लइ आवी. राणीए ते सूडाने देखी अत्यंत हर्ष पामी सुवर्णना पांजरामां तेने राख्यो. राणी पोताने हाथे स्नान भोजनादिक कराववा लागी.

हवे प्रस्तावे सूडो सहसात्कारे अनेक अनेक प्रश्नोत्तरादिक श्लोक भणे. ते जेमके

॥ आयुक्तः प्राणदो लोके, वियुक्तः साधुवल्लभः ॥ प्रयुक्तः स हि विद्वेषी, केवलः स्त्रीषु वल्लभः ॥ १ ॥ तस्योत्तरं ॥ हार ॥ भावार्थः—आ अक्षरे युक्त होय तो जे पदनो अर्थ लोकने विषे प्राणनो देनारो एवो थाय. तथा वि अक्षरे जो युक्त होय तो जे पदनो अर्थ साधुने वल्लभ एवो थाय छे. प्र अक्षरे करी जो युक्त होय तो जे पदनो अर्थ विद्वेषीने युक्त थाय छे, अने जो केवल एकलुंज पद राखीए तो तेनो अर्थ स्त्रीने वल्लभ एम थाय छे.॥ तेनो उत्तर (हार). हवे हारनी पहेलां आ मेलवीए तो आहार थाय छे तो तेथी जगत् जीवे छे अने हारथी प्रथम वि मेलवीए तो विहार थाय छे तो विहार साधुनेज घटे छे, ने जो हारनी प्रथम प्र मेलवीए तो प्रहार थाय छे, ते विद्वेषीनेज होय छे, अने केवल हारज राखीए तो स्त्रीने वल्लभ एवो पुष्पनो हारज कहेवाय छे ॥ वली सूक्तो कहे छे ॥ किं जीवियस्स चिह्नं, का भज्जा मयणरायस्स ॥ का पुप्फाणपहाणं, परणीया किं कुणइ बाला ॥ उत्तरं ॥ सास रइ जाइ ॥

भावार्थः—जीवतरनुं चिह्न शुं ? तो के (सास), मदनराज जे कामदेव तेनी स्त्री कोण ? तो के (रइ) एटले रति अने उत्तम पुष्प कयुं ? तो के (जाइ) एटले जाइनुं पुष्प, अने परणीने बाला शुं करे छे ? तो के (सासरइ जाइ) इत्यादिक प्रश्नोत्तर

करतां राणी तथा सूडो बेहु पोताना दिवस निर्गमन करे छे. एकदा राणी प्रत्ये सूडे पूछ्युं के तमे ए राजानी साथे बोल्यांज नहीं ते शामाटे ? ते वारे राणी बोली के हे शुकराज ! एने देखवाथी मारुं चित्त हिसतुं नथी. न जाणुं कोइ रूप परावर्त्त करी आव्यो छे, के केम छे ? माटे ज्यांसुधी मारुं मन साक्षी आपतुं नथी, त्यांसुधी एनी साथे हुं संभाषण मात्र पण नहीं करीश. एम सांभली राणीनुं मन निश्चल जाणी सूडो हर्ष पाम्यो.

एकदा कोइ घरोळीने मूवेली देखी सूडाए तेना शरीरमां पोतानो जीव घाल्यो, ते वारे सूडो मरण पाम्यो. ते देखी राणी मूर्छा पामी. तेने दासीए वायुथी सावधान करी, ते वारे राणी कहेवा लागी के ए सूडानी साथे हुं पण काष्ठमां बळी मरीश ! कृत्रिम राजाए ते वात सांभळीने राणीनी पासे आवी पूछ्युं के तुं सूडानी साथे काष्ठभक्षण करे छे ? राणीए कह्युं के मारा जीवनो एनी साथे मोहसंबंध छे, ते माटे एनी गति ते मारी गति. ते वारे कृत्रिम राजा बोल्यो के तुं काष्ठभक्षण न कर, हुं शुकने सचेतन करुं छुं. एम कही पोते पर्यंकमां पोढ्यो, राणीनुं मन मनाववा सारु पोतानुं चेतन काढी शुकना शरीरमां प्रक्षेप्युं अने पोते सूडो थयो. ते जोइ विक्रम

राजाए तत्काल पोतानो जीव घरोळीना शरीरमांथी काढीने पोताना मूल शरीरमां प्रक्षेप्यो, अने पोताना देहमां आवी पोते राजा थयो. उठीने राणी पासे गयो. राणी पण राजानुं मूल शरीर देखी हर्ष पामी. पछी राणीए राजा प्रत्ये सर्व वृत्तांत पूछ्युं. राजाए कह्युं के ए वृत्तांत आ सूडो कहेशे. ते वारे सूडे मूलथी सर्व वृत्तांत संभळावीने कह्युं के जे मित्रद्रोह करशे, ते मारी पेठे दुःखी थशे अने जे परोपकार करशे, ते राजानी पेठे सुख पामशे. ते सर्व वात सांभळी राणी हर्षवंत थइ, अने मननी भ्रांति गइ. एवामां एक व्यवहारीउं मरण पामतो दीठो. ते वारे राजाए ते सूडानो जीव व्यवहारीआनी खोळ मांहे राखी सुखीउं कर्यो. एवा सज्जन दुर्जननां लक्षण जाणी सज्जनता आदरवी ॥ ६४ ॥

हवे गुणीजनना संगनुं वर्णन करे छे.

धर्मं ध्वस्तदयो यशश्च्युतनयो वित्तं प्रमत्तः पुमान्, काव्यं निः-
प्रतिभस्तपः शमदयाशून्योऽल्पमेधाः श्रुतम्॥ वस्त्वालोकमलो-

चनश्चलमना ध्यानं च वाञ्छत्यसौ, यः संगं गुणिनां विमुच्य वि-
मतिः कल्याणमाकांक्षति ॥ ६५ ॥

अर्थः—(यः के०) जे (विमतिः के०) निर्बुद्धि (पुमान् के०) पुरुष (गुणिनां के०) गुणवान् पुरुषना (संगं के०) संगने (विमुच्य के०) मूकीने (कल्याणं के०) कल्याणने (आकांक्षति के०) इछे छे, (असौ के०) ए विमति पुरुष, (ध्वस्तदयः के०) गइ छे कृपा जेने एवो छतो (धर्मं के०) पुण्यनी इछा करे छे एम जाणवुं. तथा ते (च्युतनयः के०) गतन्याय एवो छतो (यशः के०) यशनी इछा करे छे, अर्थात् अन्यनो अपकारक छतो कीर्त्तिनी इछा करे छे. वली (प्रमत्तः के०) आलसु छतो (वित्तं के०) धननी इछा करे छे. वली (निःप्रतिभः के०) निर्बुद्धि छतो (काव्यं के०) काव्य करवानी इछा करे छे. वली (शमदयाशून्यः के०) उपशम अने दयाए रहित छतो (तपः के०) तपनी इछा करे छे. वली (अल्पमेधाः के०) अल्पबुद्धि-मान् छतो (श्रुतं के०) शास्त्रने जाणवानी इछा करे छे. वली (अलोचनः के०) ने-त्ररहित छतो (वस्त्वालोकं के०) घटपटादिक वस्तुने जोवाने इछे छे. (च के०) व-

ली (चलमनाः के०) चंचल चित्तवालो छतो (ध्यानं के०) एकाग्रध्याननी इछा करे छे. अर्थात् पूर्वोक्त वस्तु विना प्रथम कहेला पदार्थो ते प्राणीने प्राप्त थाय नहीं तेम गुणीना संग विना कल्याण प्राप्त थाय नहीं ॥ ६५ ॥

टीकाः—अथ गुणिसंगं वर्णयति ॥ धर्म्ममिति ॥ यो विमतिः निर्बुद्धिर्गुणिनां गुणवतां मनुष्याणां संगं संसर्गं विमुच्य त्यक्त्वा कल्याणं श्रेयो आकांक्षति । असौ विमतिः पुमान् ध्वस्तदयो गतकृपः निर्दयः सन् धर्म्मं पुण्यं वांछति । पुनश्च्युतनयो गतन्यायः अन्यायभाक् सन् यशः कीर्त्तिं वांछति । पुनः प्रमत्तः प्रमादी सन् वित्तं धनं वांछति । पुनर्निःप्रतिभर्निःप्रज्ञः प्रज्ञारहितः सन् काव्यं कर्तुं वांछति । पुनः शमेन उपशमेन दयया च हीनो रहितः पुमान् तपो वांछति । पुनरल्पमेधास्तुच्छबुद्धिर्बुद्धिरहितः सन् श्रुतं शास्त्रं पठितुं वांछति । पुनरलोचनो नेत्ररहितः सन् वस्तूनां घटपटादीनां विलोकनं दर्शनं वांछति । पुनश्चलमनाः चलचित्तः सन् ध्यानं वांछति । तथा गुणवतां संगं विना कल्याणं न ॥ ६५ ॥

भाषाकाव्यः—सवैया तेइसा ॥ सो करुणा विनु धर्म विचारत, नयन विना लखिवेकुं उमाहे ॥ सो डुरनीति चहे जस हेतु, सुधी बिनु आगमकों अवगाहे ॥

सो हिय सुन्न कवित्त करै, समता बिनु सो तपसौं तन दाहै ॥ सो थिरता बिनु ध्यान धरै सठ, जो सतसंग तजै हित चाहै ॥ ६५ ॥

वली पण गुणीना संगनुं वर्णन करे छे.

हरिणीवृत्तम् ॥ हरति कुमतिं भित्ते मोहं करोति विवेकिताम्,
वितरति रतिं सूते नीतिं तनोति गुणावलिम् (विनीततां) ॥
प्रथयति यशो धत्ते धर्म्मं व्यपोहति दुर्गतिम्, जनयति नृणां
किं नाभीष्टं गुणोत्तमसंगमः ॥ ६६ ॥

अर्थः—(नृणां के०) मनुष्योने (गुणोत्तमसंगमः के०) गुणे करी उत्तम जनोनो संग (किं के०) शुं (अभीष्टं के०) इछितने (न जनयति के०) नथी उत्पन्न करतो ? अर्थात् सर्व अभीष्टने उत्पन्न करेज छे. हवे ते गुणोत्तमसंग शुं अभीष्ट करे छे? ते कहे छे के (कुमतिं के०) कुबुद्धिने (हरति के०) हरे छे. तथा (मोहं के०) अज्ञानने (भित्ते के०) भेदे छे. वली (विवेकितां के०) तत्त्वातत्त्वविज्ञानपणाने (करोति के०) करे छे. वली (रतिं के०) संतोषने (वितरति के०) आपे छे. वली

(नीतिं के०) न्यायने (सूते के०) प्रसवे छे. तथा (गुणावलिं के०) गुणश्रेणीने (तनोति के०) विस्तारे छे. (विनीततां) एवो पाठ होय तो विनीतपणाने विस्तारे छे अने (यशः के०) कीर्तिने (प्रथयति के०) विस्तारे छे. वली (धर्मं के०) धर्मने (धत्ते के०) धारण करे छे. वली (दुर्गतिं के०) नरकतिर्यग्गतिने (व्यपोहति के०) टाले छे. एम गुणोत्तम जननो संग ते अभीष्ट पदार्थने आपे छे, माटे उत्तम जननोज संग करवो ॥ ६६ ॥

टीकाः—पुनर्गुणिसंगं वर्णयति ॥ हरतीति ॥ नृणां पुंसां गुणैः उत्तमाः गुणोत्तमास्तेषां संगमो नृणां किं किं अभीष्टं वांछितं न जनयति न करोति ? अपि तु सर्व्वमभीष्टं जनयति । गुणोत्तमसंगमः कुमतिं कुबुद्धिं हरति दूरीकरोति । पुनर्मोहं अज्ञानं भिंत्ते विदारयति । पुनर्विवेकितां तत्त्वातत्त्वविज्ञत्वं करोति । रतिं संतोषं वितरति ददाति । पुनर्नीतिं न्यायं सूते जनयति । पुनर्गुणावलिं गुणश्रेणीं तनोति । पाठांतरे तु 'विनीततां तनोति' । पुनर्यशः कीर्तिं प्रथयति विस्तारयति । पुनर्धर्म्मं धत्ते धरति । पुनर्दुर्गतिं नरकतिर्यग्गतिरूपां व्यपोहति विस्फोटयति । एवं गुणोत्तमसंगमः सर्वमभीष्टं जनयति ॥ ६६ ॥

भाषाकाव्यः—सवैया इकतीसा ॥ कुमति निकंद होइ महामोह मंद होइ, जगतमें सुजस विवेक जग हियसों ॥ नीतिको दिढाव होइ विनेको वढाव होइ, उपजे उछाह ज्यौं प्रधान पद लियेसों ॥ धर्मको प्रकाश होइ दुर्गतिको नाश होइ, वरते समाधि ज्यौं पीयूषरस पियसों ॥ तोष परि पूर होइ दोषदृष्टि दूर होइ, एते गुन होइ सतसंगतिके कियसों ॥ ६६ ॥

वली पण गुणीना संगनो उदेश कहे छे.

शार्दूलविक्रीडितवृत्तम् ॥ लब्धुं बुद्धिकलापमापदमपाकर्त्तुं, विहर्तुं पथि, प्राप्तुं कीर्त्तिमसाधुतां विधुवितुं धर्मं समासेवितुम् ॥ रोद्धुं पापविपाकमाकलयितुं स्वर्गापवर्गश्रियम्, चेत्त्वं चित्त समीहसे गुणवतां संगं तदंगीकुरु ॥ ६७ ॥

अर्थः—(चित्त के०) हे चित्त ! (चेत् के०) जो (त्वं के०) तुं (बुद्धिकलापं के०) बुद्धिसमूहने (लब्धुं के०) प्राप्त थवाने (समीहसे के०) इछा करे छे, वली जो (आपदं के०) आपत्तिने (अपाकर्त्तुं के०) टालवाने इछा करे छे, तथा जो

(पथि के०) न्यायमार्गमां (विहर्त्तुं के०) विचरवानी इछा करे छे, तथा जो (कीर्त्तिं के०) कीर्त्तिने (प्राप्तुं के०) प्राप्त करवानी इछा करे छे, वली जो (असाधुतां के०) असौजन्यने (विधुवितुं के०) टालवानी इछा करे छे, तथा जो (धर्मं के०) पुण्यने (समासेवितुं के०) सेववानी इछा करे छे, वली जो (पापविपाकं के०) अशुन्न कर्मफलने (रोद्धुं के०) रोकवानी इछा करे छे, तथा जो (स्वर्गापवर्गश्रियं के०) देवलोकनी अने मोक्षनी लक्ष्मीने (आकलयितुं के०) अनुन्नव करवानी इछा करे छे (तत् के०) तो (गुणवतां के०) गुणवान् पुरुषोना (संगं के०) संगने (अंगीकुरु के०) अंगीकार कर. अर्थात् गुणी जनना संगथी सर्व प्राप्त थाय छे ॥ ६७ ॥

टीकाः—पुनराह ॥ लब्धुं बुद्धिरति ॥ रे चित्त! चेद्यदि त्वं बुद्धिकलापं बुद्धिसमूहं लब्धुं प्राप्तुं समीहसे वांछसि । तत्तदा गुणवतां गुणिनां संगं संसर्गं अंगीकुरु विधेहि । पुनर्यदि विपदं आपदं अपाकर्तुं दूरीकर्तुं समीहसे । पुनर्यदि पथि न्यायमार्गे विहर्त्तुं विचरितुं वांछसि । पुनः कीर्त्तिं प्राप्तुं वांछसि । पुनरसाधुतां असौजन्यं विधुवितुं स्फेटयितुं समीहसे । पुनर्यदि धर्मं पुण्यं समासेवितुं कर्तुं समीहसे । पुनर्यदि

पापविपाकं अशुजकर्मफलं रोद्धुं समीहसे । पुनः स्वर्गापवर्गश्रियं देवलोकमोक्षलक्ष्मीं आकलयितुं अनुजवितुं समीहसे । तदा गुणवतां संगं कुरु ॥ ६७ ॥

जाषाकाव्यः—कुंमलियाबंद ॥ कौरा ते मारग गहे, जे गुनिजन सेवंत ॥ ज्ञानकला तिनके जगै, ते पावहिं जव अंत ॥ ते पावहिं जव अंत, समरस ते चित्त धारहिं ॥ ते अघ आपद हरहिं, धर्मकी रति विस्तारहिं ॥ होहि सहज जे पुरुष, गुनी वारिजके नौरा ॥ ते सुरसंपत्ति लहे, गहे ते मारग कौरा ॥ ६७ ॥

हवे निर्गुणना संगना दोषो कहे बे.

हरिणीवृत्तम् ॥ हिमति महिमांजोजे चंडानिलत्युदयांबुदे,
द्विरदति दयारामे (दमारामे) क्षेमक्षमाभृति वज्रति ॥ स-
मिधति कुमत्यग्नौ कंदत्यनीतिलतासु यः, किमजिलषता श्रेयः
श्रेयः स निर्गुणसंगमः ॥ ६८ ॥ इति गुणिसंगप्रक्रमः ॥ १५ ॥

अर्थः—(सः के०) ते (निर्गुणसंगमः के०) निर्गुणी जननो संगम, (श्रेयः के०) कल्याणने (अजिलषता के०) इछा करनार एवा पुरुषे (किं के०) शुं (श्रेयः के०)

आश्रय करवा योग्य छे ? ना, आश्रय करवा योग्य नथीज. ते केवो निर्गुणनो संगम छे ? तो के (यः के०) जे (महिमांभोजे के०) महत्त्वरूप कमलने विषे (हिमति के०) हिमनी पेठे आचरण करे छे. वली (उदयांबुदे के०) धन, धान्य, प्रताप अने वृद्धिरूप जे मेघ तेने विषे (चंडानिलति के०) प्रचंड वायुनी पेठे आचरण करे छे. वली (दयारामे के०) दयारूप आराम जे वन तेने विषे (द्विरदति के०) हस्ती-नी पेठे आचरण करे छे. अथवा दमारामे एवो पाठ होय तो इंद्रियदमनरूप वन तेने विषे हस्ती समान आचरण करे छे. वली (क्षेमक्ष्माभृति के०) कल्याणरूप पर्वतने विषे (वज्रति के०) वज्रनी पेठे आचरण करे छे. वली (कुमत्यग्नौ के०) कुमतिरूप जे अग्नि तेने विषे (समिधति के०) काष्ठनी पेठे आचरण करे छे. तथा (अनीतिलतासु के०) अन्याय वल्लिने विषे (कंदति के०) कंदनी पेठे आचरण करे छे. माटे ए अनीतिनो मूलरूप एवो जे निर्गुणसंगम तेने श्रेयने इच्छा करनार पुरुषे आश्रय न करवो. अहीं गिरिशुक अने पुष्पशुकनी कथानो दृष्टांत जाणवो ॥

॥ ६७ ॥ ए गुणीसंगप्रक्रम थयो ॥ १५ ॥

टीकाः—निर्गुणसंगमदोषमाह ॥ हिमतीति ॥ स निर्गुणसंगमः किमपि श्रेयः क-

किं श्रेयः किं आश्रयणीयः ? नाश्रयणीयः । सः
ल्याणं अभिलषता वांछता पुरुषेण
कः ? यो महिमा एव महत्त्वमेवांभोजं कमलं तस्मिन् हिमति हिम इवाचरति तद्वि-
नाशकत्वात् । पुनर्यो निर्गुणसंगमः उदय एव धनधान्यप्रतापवृद्धिरेवांभोदो मेघस्तत्र
चंडानिलति प्रचंडवायुरिवाचरति । पुनर्दया एव आरामो वनं अथवा दमाराम इति
पाठे दम एव आरामो वनं तत्र द्विरदति द्विरदवद् गजवदाचरति तदुन्मूलकत्वात् ।
पुनर्यः क्षेममेव कुशलमेव क्ष्माभृत् गिरिस्तत्र वज्रति वज्रवदाचरति । तच्छेदकत्वात् । पुनर्यः
कुमतिरेवाग्निस्तत्र समिधति समिध् इंधन इवाचरति । तद्वृद्धिहेतुत्वात् । पुनर्यः अ-
नीतिलतासु अन्यायवल्लिषु कंदति कंद इवाचरति । तन्मूलभूतत्वात् । ईदृशो निर्गुणसं-
गमः । श्रेयो वांछता पुरुषेण न श्रेयः नाश्रयणीयः ॥ अत्र गिरिशुकपुष्पशुकयोः कथा
॥ यतः ॥ माताप्येका पिताप्येको, मम तस्य च पक्षिणः ॥ अहं मुनिभिरानीतः, स
च नीतो गवाशिभिः ॥ १ ॥ गवाशिनां तु स वचः शृणोति, अहं तु राजन् मुनिपुंग-
वानाम् । प्रत्यक्षमेतद्भवताऽपि दृष्टं, संसर्गजा दोषगुणा भवंति ॥ इति वचनात् ॥ २ ॥
॥ ६७ ॥ सिंदूरप्रकरग्रंथ,—व्याख्यायां हर्षकीर्त्तिभिः ॥ सूरिभिर्विहितायां तु, गुणिसं-
गमप्रक्रमः ॥ इति पंचदशो गुणिसंगमप्रक्रमः ॥ १५ ॥

भाषाकाव्यः—छप्पयछंद ॥ जो महिमा गुन हने, तुहिन जिम वारिज वारे ॥ जो प्रताप संहरे, पवन जिम मेघ विडारे ॥ जो सम दम दल मलै, द्विरद जिम उपवन खंडे ॥ जो सुखेम छय करै, वज्र जिम शिखर विहंडै ॥ जो कुमति अग्नि इंधन सरिस, कुनयलता दिढ मूल जग ॥ सो दुष्ट संग दुःख पुष्ट कर, तजहिं विचछन तासु मग ॥ ६७ ॥

कथाः—सारा नरसानी संगत उपर सूडानी कथा कहे छेः—कोइ एक पोपटनी भार्याए बे बच्चां जण्यां. तेमां एकनुं नाम गिरिशुक अने बीजानुं नाम पुष्पशुक. ते बेहु मोटां थयां. एकदा तेने मूकीने सूडी चणवा गइ. पाछलथी बच्चांने पाराधीए पकड्यां. गिरिशुकने भिल्ल पासे वेच्यो, अने पुष्पशुकने ऋषि पासे वेच्यो ॥ यतः ॥ जो जाहिस्सं संगं, करेइ सो तादिसो होइ ॥ कुसुमेहिं सुवसंता, तिलावि तग्गंधिया हुंति ॥ १ ॥ पुनर्यथा ॥ निर्गुणेनापि सत्वेन, कर्त्तव्यो गुणसंगमः ॥ शशांकसंगतो मूर्ध्नि, धृतो रुद्रेण वा तमी ॥ २ ॥ एकदा एक राजा घोडा उपर चडी असवार थयो. ते घोडाए अपहर्यो थको अटवीमां भिल्लना घर आगलथी नीकल्यो ते वारे गिरिशुक बोल्यो के हे भिल्ल ! ए लाखीणो माणस जाय छे, तेने लूंटी ल्यो. ते सांभली राजा भयभ्रांत थयो थको नासतो नासतो अनुक्रमे तापसना आश्रम पासे आव्यो. तेने देखीने

तापसे सर्व
पुष्पशुक बोल्यो के हे ऋषि ! आ राजा आवे छे तेनी जक्ति करो. ते सांजली
विधि साचवी राजानी जक्ति करी. पछी राजाए सूडाने हाथमां बेसारी पूछ्युं के हे
शुक ! में तारां वचन पण सांजल्यां, अने जिल्लना सूडानां वचन पण सांजल्यां, प-
रंतु तुजमां अने तेनामां घणोज अंतर छे. ते सांजली शुक बोल्यो ॥ यतः ॥ माता-
प्येका पिताप्येको, मम तस्य च पक्षिणः ॥ अहं मुनिजिरानीतः, स तु नीतो गवा-
शिजिः ॥ १ ॥ गवाशिनां वै स गिरः शृणोति, अहं च राजन् मुनिपुंगवानाम् ॥ प्रत्य-
क्षमेतद्भवताऽपि दृष्टं, संसर्गजा दोषगुणा जवंति ॥ २ ॥ सर्पाः पिबंति पवनं न च दु-
र्बलास्ते, शुष्कैस्तृणैर्वनगजा बलिनो जवंति ॥ कंदैः फलैर्मुनिगणा गमयंति कालं, सं-
तोष एव पुरुषस्य परं निधानम् ॥ ३ ॥ एवां वचन सांजली हर्ष पामी सर्व सैन्य सहित
घेर आवीने ते राजा ते दिवसथी सत्संगति करवा लाग्यो. तेम सर्व जव्यजीवोए स-
त्संगतिज करवी ॥ इति गिरिशुक पुष्पशुकनो दृष्टांत ॥ ६० ॥ इतिसत्संगप्रक्रमः ॥१५॥

हवे इंद्रियजय करवा आश्रयी उपदेश कहे छे.

शार्दूलविक्रीडितवृत्तम् ॥ आत्मानं कुपथेन निर्गमयितुं यः
शूकलाश्वायते, कृत्याकृत्यविवेकजीवितहृतौ यः कृष्णसर्पायते ॥

यः पुण्यद्रुमखंडखंडनविधौ स्फूर्जत्कुठारायते, तं लुप्तव्रतमु-
द्रामिंद्रियगणं जित्वा शुभंयुर्भव ॥ ६९ ॥

अर्थः—हे साधुपुरुष ! (तं के०) ते (इंद्रियगणं के०) पंचेंद्रियसमूहने (जित्वा के०) जीतीने (शुभंयुः के०) शुभ युक्त (भव के०) था. ते पंचेंद्रियगण केवो छे ? तो के (यः के०) जे (आत्मानं के०) पोताना आत्माने (कुपथेन के०) कुमार्गे करी (निर्गमयितुं के०) लइ जवाने (शूकलाश्वायते के०) अडियल अश्वनी पेठे आचरण करे छे, कारण के ते इंद्रियरूप अश्वनो कुमार्गने विषे ज गमन करवानो स्वभाव छे. वली (यः के०) जे (कृत्याकृत्यविवेकजीवितहृतौ के०) कृत्य अने अकृत्य तेनो विवेक जे विचार तेरूप जीवितव्य जे जीवतर तेना हरण करवाने विषे (कृष्णसर्पायते के०) काला सर्पनी पेठे आचरण करे छे. वली (यः के०) जे (पुण्यद्रुमखंडखंडनविधौ के०) पुण्यरूप जे वृक्ष तेनुं जे वन तेना खंडनविधिने विषे (स्फूर्जत्कुठारायते के०) प्रकाशमान कुठारनी पेठे आचरण करे छे. वली (लुप्तव्रतमुद्रं के०) छेदी छे व्रतनी मर्यादा जेणे एवो छे. माटे ते इंद्रियगणनो जय करवो ॥ ६९ ॥

टीकाः—अथेंद्रियजयोपदेशमाह ॥ आत्मानमिति ॥ हे साधो ! तं इंद्रियगणं पंचेंद्रियसमूहं जित्वा विनिर्जित्य शुभंयुः शुभसंयुक्तो भव । तं कं ? यः इंद्रियगणः स्पर्शनरसनघ्राणचक्षुःश्रोत्रसमूहः आत्मानं स्वं कुपथेन कुमार्गेण निर्गमयितुं नेतुं शूकलाश्वायते डुर्विनीत अश्व इवाचरति । तस्य कुमार्गगामिखजावत्वात् । पुनर्यः इंद्रियगणः कृत्यं च अकृत्यं च कृत्याकृत्ये तयोर्विवेक एव विचार एव जीवितं जीवितव्यं तस्य हृतौ हरणे कृष्णसर्प्पायते कृष्णसर्प्प इवाचरति । पुनर्यः इंद्रियगणः पुण्यमेव डुमस्तेषां खंडं वनं तस्य खंडनविधौ बेदने स्फूर्जत्कुठारायते कुठार इवाचरति । कथंभूतं इंद्रियगणं ? लुप्तव्रतमुद्रं लुप्ता भिन्ना व्रतानां मुद्रा मर्यादा येन सः तं ॥ ६९ ॥

भाषाकाव्यः—गीताछंद ॥ जे जगत जीवकों कुपथ डारहिं, वक्र शिष्यत तुरगसें ॥ जे हरहिं परम विवेक जीवन, काल दारुन उरगसें ॥ जे पुन्न विरख कुठार तीखन, गुपत व्रत मुद्रा करें ॥ ते करन सुभट प्रहार भवि जन, तव सुमारग पग धरे ॥ ६९ ॥

वली पण इंद्रियजयनो उपदेश करे छे.

शिखरिणीवृत्तम् ॥ प्रतिष्ठां यन्निष्ठां नयति नयनिष्ठां विघटय,—त्य-

कृत्येष्वाधत्ते मतिमतपसि प्रेम तनुते ॥ विवेकस्योत्सेकं विद-
लयति दत्ते च विपदम्, पदं तद्दोषाणां करणनिकुरुंबं कुरु वशे ॥ ७० ॥

अर्थः—हे जव्य ! तुं (तत् के०) ते (करणनिकुरुंबं के०) इंद्रियसमूहने (वशे के०) वशमां (कुरु के०) कर. ते इंद्रियनिकुरुंब केवो छे ? तो के (यत् के०) जे (प्रतिष्ठां के०) महत्त्वने, प्रतिष्ठाने (निष्ठां के०) अवसान ते क्षय प्रत्ये (नयति के०) पमाडे छे. वली जे इंद्रियकुरुंब (नयनिष्ठां के०) न्यायनी स्थितिने (विघटयति के०) स्फोटन करे छे. वली (अकृत्येषु के०) नहि करवा योग्य जे अनाचार तेने विषे (मतिं के०) बुद्धिने (आधत्ते के०) धारण करे छे. वली (अतपसि के०) अविरतिने विषे (प्रेम के०) स्नेहने (तनुते के०) विस्तारे छे. वली (विवेकस्य के०) कृत्याकृत्य एटले आ करवा योग्य छे अने आ करवा योग्य नथी एवा विचारना (उत्सेकं के०) उन्नतपणाने (विदलयति के०) नाश करे छे. (च के०) वली (विपदं के०) विपत्तिने (दत्ते के०) आपे छे. माटे ते इंद्रियसमूह पोताने वश करवो. ते इंद्रियसमूह केवो छे ? तो के (दोषाणां के०) सर्व दोषोनुं (पदं के०) स्थानक छे ॥ ७० ॥

टीकाः—पुनराह ॥ प्रतिष्ठामिति ॥ जो जव्य ! तत्करणानां इंद्रियाणां निकुरुंबं स-

मूहं वशो कुरु वश्यतां नय । आत्मायत्तं विधेहि । तत्किं ? यत् करणनिकुरुंबं प्रतिष्ठां महत्त्वनिष्ठां अवसानं क्षयं नयति प्रापयति । पुनर्यत् नयनिष्ठां न्यायस्थितिं विघटयति स्फेटयति । पुनर्यत् अकृत्येषु अनाचारेषु मतिं बुद्धिं आधत्ते स्थापयति । पुनः अतपसि अविरतौ प्रेम तनुते स्नेहं कुरुते । पुनर्यत् विवेकस्य कृत्याऽकृत्यविचारस्य उत्सेकं उन्नतत्वं विदलयति विध्वंसयति । पुनर्यत् विपदं आपदं कष्टं दत्ते । तत् करणनिकुरुंबं इंद्रियसमूहं स्ववशे कुरु । कथंभूतं इंद्रियनिकुरुंबं ? दोषाणां पदं स्थानं ॥ ७० ॥

भाषाकाव्यः—सवैया इकतीसा ॥ एही है कुगतिके निदानी दुःख दोष दानी, इनहिकी संगतिसों संग भार वहियें ॥ इनकी मगनतासों विभौकों विनास होइ, इनहीकी प्रीतिसों अनीति पथ गहियें ॥ येही तप भावकों विडारे दुराचार धारे, इनहीकी तपत विवेक भूमि दहियें ॥ एही इंद्रि सुभट इनही जीते सोइ साधु, इनको मिलापी सोइ महा पापी कहियें ॥ ७० ॥

वली पण इंद्रियसमूहना जयनो उपदेश करे छे.

शार्दूलविक्रीडितवृत्तत्रयम् ॥ धत्तां मौनमगारमुज्झतु विधिप्रागल्भ्यमभ्यस्यता,-मस्त्वंतर्गण (स्त्वंतर्वण) मागमश्रममुपादत्तां

तपस्तप्यताम् ॥ श्रेयःपुंजनिकुंजभंजनमहावातं न चेदिंद्रिय,-
व्रातं जेतुमवैति भस्मनि हुतं जानीत सर्वं ततः ॥ ७१ ॥

अर्थः—हे साधु ! (मौनं के०) मौनने (धत्तां के०) धारण कर. वली (अगारं के०) घरने (उज्झतु के०) त्याग कर. वली (विधिप्रागल्भ्यं के०) सर्व आचारनुं जे चातुर्य तेने (अभ्यस्यतां के०) अभ्यास कर. वली (अंतर्गणं के०) गछवासमां अथवा (अंतर्वणे) एवो पाठ होय तो वनने विषे (आस्तु के०) हो. वली (आगमश्रमं के०) सिद्धांतना पठनने (उपादत्तां के०) अंगीकार कर. तथा (तपः के०) तपश्चर्याने (तप्यतां के०) तप. परंतु (चेत् के०) जो वली (इंद्रियव्रातं के०) इंद्रियसमूहने (जेतुं के०) जीतवाने एटले वश करवाने (नावैति के०) न जाणे छे (ततः के०) तो (सर्वं के०) पूर्वोक्त सर्व (भस्मनि के०) राखने विषे (हुतं के०) होमेलुं हुतद्रव्य जेवुं होय तेम वृथा (जानीत के०) जाण. ते इंद्रियव्रात केवो छे? तो के (श्रेयःपुंजनिकुंजभंजन के०) पुण्यसमूहरूप जे वन तेना भंजनने विषे (महावातं के०) वंटोलीया जेवो छे ॥ ७१ ॥

टीकाः—धत्तामिति ॥ हे साधो ! भवान् मौनं धत्तां कुरुतां । पुनः अगारं] गृहं उ-

ज्झतु त्यजतु । पुनर्विधिप्रागल्भ्यं सर्वाचारचातुर्यं अभ्यस्यतां कुर्वंतु । अंतर्गणं गह्वरं वासमध्ये अथवा अंतर्वणमिति पाठे वनमध्ये अस्तु भवतु । पुनरागमश्रमं सिद्धांतपठनं उपादत्तां अंगीकुरुतां । पुनस्तपस्तप्यतां करोतु । परं चेद्यदि इंद्रियव्रातं इंद्रियसमूहं जेतुं वशीकर्तुं नावैति न जानाति तदा सर्वं पूर्वानुष्ठानं भस्मनि रक्षायां हुतं वृथा जानीत । कथंभूतं इंद्रियव्रातं । श्रेयसां कल्याणानां पुंज एव निकुंजं तस्य भंजने महावातं वातूलसमानं ॥ ७१ ॥

भाषाकाव्यः—वृत्त उपर प्रमाणे ॥ मौनके धरैया, गृह त्यागके करैया, विधि रीतिके सधैया, परनिंदासों अपूठे हैं ॥ विद्याके अभ्यासी, गिरिकंदराके बासी, शुचि अंगके आचारी, हितकारी बैन बूठे है ॥ आगमके पाठी, मन लाय महा काठी, भारी कष्टके सहनहार, रमाहूंसों रूठे है ॥ इत्यादिक जीव, सब कारज करत रीतें, इंद्रिनके जीते, बिना सरवंग फूठे हैं ॥ ७१ ॥

वली कांइ विशेष कहे छे.

धर्मध्वंसधुरीणमभ्रमरसावारीणमापत्प्रथा,-लंकर्मीणमशर्मनिर्मितिकलापारीणमेकांततः ॥ सर्वान्नीनमनात्मनीनमनयात्यंतीन-

मिष्टे यथा,—कामीनं कुमताध्वनीनमजयन्नक्षौघमक्षेमभाक्
॥ ७२ ॥ इतींद्रियदमप्रक्रमः ॥ १६ ॥

अर्थः—(अक्षौघं के०) इंद्रियोना समूहने (अजयन् के०) नहीं वश करतो एवो प्राणी (अक्षेमभाक् के०) अकल्याणनो भजनारो थाय छे. ते केवो इंद्रियवृंद छे? तो के (धर्मध्वंसधुरीणं के०) धर्मनो नाश करवामां मुख्य छे, वली (अभ्रमरसावारीणं के०) सत्य ज्ञानने आछादन करनार छे, वली (आपत्प्रथालंकर्मीणं के०) कष्टना विस्तारमां पूर्ण कर्म करनार छे. तथा (अशर्मनिर्मितिकलापारीणं के०) अकल्याणना निर्माणने विषे चतुर छे, वली (एकांततः के०) निश्चये करी (सर्वान्नीनं के०) सर्वान्नभक्षक छे, वली (अनात्मनीनं के०) आत्मानो अहितकारक छे, तथा (अनयात्यंतीनं के०) अन्यायने विषे अत्यंत गामी तथा (इष्टे के०) इछित वस्तुने विषे (यथाकामीनं के०) स्वेछाए वर्त्तनारो छे, तथा (कुमताध्वनीनं के०) कुत्सितमतरूप जे मार्ग तेने विषे पांथीजन समान छे, तेने जीत्या सिवाय प्राणी कल्याणनो भजनारो थाय नहीं ॥ ७२ ॥ इति षोडश इंद्रियदमप्रक्रमः ॥ १६ ॥

टीकाः—पुनर्विशेषमाह ॥ धर्म्मध्वंसेति ॥ अक्षाणां इंद्रियाणां ओघं समूहं अजयन् अवशीकुर्व्वन् जनः अक्षेमभाक् अकल्याणभाग् भवति । कथंभूतं अक्षौघं । धर्मध्वंसे धुरीणः मुख्यस्तं । पुनरभ्रमरसस्य सत्यज्ञानस्य आवारीणं आवरणाय समर्थं आवारीणस्तं आच्छादकं । पुनः कथंभूतं ? आपदां कष्टानां प्रथायां विस्तारणे अलंकर्मीणः कर्मक्षमस्तं । पुनः किंभूतं ? अशर्मणां अकल्याणानां दुःखानां निर्मितौ निर्माणे करणे कलापारीणश्चतुरस्तं । पुनः किंभूतं ? एकांततो निश्चयेन सर्व्वान्नीनः सर्व्वान्नभक्षकस्तं । पुनः किंभूतं ? न आत्मने हितोऽनात्मनीनः तं आत्मनोऽहितं । पुनः किंभूतं ? अन-यान्यायेऽत्यंतीनोऽत्यतगामी तं । पुनः किंभूतं ? इष्टे इष्टवस्तुनि यथाकामं स्वेछया वर्त्तते इति यथाकामीनस्तं । पुनः किंभूतं ? कुमते कुत्सितमते अध्वनीनः पांथस्तं । ईदृशं इंद्रियसमूहं अजयन् सन् अक्षेमभाग् भवति ॥ ७४ ॥ यतः ॥ कुरंगमातंगपतंगभृंग,—मीना हताः पंचभिरेव पंच ॥ एकः प्रमादी स कथं न हन्यते, यः सेवते पंचभिरेव पंच ॥ १ ॥ इति ॥ सिंदूरप्रकरग्रंथ,—व्याख्यायां हर्षकीर्त्तिभिः ॥ सूरिभिर्विहितायां तु, इंद्रियप्रक्रमोऽजनि ॥ १६ ॥

भाषाकाव्यः—वृत्त उपर प्रमाणे ॥ धर्म तरु भंजनकों महामत्त कुंजरसें, आपदा भं-

डारके नरनकों करोरी हैं ॥ सत्यशील रोकवेकों पौढे परदार जैसें, डुर्गतिको मारग चलायवेकों धोरी हैं ॥ कुमतिके अधिकारी कुनय पथके विहारी; नद्रनाव इधन जरायवेकों होरी है ॥ मृषाके सहाइ डुर्नावनाके नाइ, ऐसे विषयानिलाषी जीव अघके अघोरी है ॥ ३२ ॥

कथाः—इंडियदमन उपर कथा कहे बे. नरतक्षेत्रे विशाला नगरमां चेडो नामे राजा राज्य करे बे. ते परम जिनधर्मी बे, तेने सात पुत्रीमां सुज्येष्ठा तथा चेलणा एवे नामे बे पुत्री बे. तेने मांहोमांहे घणो स्नेह बे, ते जेमके शयन, नोजन, स्नान, दान सर्व एकठां करे. ते गाममां कोइ परिव्राजिका आवीने पोताना शौचमूल धर्मनां वखाण करती फरे. एकदा ते परिव्राजिका कन्याना अंतेउरमां गइ. तिहां तेने सुज्येष्ठाए वाद करी जीती निर्नूडीने काढी मूकी, ते वखत पारिव्राजिकाए रोष करीने एवो निश्चय कस्यो के ए बालिकाने हुं मोटा संकटमां नाखुं, जेथी मारुं वैर वली आवे. एम चिंतवी पढी सुज्येष्ठानुं रूप पाटीया मांहे तादृश चितराव्युं. ते रूप श्रेणिक राजाने जइ देखाड्युं. ते जोइ श्रेणिक राजाए कामविह्वल थइने चेडा राजा उपर दूत मोकली कन्यानी मागणी करावी, पण चेडाए नाकारो कस्यो.

ते वारे अजयकुमार पोते श्रेणिक राजानुं तादृश रूप पट्ट उपर चितरावी, ते लइ विशाला नगरीए आवी अंतेउरनी पासे सुगंधी वस्तुनी डुकान मांमी बेठो. जे वारे अंतेउरमांथी सुज्येष्ठानी दासी सुगंधी वस्तु लेवा आवे, ते वारे तेने बहुमूली वस्तु अल्प मूल्ये आपे, अने ते दासीने श्रेणिक राजानुं रूप पण देखाडे. दासीए रूपने वखाणतां सुज्येष्ठानी आगल वात करी, ते रूप अणावी सुज्येष्ठाने देखाड्युं. ते जोइ मोह पामीने एकांते श्रेणिक राजा उपर रागिणी थइ. ते वात अजयकुमारे जाणीने एक सुरंग खोदावी ते मांहेथी श्रेणिकने तेमाव्यो, तेनी आगल सुज्येष्ठा पण आवी. पठी जेटलामां सुज्येष्ठा आजरण लेवा पाठी गइ, एटलामां सुज्येष्ठाने जोवा सारु चेलणा ते सुरंगमां आवीने राजा श्रेणिक आगल उजी रही. राजा तेनेज सुज्येष्ठा जाणी तत्काल घोमा उपर चमावीने चालतो थयो.

पाठलथी सुज्येष्ठा पण आजरणनो करंमीउं लइ सुरंगमां आवी, श्रेणिक राजाने जोवा लागी, पण राजाने चेलणा सहित दीठो नहीं, ते वारे पोकार कस्यो, ते चेमा राजाए सांजल्यो, ते वारे वाहार करवा दोड्यो, तेने सुरंग मांहे श्रेणिक राजाए आवतो दीठो, ते वखते सुलसाना बत्रीश पुत्र आवी उजा रह्या. राजा श्रेणिक चे-

लणाने लइ नीकली गयो. चेडा राजाए एक बाण मार्युं ते वागवाथी पुत्र पडी गया. समुदाय कर्म लाग्युं. पछी सुज्येष्ठाए विचार्युं जे में एक चिंतव्युं अने बीजुं थयुं. एम चिंतवी वैराग्यरंग वासित थइ श्रीवीरनी पासे जइ दीक्षा लइ तेने निरतिचारपणे पालवा लागी.

एवा अवसरमां कोइक पेढाल नामे विद्याधर अनेक विद्याउंनुं निधान छे, ते वृद्धपणुं पाम्यो, ते वारे विद्या देवा योग्य पात्र शोधवा लाग्यो, पण तादृश पात्र कोइ मले नहीं. जे सुशील कामरहित स्त्री होय, वली ब्रह्मचारिणी होय, तेना उपरथी जे पुत्र उत्पन्न थाय ते उत्तम जाणवो. तेवा पात्रने विद्या दीधी थकी बहु फलदायक थाय. एम निर्धारी तेवी स्त्री जोवा माटे पेढाल विद्याधर फर्या करे. तेणे एकदा दीक्षानी पालनारी शीलव्रत धरनारी सुज्येष्ठाने दीठी, ते वारे विद्याने बले अंधकार करी जेम सुज्येष्ठाना जाणवामां न आवे, तेवी रीते तेनी योनिमां भ्रमरानुं रूप करी वीर्य प्रक्षेप्युं. पछी थोडे थोडे तेने गर्भनां चिह्न प्रगट थवा लाग्यां, पण श्रीमहावीरे तेने निर्विकारी कही तेथी सज्यातर श्रावके तेने घरमां राखी. तिहां पूर्ण मासे पुत्र प्रसव्यो, तेनुं सात्यकी एवुं नाम दीधुं. ते साध्वीउंने उपासरे मोटो थवा लाग्यो. तिहां जे जे साध्वीउं जणे, ते सर्व सांजलतां थका तेणे सर्व शास्त्र कंठे करी लीधां.

एकदा कोइ कालसंवर विद्याधर अने सात्यकी श्रीवीरना समोसरणमां बेठा थका उपदेश सांजले डे. तिहां सात्यकीए जगवानने कह्युं के महाराज ! हुं मिथ्यात्वने परहुं करी समुद्रमां नाखी दइश. तेने जगवाने कह्युं के ताराथी तो उलटुं विशेष मिथ्यात्व प्रचलित थशे. तेटलामां कालसंवर विद्याधरे पूछ्युं के हे जगवन् ! मुजने कोनाथी जय थशे ? ते वारे जगवाने कह्युं के ए सात्यकी थकी तुजने जय थशे. ते सांजली विद्याधरे विचार्युं जे ए बालकनुं मारी आगल शुं गजुं ! एम चिंतवी सात्यकीने पगनी ठेश मारीने जतो रह्यो, ते देखी सात्यकीना मनमां मोटो विषाद उपन्यो. पडी सात्यकी जे वारे मोटो थयो, ते वारे पेढाले तेने रोहिणी प्रमुख विद्याउं शीखवी. ते विद्याउं साधतां कालसंवर विद्याधर तेने अंतराय करवा लाग्यो; परंतु पूर्वजन्मना वचनथी ते विद्यादेवी थोडे थोडे अनुक्रमे प्रसन्न थइ; केमके पूर्वजवे विद्यादेवीए ए सात्यकीने पांच जव पर्यंत विणास्यो हतो, परंतु पांचमे जवे कह्युं हतुं के बठ्ठे जवे तुजने उपक्रमे विद्या सीऊशे. ते माटे विद्या तत्काल सिद्ध थइ, पण ते वखते सात्यकीए पोतानुं मात्र ब महीनानुं आयुष्य रहेलुं सांजली फरी विद्यादेवीने कह्युं के स्वामिनि ! तमे मारी उपर कृपा करी सातमे जवे वहेलां सिद्ध थजो. ते

वचनथी सात्यकीने सातमे जवे ते विद्या तत्काल सिद्ध थइ. ते विद्यादेवीनो अत्यंत प्रेम सात्यकी उपर उपन्यो अने कहेवा लागी के तारा शरीर मांहे एवुं कोइ स्थानक देखाड के जिहां अमे षोडश विद्यादेवीउं आवीने वसीए. सात्यकीए पोतानुं मस्तक देखाड्युं, ते वारे देवीउंए ललाटमां छिद्र पाडी मांहे प्रवेश कीधो. तिहां छिद्रने स्थानके त्रीजुं नेत्र कीधुं.

एकदा सात्यकीए विचार्युं जे मारा पिता पेढाले मारी माता साध्वीनी निंदा करावी छे, एवो रोष लावीने पेढालने मारी नाख्यो. ते समाचार कालसंवर विद्याधरे सांजल्या, तेथी तेणे पण त्यांथी पलायन कीधुं. सात्यकी तेनी पाछल दोड्यो, कालसंवरे आकाशमां त्रण नगरीनी रचना करी घणा काल पर्यंत युद्ध कर्युं, तोपण सात्यकीए तेने मार्यो. पछी सात्यकी मदोन्मत्त थइ पोतानी इछाए अनेक परस्त्रीउंने जोगववा लाग्यो. साधुने योगे मिथ्यात्व तजी क्षायिक सम्यक्त्व पाम्यो. त्रिसंध्या जिनार्चा करे. एकदा उज्जयणी नगरीए चंद्रप्रद्योतन राजाना अंतेउरमां प्रवर्त्यो. राजाए क्रोध आणीने कह्युं के कोइ सात्यकीने मारनार छे ? ते वारे उमया गणिकाए राजा आगल सात्यकीने मारवानी कबुलात आपी. विश्वासघात करी मारी नखाव्यो ॥ ए प्र-

माटे इंद्रियलोलुपपणुं करवाथी ते बलवान् एवो सात्यकी नाश पाम्यो. माटे इंद्रियो वश राखवी ॥ ७२ ॥

हवे लक्ष्मीनो स्वभाव कहे छे.

निम्नं गच्छति निम्नगेव नितरां निद्रेव विष्कंभते, चैतन्यं मदिरेव पुष्य-
ति मदं धूम्येव दत्तेऽधताम् ॥ चापल्यं चपलेव चुंबति दवज्वालेव तृष्णा
नय,—त्युल्लासं कुलटांगनेव कमला स्वैरं परिभ्राम्यति ॥ ७३ ॥

अर्थः—(कमला के०) लक्ष्मी (निम्नं के०) नीच प्रत्ये (निम्नगा इव के०) नदीनी पेठे (गच्छति के०) जाय छे. वली ते लक्ष्मी (नितरां के०) अत्यंत (चैतन्यं के०) ज्ञानने (विष्कंभते के०) विनाश करे छे. केनी पेठे ? तो के (निद्रेव के०) निद्रानी पेठे. जेम निद्रा अचैतन्य करे छे, तेम लक्ष्मी पण ज्ञाननो नाश करे छे. तथा (मदं के०) अहंकारने (पुष्यति के०) पोषण करे छे. केनी पेठे ? तो के (मदिरेव के०) मदिरा जेम छे तेम. अर्थात् जेम मदिरा उन्मत्तताने करे छे तेम लक्ष्मी पण अहंकार जे मद तेने करे छे. वली ते लक्ष्मी (अंधतां के०) अंधपणाने (दत्ते के०) आपे

छे. केनी पेठे ? तो के (धूम्येव के०) धूमसमूहनी पेठे. वली (चापल्यं के०) चंचलपणाने (चुंबति के०) जजे छे. केनी पेठे ? तो के (चपलेव के०) विजलीनी पेठे जाणवुं. तथा (तृष्णां के०) मृगतृष्णाने अने (उल्लासं के०) उल्लासने (नयति के०) पमाडे छे, एटले लोजवांछाने वधारे छे. केनी पेठे ? तो के (दवज्वालेव के०) वनाग्निनी ज्वालानी पेठे अर्थात् जेम दवज्वाला तृषाने वधारे छे, तेम लक्ष्मी लोजने वधारे छे. वली लक्ष्मी (स्वैरं के०) स्वेछाए करी (परिभ्रमति के०) परिभ्रमण करे छे. केनी पेठे ? तो के (कुलटांगनेव के०) स्वैरिणी स्त्रीनी पेठे. जेम असती स्त्री स्वेछाए जमे छे, तेम लक्ष्मी पण स्वेछाए भ्रमण करे छे ॥ ७२ ॥

टीकाः—पुनर्लक्ष्मीस्वजावमाह ॥ निम्नमिति ॥ कमला लक्ष्मीः निम्नं नीचं प्रति गछति । केव ? निम्नगा इव नदीव । यथा नदी नीचं गछति । पुनः नितरां अतिशयेन चैतन्यं ज्ञानं विष्कंजते विनाशयति । केव ? निद्रेव । यथा निद्रा अचैतन्यं करोति । पुनर्लक्ष्मीर्मदं अहंकारं पुष्यति पुष्णाति । केव ? मदिरेव सूरेव । यथा मदिरा मदं उन्मत्ततां करोति । पुनः कमला अंधतां दत्ते अंधत्वं करोति । केव ? धूम्येव धूमसमूह इव । यथा धूमोऽप्यंधं करोति । पुनर्लक्ष्मीश्चापल्यं चुंबति जजति । केव ? चप-

ला इव विद्युदिव । पुनः कमला तृष्णां उल्लासं नयति । लोजवांछां वर्द्धयति । केव ? दवज्वाला इव । यथा दवज्वाला तृषां वर्द्धयति । पुनः कमला स्वैरं स्वेछया परिभ्रमति । केव ? कुलटांगना इव असती स्त्री इव । यथा असती स्त्री स्वेछया भ्रमति तद्वत् ॥ ७३ ॥

जाषाकाव्यः—सवैया तेइसा ॥ नीचकि ओर ढरे सरिता जिम, घुम बढावत नींदकि नांइ ॥ चंचलता प्रगटे चपला जिम, अंध करे जिम धुमकिं झांइ ॥ तेज करे त्रसना दव ज्यौं मद, ज्यौं मद पोषति मूढकि तांइ ॥ ए करतूत करे कमला जग, डोलत ज्यौं कुलटा बिनु सांइ ॥ ७३ ॥

वली धनना दोषो कहे छे.

दायादाः स्पृहयंति तस्करगणा मुष्णंति जूमीभुजो, गृह्णंति
बलमाकलय्य हुतभुग्भस्मीकरोति क्षणात् ॥ अंजः प्लावयति
क्षितौ विनिहितं यक्षा हरंते हठात् , दुर्वृत्तास्तनया नयंति
निधनं धिग्बह्वधीनं धनम् ॥ ७४ ॥

अर्थः—(धनं के०) द्रव्यने (धिक् के०) धिक्कार हो. ते केवुं द्रव्य छे ? तो के (ब-

ह्वधीनं के०) घणाकने आधीन रहेलुं छे. कोने कोने आधीन रहेलुं छे ? तो के ते धननी (दायादाः के०) गोत्रीया (स्पृहयंति के०) स्पृहा करे छे. वली तेने (तस्करगणाः के०) चोरना समूहो (मुष्णंति के०) चोरे छे. तथा (जूमीज्जुजः के०) राजाउं (छलं के०) कांइ पण मिषने (आकलय्य के०) दइने (गृह्णंति के०) ग्रहण करे छे. वली (हुतज्जुक् के०) अग्नि (क्षणात् के०) क्षणमात्रमां (जस्मीकरोति के०) जस्म करे छे, अने (अंजः के०) पाणी (प्लावयति के०) पलाली नाखे छे. तथा (क्षितौ के०) पृथ्वीने विषे (विनिहितं के०) स्थापन करेलुं जे धन, तेने (यक्षाः के०) व्यंतरो (हगात् के०) बलात्कारथी (हरंते के०) हरण करे छे. तथा (डुर्वृत्ताः के०) डुराचारी एवा (तनयाः के०) पुत्रो (निधनं के०) विनाशने (नयंति के०) पमाडे छे. माटे घणा जननी स्पृहायुक्त एवा धनने धिक्कार होजो ॥ ७४ ॥

टीकाः—धनस्य दोषानाह । धनं ऽव्यं धिक् अस्तु । धिक् निर्जर्त्सननिंदयोः । किंजूतं ? बह्वधीनं बह्वधीनत्वं । बहवः इछंति । कथं ? दायादाः गोत्रिणः स्पृहयंति ग्रहीतुं वांछंति । पुनस्तस्करगणाश्चोरसमूहाः मुष्णंति चोरयंति। पुनर्जूमीज्जुजो राजानः छलं आकलय्य मिषं दत्वा गृह्णंति । हुतज्जुक् वह्निः क्षणाद्वेगेन जस्मीकरोति ज्वाल-

यित्वा रक्षां करोति । पुनरग्निः पानीयं प्लावयति वाहयति । पुनर्यक्षनं क्षितौ विनिहितं स्थापितं सन् यक्षा व्यंतरा हठाद्बलात्कारेण हरंते अपहरंति । पुनर्दुर्वृत्ताः डुराचारास्तनयाः पुत्रा निधनं विनाशं नयंति प्रापयंति । एवं बह्वधीनं धनं धिगस्तु ॥७४॥

नाषाकाव्यः—वृत्त उपर प्रमाणे ॥ बंधु विरोध करे निशि वासर, कंचनकों नरवइ बल जोवै ॥ पावक दाहत नीर वहावत, व्है हग डंट निशाचर ढोवै ॥ नूतल रक्षत जक्ष हरैं करि, कै डुरवृत्ति कुसंगति खोवै ॥ ए उत्पात उठे धनके ढिग, दामधनी कहो क्यों सुख सोवै ॥ ७४ ॥

जे धन छे तेज मोहनुं उत्पादक छे, ते कहे छे.

नीचस्याऽपि चिरं चटूनि रचयंत्यायांति नीचैर्नतिम्, शत्रोरप्यगुणात्मनोऽपि विदधत्युच्चैर्गुणोत्कीर्त्तनम् ॥ निर्वेदं न विदंति किंचिदकृतज्ञस्यापि सेवाक्रमे, कष्टं किं न मनस्विनोऽपि मनुजाः कुर्वंति वित्तार्थिनः ॥ ७५ ॥

अर्थः—(मनस्विनोऽपि के०) मानवंत एटले डाह्या एवा पण (मनुजाः के०)

मनुष्यो (वित्तार्थिनः के०) द्रव्यार्थी थया छता, (किं कष्टं के०) कया कष्टने (न कुर्वंति के०) नथी करता ? अर्थात् सर्व प्रकारना कष्टने करेज छे. ते जेमकेः—वित्तार्थी जनो (नीचस्यापि के०) नीच जननी आगल (चटूनि के०) प्रिय एवां वचनोने (चिरं के०) घणा काल (रचयंति के०) बोले छे. तथा (नीचैः के०) नीच पुरुषो साथे (नतिं के०) प्रणामने (आयांति के०) करे छे. तथा (अगुणात्मनोऽपि के०) निर्गुण एवा पण (शत्रोरपि के०) शत्रुना पण (उच्चैः के०) अतिशये करी (गुणोत्कीर्त्तनं के०) गुणवर्णनने (विदधति के०) करे छे. वली (अकृतज्ञस्यापि के०) करेला कार्यने न जाणनारा एवा अकृतज्ञ स्वामीनी पण (सेवाक्रमे के०) सेवा करवामां (किंचित् के०) जरा पण (निर्वेदं के०) खेदने (न विदंति के०) जाणता नथी. एटले वित्तने वांछनारा जनो पूर्वोक्त सर्व काम करे छे.

टीकाः—धने मोहोत्पादकत्वमाह ॥ नीचस्येति ॥ मनस्विनो मानवंतो दृप्ता अपि मनुष्या वित्तार्थिनो द्रव्यार्थिनः संतः किं कष्टं न कुर्वंति ? अपि तु सर्वं कष्टं कुर्वंति। यथा नीचस्यापि नरस्याग्रे चिरं चिरकालं याचन् चटूनि चटुवचनानि प्रियवचनानि रचयंति जल्पंति। पुनर्नीचैर्नरैः समं नतिं आयांति प्रणामं कुर्वंति। पुनः शत्रोरपि

अगुणात्मनोऽपि निर्गुणस्यापि उच्चैरतिशयेन गुणोत्कीर्त्तनं गुणवर्णनं विदधति । पुनरकृतज्ञस्याऽपि प्रभोः सेवाक्रमे सेवाकरणे किंचित् स्तोकमपि निर्वेदं खेदं न विदंति न जानंति । वित्तवांछकाः संतः ॥ ७५ ॥

भाषाकाव्यः—सवैया इकतीसा ॥ नीच धनवंत ताहि निरखि असीस देह, वह न विलोके यह चरन गहतु है ॥ वह अकृतज्ञ नर यह अज्ञताको घर, वह मदलीन यह दीनता कहतु है ॥ वह चित्त कोप ठानै यह वाकों प्रभु मानै, वाके कुवचन सब याहिपैं सहतु है ॥ ऐसी गति धारै न विचारै कछु गुनदोस, अरथाभिलाषि जीव अरथ चहतु है ॥ ७५ ॥

उत्प्रेक्षा अलंकार वडे लक्ष्मीनुं स्वरूप कहे छे.

लक्ष्मीः सर्प्पति नीचमर्णवपयःसंगादिवांभोजिनी,—संसर्गादिव
कंटकाकुलपदा न क्वापि धत्ते पदम् ॥ चैतन्यं विषसन्निधेरिव
नृणामुज्जासयत्यंजसा, धर्मस्थाननियोजनेन गुणिभिर्ग्राह्यं तद-
स्याः फलम् ॥ ७६ ॥ इति लक्ष्मीस्वभावप्रक्रमः ॥ १७ ॥

अर्थः—(लक्ष्मीः के०) लक्ष्मी (नीचं के०) नीच पुरुष प्रत्ये (सर्पति के०) जाय छे. शामाटे जाय छे ? तो त्यां उत्प्रेक्षा करे छे के (अर्णवपयःसंगादिव के०) समुद्रजलना संग थकी. जेम जल छे ते नीचगामी छे तेम लक्ष्मी पण जलसंग थकी नीचगामी थइ छे; कारण के लक्ष्मीनी उत्पत्ति समुद्रजलथीज छे अर्थात् समुद्रजल पिता होवाथी ते नीचगामी छे. वली लक्ष्मी (क्वापि के०) कोइ पण (पदं के०) स्थानकने (न धत्ते के०) नथी धारण करती, केमके (अंभोजिनीसंसर्गात् के०) कमलिनीना संयोग थकी (कंटकाकुलपदा इव के०) कांटाए करी व्याप्त छे पग जेना एवीज जाणे होय नहीं ? एटले जेम कोइने कांटा वाग्या होय तेने पीडा होवाथी क्यांय पग मांडी शके नहीं तेम लक्ष्मी पण एक स्थले रहेती नथी. वली लक्ष्मी (नृणां के०) मनुष्योना (चैतन्यं के०) ज्ञानने (अंजसा के०) अनायासे करी (उद्वासयति के०) गमावे छे. शामाटे ? तो के ते (विषसन्निधेरिव के०) विषना सन्निधिपणा थकीज जाणे होय नहीं ? कारण के विषनुं अने लक्ष्मीनुं स्थानक एक समुद्रज छे. (तत् के०) ते कारण माटे (गुणिभिः के०) गुणी जनोए (धर्मस्थाननियोजनेन के०) धर्मस्थानमां तेना व्ययने करवे करी (अस्याः के०) आ लक्ष्मीनुं (फलं के०) फल (ग्राह्यं के०) ग्रहण कर-

वा योग्य छे. अर्थात् पुण्यकार्यमां जे लक्ष्मी वापरे, ते लक्ष्मीनुं फल पामे ॥ ७६ ॥ इति सप्तदश लक्ष्मीस्वभावप्रक्रमः ॥ १७ ॥

टीकाः—उपमानेन श्रीस्वरूपमाह ॥ लक्ष्मीः नीचं सर्प्पति नीचं जनं प्रति याति। कस्मात् ? उत्प्रेक्ष्यते । अर्णवपयःसंगात् समुद्रजलसंगमान्नीचगामिन्यभूत् । पुनर्लक्ष्मीः क्वापि पदं स्थानं च न धत्ते न स्थापयति । कीदृशी ? अंभोजिनीसंसर्गात् कमलिनीसंयोगादिव । कंटकाकुलपदा कंटकैर्व्याप्तचरणेव ॥ पुनर्लक्ष्मीर्नृणां पुंसां चैतन्यं ज्ञानं अंजसा वेगेनोच्चासयति गमयति। कस्मात् ? विषसंनिधेर्विषसामीप्यादिव लक्ष्म्याः विषस्य च समुद्रस्थानत्वात् तस्मात्कारणात् गुणिभिर्जनैर्धर्मस्थाननियोजनेन धर्मस्थानव्ययकरणेनास्याः लक्ष्म्याः फलं ग्राह्यं सफला कर्त्तव्येत्यर्थः ॥ ७६ ॥ सिंदूरप्रकरग्रंथ,—व्याख्यायां हर्षकीर्त्तिभिः ॥ सूरिभिर्विहितायां तु, लक्ष्म्याश्च प्रक्रमोऽजनि ॥ १७ ॥

भाषाकाव्यः—वृत्त उपर प्रमाणे ॥ नीचहीकी औरकुं उमंगी चले कमलासु, पिता सिंधु सलिल सुभाउ याहि दियो है ॥ रहे न सुस्थिर व्हे सकंटक चरन याको, वसि कंज मांहि कंजकोसो पद कियो है ॥ जाकों मिले हितसों अचेत करी मारे तांहि,

विषकी बहिन तातें विषको सो हियो है ॥ ऐसी ठगहारी जिन धरमके पथ फारी, करिकें सुकृत तिन याको फल लियो है ॥ ७६ ॥

कथाः—अंग देशने विषे धारापुर नगरनो सुंदर नामे राजा छे, तेनी मदनवल्लभा नामे राणी छे. तेने एक कीर्त्तिपाल, बीजो महीपाल एवे नामे बे पुत्र छे. ते राजा परस्त्रीपराङ्मुख छे, अने राणी पण शीलांगी छे. एकदा मध्यरात्रिए तेनी कुलदेवताए आवीने कह्युं के हे राजन्! तुजने दुर्दशा आवी छे, मोटुं कष्ट प्राप्त थशे. ते सांभळीने राजाए कह्युं के शुभाशुभ कर्म जे जीवे कर्यां होय, ते भोगव्या विना छूटको थाय नहीं ॥ यतः ॥ संपदि यस्य न हर्षो, विपदि विषादो रणेषु धीरत्वम् ॥ तं त्रिभुवनत्रयतिलकम्, जनयति जननी सुतं विरलम् ॥ १ ॥ माटे कीधां कर्म भोगव्या विना छूटे नहीं. एवुं धैर्य धरी प्रधानने राज्य भळावी राजा पोते तथा स्त्री अने बे पुत्र साथे लइ परदेश भणी चाल्यां. एकदा वगडामां कुटुंब सहित राजा सूतो छे ते वखते पोतानी पासे जे संबल हतुं, ते सर्व चोर लोको लइ गया. पछी वनफलादिके कुटुंबनिर्वाह करतो थको चालतो चालतो पृथ्वीपुर नगरे आव्यो. तिहां कोइ धनसागर व्यवहारीआना वाडामां रह्यो. राणी लोकोने घेर मजुरी करवा जाय छे तेने

स्वरूपवान् देखी मोहित थइ लोको मजुरी वधारे देवा लाग्या. तिहां विषयी लोकोना प्रसंगथी घणां दुःख सहन कर्यां, फरी जाग्योदय थयो ते वारे पोताने नगरे गयां. राज्य पाम्यां, सर्व कुटुंबने मळ्यां, सर्व मनोरथ सिद्ध थया. घणो काल सांसारिक सुख जोगवी वृद्धावस्थाए चारित्र लइ बेवट संलेषणा करी देवलोके गया. ए लक्ष्मीनी चंचलता विषे कथा जाणवी ॥ ७६ ॥

हवे दाननो उपदेश कहे छे.

चारित्रं चिनुते धिनोति विनयं ज्ञानं नयत्युन्नतिम्, पुष्णाति प्रशमं तपः प्रबलयत्युल्लासयत्यागमम् ॥ पुण्यं कंदलयत्यघं दलयति स्वर्गं ददाति क्रमात्, निर्वाणश्रियमातनोति निहितं पात्रे पवित्रं धनम् ॥ ७७ ॥

अर्थः—(पवित्रं के०) पवित्र एटले न्यायोपार्जित एवुं (धनं के०) धन (पात्रे के०) पात्रने विषे (निहितं के०) आरोपण कर्युं छतुं एटले दीधुं छतुं (चारित्रं के०) संयमने (चिनुते के०) वधारे छे. तथा (विनयं के०) विनयना गुणने (धि-

नोति के०) वधारे छे. तथा (ज्ञानं के०) श्रुतादिक ज्ञानने (उन्नतिं के०) उन्नति प्रत्ये (नयति के०) पमाडे छे. तथा (प्रशमं के०) उपशमने (पुष्णाति के०) पोषण करे छे. तथा (तपः के०) मास पक्ष क्षपणादिक जे तप तेने (प्रबलयति के०) बलवान् करे छे. एटले पारणादि योग थकी उत्साह करे छे. तथा (आगमं के०) सिद्धांत पठनादिकने (उल्लासयति के०) प्रबल करे छे. तथा (पुण्यं के०) पुण्यने (कंदलयति के०) उत्पन्न करे छे. (अघं के०) पापने (दलयति के०) खंडन करे छे. तथा (स्वर्गं के०) स्वर्गने (ददाति के०) आपे छे. तथा (क्रमात् के०) अनुक्रम थकी (निर्वाणश्रियं के०) मोक्षरूप लक्ष्मीने (आतनोति के०) विस्तारे छे, एटले आपे छे. अर्थात् सुपात्रमां आपेलुं धन पूर्वोक्त सर्व वस्तुने आपे छे ॥ ७७ ॥

टीकाः—दानोपदेशमाह ॥ चारित्रमिति ॥ पवित्रं न्यायोपार्जितं धनं वित्तं पात्रे सुपात्रे निहितं दत्तं सत् चारित्रं संयमं चिनुते वर्द्धयति । विनयं विनयगुणं धिनोति प्रीणयति । पुनर्ज्ञानं श्रुतादि उन्नतिं नयति प्रापयति । पुनः प्रशमं उपशमं पुष्णाति पोषयति । पुनस्तपो मासक्षपणादि प्रबलयति पारणादियोगादुत्साहयति । पुनरागमं सिद्धांतपठनादि उल्लासयति प्रबलं करोति । पुनः पुण्यमेव सत्कर्मेवनं कंदलयति कं-

दलायुक्तं करोति । पुनः अघं पापं दलयति खंडयति । पुनः स्वर्गं ददाति । क्रमाद्-नुक्रमेण निर्वाणश्रियं मोक्षलक्ष्मीं आतनोति दत्ते इत्यर्थः । सुपात्रे दत्तं धनं एतानि वस्तूनि करोति ॥ ७७ ॥

भाषाकाव्यः—कवित्त मात्रात्मक छंद ॥ चरन अखंड ज्ञान अति उज्ज्वल, विनय विवेक प्रसम अमलान ॥ अनघ सुभाव सुकृत गुनसंशय, उच्च अमर पद बंध विधान ॥ अगम गम्य रम्य तपकी रुचि, उद्धत सुगति पंथ सोपान ॥ ए गुन प्रगट होहि तिनके घट, जे नर देहिं सुपत्तहिं दान ॥ ७७ ॥

वली दानना गुणो कहे छे.

दारिद्र्यं न तमीक्षते न भजते दौर्भाग्यमालंबते, नाऽकीर्तिर्न
पराभवोऽभिलषते न व्याधिरास्कंदति ॥ दैन्यं नाद्रियते दुनोति
न दरः क्लिश्नंति नैवापदः, पात्रे यो वितरत्यनर्थदलनं दानं
निदानं श्रियाम् ॥ ७८ ॥

अर्थः—(यः के०) जे पुरुष (पात्रे के०) पात्र जनने विषे (दानं के०) दानने

(वितरति के०) आपे छे, (तं के०) ते पुरुषने (दारिद्र्यं के०) दारिद्र्य (न ईक्षते के०) जोतुं नथी. तथा ते पुरुषने (दौर्भाग्यं के०) दुर्भाग्यपणुं (न भजते के०) सेवतुं नथी. तथा (अकीर्त्तिः के०) अपयश (नालंबते के०) आश्रय करतो नथी. तथा ते पुरुषने (पराभवः के०) पराभव (नाभिलषते के०) अभिलाष करतो नथी. तथा (व्याधिः के०) व्याधि (न आस्कंदति के०) न शोषण करे छे. तथा (दैन्यं के०) दीनता (नाद्रियते के०) आदर करती नथी. तथा (दरः के०) भय, ते (न दुनोति के०) नथी पीडतो. तथा (आपदः के०) कष्टो (नैव क्लिश्नंति के०) नथीज पीडा करतां. ते दान केवुं छे ? तो के (अनर्थदलनं के०) उपद्रवोने नाश करनारुं छे तथा (श्रियां के०) संपत्तिनुं (निदानं के०) कारणभूत छे. ते माटे सुपात्रने दान जरूर आपवुं ॥ ७७ ॥

टीकाः—पुनर्दानगुणानाह ॥ दारिद्र्यं नेति ॥ यः पुमान् पात्रे सुपात्रे दानं वितरति प्रयच्छति । तं पुरुषं दारिद्र्यं न ईक्षते न पश्यति । पुनस्तं दौर्भाग्यं दुर्भगत्वं न भजते न सेवते । पुनस्तं अकीर्त्तिरपयशो नालंबते नाश्रयति । पुनस्तं पराभवः नाऽभिलषते न वांछति । पुनर्व्याधिर्मांद्यं तं नास्कंदति न शोषयति । पुनः दैन्यं दीनतां नाद्रियते

नाश्रयति । पुनर्दरो जयं न डुनोति न पीडयति । पुनः आपदो व्यसनानि कष्टानि तं न क्लिश्नंति न पीडयंति । यः पात्रे दानं ददाति । किंजूतं दानं ? अनर्थानां उपद्रवानां दलनं छेदनं । पुनः किंजूतं श्रियां संपदां निदानं कारणं ॥ ७७ ॥

जाषाकाव्यः—छप्पयछंद ॥ सो दरिड दलमलै, तांहि डुरजाग न गंजै ॥ सो न लहै अपमान, सो तो विपदा जय जंजे ॥ पिसुन कोइ डुःख देइ, तास तन व्याधि न वढइ ॥ तांहि कुजस परिहरै, सुमुख दीनता न कढइ ॥ सो लहै उच्च पद जगत-मैं, अघ अनर्थ नाशहि सरव ॥ कहिं कंवरपाल सो धन्य नर, जो सुखेत बोवै दरव॥७७॥

वली पण दानना गुणो कहे छे.

लक्ष्मीः कामयते मतिर्मृगयते कीर्त्तिस्तमालोकते, प्रीतिश्चुंबति
सेवते सुजगता नीरोगताऽऽलिंगति ॥ श्रेयःसंहतिरन्युपैति वृ-
णुते स्वर्गोपजोगस्थिति,—र्मुक्तिर्वांछति यः प्रयछति पुमान् पु-
ण्यार्थमर्थं निजम् ॥ ७८ ॥

अर्थः—(यः के०) जे (पुमान् के०) पुरुष (पुण्यार्थं के०) पुण्यने अर्थे (निजं

अर्थ के०) पोताना धनने (प्रयच्छति के०) आपे छे (तं के०) ते पुरुषने (लक्ष्मीः के०) कमला, ते (कामयते के०) इच्छे छे. तथा तेने (मतिः के०) बुद्धि (मृगयते के०) खोळे छे, शोधे छे. तथा (कीर्त्तिः के०) कीर्त्ति (आलोकते के०) जोवे छे. तथा तेने (प्रीतिः के०) प्रीति (चुंबति के०) चुंबन करे छे. तथा ते जनने (सुभगता के०) सौभाग्य (सेवते के०) सेवे छे. तथा (नीरोगता के०) आरोग्यता, ते (आलिंगति के०) आलिंगन करे छे. वळी तेने (श्रेयःसंहतिः के०) कल्याणपरंपरा (अभ्युपैति के०) सन्मुख आवे छे. तथा ते पुरुषने (स्वर्गोपभोगस्थितिः के०) स्वर्गना उपभोगनी पद्धति (वृणुते के०) वरे छे. तथा (मुक्तिः के०) मोक्ष (वांछति के०) वांछे छे. माटे द्रव्यने पुण्यने अर्थे अवश्य वापरवुं ॥ ७ए ॥

टीकाः—दानगुणानाह ॥ लक्ष्मीरिति ॥ यः पुमान् पुण्यार्थं श्रेयोऽर्थं निजं अर्थं स्वकीयं धनं प्रयच्छति ददाति । तं पुरुषं लक्ष्मीः कमला कामयते वांछति । पुनर्मतिर्बुद्धिस्तं मृगयते अन्वेषति । पुनः कीर्त्तिस्तं आलोकते पश्यति । पुनः प्रीतिरानंदस्तं चुंबति श्लिष्यति । पुनः सुभगता सौभाग्यं तं सेवते भजति । नीरोगता आरोग्यं तं

आलिंगति । पुनः श्रेयःसंहतिः कल्याणपरंपरा तं अभ्युपैति सन्मुखमायाति । पुनः स्वर्गोपभोगस्थितिर्देवलोकस्य भोगपद्धतिस्तं वृणुते वरयति । पुनर्मुक्तिर्मोक्षस्तं वांछति । यः पुण्यार्थं निजं अर्थं प्रयच्छति ॥ ७९ ॥

भाषाकाव्यः—सवैया इकतीसा ॥ ताहिकों सुबुद्धि वरै, रामा ताकी चाह करै, चंदन स्वरूप व्है सुजस तांहि अरचै ॥ सहज सुहाग पावै, सुरग समीप आवै, वार वार सुगतिरमनि तांहि चरचै ॥ तांइके सरीरकों आलिंगत अरोग ताइ, मंगल करै मिताइ प्रीति करै परचै ॥ जोइ नर व्है सुचेत चित्त समता समेत, धरमके हेतकों सुखेत धन खरचै ॥ ७९ ॥

वली पण दाननाज गुण कहे छे.

मंदाक्रांतावृत्तम् ॥ तस्यासन्ना रतिरनुचरी कीर्त्तिरुत्कंठिता श्रीः, स्निग्धा बुद्धिः परिचयपरा चक्रवर्त्तित्वऋद्धिः ॥ पाणौ प्राप्ता त्रिदिवकमला कामुकी मुक्तिसंप,—त्सप्तक्षेत्र्यां वपति विपुलं वित्तबीजं निजं यः ॥ ८० ॥ इति दानप्रक्रमः ॥ १८ ॥

अर्थः—(यः के०) जे पुरुष (निजं के०) पोतानुं (विपुलं के०) प्रचुर एवुं (वित्तबीजं के०) वित्तरूप बीजने (सप्तक्षेत्र्यां के०) सात क्षेत्रने विषे एटले १ जिनभुवन, २ जिनबिंब, ३ ज्ञानपुस्तक, ४ चतुर्विधसंघभक्ति, तेरूप सात क्षेत्रने विषे (वपति के०) वावे छे, एटले वापरे छे, (तस्य के०) ते पुरुषने (रतिः के०) समाधि (आसन्ना के०) समीप वर्त्तवावाली थाय छे, ढूकडी थाय छे. तथा तेने (कीर्त्तिः के०) कीर्त्ति ते (अनुचरी के०) दासी थाय छे, तथा (श्रीः के०) संपत्ति एटले धन धान्य हिरण्यरूप संपत्ति, ते मलवाने (उत्कंठिता के०) उत्कंठित थाय छे. तथा (बुद्धिः के०) बुद्धि (स्निग्धा के०) स्नेहवती थाय छे. तथा तेने (चक्रवर्त्तित्वऋद्धिः के०) सार्वभौमपणानी विभूति (परिचयपरा के०) सुपरिचित थाय छे. तथा तेने (त्रिदिवकमला के०) स्वर्गनी लक्ष्मी (पाणौ के०) हाथने विषे (प्राप्ता के०) प्राप्त थाय छे. तथा तेने (मुक्तिसंपत् के०) मुक्तिरूप संपत्ति, एटले सिद्धिरमा, ते (कामुकी के०) अभिलाषयुक्त थाय छे. माटे सात क्षेत्रने विषे धन वावरवुं ॥ ८० ॥ अहीं धनाशालिभद्र, चंदनबाला, सागरचंदश्रेष्ठीनी कथाना दृष्टांत जाणवा ॥ इति दानप्रक्रमः ॥ १८ ॥

टीकाः—नूयोऽप्याह ॥ तस्येति ॥ यः पुमान् निजं स्वकीयं विपुलं प्रचुरं वित्तमेव बीजं । सप्तक्षेत्र्यां १ जिनजुवन, २ बिंब, ३ पुस्तक, ४ चतुर्विधसंघजक्तिरूपायां वपति । तस्य पुरुषस्य रतिः समाधिरासन्ना समीपवर्त्तिनी स्यात्तथा तस्य कीर्त्तिरनुचरी सेविका स्यात्तथा तस्य श्रीः संपत् धनधान्यहिरण्यरूपा उत्कंठिता मिलनायोत्कंठिता स्यात्तथा तस्य बुद्धिरौत्पत्तिक्याद्या स्निग्धा स्नेहवती स्यात्तथा तस्य चक्रवर्त्तित्वरुद्धिः सार्वजौमविजूतिः परिचयपरा सुपरिचिता स्यात्तथा त्रिदिवस्य स्वर्गस्य कमला श्रीः पाणौ हस्ते प्राप्ता संगता स्यात्तथा मुक्तिसंपत् सिद्धिरमा कामुकी साजिलाषा स्याद्यः सप्तक्षेत्र्यां निजं वित्तबीजं वपति ॥ ७० ॥ अत्र धनाशालिजद्रचंदनबालासागरचंद्रश्रेष्ठिकथाः ॥ सिंदूरप्रकरग्रंथ,—व्याख्यायां हर्षकीर्त्तिजिः ॥ सूरिजिर्विहितायां तु, दानस्य प्रक्रमोऽजनि ॥ इति दानप्रक्रमः ॥ १७ ॥

जाषाकाव्यः—मात्रात्मक छंद ॥ ताकि रती किरती दासी सम, सहसा राजरुद्धि घर आवैं ॥ सुमति सदा उपजे ताके घट, सो सुरलोक संपदा पावै ॥ ताकी दिष्टि लखै सिवमारग, सो निरबंध जावना जावै ॥ जो नर त्यागि कपट कूंरा कहि, विधिसौं सपत खेत धन बोवै ॥ ७० ॥

कथाः—मणिमंदिर नामे नगर तेमां श्रीकर नामे व्यवहारीओ वसे छे. ते परम श्रीजिनभक्त छे, त्रिसंध्य जिनपूजा आवश्यक करे छे. चतुःपर्वी पोसह करे छे, तेने कुशलवती नामे भार्या छे, ते श्रावकने घेर बे सेवक छे, ते पण श्रावकनी संगतिथी जिनधर्म सेवन करे छे. एकदा ते बेहु सेवक पोतपोतामां वातो करतां बोल्या के ए भाग्यवंत शेठना त्रणे भव प्रत्यक्ष धन्य जाणवा. ते वाक्य सांभली शेठ हर्षवंत थयो. अन्यदा ते बेहु जण शेठनी साथे देरासरे गया, तिहां शेठ फूल लइ जिनभुवनमां गयो अने ते बे सेवक मांहेलो एक वडेरो सेवक पांच कुंभांनां फूल लइ भक्तिपूर्वक जिनपूजा करवा लाग्यो, अने बीजो सेवक उपाश्रये जइ व्याख्यान सांभलवा बेठो. उपवास करी बे पहोर पछी पोतानी पांतीमां आवेलुं धान्य पीरसावीने भक्तिपूर्वक ऋषीश्वरने वहोराव्युं, मन मांहे पोताने अत्यंत धन्यवाद आपतो रह्यो. एम अनुक्रमे शुभ कृत्य करतां आयु पूर्ण थये बेहु जण मरण पामी कलिंग देशनो शूरसेन नामे कोइक राजा छे, तेनी विजया नामे राणीनी कूखे पुत्रपणे जइ उपन्या. तेमां एकनुं नाम अमरसेन अने बीजानुं नाम वयरसेन पाड्युं. बेहु पुत्र राजाने परम वल्लभ छे, अनुक्रमे सर्व कलाना पारंगामी थया. ते बेहु सौभाग्यनिधान सर्वलोकने अत्यंत

प्रिय थयेला देखीने ओरमान माताए चिंतव्युं जे ज्यांसुधी ए बे पुत्र अहीं हशे, त्यांसुधी मारा पुत्रने राज्य मलशे नहीं.

एकदा राजा वसंतक्रीमाने अर्थे उद्याने गयो. एवामां राणीए रात्रिने समये पोतानुं शरीर नखे करी वलुख्युं. राजा घेर आव्यो, ते वारे राणीने पूछ्युं के तारुं शरीर कोणे वलुख्युं ? ते वारे राणी रोती थकी स्त्रीचरित्र करती बोली के हे स्वामिन्! ए काम सर्व तमारा कुमरोनुं जाणजो. ए बेहु मदोन्मत्त आवीने मने वलग्या, माटे हवे मने मारे पीयर मोकलो. ए तमारा मानीता पुत्र आगल माराथी रही शकाय नहीं. एवी वात सांजलतांज राजाए चंमालने तेमावीने कह्युं के आ बेहु कुपात्रोनां मस्तक कापी आज रात्रे मारी पासे लावजे. ते सांजली चंडाल बेहु कुमारो पासे गयो, अने राजानो हुकम कही संजलाव्यो. कुमर बोल्या के राजानो आदेश अमारे प्रमाण बे, तुं सुखे ते काम कर. ते वारे चंडाले कह्युं के तमे परदेश जणी जाओ, ए हुं तमारां पुण्यथी करुं हुं. तेमणे तेमज कर्युं, अने बेहु कुमर ठाना जता रह्या. मनमां विचारवा लाग्या के आपणां कर्मनी वात के जे आपणी ओरमान माताए आपणने कूडुं कलंक दीधुं. पाठलथी माताने पण आनंद थयो.

हवे ते बेहु जाइ पृथ्वीमां फरता फरता एक अटवीमां रात्रिने समये कोइ वृक्षनी नीचे विश्राम लेवा माटे रह्या. तिहां अमरसेन सूइ रह्यो अने वयरसेन जागतो बेठो. हवे ते वृक्षनी उपर सूडो सूडी बेठां छे, तेमां सूडी बोली जे आ वृक्ष नीचे बेठा छे, तेनुं आतिथ्य करीए. ते वारे सूडो बोल्यो के हे सूडी! आपणे तिर्यंच छीए, माटे आपणाथी शुं उपकार थाय? ते वारे सूडी बोली, जो उद्यम करीए तो सर्व साध्य छे, अने जो तमे उद्यम करो तो हुं पण सान्निध्य करुं. तेने सूडे कह्युं के तुं कहे ते हुं उद्यम करुं. सूडी बोली के त्रिकूट पर्वत उपर एक सहकार छे, ते एक विद्याधरे मंत्रीने वाव्यो छे, तेमां एक फल एवुं छे के तेनुं भक्षण करवाथी राज्य मले, अने बीजुं फल एवुं छे के जे तेनुं भक्षण करे, तेना मुखमांथी प्रतिदिन पांचसें पांचसें सोनामोहोरो पडे. माटे ते सहकारनां फल लावीने ए बे जणने आपीए तो परोणागत रुडी थाय. एम विमासी ते कीरयुग्म उड्युं, ते त्रिकूट पर्वते जइ सहकारनां फल लइ आवीने कुमरने आप्यां. प्रभाते फल लइ बेहु जण आगल चाल्या. पछी वयरसेने अमरसेनने दातण कीधा पछी राज्यपदवी मलवानुं फल दीधुं, ते तेणे भक्षण कीधुं. पछी फलनो उपचार कह्यो. बीजुं फल बीजे दिवसे दातण करी वयरसेने भक्षण

कीधुं. ते वारे तेना मुखमांथी पांचसें दिनारो पमी. ते धनथी आनंद पाम्या. पछी चालतां चालतां सातमे दिवसे कंचनपुर नगरे आव्या. तिहां नगरनी बहार वृक्षनी नीचे मोटा नाइने बेसामी वयरसेन जोजन लेवा सारु नगरमां आव्यो, ते अवसरे ते नगरनो राजा अपुत्रीयो मरण पाम्यो छे, ते वारे सर्व लोकोए पंच दिव्यनी अधिवासना कीधी. उद्यान मांहे पंच दिव्यथी अमरसेनने राज्य मळ्युं. तेने हाथी उपर बेसामी नगर मांहे लाव्या. राज्यपाटे स्थाप्यो. पछी नाइनी शोध करी पण किहांइ दीगे नहीं, अने वयरसेन नाइने राज्य मळ्युं सांजलीने कोइ गणिकाने घेर जइ रह्यो. तिहां प्रतिदिवस पांचसें सोनामोहोर मुखमांथी नीकळे, ते वेश्याने आपे, अने निश्चिंतपणे वेश्यानी साथे विषयिक सुख जोगवे.

एकदा वृद्ध अक्काए पोतानी पुत्रीने पूछ्युं के ए तारो जरतार कोइ पण धंधो कर्या विना क्यांथी द्रव्य लइ आवे छे ? ते वारे वेश्याए वयरसेनने पूछ्युं. वयरसेने स्त्रीनो मर्म्म अजाणते थके सर्व पोतानी साचेसाची हकीकत कही. ते प्रमाणे वेश्याए अक्कानी आगल कह्युं. ते वारे अक्काए औषध आपी वमन कराव्युं, तेमांथी गोटली काढी लीधी, प्रजाते वयरसेन दातण करी खोंखारो करवा लाग्यो, पण मुखमांथी

सोनामोहोर पमी नहीं. पछी द्रव्यहीन जाणी अकाए घरमांथी वहार काढी मूक्यो; ते वारे चिंतातुर थको वनमां वृक्षनी नीचे जइ बेठो.

तिहां रात्रिने समये चार चोरने पोतपोतामां वाद करता देखी कुमर पण चोरनी पेठे चोर थइने तेनी साथे जइ मल्यो अने ते चोरने विवाद करवानो व्यतिकर पूछ्यो. ते वारे चोर बोल्या के अमे बार वर्ष पर्यंत मोटो प्रयास करीने तेमां एक चाखमीनो जोडो, बीजो दंम अने त्रीजी कंथा, ए त्रण वस्तु एक सिद्धपुरुष पासेथी पाम्या छीए. ते सांजली कुमर बोल्यो के ए निर्जीव वस्तु माटे तमे आटलो क्लेश शा-वास्ते करो छो? एमां छे शुं? ते वारे चोर बोल्या के ए वस्तुमां मोटो प्रजाव छे, कारण के ते सिद्धपुरुषे छ महीना पर्यंत देवता आराध्यो, त्यारे तेणे संतुष्ट थइने आकाशगामिनी विद्या माटे चाखमी दीधी, अने ए दंम छे ते सर्व शस्त्रनो निवारण करनार छे, तथा त्रीजी कंथा जे छे, ते दिनदिन प्रत्ये पांचसें सोनामोहोरनी आपनारी छे, माटे ए त्रणे वस्तुनी अमने वहेंचण करी आपो तो अमारो विवाद मटी जाय. तेने कुमरे कह्युं के तमे दूर जइ बेसो. हुं विचार करीने तमोने वहेंची आपुं. पछी कुमरे लब्ध लक्ष्मीनी पेरे कंथा पहेरी अने दंम हाथमां धारण कस्यो तथा चाखमी पगमां पहे-

रीने ते आकाशे ऊडी गयो. पाछलथी चोर विलखा थया थका अन्यत्र स्थानके जता रह्या.

कुमर पण देशांतर जइ पांच दिवसे पाछो तेज गाममां आव्यो, तिहां दररोज पांचसें सोनामोहोर तेने कंथा आपे, ते लइ वाटमां विलास करतो फरे. तेने गणिकाए दीठो, त्यारे तेनी पासे आवी पोतानो अपराध खमावी अक्काए तेने पोताने घेर आण्यो. कुमर पण गणिकानो विश्वास न करतो कंथाने कोइ व्यवहारीआने घेर मूकी पोते वेश्याने घेर रह्यो थको तेनी साथे विषय संबंधी सुखविलास जोगवे छे.

एकदा वली गणिकाए अक्काना कहेवाथी वयरसेन कुमरने पाडुकानुं वृत्तांत पूछ्युं, तेनो कुमरे खरेखरो हारद कह्यो. तेणे जइ अक्काने कह्यो. अक्का युक्ति करी वयरसेन प्रत्ये कहेवा लागी के हे वत्स ! तारा वियोगथी निरंतर मारी पुत्री मूर्छा पामती, ते वारे में समुद्र मध्ये जे यक्षनुं देरुं छे, तेनी यात्रा करवानी प्रतिज्ञा कीधेली छे, पण तिहां जवाइ शकातुं नथी. ए मोटुं संकट छे. ते वात कुमरे सत्य मानीने अक्काने साथे लइ चाखडी पहेरी यक्षना मंदिरे जइ द्वार आगल चाखडी ऊतारी मांहे गयो. एटलामां पाछलथी चाखडी ऊपाडीने अक्का पोताने घेर जती रही. कुमर आवी जूवे छे, तो चाखडी अने अक्का बेहु दीठां नहीं. ते वारे अक्कानुं कर्त्तव्य जाणी

विलखो थयो. सर्व स्थले आकाने जोइ, पण क्यांइ दीठी नहीं. ते वारे कुमर त्यांज वेट उपर अटकी रह्यो.

एवामां एक विद्याधर तिहां आव्यो. तेणे कुमरने पूब्युं के तुं क्यांथी आव्यो गे ? कुमरे तेने सर्व वृत्तांत कह्युं. विद्याधर बोल्यो के तुं चिंता म कर. हुं तुजने तारे स्थानके पहोंचाडीश. ज्यांसुधी हुं यक्षनी यात्रा करी आवुं, त्यांसुधी तुं इहां रहेजे अने आ मोदक प्रमुख आपुं बुं, ते तुं जूख लागे ते वारे खाजे, पण पेला वृक्षनी नीचे जइश नहीं. एम कही विद्याधर यक्षने देरे गयो.

पाबलथी कुमरे जइ ते वृक्षनुं फूल तोमी सुंघ्युं, एटले तरतज ते गधेमो बनी गयो. जे मोटानुं कह्युं न करे, ते डुःखी थाय.

पन्नर दिवसने अंतरे ते विद्याधर आव्यो. तेणे कुमरने गर्दनाकारे दीगे, ते वारे बीजा वृक्षनुं फूल सुंघामीने फरी स्वाजाविक जेवो हतो तेवो मनुष्य कस्यो. कुमरे ते बेहु वृक्षनां फूल लइ पोतानी गांठे बांध्यां. पबी विद्याधरे तेने तिहांथी उपामीने कांचनपुरे जइ मूक्यो. फरी आकाए दीगे, ते वारे कहेवा लागी के हे स्वामिन् ! तमे केवी रीते आव्या ? कुमरे कह्युं के हुं देवताना प्रजावथी अहीं आव्यो बुं. तेने वली

पण अक्का कपट वचने करी घेर तेनी आवी अने कहेवा लागी के हे स्वामिन्! तमे देरा मांहे गया, एटलामां कोइ एक देवताए आवीने चाखनी सहित मुजने उपाडीने समुद्रमां नाखी दीधी. हुं मोटा कष्टे मरती मरती घेर आवी छुं. कुमर बोल्यो के मारी उपर यक्षे तुष्टमान थइने घणुं द्रव्य मुजने आप्युं, तथा वली बे औषधिउं आपी, तेमां एक औषधिना योगथी नवयौवनपणुं प्राप्त थाय. ते सांजली अक्का बोली, जो मारी उपर उपकार करी नवयौवनपणुं मने बक्षो, तो मने सर्वेनी उंशीयाल, ताबेदारी टली जाय. तेने कुमरे तत्काल एक फूल सुंघाड्युं जेथी अक्का तत्काल रासजी थइ गइ, तेनी उपर कुमर चढी बेठो अने हाथमां पूर्वोक्त दंड लइ ते रासजीने नगर मांहे सर्वत्र फेरववा लाग्यो. दंडना प्रहार माथामां मारीने आकुलव्याकुल करी. ते जोइ सर्व गणिकाउंए एकत्र मली राजा आगल जइ फरियाद करी. राजाए तरत कुमरने पकडवा माटे घणा सिपाइउं मोकल्या, ते सर्वने दंडना योगथी कुमरे जीती लीधा. ते वात सेवकोए जइने राजानी आगल कही, ते वारे राजाए पोतानुं सर्व सैन्य तेने पकडवा माटे मोकल्युं, तेने पण कुमरे जीती लीधुं.

पछी राजाए अनुमानथी उंलख्यो जे आ मारो जाइ छे. ते वारे तेने जइ पगे

लाग्यो. ते जोइ सर्व लोके जाण्युं जे आ तो राजानो भाइ छे. एम दीठाथी सर्व हर्षवंत थया अने अक्काना कपटनी वात सर्व तेना मुखथी सांभली सहु कोइ कहेवा लाग्या के आ कूटणी अत्यंत लोभ करवा गइ तो रासभी थइ. पछी कुमरे गोटली तथा चाबखी प्रमुख जे कांइ पोतानी वस्तुओ तेणे लीधेली हती, ते तेनी पासेथी पाछी लइ शिखामण आपी. रासभी टाली दीधी अने स्वाभाविक रूप करी दीधुं.

कुमरोए केटलाक काल पर्यंत तिहांज राज भोगव्युं. पछी पिताए तेमावीने बेहु पुत्रोने जुदा जुदा देशोनां राज्य आप्यां, ते बेहु भाइओए सलाहसंपथी भोगव्यां. बेहु भाइ साथे रह्या, वृद्धावस्थाए ज्ञानीना उपदेशथी वैराग्य पामी दीक्षा लइ आयु पूर्ण थये मरण पामी देवलोके गया ॥ इति दानपूजा विषयिक अमरसेन वयरसेन कथा संपूर्ण ८०

हवे तपनो उपदेश करे छे.

शार्दूलविक्रीडितवृत्तत्रयम् ॥ यत्पूर्वार्जितकर्मशैलकुलिशं यत्का-
मदावानल,—ज्वालाजालजलं यदुग्रकरणग्रामाहिमंत्राक्षरम् ॥
यत्प्रत्यूहतमःसमूहदिवसं यल्लब्धिलक्ष्मीलता,—मूलं तद्विविधं
यथाविधि तपः कुर्वीत वीतस्पृहः ॥ ८१ ॥

अर्थः—(वीतस्पृहः के०) गइ छे स्पृहा जेने एवो छतो एटले नियाणादिके रहित छतो (तद्विविधं के०) ते नाना प्रकारनां (तपः के०) तपने (यथाविधि के०) शास्त्रोक्त विधिए करी (कुर्वीत के०) करे. ते केवुं तप छे ? तो के (यत्पूर्वार्जितकर्मशैलकुलिशं के०) जे पूर्वभवे उपार्जन करेलां कर्मो तेज शैल जे पर्वत तेने विषे वज्र समान छे. जेम पर्वतने छेदवामां वज्र बलवान् होय छे तेम जाणवुं. अर्थात् कर्मरूप पर्वत तेने छेदवामां वज्र समान छे. वली (यत् के०) जे तप (कामदावानलज्वालाजालजलं के०) कामरूप जे दावानल तेनी ज्वालानी जे जाल एटले समूह तेने विषे जल समान छे. तथा (यत् के०) जे तप (उग्रकरणग्रामाहिमंत्राक्षरं के०) दारुण एवो जे इंद्रियसमूह तेरूप अहि जे सर्प तेने मंत्राक्षर समान छे. तथा (यत् के०) जे तप (प्रत्यूहतमःसमूहदिवसं के०) विघ्नरूप जे अंधकारसमूह तेने विषे दिवस समान छे. तथा (यत् के०) जे तप (लब्धिलक्ष्मीलतामूलं के०) संपत् तेज लता तेने उत्पन्न करवामां मूल समान छे, माटे ते तप सर्व जनोए करवुं ॥७२॥

टीकाः—अथ तपस उपदेशद्वारमाह ॥ यदिति ॥ वीता गता स्पृहा वांछा यस्य स वीतस्पृहः सन् वांछानिदानादिरहितः सन् तद्विविधं तपः कुर्वीत कुर्यात् । तत्किं ?

यत्तपः पूर्वे भवेऽर्जितानि उपार्जितानि यानि कर्माणि तान्येव शैलाः पर्वतास्तेषु कुलिशं वज्रं । तेषां भेदकत्वात् । पुनर्यत्तपः काम एव दावानलो दवाग्निस्तस्य ज्वालानां जालः समूहस्तत्र जलं । तद्विनाशकत्वात् । पुनर्यत्तपः उग्रो दारुणो यः करणानां इंद्रियाणां ग्रामः समूहः स एवाहिः सर्पस्तस्य मंत्राक्षरं सर्पमंत्रस्य बीजं । पुनर्यत्तपः प्रत्यूहा एव विघ्ना एव तमसोऽधकारस्य समूहस्य तत्र दिवसं दिनं । तन्नाशकत्वात् । पुनर्यत्तपो लब्धिलक्ष्मी संपदेव लता वल्ली तस्याः मूलं उत्पादनकंदं । तद्विविधं नानाप्रकारं यथाविधि तपः कुर्वीत ॥ ८१ ॥

भाषाकाव्यः—छप्पयछंद ॥ जो पूरवकृत कर्म, पिंड गिरिदलन वज्रधर ॥ जो मनमथ दवज्वाल, माल संहरन मेघझर ॥ जो प्रचंड इंद्रिय भुयंग, थंभन सुमंत्र वर ॥ जो विभाव संतमस पुंज, खंडन प्रभातकर ॥ जो लबधि वेलि उपजत घन, तासु मूल दिढता सहित ॥ सो सुतप अंग बहु विधि दुविध, करहिं विबुध वांछारहित ॥ ८१ ॥

वली पण तपनो महिमा कहे छे.

यस्माद्विघ्नपरंपरा विघटते दास्यं सुराः कुर्वते, कामः शाम्यति

दाम्यतींद्रियगणः कल्याणमुत्सर्पति ॥ उन्मीलंति महर्द्धयः कलयति ध्वंसं चयः कर्मणाम्, स्वाधीनं त्रिदिवं शिवं च भवति श्लाघ्यं तपस्तन्न किम् ॥ ८१ ॥

अर्थः—(तत् के०) ते (तपः के०) तप (किं के०) शुं (श्लाघ्यं के०) वखाणवा योग्य (न के०) नथी ? ना वखाणवायोग्य छेज. केम श्लाघ्य छे ? तो के (यस्मात् के०) जे तप थकी (विघ्नपरंपरा के०) कष्टोनी पंक्ति (विघटते के०) नाश पामे छे. तथा जे तप थकी (सुराः के०) देवताउं (दास्यं के०) दासपणाने (कुर्वंते के०) करे छे. वली जे तप थकी (कामः के०) काम (शाम्यति के०) शांति पामे छे. वली जे तप थकी (इंद्रियगणः के०) इंद्रियोनो गण (दाम्यति के०) दमने प्राप्त थाय छे. वली जे तप थकी (कल्याणं के०) कल्याण जे छे, ते (उत्सर्पति के०) प्रसरे छे. वली जे तप थकी (महर्द्धयः के०) तीर्थंकरादि संपत्तिउं, (उन्मीलंति के०) विकासने प्राप्त थाय छे. वली जे तप थकी (कर्मणां के०) ज्ञानावरणीयादिक कर्मनो (चयः के०) समूह (ध्वंसं के०) नाशने (कलयति के०) पामे छे.

वली जे तप थकी (त्रिदिवं के०) स्वर्ग अने (च के०) वली (शिवं के०) मोक्ष (स्वाधीनं के०) स्वाधीन जेम होय तेम (भवति के०) थाय छे. माटे ते तप वखाणवा लायक नथी शुं ? अर्थात् वखाणवा लायकज छे ॥ ७१ ॥

टीकाः—तपःप्रभावमाह ॥ यस्मादिति ॥ तत्तपः किं श्लाघ्यं न प्रशस्यं न? अपितु श्लाघ्यमेव। तत्किं ? यस्मात्तपसो विघ्नपरंपरा कष्टश्रेणिर्विघटते विलयं याति । पुनः सुरा देवा दास्यं दासत्वं कुर्वते । पुनर्यस्मात्कामः शाम्यति उपशमं याति । पुनः इंद्रियगणः पंचेंद्रियसमूहो दाम्यति दमं प्राप्नोति । पुनर्यस्मात्तपसः कल्याणं श्रेय उत्सर्पति प्रसरति । पुनर्यस्मान्महर्द्धयस्तीर्थंकरादिसंपदः उन्मीलंति विकसंति । पुनर्यस्मात् कर्मणां ज्ञानावरणीयादीनां चयः समूहो ध्वंसं नाशं कलयति प्रयाति । पुनर्यस्मात्तपसः त्रिदिवं स्वर्गः च पुनः शिवं मोक्षः स्वाधीनं स्वायत्तं भवति । तत्तपः किं श्लाघ्यं न स्यात्? अपितु स्यात् ॥ ७१ ॥

भाषाकाव्यः—सवैय्या इकतीसा ॥ जाके आदरत महारिद्धिसों मिलाप होइ, मदन अव्याप होइ, कर्मवन दाहिये ॥ विघन विनास होइ गिरवान दास होइ, ग्यानको प्रकास होइ, जौं समुद्र थाहिये ॥ देव पद खेल होइ, मंगलसों मेल होइ, इंद्रि-

नकी जेल होइ, मोखपंथ गाहियें ॥ जाकी ऐसी महिमा, प्रगट कहै कौंरपाल, तिहुं लोक तिहुं काल सो तप सराहियें ॥ ८२ ॥

वली पण तपनो महिमा कहे छे.

कांतारं न यथेतरो ज्वलयितुं दक्षो दवाग्निं विना, दावाग्निं न यथेतरः शमयितुं शक्तो विनांभोधरम् ॥ निष्णातः पवनं विना निरसितुं नान्यो यथांभोधरम्, कर्मौघं तपसा विना किमपरं हर्तुं समर्थस्तथा ॥ ८३ ॥

अर्थः—(यथा के०) जेम (कांतारं के०) वनने (ज्वलयितुं के०) बालवाने (दवाग्निं विना के०) दावाग्नि विना (इतरः के०) बीजो (दक्षः के०) डाह्यो (न के०) नथी. वली ते (दावाग्निं के०) दावाग्निने (शमयितुं के०) शमन करवाने (अंभोधरं विना के०) मेघ विना (इतरः के०) बीजो (शक्तः के०) समर्थ (न के०) नथी. वली (यथा के०) जेम (अंभोधरं के०) मेघने (निरसितुं के०) टालवाने

(पवनं विना के०) पवन विना (अन्यः के०) बीजो (न के०) न (निष्णातः के०) निपुण होय. (तथा के०) तेम (कर्मौघं के०) कर्मसमूहने (हर्तुं के०) छेदवाने (तपसा विना के०) तप विना (अपरं के०) बीजो (किं के०) शुं (समर्थः के०) (समर्थ होय? ना होयज नहीं ॥ ७२ ॥

टीकाः—अन्यच्च ॥ कांतारमिति ॥ यथा कांतारं वनं ज्वलयितुं दवाग्निं विना इतरोऽन्यो दक्षो न । पुनर्यथा दावाग्निं शमयितुं विध्यापयितुं अंभोधरं मेघं विनाऽपरः शक्तो न समर्थो न । पुनर्यथांऽभोधरं मेघं निरसितुं दूरीकर्तुं पवनं विनाऽन्यो न निष्णातो न निपुणः । तथैव कर्मौघं कर्मसमूहं हर्तुं भेत्तुं तपसा विनाऽन्यत्किं समर्थं? अपितु न किमपि । किंतु तप एव कर्माणि हर्तुं समर्थः ॥ ७३ ॥

भाषाकाव्यः—सवैया तेइसा ॥ ज्यौं वर कानन दाहनकों दव, पावकसो नहि दूसरो दीसै ॥ ज्यौं दव आग बुझै ततछन, जो न अखंडित मेघ वरीसै ॥ ज्यौं प्रगटै नहि जौं लगि मारुत, तौं लगि घोरघटा नहि खीसै ॥ त्यौं घटमें तपवज्र विना दृढकर्म कुलाचल और न पीसै ॥ ७२ ॥

वळी पण तपनो महिमा कहे छे.

॥ स्रग्धरावृत्तम् ॥ संतोषस्थूलमूलः प्रशमपरिकरः स्कंधबंधप्रपंचः, पंचाक्षीरोधशाखः स्फुरदभयदलः (स्फुटविनयदलः) शीलसंपत्प्रवालः ॥ श्रद्धांभःपूरसेकाद्विपुलकुलबलैश्वर्यसौंदर्यभोगः, स्वर्गादिप्राप्तिपुष्पः शिवसुखफलदः स्यात्तपःपादपोऽयम् ॥ ८४ ॥ इति तपःप्रक्रमः ॥ १९ ॥

अर्थः–(अयं के०) आ (तपःपादपः के०) तपरूप जे वृक्ष, ते (शिवसुखफलदः के०) शिवसुखना फलने देनारुं (स्यात् के०) होय. ते केवुं तपःपादप छे? तो के (संतोषस्थूलमूलः के०) संतोष जे मूर्छात्याग, तेज छे स्थूल मूल जेनुं एवुं तथा (प्रशमपरिकरः के०) क्षमा तेज छे परिकर जेने एवुं तथा (स्कंधबंधप्रपंचः के०) आचारांगादि जे श्रुतस्कंध, तेनी बंध जे रचना तेरूप छे विस्तार जेनो एवुं तथा (पंचाक्षीरोधशाखः के०) पचेंद्रियनो जे रोध तेरूप छे शाखाउं जेमां एवुं तथा (स्फुरदभयदलः के०) देदीप्यमान एवुं जे अभयदान, तेरूप छे पत्र जेमां एवुं अथवा

(स्फुटविनयदलः) एवो पाठ होय तो स्फुट छे विनयरूप पत्र जेमां एवुं तथा (शीलसंपत्प्रवालः के०) ब्रह्मचर्यव्रतरूप छे प्रवाल एटले नवपल्लव जेमां एवुं तथा (श्रद्धांभःपूरसेकात् के०) श्रद्धारूप जलनुं जे पूर, तेनुं जे सिंचवुं, ते थकी (विपुलकुलबलैश्वर्यसौंदर्यभोगः के०) विस्तीर्ण एवां कुल, बल, ऐश्वर्य अने सौंदर्य तेरूप छे भोग जेने एवुं छे. अथवा विपुलकुलबलैश्वर्यरूप जे विस्तार तेनो छे भोग जेमां एवुं छे तथा (स्वर्गादिप्राप्तिपुष्पः के०) स्वर्गादि जे देवलोक, ग्रैवेयक, अनुत्तरविमान, तेनी जे प्राप्ति, तेज छे पुष्प जेमां एवुं जे तपोवृक्ष, ते शिवसुखफलने आपे छे ॥ ७४॥ अहीं वसुदेव हरिकेशीबलनी कथानो दृष्टांत ग्रहण करवो ॥ इति तपःप्रक्रमः ॥ १९॥

टीकाः—पुनराह ॥ संतोष इति ॥ अयं तप एव पादपो वृक्षः शिवसुखफलदः स्यात् शिवसुखान्येव फलानि ददातीति मोक्षफलदाता स्यात् । किंभूतस्तपःपादपः ? संतोषो मूर्छात्याग एव स्थूलं पुष्टं मूलं यस्य स । पुनः किंभूतः ? प्रशम क्षमा एव परिकरः परिवारो यस्य स । पुनः किंभूतः ? स्कंधा आचारांगादिश्रुतस्कंधास्तेषां बंधो रचना एव प्रपंचो विस्तारो यस्य स । पुनः किंभूतः ? पंचानां अक्षाणां इंद्रियाणां समाहारः पंचाक्षी । पंचाक्ष्याः रोध एव शाखा यस्य स । पुनः किंभूतः ? स्फुरत् देदीप्य-

मानं अजयं अजयदानमेव दलं यस्य स । अथवा स्फुटविनयदलः स्फुटानि प्रकटानि विनयरूपाणि दलानि पत्राणि यस्य स । पुनः किंभूतः ? शीलसंपदेव ब्रह्मव्रतमेव प्रवाला नवपल्लवा यस्य स । पुनः किंभूतः ? श्रद्धा रुचिः सैवांभः पानीयं तस्य पूरस्तेन सेकः सिंचनं तस्मात् । विपुलानि विस्तीर्णानि कुलबलैश्वर्यसौंदर्याण्येव भोगो यस्य स । अथवा विपुलकुलबलैश्वर्यमेव भोगो विस्तारो यस्य स । पुनः किंभूतः ? स्वर्गादीनां देवलोकग्रैवेयकानुत्तरविमानानां प्राप्तिरेव पुष्पाणि यस्य स । ईदृशस्तप एव पादपो वृक्षः स शिवसुखमेव फलं ददाति ॥ ७४ ॥ अत्र नंदिषेण वसुदेव हरिकेशीबलकथा ॥ सिंदूरप्रकराख्यस्य, व्याख्यायां हर्षकीर्त्तिभिः ॥ सूरिभिर्विहितायां तु, तपसः प्रक्रमोऽजनि ॥ इति तपःप्रक्रमः ॥ १९ ॥

भाषाकाव्यः—छप्पय छंद ॥ सुदिढ मूल संतोष, प्रसम गुन प्रवल पेढ ध्रुव ॥ पंचाचार सु साख, सील संपति प्रवाल हुव ॥ अभय अंग दल पुंज, देव पद पुहप सुमंडित ॥ सुकृत भार विस्तार, भाव सिव सुफल अखंडित ॥ परतीति धार जल सिंचि किय, अति उतंग दिन दिन पुषित ॥ जयवंत जगत यह सुतप तरु, मुनि विहंग सेवहिं सुखित ॥ ७४ ॥

कथाः—तप उपर नंदिषेण मुनिनो दृष्टांत जाणवो. जेणे बार हजार वर्ष तपस्या करी अंत्यावस्थाए अणसण लइ पोतानुं दौर्भाग्य संभारी तपना प्रभावथी आवते भवे स्त्रीवल्लभ थाउं ! एवुं नियाणुं बांधी काल करी देवलोके गयो. तिहांथी चवीने समुद्रविजयनो लघु भाइ वसुदेव नामे थयो, तिहां गतजन्मना तपःप्रभावथी ७२००० स्त्रीनुं पाणिग्रहण कर्युं. एवी रीते तपना फलथी विशेष सुख भोगवी यावत् अंत्यावस्थाए शुभ भावमां रही काल करी देवलोके पहोतो, माटे सर्व भव्यजीवे श्रीनंदिषेणनी पेठे क्षमा सहित तप करवुं ॥ इति तप उपर नंदिषेणमुनि कथा ॥ ७४ ॥

हवे शुभ भावनो उपदेश करे छे.

शार्दूलविक्रीडितवृत्तद्वयम् ॥ नीरागे तरुणीकटाक्षितमिव त्यागव्यपेतप्रभो, सेवाकष्टमिवोपरोपणमिवांभोजन्मनामश्मनि ॥
विष्वग्वर्षमिवोषरक्षितितले दानार्हदर्चातपः,—स्वाध्यायाध्ययनादि निःफलमनुष्ठानं विना भावनाम् ॥ ७५ ॥

अर्थः—(भावनां विना के०) एक शुभ भावना विना (दानार्हदर्चा के०) सु-

पात्र दान, जिनपूजन, (तपःस्वाध्यायाध्ययनादि के०) तप अने स्वाध्यायनुं अध्ययन तेज छे आदिमां जेने एवुं (अनुष्ठानं के०) अनुष्ठान ते सर्व (निःफलं के०) निष्फल थाय छे. केनी पेठे? (नीरागे के०) राग रहित एवा पुरुषने विषे (तरुणीकटाक्षितमिव के०) युवतीकटाक्ष विक्षेपज जेम, एटले नीरागी पुरुषने जेम स्त्रीना कटाक्षनो विक्षेप व्यर्थ थाय छे, तेम अहीं पण जाणवुं. वली केनी पेठे? तो के (त्यागव्यपेतप्रभौ के०) दान रहित स्वामीने विषे (सेवाकष्टं इव के०) सेवाकष्ट जे छे तेज जेम. एटले दान न आपनार पुरुषनी पासे सेवाकष्ट ते जेम व्यर्थ थाय छे, तेम जाणवुं. वली केनी पेठे? तो के (अश्मनि के०) पाषाणने विषे (अंभोजन्मनां के०) कमलोनुं (उपरोपणमिव के०) वाववुंज जेम. वली केनी पेठे? तो के (ऊषरक्षितितले के०) क्षारभूमिने विषे अथवा पर्वतने विषे (विष्वग्वर्षमिव के०) चोतरफ मेघनी वृष्टिज जेम. एटले क्षारभूमिने विषे अथवा पर्वतने विषे चारे तरफ पडनारो मेघ जेम निष्फल थाय तेम भावना विना सर्व अनुष्ठान निष्फल थाय ॥७५॥

टीकाः—भावोपदेशमाह ॥ नीरागे इति ॥ भावनां शुभभावं विना दानार्हदर्चातपःस्वाध्यायाध्ययनादि सर्वं अनुष्ठानं क्रियाकरणं निःफलं स्यात्। दानं च अर्हदर्चा

देवजिनपूजा च तपश्च स्वाध्यायश्च ते आदौ यस्य तत् दानजिनपूजातपःसिद्धांतपठनादिकं जावं विना निःफलं । किमिव ? नीरागे पुरुषे तरुणीकटाक्षितमिव युवतीकटाक्षविक्षेपणमिव । यथा नीरागे तरुणीकटाक्षा निःफलाः । पुनः किमिव ? त्यागव्यपेतप्रभौ । दानरहिते कृपणे स्वामिनि सेवाकष्टं इव अदातरि स्वामिनि सेवाकष्टं निःफलं । पुनः किमिव ? अश्मनि पाषाणे अंजोजन्मनां कमलानां जपरोपणं वापनं इव । यथा पाषाणोपरि कमलवापनं निःफलं । पुनः किमिव ? जषरक्षितितले जषरजूमौ विष्वग्वर्षमिव यथोषरजूमौ पर्वते मेघवर्षणं निःफलं ॥ तथा शुजजावनां विना सर्वा क्रिया निःफला ॥ ७५ ॥

जाषाकाव्यः—ज्यौं नीराग पुरुषके सन्मुख, पुरकामिनि कटाक्ष करि जठी ॥ ज्यौं धन त्याग रहित प्रभु सेवत, ऊसरमें वरिषा जिम वूठी ॥ ज्यौं शिलमांहि कमलको बोवन, पवन पकरि ज्यौं बंधिय मूठि ॥ ए करतूति होइ जिम निःफल, त्यौं विनु जाव क्रिया सब जूठी ॥ ७५ ॥

वली पण शुज जावोपदेश करे छे.

सर्वं ज्ञीप्सति पुण्यमीप्सति दया धित्सत्यघं भित्सति, क्रोधं

दित्सति दानशीलतपसां साफल्यमादित्सति ॥ कल्याणोपचयं
चिकीर्षति भवांभोधेस्तटं लिप्सते, मुक्तिस्त्रीं परिरिप्सते यदि
जनस्तद्भावयेद्भावनाम् ॥ ८६ ॥

अर्थः—(यदि के०) जो (जनः के०) मनुष्य (सर्वं के०) सर्व वस्तुने (ज्ञीप्सति के०) जाणवाने इछे छे, जो वली (पुण्यं के०) धर्मने (ईप्सति के०) इछे छे, जो वली (दयां के०) दयाने (धित्सति के०) धारण करवाने इछे छे, जो वली (अघं के०) पापने (मित्सति के०) मानवाने इछे छे, जो वली (क्रोधं के०) क्रोधने (दित्सति के०) खंडन करवाने इछे छे, जो वली (दानशीलतपसां के०) दान, शील, तपना (साफल्यं के०) साफल्यने (आदित्सति के०) ग्रहण करवाने इछे, छे, जो वली (कल्याणोपचयं के०) कल्याणसमूहने (चिकीर्षति के०) करवाने इछे छे, जो वली (भवांभोधेस्तटं के०) भव जे संसार तेरूप जे समुद्र तेना तटने (लिप्सते के०) पामवाने इछे छे, जो वली (मुक्तिस्त्रीं के०) मुक्तिरूपी स्त्रीने (परिरिप्सते के०) आलिंगन करवाने इछे छे (तत् के०) तो (भावनां के०) शुभ भावनाने (भावयेत् के०) भावना करे ॥ ८६ ॥

टीकाः—पुनराह ॥ सर्वेति ॥ यदि जनो लोकः सर्वं वस्तु ज्ञीप्सति ज्ञातुं इच्छति । पुनर्यदि जनः पुण्यं धर्म्मं ईप्सति वांछति । पुनर्यदि जनो दयां कृपां धित्सति धर्तुमिच्छति । पुनर्यदि अघं पापं मित्सति मातुं इच्छति । पुनर्यदि क्रोधं दित्सति खंडितुं इच्छति । पुनर्यदि दानशीलतपसां साफल्यं सफलत्वं आदित्सति गृहीतुमिच्छति । पुनर्यदि कल्याणोपचयं कुशलं वृद्धिं चिकीर्षति कर्तुमिच्छति । पुनर्यदि भवांभोधेः संसारसमुद्रस्य तटं पारं लिप्सते लब्धुमिच्छति । पुनर्यदि मुक्तिस्त्रीं सिद्धिरमणीं परिरिप्सते आलिंगितुं इच्छति जनस्तदा भावनां शुभभावं भावयेत् कुर्यादित्यर्थः ॥ ७६ ॥

भाषाकाव्यः—सवैय्या इकतीसा ॥ पूरव करम दहै, सरवज्ञ पद लहै, गहै पुण्यपंथ फिरि पापमें न आवनां ॥ करुनाकी कला जागे, कठिन कषाय भागे, लागे दान सील तप सफल सुहावनां ॥ पावे भवसिंधु तट खोलै मोख द्वारपट, सर्म साधि धर्मकी धरामैं करे धावनां ॥ एते सब काज करे अलखकों अंग धरे, चेली चिदानंदकी अकेली एक भावना ॥ ७६ ॥

वली फरीने पण कांइक विशेष कहे छे.

पृथ्वीवृत्तम् ॥ विवेकवनसारिणीं प्रशमशर्मसंजीविनीम्, भ-

वार्णवमहातरीं मदनदावमेघावलीम् ॥ चलाक्षमृगवागुरां गुरुकषायशैलाशनिम्, विमुक्तिपथवेसरीं भजत भावनां किं परैः ॥ ८७ ॥

अर्थः—हे भव्यजनो ! (भावनां के०) शुभ भावनाने (भजत के०) सेवन करो. (परैः के०) बीजां कष्टानुष्ठानोए करी (किं के०) शुं ? कांइज नहीं. अर्थात् शुभ भाव रहित अनुष्ठानो करवाथी शुं? कांइज नहीं. ए भावना केवी छे ? तो के (विवेकवनसारिणीं के०) कृत्याकृत्य विचाररूप जे वन ते वनमां कुल्यारूप, तथा वली (प्रशमशर्मसंजीविनीं के०) उपशम सुखने जीवन करनारी, तथा (भवार्णवमहातरीं के०) संसारसमुद्रने विषे मोटा नाव समान, तथा (मदनदावमेघावलीं के०) कामदेवरूप जे वनाग्नि तेने विषे मेघ समान, तथा (चलाक्षमृगवागुरां के०) चंचल एवी जे इंद्रियो तेरूप जे मृग, तेने विषे मृगजालपाशबंधनरूप, तथा (गुरुकषायशैलाशनिं के०) मोटा चार कषायरूप जे पर्वत तेने विषे वज्र समान, तथा (विमुक्तिपथवेसरीं के०) मुक्तिमार्गने विषे भारवाहकत्वे अर्थात् रस्तामां जतां भारवाहन

करनारी खच्चर घोडी समान छे. माटे हे भव्यजनो! एवी शुभ भावनाने तमे करो ॥ ७७ ॥

टीकाः—पुनर्विशेषमाह ॥ विवेकेति ॥ भो भव्याः । भावनां शुभपरिणामरूपां भजत सेवध्वं । परैः अन्यैः कष्टानुष्ठानैः शुभभावनारहितैः किं ? न किंचिदित्यर्थः । कथंभूतां भावनां? विवेकः कृत्याकृत्यविचार एव वनं तत्र सारिणी कुल्याः तां । पुनः प्रशमशर्मणः उपशमसुखस्य संजीविनीं जीवनकर्त्रीं । पुनः भव एव संसार एव अर्णवः समुद्रस्तत्र महातरीं महानावां । पुनः किंभूतां ? मदन एव दावो दावाग्निस्तत्र मेघस्यावलीं श्रेणिं । पुनः किंभूतां? चलानि चंचलानि यानि अक्षाणि इंद्रियाण्येव मृगा हरिणास्तेषु वागुरां मृगजालपाशबंधनरूपां । पुनः कीदृशीं ? गुरुर्गरिष्ठश्चतुःकषायरूप एव शैलः पर्वतः तत्र अशनिं वज्रं । पुनः किंभूतां ? विमुक्तेः सिद्धेः पंथास्तत्र वेसरीं अश्वतरीं । तद्भारवाहकां । तस्माच्छुभभावनामेव कुर्वंतु ॥ ७७ ॥

भाषाकाव्यः—वृत्त उपर प्रमाणे ॥ प्रसमके पोषवेकों, अमृतकी धारा सम, ज्ञानवन सींचवेकों नारि नीर भरी है ॥ चंचल करन मृग बंधवेकों वागुरा सी, काम दावानल नासिवेकों मेघझरी है ॥ प्रबल कषाय गिरि भंजवेकों वज्रगदा, भौसमुद्र

तरवेकों पोढी महातरी है ॥ मोखपंथ गाहिवेकों वेसरी बिलायतकी, ऐसी शुद्ध भावना अबंध ढार ढरी है ॥ ७७ ॥

वली पण कहे छे.

शिखरिणीवृत्तम् ॥ घनं दत्तं वित्तं जिनवचनमभ्यस्तमखिलम्,
क्रियाकांडं चंडं रचितमवनौ सुप्तमसकृत् ॥ तपस्तीव्रं तप्तं
चरणमपि चीर्णं चिरतरम्, न चेच्चित्ते भावस्तुषवपनवत्सर्वम-
फलम् ॥ ७८ ॥ इति भावनाप्रक्रमः ॥ २० ॥

अर्थः–(घनं के०) घणुं (वित्तं के०) द्रव्य (दत्तं के०) पात्रजनने दीधुं, तथा (अखिलं के०) समग्र (जिनवचनं के०) जिनागमरूप शास्त्र (अभ्यस्तं के०) भण्युं, तथा (चंडं के०) भयंकर एवुं (क्रियाकांडं के०) क्रियाकांड ते लोचादि (रचितं के०) कर्युं, तथा (असकृत् के०) वारंवार (अवनौ के०) पृथ्वीने विषे (सुप्तं के०) शयन कर्युं, तथा (तीव्रं के०) तीव्र एवुं (तपः के०) बार प्रकारनुं जे तप तेने (तप्तं के०) तप्युं, तथा (चरणमपि के०) चारित्र पण

(चिरतरं के०) घणाक काल पर्यंत (चीर्णं के०) सेवन कर्युं. परंतु (चित्ते के०) चित्तने विषे (भावः के०) शुभ भाव (न चेत् के०) जो न होय तो (सर्वं के०) पूर्वोक्त सर्व (तुषवपनवत् के०) तुष जे फोतरां तेने खांडवानी पेठे (अफलं के०) निष्फल जाणवुं ॥ ७७ ॥ अहीं भावना भाववा विषे मरुदेवी माता, भरत महाराज, एलायचीपुत्र तथा प्रसन्नचंद्र राजर्षि, तेनी कथाउना दृष्टांत लेवा ॥ ते कथाउं सर्व प्रसिद्ध छे ॥ इति भावनाप्रक्रमः ॥ २० ॥

टीकाः—पुनराह ॥ धनमिति ॥ धनं प्रचुरं वित्तं धनं पात्रेभ्यो दत्तं पुनरखिलं समस्तं जिनवचनं जिनागमरूपं अभ्यस्तं पठितं । पुनश्चंड भीमं क्रियाकांडं लोचादि रचितं कृतं । पुनरवनौ भूमौ असकृद्वारंवारं सुप्तं शयनं कृतं । पुनस्तीव्रं दुःकरं तपस्तप्तं तपः कृतं । पुनश्चरणं चारित्रं चिरतरं बहुकालं चीर्णं सेवितं । परं चेद्यदि चित्ते भावो न शुभभावना नास्ति । तदा तुषवपनवत् सर्वं पूर्वोक्तं विफलं स्यात् ॥ ७७ ॥ अत्र मरुदेवीभरतएलायचीपुत्रप्रसन्नचंद्रराजर्षीणां कथाः ॥ सिंदूरप्रकराख्यस्य, व्याख्यायां हर्षकीर्त्तिभिः ॥ सूरिभिर्विहितायां तु, भावनाप्रक्रमोऽजनि ॥ इति भावनाप्रक्रमः ॥ २० ॥

भाषाकाव्यः—आभानकछंद ॥ गहि पुनीत आचार, जिनागम जोवनां ॥ करि तप

संयम दान, भूमिका सोवनां ॥ ए करनी सब विफल, होहि विनु भावना ॥ ज्यौं तुस बोए हाथ, कछू नहिं आवनां ॥ ७७ ॥

कथाः—इहां भाव उपर इलायचीपुत्रनी कथा जाणवी. जे नटवी उपर मोह्यो थको नाटकीयापणुं अंगीकार करी पछी राजाने रीजववा माटे वांसना अग्र भागे नाचतां साधुना दर्शनथी भावना भावतो वांसनी उपर रह्यो थको केवलज्ञान पाम्यो छे, इत्यादि कथा प्रसिद्ध छे. माटे भाव विना सर्व अनुष्ठान व्यर्थ जाणवुं ॥ उक्तं च ॥ धनं दत्तं वित्तं जिनवचनमभ्यस्तमखिलं, क्रियाकांडं चंडं रचितमवनौ सुप्तमसकृत् ॥ तपस्तीव्रं तप्तं चरणमपि चीर्णं चिरतरं, न चेच्चित्ते भावस्तुषवपनवत् सर्वमफलम् ॥

हवे वैराग्यने कहे छे.

हरिणीवृत्तम् ॥ यदशुभरजःपाथो दृप्तेंद्रियद्विरदांकुशम्, कुशलकुसुमोद्यानं माद्यन्मनःकपिश्रृंखलं ॥ विरतिरमणीलीलावेश्म स्मरज्वरभेषजम्, शिवपथरथस्तद्वैराग्यं विमृश्य भवाऽभयः (भवाऽभवः) ॥ ७९ ॥

अर्थः—हे मुनि ! (तत् के०) ते (वैराग्यं के०) वैराग्यने (विमृश्य के०) विचारीने (अजयः के०) संसारजय रहित (जव के०) था. ते कयो वैराग्य ? तो के (यत् के०) जे वैराग्य (अशुजरजः के०) पापरूप जे रज तेने विषे (पाथः के०) जलरूप छे. तथा (दर्पेंद्रियद्विरदांकुशं के०) मदोन्मत्त एवी जे इंद्रियो तेरूप जे हाथीर्ज, तेमने विषे अंकुश समान छे. वली (कुशलकुसुमोद्यानं के०) कुशलतारूप जे फूल तेमना उद्यान एटले वनरूप छे. वली ते वैराग्य (माद्यन्मनःकपिश्रृंखलं के०) मदोन्मत्त एवुं जे मन, तेरूप जे वांदर, तेने बांधवामां सांकल समान छे. वली (विरतिरमणीलीलावेश्म के०) देशविरति सर्वविरतिरूप जे स्त्री, तेमने क्रीडा करवानुं गृह छे. वली (स्मरज्वरजेषजं ञे०) कामदेवरूप जे ताव तेने औषध समान छे. वली (शिवपथरथः के०) मोक्षमार्गने विषे रथ समान छे. माटे ते वैराग्यने विचारीने संसारजय रहित था. अने जो (जवाजवः) एवो पाठ होय तो जव एटले संसार ते रहित था. एम जाणवुं ॥ ए९ ॥

टीकाः—अथ वैराग्यमाह ॥ जो मुने ! तद्वैराग्यं विमृश्य चिंतयित्वाऽजयः संसाररहितो जव । तत्किं ? यत् वैराग्यं अशुजं पापमेव रजो धूलिस्तत्र पाथो जलं । तद्-

पशामकत्वात् । पुनर्हसानि इंद्रियाण्येव द्विरदा गजास्तेषां अंकुशमिवांकुशं वश्यकरं । पुनः किंनूतं ? कुशलमेव कुसुमानि तेषां ज्द्यानं पुष्पारामं । पुनर्यत् वैराग्यं माद्यन्मदोन्मत्तो यो मनःकपिर्वानरस्तस्य शृंखलं निगडबंधनं । पुनर्यत् विरतिरमणीलीलावेश्म देशविरतिसर्वविरतिरेव स्त्रीः तस्याः क्रीमागृहं । पुनर्यत् स्मर एव ज्वरस्तस्यौषधं कामज्वरौषधं । पुनर्यत् शिवपथरथः मोक्षमार्गे रथसमानम् । तद्वैराग्यं विमृश्य विचार्य अनयः संसारजयरहितो जव । जवाजव इति पाठे जवरहितो जव ॥ ७ए ॥

जाषाकाव्यः—सवैय्या इकतीसा ॥ अशुनता धुलि हरवेकों नीरपुर सम, विमल विरति कुलवधूको सोहाग है ॥ उदित मदनज्वर नाशवेको ज्वरांकुश, अद्मगजथंजनकों अंकुशाको दाग है ॥ चंचल कुमन कपि रोकवेकों लोहफंद, कुसल कुसुम उपजायवेकों बाग है ॥ सूधो मोख मारग चलायवेकों नामी रथ, ऐसो हितकर जवजंजन विराग है ॥ ७ए ॥

वली पण वैराग्यज कहे छे.

वसंततिलकावृत्तम् ॥ चंमानिलस्फुरितमब्दचयं दवार्चि,—र्वृंद-

व्रजं तिमिरमंडलमर्कबिंबम् ॥ वज्रं महीध्रनिवहं नयते यथां-
तम्, वैराग्यमेकमपि कर्म तथा समग्रम् ॥ ए० ॥

अर्थः—(यथा के०) जेम (चंडानिल के०) प्रचंड एवो अनिल जे वायु तेनुं (स्फुरितं के० ॥) स्फुरण एटले चालवुं ते (अब्दचयं के०) मेघघटाने (अंतं के०) अंत प्रत्ये (नयते के०) पमाडे छे, वली जेम (दवार्चिः के०) दावाग्निनी ज्वाला (वृक्षव्रजं के०) वृक्षना समूहने नाश पमाडे छे, वली जेम (अर्कबिंबं के०) सूर्यबिंब (तिमिरमंडलं के०) अंधकारना मंडलने नाश पमाडे छे, वली जेम (वज्रं के०) वज्र (महीध्रनिवहं के०) पर्वतसमूहने नाश पमाडे छे, (तथा के०) तेम (समग्रं के०) समग्र एवुं (कर्म के०) कर्म तेने (एकमपि के०) एक एवुं पण (वैराग्यं के०) वैराग्य जे छे ते नाश पमाडे छे ॥ ए० ॥

टीकाः—पुनराह ॥ चंडानिलेति ॥ यथा चंडानिलस्फुरितं प्रचंडवायुस्फूर्जितं अब्दचयं मेघघटां अंतं विनाशं नयते प्रापयति । पुनर्यथा दवार्चिर्दावाग्निर्वृक्षसमूहं अंतं प्रापयति । पुनर्यथा अर्कबिंबं सूर्यबिंबं तिमिरमंडलं अंधकारसमूहं अंतं नयते । पुनर्यथा वज्रं

इंद्रायुधं महीध्रनिवहं पर्वतसमूहं अंतं विनाशं नयते प्रापयति । तथा एकमपि वैराग्यमेव समग्रं कर्म अंतं नयते ॥ ९० ॥

जाषाकाव्यः—आजानकछंद ॥ ज्यौं समीर गंजीर, घनाघन छय करै ॥ वज्र विनासै शिखर, दिवाकर तम हरै ॥ ज्यौं दव पावक पूर, दहै वनकुंजकों ॥ त्यौं जंजे वैराग्य कर्मके पुंजकों ॥ ९० ॥

वली पण कहे छे.

शिखरिणीवृत्तम् ॥ नमस्या देवानां चरणवरिवस्या शुजगुरो,—
स्तपस्या निःसीमक्कमपदमुपास्या गुणवताम् ॥ निषद्याऽरण्ये
स्यात् करणदमविद्या च शिवदा, विरागः क्रूरागःक्षपणनिपु-
णोऽतः स्फुरति चेत् ॥ ९१ ॥

अर्थः—(चेत् के०) जो (अंतः के०) हृदयने विषे (विरागः के०) वैराग्य (स्फुरति के०) स्फुरे छे, तोज (देवानां के०) अरिहंतादि देव तेने करेलो (नमस्या के०) नमस्कार ते पण (शिवदा के०) मोक्ष देनारो (स्यात् के०) थाय. तथा

(शुभगुरोः के०) सारा गुरुनी (चरणवरिवस्या के०) चरणसेवा ते पण त्यारेज मोक्षदायी थाय, तथा (निःसीमक्लमपदं के०) अत्यंत श्रमनुं स्थानक एवुं (तपस्या के०) तप पण त्यारेज मोक्षदायी थाय छे. तथा (गुणवतां के०) ज्ञानादिक गुणे करी युक्त एवा जननी (उपास्या के०) सेवा ते पण त्यारेज मोक्ष देनारी थाय. तथा (अरण्ये के०) वनने विषे (निषद्या के०) स्थिति एटले रहेवुं ते पण त्यारेज मोक्ष देनारी थाय. (च के०) तथा (करणदमविद्या के०) इंद्रियदमननी विद्या पण त्यारेज मोक्षदायक थाय. अर्थात् ज्यारे हृदयने विषे वैराग्य उत्पन्न थाय, त्यारेज पूर्वोक्त सर्व वार्ता थाय. ते वैराग्य केवो छे ? तो के (क्रूरागःक्षपणनिपुणः के०) क्रूर एवो जे अपराध तेने क्षपण एटले टालवामां निपुण एटले डाह्यो छे ॥ ९१ ॥

टीकाः—पुनराह ॥ नमस्येति ॥ चेद्यदि अंतश्चित्ते विरागो वैराग्यमेव स्फुरति वर्त्तते तदा देवानां नमस्या नमस्करणं शिवदा मोक्षदायिनी मोक्षदायकी स्यात् । पुनः शुभगुरोश्चरणवरिवस्या चरणयोः सेवा तदा शिवदा स्यात् । पुनरत्यंतश्रमपदं ईदृशी तपस्या तपस्तदैव शिवदा स्यात् । पुनः गुणवतां ज्ञानादिगुणयुक्तानां उपास्या सेवापि तदैव शिवदा स्यात् । पुनररण्ये वने निषद्या स्थितिस्तदैव शिवदा स्यात् । पुनः करण-

दमविद्या इंद्रियदमनविधिरपि तदेव शिवदा स्यात् । यदि अंतर्मध्ये वैराग्यं भवति । कथंभूतो विरागः ? क्रूरागःक्षपणनिपुणः क्रूरं घोरं आगोऽपराधस्तस्य क्षपणे क्षपणकरणे निपुणश्चतुरः ॥ ९१ ॥

भाषाकाव्यः—कवित्त मात्रा० ॥ कीनी तिने सुदेवकी पूजा, तिन गुरु चरन कमल मन लायो ॥ सो वनवास वस्यो निसिवासर,तिन गुनवंत पुरुष गुन गायो ॥ तिन तप लियो कियो इंद्रिय दम, सो पूरन विद्या पढि आयो ॥ सब अपराध गए ताकों तजि, जिन वैरागरूप धन पायो ॥ ९१ ॥

वली विरक्तगुणो कहे छे.

शार्दूलविक्रीडितवृत्तम् ॥ भोगान् कृष्णभुजंगभोगविषमान्
राज्यं रजःसन्निभम्, बंधून् बंधनिबंधनानि विषयग्रामं
विषान्नोपमम् ॥ भूतिं भूतिसहोदरां तृणमिव स्त्रैणं विदित्वा
त्यजं,—स्तेष्वासक्तिमनाविलो विलभते मुक्तिं विरक्तः पुमान्
॥ ९२ ॥ इति वैराग्यप्रक्रमः ॥ २१ ॥

अर्थः—(विरक्तः के०) वैराग्ययुक्त एवो (पुमान् के०) पुरुष (मुक्तिं के०) मुक्तिने (विलभते के०) प्राप्त थाय छे. शुं करीने प्राप्त थाय छे? तो के (भोगान् के०) शब्दादिक भोगोने (कृष्णभुजंगभोगविषमान् के०) कृष्ण सर्पना देह समान विषम एवाने (विदित्वा के०) जाणीने तथा (राज्यं के०) आधिपत्यने राज्यने (रजःसंनिभं के०) धूलि समान जाणीने तथा (बंधून् के०) स्वजनने (बंधनिबंधनानि के०) बंधनना कारणरूप जाणीने तथा (विषयग्रामं के०) विषयसमूहने (विषान्नोपमं के०) विषमिश्रित अन्न समान जाणीने तथा (भूतिं के०) ऋद्धिने (भूतिसहोदरां के०) विभूतिनी ब्हेन एटले भस्मनी सदृश जाणीने तथा (स्त्रैणं के०) स्त्रीसमूहने (तृणमिव के०) तृण जेम होय तेम जाणीने मुक्तिने पामे छे. हवे ते पुरुष केवो छे? तो के (तेषु के०) ते पूर्वोक्त पदार्थोने विषे (आसक्तिं के०) आसक्तिने (त्यजन् के०) त्याग करतो एवो छे. वली ते पुरुष केवो छे? तो के (अनाविलः के०) रागद्वेषादिके करी अनाकुल छे. एटले स्वच्छ छे ॥ ८९ ॥ इति वैराग्यप्रक्रमः ॥ २१ ॥

टीकाः—विरक्तगुणानाह ॥ भोगानिति ॥ विरक्तो वैराग्ययुक्तः पुमान् मुक्तिं विलभते सिद्धिं प्राप्नोति । किं कृत्वा? भोगान् शब्दादीन् कृष्णश्चासौ भुजंगः सर्पस्तस्य

भोगः शरीरं तद्वत् विषमान् भीमान् विदित्वा ज्ञात्वा । तेषु आसक्तिं अत्यभिलाषं त्यजन् । पुनः राज्यं आधिपत्यं रजःसन्निभं धूलिसदृशं मत्वा त्यजन् । पुनर्बंधून् स्वजनान् कर्मबंधस्य निबंधनानि कारणानि मत्वा । पुनर्विषयग्रामं विषयसमूहं विषान्नोपमं विषमिश्रितान्नसमं मत्वा । पुनर्भूतिं ऋद्धिं भूतिसहोदरां भस्मभगिनीं रक्षासदृशीं मत्वा । पुनः स्त्रैणं स्त्रीणां समूहं तृणमिव तृणसदृशं विदित्वा तेषु आसक्तिं अत्यऽभिलाषं त्यजन् । कथंभूतो विरक्तः पुमान् ? अनाविलः रागद्वेषाद्यनाकुलः ॥ ८१ ॥

भाषाकाव्यः—सवैया इकतीसा ॥ जाकों भोगभाव दिसै कारे नागकेसी फन, राजको समाज दीसे जैसै रजकोष है ॥ जाको परिवारकों बढाउ घेरा बंध सूझै, विषै सुखसोंजकों विचारै विषपोष है ॥ लिखै यौं विभूति ज्यौं भसमकों विभूति कहै, वनिताविलासमें विलोके दिढ दोष है ॥ ऐसो जानि त्यागै यह महिमा वैराग ताकी, ताहीकों वैराग सही ताके ढिग मोख है ॥ ८१ ॥

कथाः—हवे वैराग्य उपर कथा कहे छे. कांचनपुर नगरे विक्रमसेन राजा छे, तेनी पांचसें राणी छे. तेज नगरमां एक नागदत्त नामे शेठ वसे छे. तेने विष्णु नामे भार्या महा स्वरूपवती छे. तेने एकदा गोंखमां बेठां थकां राजाए दीठी, ते वारे सेवको

मोकली बोलावी लइने बलात्कारे अंतेउरमां मोकली दीधी. नागदत्त शेठे अनेक उपाय कर्या, पण कोइ रीते राजा तेनी स्त्रीने मूके नहीं. ते वारे नागदत्त स्त्रीथी विह्वल थयो थको वनमां जतो रह्यो.

हवे राजा पण ते स्त्री उपर मोह्यो थको बीजी सर्व स्त्रीउंने तृणप्राय जाणवा लाग्यो. पांचसें स्त्रीउं सर्व एमज बेसी रही, ते वारे ते स्त्रीउंए कामण डुमणादिक प्रयोगथी विष्णु राणीने मारी नाखी. तेने मरण पामेली देखीने राजा तेने पगे वलगी रह्यो, पण मोहदशाथी जूदो न थाय. तेनो पग मूके नहीं. पछी कोइ प्रपंचथी प्रधान ते राणीने अग्निसंस्कार करवा लइ गयो; पण जे वारे अग्नितीरे मूकी, ते वारे राजा राणीने अणदेखतो थको प्रधान प्रत्ये कहेवा लाग्यो के मारी वल्लभाने लइ आव. प्रधाने पण राजाने तिहां लइ जइने राणीनुं कलेवर देखाड्युं. ते जोइ राजा मनमां वैराग्य पाम्यो अने विचार्युं जे आ राणीना शरीरमां अत्यंत सुरभिगंध हतो, ते दुरभिगंध थयो! तथा मुखकमल चंद्रमा जेवुं हतुं ते शोषाइने नहीं जेवुं थयुं! अने नेत्र, बाहु, गलस्थल इत्यादि अंग पूर्वे जे हतां, ते सर्व बगडी गयां! इत्यादि स्व-

रूप सर्व अनित्य जाणी राणीने अग्निसंस्कार करी दीक्षा लइ उग्र तप तपीने त्रीजे देवलोके देवता थयो.

तिहांथी चवी रत्नपुर नगरे जिनधर्म्मा नामे शेठ थयो अने पूर्वलो नागदत्त शेठ ते एक ब्राह्मणने घेर पुत्रपणे उपन्यो, तेनुं नाम अग्निशर्मा पाड्युं. ते वृद्धावस्थाए संसार त्यागी त्रिदंडी तापस थयो. बे बे मासे पारणुं करे, ते अनेक देश भ्रमण करीने शिष्योना परिवार सहित एकदा प्रस्तावे फरी रत्नपुर नगरे आव्यो. तेने राजाए अत्याग्रहपूर्वक पारणुं कराववा माटे निमंत्रणा करी, ते वारे तापसे पूर्वजन्मना वेरथी राजाने कह्युं के जो जिनधर्म्मा शेठ पोतानी पीठ उपर भोजन करावे, तो हुं पारणुं करुं एवी मारी इछा छे. राजाए ते वात कबूल करी, जिनधर्म्मा श्रेष्ठीने तेडी तेनी पुंठ मंडावी. तेनी उपर तापस चडी बेठो, अने त्रांबानुं भाजन परमान्नथी भरी लाव्या, ते पण शेठनी पीठ उपर राख्युं. तापस जमवा बेठो. पछी उष्ण अन्नना योगे शेठनो वांसो तप्यो, अने महा वेदना थवा मांडी. ते वारे शेठे मनमां चिंतव्युं जे में जन्मांतरे ए ऋषिने संताप्यो हशे, तेथी ए हमणां मने संताप करे छे, माटे कीधेलां कर्म भोगव्या विना कांइ छूटे नहीं. हवे तापस जमी

रह्या पछी जाजन उपाड्युं तो शेठना वांसानी खाल नीकली पडी, महावेदनाक्रांत थइ पोताने घेर आवी सर्व जीवायोनि खमावी अनशनव्रत लइ मरण पामी सौधर्मेंद्र थयो, अने त्रिदंडीओ मरण पामी तेज इंद्रनो ऐरावत हाथी थयो. ते हाथी मरण पामी घणो संसार परिभ्रमण करी सीताद्र नामे गुह्यक थयो, अने सौधर्मेंद्र पण तिहांथी चवी हस्तिनागपुरे अश्वसेन राजाने घेर पुत्रपणे उपन्यो. माताए चौद सुपन दीठां. जन्म्या पछी सनत्कुमार नाम दीधुं. ते बीजना चंद्रमानी पेरे वधतो अनुक्रमे यौवनावस्था पाम्यो. अत्यंत रूपवान् सौभाग्यवान् थयो. तेनो महेंद्र नामे कोइ मित्र छे, तेनी साथे अनेक प्रकारनी रमत क्रीडा करवा लाग्यो.

एकदा वसंतक्रीडा करवा माटे मित्रनी साथे उद्यानमां गयो, ते अवसरे राजाने माटे अपूर्व अश्व कोइ परदेशथी भेट लइ आव्यो, ते अश्वने राजाए कुमरनी पासे वनमां मोकल्यो. कुमरे पण ते घोडा उपर चडी घणी वार घोडाने फेरव्यो, पण जे वारे तेनी लगाम खेंची ते वारे ते घणोज दोड्यो, अने क्षण एक मांहे ते वन मूकीने आगल जतो रह्यो, ते समाचार अश्वसेन राजाए जाण्या, ते वारे सैन्य लइने तेने जोवा नीकल्यो. सर्वत्र जोयो पण क्यांइ न मलवाथी राजा रुदन करतो पाछो घेर आव्यो.

ते वारे प्रधान आवी राजाने नमस्कार करी आज्ञा मागीने देशांतर जवा नीकव्यो. ते केटलेक दिवसे कौबेरी नगरीए गयो. तिहां सरोवरनी पाल उपर बेसी वनफल खाइ पाणी पीधुं, एक क्षण बेठो. एटलामां वेणु, वीणा, मृदंग, जल्लरी प्रमुखनो नाद सांजव्यो. तेने अनुसारे आगल जवा लाग्यो. आगल अनेक जनथी परवस्थो थको कुमरने बेठेलो दीठो, ते वारे प्रधाने आश्चर्य पामीने कुमरने नमस्कार कस्थो. आलिंगनथी बेहु जण मख्या, कुमरे पोताना अर्द्धासने बेसाड्यो. तदनंतर क्षेमकुशल पूछ्यां.

पछी कुमरे भ्रूसंज्ञाए करी पोतानी जार्याने कह्युं. ते प्रधान प्रत्ये बोली के हे सत्पुरुष ! तारा मित्रने घोमाए वन मांहे अपहस्थो ते जे वारे वाग ढीली मूकी ते वारे घोमो उन्नो रह्यो अने तत्काल मरण पाम्यो तथा कुमर मूर्छाए वृक्षनी छाया नीचे पड्यो. तेने वृक्षना अधिष्ठायक देवताए जल आणी छांट्युं, तेथी कुमर सावधान थइ वनदेवता प्रत्ये पूछतो हवो के तमे कोण छो ? त्यारे तेणे कह्युं के हुं वनाधिष्ठायिक देवता छुं. खीर समुद्रना पाणीथी में तुजने सावधान कीधो. ते वारे कुमरे कह्युं के हे देव! मुजने मानसरोवर देखामो, तो तिहां हुं स्नान मज्जन करुं के जेथी सकल

रोग निवारण थाय अने शीतल थाउं! देवता तिहां लइ गयो. पठी कुमरे स्नान कीधुं. तृषा अने मार्गनो श्रम जे हतो ते टाल्यो.

एवामां पूर्वजन्मना वैरी यक्षे दीठो. चिरकाल पर्यंत तेनी साथे युद्ध थयुं. कुमरे तेने जीत्यो. बीजा देवताउंए हर्षित थइने कुमर उपर फूलनी वृष्टि करी. तिहां नानुवेग विद्याधरनी आठ कन्याउं परण्यो. पछी ते कुमरने ते विद्याधर वैताढ्य पर्वते लइ गयो. तिहां पण घणी कन्याउंनुं पाणिग्रहण कर्युं, अने सुखथी तिहां रह्यो. जे माटे पुण्यवंत पुरुष ज्यां जाय त्यां सुख पामे.

एकदा ते वैरी यक्षे गृहमांथी उपाडीने वन मांहे मूकी दीधो. तिहांथी आगल चालतां एक मंदिर दीठुं. तेनी सातमी जूमिए चढ्यो, ते वारे रुदन करती एवी एक कुमरी दीठी. कुमरे तेने बोलावी पूछ्युं के हे सुभगि! तुं रुदन शामाटे करे छे? त्यारे कन्या बोली के अहो सुभग! सांकेतपुर पाटणे सुराष्ट्र राजा छे, तेनी सुनंदा नामे हुं पुत्री छुं. वली जे वारे हुं यौवनावस्थाने पामी, ते वारे मारा पिताए संकल्प कर्यो जे ए मारी पुत्री हुं सनत्कुमारने परणावीश, पण एक दिवसे कोइक विद्याधरे मने तिहांथी अपहरीने इहां आणी छे. हवे मारी शी गति थशे? कुमर

बोल्यो के तुं जय राखीश नहीं. सनत्कुमार ते हुं जं बुं. एवी वात करे बे, एटलामां ते कन्यानो हरण करनार विद्याधर पण त्यां आवी पहोंच्यो, तेनुं अने कुमारनुं मांहोमांहे युद्ध थयुं. कुमर जीत्यो अने सुनंदानुं पाणिग्रहण कर्युं. वली जे विद्याधरने जीत्यो तेने पण प्रथम रूषीश्वरे कहेलुं हतुं ते उपरथी पोतानी पुत्री कुमरने परणावी अनेक विद्याउं आपी ने वैताढ्य पर्वते लइ गयो. तिहां श्रीशांतिनाथजीनां अनेक बिंब वंदाव्यां. तिहांथी नीकलीने अमे आज अहीं तमोने मल्या बीए.

इत्यादि वार्त्ता मंत्रीश्वर आगल कहीने पछी तिहांथी अंतेउर तथा मंत्री सहित चाल्या, ते हस्तिनागपुरे आव्या. पुत्र आव्यो सांजलीने पिता घणोज प्रमोद पाम्यो. पछी पुत्रनो राज्याभिषेक करीने पिताए श्रीधर्मनाथना शिष्यनी पासेथी दीक्षा लीधी.

पाछल सनत्कुमार छ खंड पृथ्वी साधीने राज्यसुख जोगववा लाग्यो. इंद्रे धनद जंडारीनी साथे छत्र, चामर मोकल्यां. बे चामर, बे पावडी, एक मुकुट, बे देवडुष्य वस्त्र, बे कुंडल, नक्षत्रमाला, हार, सिंहासन, देवतानां गायन तथा अप्सरा, ए सर्व आपी दीधां. बत्रीश हजार राजाए मली राज्याभिषेक कीधो. एम चक्रवर्त्तीनी पदवी जोगवतो रहे बे.

एकदा सौधर्मेंद्रे सभामां बेठां थकां सनत्कुमार चक्रीनुं रूप वखाण्युं ते सर्व देवोए याथातथ्य करी मान्युं, परंतु बे मिथ्यात्वी देवो हता, ते इंद्रनुं वचन अणमानता परीक्षा करवा माटे ब्राह्मणनो वेश धारण करी चक्रीना द्वार आगल आवी द्वारपालने कहेवा लाग्या के अमे दूर देशांतरथी रूप जोवा सारु आव्या छीए. ते वखत चक्रवर्ती पोताना शरीरे उवटणुं करावता हता. तिहां द्वारपालनी आज्ञा मागी ब्राह्मणने रूपे देवोए आवी रूप जोयुं. तेथी हर्ष पामी कहेता हवा के अमारो जन्म सफल थयो. चक्रवर्तीए कह्युं के हुं मज्जन करी जमीने राजसभाए विराजुं, ते वारे आवजो. राजाना कहेवा प्रमाणे सभामां पण ते देवो रूप जोवा आव्या. ते वारे मनमां विषाद पामी मस्तक धूणाववा लाग्या. चक्रवर्तीना पूछवाथी देवोए कह्युं के तमारुं शरीर हमणां रोगे ग्रसित थवाथी पूर्वनुं रूप पलटाइ गयुं छे. इत्यादि वृत्तांत कही स्वस्थानके गया. सनत्कुमारे यौवनादि वस्तुने अथिर जाणी विजयंधर सूरि पासे दीक्षा लीधी. छ मास पर्यंत अनुराग धरतां सैन्य प्रमुख सर्व परिकर साथे फर्या, परंतु सनत्कुमारे कांइ तेनी तरफ जोयुं पण नहीं. पछी सर्व कोइ पोतपोताने घेर पाछा आव्या.

हवे चक्रवर्तीना शरीरे क्रमे क्रमे वधतां वधतां महा रोगोत्पत्ति थइ, ते सातसें वर्ष पर्यंत जोगवी कठिण तपस्या करता रह्या, तेना प्रजावथी अनेक लब्धिर्ज उपनी. वली पूर्वेनी पेरे सौधर्मेंद्रे सनत्कुमार साधुनी तपस्या तथा रोग संबंधी कष्ट सहन करवानी प्रशंसा करी, ते न मानतां फरी देवताए आवी परीक्षा करवा माटे वैद्योपचार करवा संबंधी अनेक उपदेश कस्या, परंतु रुषीश्वर लगार मात्र पण रुच्या नहीं, अने कष्ट सहन करवामां तत्पर रह्या. देवता पण साधुने वांदी उपर फूलनी वृष्टि करी स्वस्थानके गया. सनत्कुमार साधु अंत्यावस्थाए अनशनव्रत लइ काल करी सात सागरोपमने आजखे त्रीजे देवलोके देवता थया. देवस्थिति पूर्ण थये अनुक्रमे केटलाक मनुष्य तथा देवना जव करी केवलज्ञान उपार्जी मोक्षसुख पामशे. ए एकवीशमा वैराग्योपदेश प्रक्रमने विषे सनत्कुमारनी कथा कही ॥

हवे छ काव्ये करी सामान्य उपदेश करे छे.

उपजातिवृत्तम् ॥ जिनेंद्रपूजा गुरुपर्युपास्तिः, सत्त्वानुकंपा शुजपात्रदानम् ॥ गुणानुरागः श्रुतिरागमस्य, नृजन्मवृक्षस्य फलान्यमूनि ॥ ए३ ॥

अर्थः—(नृजन्मवृक्षस्य के०) मनुष्यजन्मरूप वृक्षनां (अमूनि के०) आ हवे कहेवाशे ते (फलानि के०) फलो छे. ते फलो कहे छे. तिहां प्रथम तो (जिनेंद्रपूजा के०) श्रीवीतराग प्रभुनी पूजा करवी ते. तथा बीजुं (गुरुपर्युपास्तिः के०) गुरुनी उपासना करवी ते. तथा त्रीजुं (सत्त्वानुकंपा के०) सर्व प्राणीमात्र उपर दया राखवी ते. तथा चोथुं (शुभपात्रदानं के०) शुभ पात्रने विषे दान देवुं ते. तथा पांचमुं (गुणानुरागः के०) गुणीने विषे प्रीति राखवी ते. छठुं (आगमस्य के०) शास्त्रनुं (श्रुतिः के०) श्रवण करवुं ते. एटलां फलो मनुष्यजन्मवृक्षनां छे. अर्थात् एटलां शुभ कृत्यो करवा थकी मनुष्यजन्म सफल थयो जाणवो ॥ ए३ ॥

टीकाः—अथ सामान्योपदेशमाह ॥ जिनेंद्रेति ॥ नृजन्मवृक्षस्य मनुष्यजन्मतरोरमूनि फलानि । एतैः कृत्वा मनुष्यजन्म सफलं भवति । अमूनि कानि ? प्रथमं तावज्जिनेंद्रपूजा श्रीवीतरागदेवस्य पूजा कार्या । पुनर्गुरूणां पर्युपास्तिः सेवा । पुनः सत्त्वानां जीवानां अनुकंपा दया कार्या । पुनः शुभपात्रे दानं । पुनर्गुणेषु अनुरागः गुणग्रहणं कार्यं । पुनरागमस्य सिद्धांतस्य श्रुतिः श्रवणं कार्यं । एभिः कृत्वा मनुष्यजन्म सफलं स्यात् ॥ ए३ ॥

भाषाकाव्यः—सवैय्या तेईसा ॥ के परमेसुरकी अरचा विधि, सो गुरुकों उपसर्ग न कीजें ॥ दीन विलोकि दया धरियें चित्त, प्रासुक दान सुपत्तहिं दीजें ॥ गाहक व्है गुनकों गहियें, रुचिसों जिन आगमको रस पीजे ॥ ए करनी करियें गृहमें वसि, यौं जगमें नर जौंफल लीजें ॥ ए३ ॥

शिखरिणीवृत्तम् ॥ त्रिसंध्यं देवार्चां विरचय चयं प्रापय यशः, श्रियः पात्रे वापं जनय नयमार्गं नय मनः ॥ स्मरक्रोधाद्यारीन् दलय कलय प्राणिषु दयाम्, जिनोक्तं सिध्धांतं शृणु वृणु जवान्मुक्तिकमलाम् ॥ए४॥

अर्थः—हे जव्यप्राणी ! (त्रिसंध्यं के०) प्रजात, मध्याह्न अने सायंकाल, तेने विषे (देवार्चां के०) श्रीवीतरागनी पूजाने (विरचय के०) कर. तथा (यशः के०) कीर्त्तिने (चयं के०) वृद्धि प्रत्ये (प्रापय के०) पमाड. तथा (श्रियः के०) लक्ष्मीना (पात्रे के०) सुपात्रने विषे (वापं के०) वाववाने (जनय के०) उत्पन्न कर. तथा (मनः के०) मनने (नयमार्गं के०) न्यायमार्ग प्रत्ये (नय के०) पमाड. वली (स्मरक्रोधाद्यारीन् के०) काम, क्रोध, मान, माया, लोज, ए आदि शत्रुउंने (दलय के०)

खंडन कर. तथा (प्राणिषु के०) प्राणीमात्रने विषे (दयां के०) दयाने (कलय के०) कर. तथा (जिनोक्तं के०) जिनप्रणीत एवा (सिद्धांतं के०) सूत्र सिद्धांतने (शृणु के०) श्रवण कर. ए पूर्वोक्त सर्वे करीने (भवात् के०) वेगे करी (मुक्तिकमलां के०) मोक्षरूप लक्ष्मीने (वृणु के०) वर ॥ ९४ ॥

टीकाः—त्रिसंध्यमिति ॥ त्रिसंध्यं त्रिकालं प्रभाते मध्याह्ने सायं च देवार्चां श्रीवीतरागपूजां विरचय कुरु । पुनर्यशः कीर्त्तिं चयं वृद्धिं प्रापय । श्रियो लक्ष्म्याः पात्रे सुपात्रे वापं जनय वपनं कुरु । पुनर्मनश्चित्तं नयमार्गं न्यायमार्गं प्रति नय । पुनः स्मरक्रोधाद्यारीन् कामक्रोधमानमायालोभाद्यान् शत्रून् दलय खंडय । पुनः प्राणिषु जीवेषु दयां कलय कुरु । पुनर्जिनोक्तं अर्हत्प्रणीतं सिद्धांतं सूत्रं शृणु । एतानि कृत्वा भवात् वेगात् मुक्तिकमलां शिवश्रियं वृणु वरय ॥ ९४ ॥

भाषाकाव्यः—हरिगीतछंद ॥ जो करै साधि त्रिकाल सुमिरन, जासु जस जग विस्तरै ॥ जो सुनै परमागम सुरचिसौं, नीति मारग पग धरै ॥ जो निरखि दीन दया प्रयुंजै, काम क्रोधादिक हरै ॥ जो सुधन सपत सुखेत खरचै, ताहिं सिवसंपति वरै ॥ ९४ ॥

शार्दूलविक्रीडितवृत्तम् ॥ कृत्वाऽर्हत्पदपूजनं यतिजनं नत्वा विदित्वाऽऽगमं, हित्वा संगमधर्मकर्मठधियां पात्रेषु दत्वा धनम् ॥ गत्वा पद्धतिमुत्तमक्रमजुषां जित्वांऽतरारिव्रजम्, स्मृत्वा पंचनमस्क्रियां कुरु करक्रोडस्थमिष्टं सुखम् ॥ ९५ ॥

अर्थः—हे श्राद्धजन ! एटलां वानां करीने (इष्टं के०) वांछित एवा (सुखं के०) सुखने (करक्रोडस्थं के०) हस्तोत्संगगत एटले हाथमां तथा खोलामां रहे एवाने (कुरु के०) कर. शुं करीने कर ? तो के (अर्हत्पदपूजनं के०) श्रीवीतराग जगवानना पदपूजनने (कृत्वा के०) करीने तथा (यतिजनं के०) साधुजनने (नत्वा के०) नमस्कार करीने तथा (आगमं के०) सिद्धांतने (विदित्वा के०) जाणीने अथवा सांजलीने तथा (अधर्मकर्मठधियां के०) पापासक्त बुद्धिवाला जनोना (संगं के०) संगने (हित्वा के०) त्याग करीने तथा (पात्रेषु के०) सुपात्रने विषे (धनं के०) धनने (दत्वा के०) आपीने तथा (उत्तमक्रमजुषां के०) उत्तम मार्गना सेवनार जनोना (पद्धतिं के०) मार्ग प्रत्ये (गत्वा के०) जइने तथा

(अंतरारिव्रजं के) अभ्यंतरना वैरीसमूहने (जित्वा के०) जीतीने तथा (पंचनमस्क्रियां के०) पंचपरमेष्ठीनमस्कार मंत्रने (स्मृत्वा के०) स्मरण करीने तथा एमनुंज ध्यान करीने इच्छित सुखने करोत्संगप्राप्त कर. एटले कर जे हाथ अने उत्संग जे खोलो तेने विषे प्राप्त कर ॥ ए५ ॥

टीकाः—कृत्वाऽर्हदिति ॥ जो श्राद्ध ! एतानि कृत्वा इष्टं वांछितसुखं करक्रोडस्थं हस्तोत्संगगतं कुरु । करोत्संगप्राप्यं कुरु । किं कृत्वा ? अर्हत्पदपूजनं वीतरागचरणपूजां कृत्वा । पुनर्यतिजनं साधुजनं नत्वा । पुनरागमं सिद्धांतं विदित्वा ज्ञात्वा श्रुत्वा । पुनः अधर्मकर्मठधियां पापासक्तबुद्धिनां संगं संसर्गं त्यक्त्वा परित्यज्य । पुनः पात्रेषु निजं धनं वित्तं दत्वा । पुनः उत्तमक्रमजुषां उत्तममार्गसेविनां पद्धतिं मार्गं प्रति गत्वा अनुश्रित्य पुनरंतरारिव्रजं अंतरंगारिषड्वर्गं आभ्यंतरं वैरिसमूहं जित्वा । पुनः पंचनमस्क्रियां नमस्कारमंत्र स्मृत्वा ध्यात्वा इष्टं सुखं करोत्संगप्राप्यं कुरु ॥ ए५ ॥

जाषाकाव्यः—वस्तुछंद ॥ देव पूजहिं देव पूजहिं रचहिं गुरु सेव ॥ परमागम रुचि धरहिं, तजहिं दुष्ट संगति ततक्षन ॥ गुनिसंगति आदरहिं, करहिं त्याग दुरजन

जछन ॥ देहि सुपत्तहिं दान नित, जपहिं पंच नवकार ॥ ए करनी जे आचरहिं, ते पावहिं जवपार ॥ ए५ ॥

हरिणीवृत्तम् ॥ प्रसरति यथा कीर्त्तिर्दिक्षु क्षपाकरसोदरा,—
ऽभ्युदयजननी याति स्फातिं यथा गुणसंततिः ॥ कलयति
यथा वृद्धिं धर्मः कुकर्महतिक्षमः, कुशलसुलभे न्याये कार्यं
तथा पथि वर्त्तनम् ॥ ए६ ॥

अर्थः—हे प्राणी ! (न्याये के०) न्यायोपपन्न एवा (पथि के०) मार्गने विषे (तथा के०) तेवी रीते (वर्त्तनं के०) वर्त्तन (कार्यं के०) करवा योग्य छे. केवी रीते ? तो के (यथा के०) जेम (दिक्षु के०) चारे दिशाउंमां (क्षपाकरसोदरा के०) चंद्रकिरण समान उज्ज्वल एवी (कीर्त्तिः के०) कीर्त्ति (प्रसरति के०) प्रसरे छे. वली (यथा के०) जेम (अभ्युदयजननी के०) उदयने करनारी एवी (गुणसंततिः के०) गुणश्रेणि (स्फातिं के०) विस्तारने (याति के०.) पामे छे. तथा वली (यथा के०) जेम (कुकर्महतिक्षमः के०) पापहननने विषे समर्थ एवो (धर्मः

के०) धर्म (वृद्धिं के०) वृद्धिने (कलयति के०) प्राप्त थाय छे. ते न्यायमार्ग केवो छे? तो के (कुशलसुलन्ने के०) चतुर पुरुषोए सुलन्न छे ॥ ए६ ॥

टीकाः—प्रसरतीति ॥ न्याये न्यायोपपन्ने पथि मार्गे तथा प्रवर्त्तनं कार्यं तथा प्रवृत्तिः कार्या । यथा दिक्षु चतुर्षु दिक्षु कृपाकरसोदरा चंद्रकिरणवदुज्ज्वला कीर्त्तिः स्फुरात विस्तरति । पुनर्यथा अन्युदयजननी उदयकारका गुणसंततिर्गुणश्रेणिः स्फातिं याति विस्तारं व्रजति । पुनर्यथा कुकर्महतौ पापहनने क्षमः समर्थो धर्म्मो वृद्धिं कलयति वृद्धिं प्राप्नोति । तथा न्याये पथि न्यायमार्गे प्रवर्त्तनं कार्यं । कथंनूते न्याये पथि? कुशलैश्चतुरपुरुषैः सुलन्नः सुप्राप्यः सुखेन लन्यस्तस्मिन् ॥ ए६ ॥

नाषाकाव्यः—दोहा गुन अरु धर्म सुथिर रहै, जस प्रताप गंन्नीर ॥ कुशल वृद्ध जिम लहलहै, तिहिं मारग चालो वीर ॥ ए६ ॥

शिखरिणीवृत्तद्वयम् ॥ करे श्लाघ्यस्त्यागः शिरसि गुरुपादप्रणमनम्, मुखे सत्या वाणी श्रुतमधिगतं च श्रवणयोः ॥
हृदि स्वच्छा वृत्तिर्विजयि नुजयोः पौरुषमहो, विनाप्यैश्वर्येण
प्रकृतिमहतां मंमनमिदम् ॥ ए७ ॥

अर्थः—(अहो के०) आश्चर्य छे के (प्रकृतिमहतां के०) स्वन्नावे करी उत्तम एवा जनोने (विनाप्यैश्वर्येण के०) साम्राज्य विना पण (इदं के०) आ हवे कहेवाशे ते (मंमनं के०) नूषण छे. ते शुं नूषण छे? तो के (करे के०) हाथने विषे (त्यागः के०) दान तेज (श्लाघ्यः के०) श्लाघ्य छे, पण कंकणादि नूषण मंमन नथी. तथा (शिरसि के०) मस्तकने विषे (गुरुपादप्रणमनं के०) गुरुजनना चरणने विषे प्रणाम तेज मंमन छे, परंतु मुकुट तिलकादि नथी. (च के०) तथा (मुखे के०) मुखने विषे (सत्या के०) सत्य एवी (वाणी के०) वाणी तेज मंडन छे, परंतु तांबूलादि नथी. तथा (श्रवणयोः के०) कानने विषे (अधिगतं के०) जाण्युं एवुं (श्रुतं के०) सिद्धांत तेज मंमन छे, परंतु कुंमलादि नथी. (हृदि के०) हृदयने विषे (स्वछा के०) निर्मल एवी (वृत्तिः के०) व्यापार तेज मंमन छे, परंतु हार मालादि नथी. तथा (नुजयोः के०) बेहु हाथने विषे (विजयि के०) जयनशील एवुं (पौरुषं के०) पुरुषार्थ तेज मंमन छे, परंतु केयूरादि नथी. अर्थात् महान् पुरुषोने धनादि विना पण आ पूर्वोक्त सर्व मंमनरूप छे ॥ ए७ ॥

टीकाः—कर इति ॥ अहो आश्चर्ये प्रकृतिमहतां स्वन्नावेनोत्तमानां पुंसां ऐश्वर्येण

साम्राज्येन विनाऽपि इदं मंडनं अस्ति । इदमिति किं ? करे हस्ते त्यागो दानं श्लाघ्यः मंडनं न कंकणादि । पुनः शिरसि गुरूणां पादयोश्चरणयोः प्रणमनं नमस्कारकरणं मंडनं न मुकुटतिलकादीनि । मुखे सत्या वाण्येव मंडनं न तांबूलादि । श्रवणयोः कर्णयोः अधिगतं पठितं श्रुतं शास्त्रमेव मंडनं न कुंडलादि । हृदि हृदये स्वच्छा निर्मला वृत्तिर्व्यापार एव मंडनं न हारमालादि । भुजयोर्बाह्वोर्विजयि जयनशीलं पौरुषं पराक्रमो धर्मविषये यद्बलं तदेव मंडनं न केयूरादि । महतां पुसां धनं विनापीदमेव मंडनं ॥ ८७ ॥

भाषाकाव्यः—कवित्त मात्रात्मक ॥ वंदनं विनय मुकुट शिर उर, सुगुरु वचन कुंडलयुग कान ॥ अंतरशत्रु विजय भुजमंडन, सुगति माल उपर गुन अमलान ॥ त्याग सहज कर कटक विराजत, शोभित सत्य सबद मुख पान ॥ भूखन तजहिं तहूं तन मंडित, याते संत पुरुष परधान ॥ ८७ ॥

भवारण्यं मुक्त्वा यदि जिगमिषुर्मुक्तिनगरीम्, तदानीं माकार्षीर्विषयविषवृक्षेषु वसतिम्॥ यतश्छायाप्येषां प्रथयति महामो-

ह्मचिरा,—दयं जंतुर्यस्मात्पदमपि न गंतुं प्रनवति ॥ ९७ ॥
इति सामान्योपदेशप्रक्रमः ॥ २२ ॥

अर्थः—हे श्रावकजन! (यदि के०) जो (नवारण्यं के०) संसाररूप अटवीने (मुक्त्वा के०) मूकीने (मुक्तिनगरीं के०) मोक्षनगरी प्रत्ये (जिगमिषुः के०) जवाने इच्छतो एवो तुं छो, (तदानीं के०) त्यारे तो (विषयविषवृक्षेषु के०) विषयरूप जे विषवृक्षो तेने विषे (वसतिं के०) निवासने (माकार्षीः के०) म कर. (यतः के०) जे कारण माटे (एषां के०) ए विषयविषवृक्षोनी (छायापि के०) छाया पण (महामोहं के०) मोटा अज्ञानने (प्रथयति के०) विस्तारे छे. जेम बीजी पण विषवृक्षोनी छाया छे, ते मोटी मूर्छाने उत्पन्न करे छे, अने (यस्मात् के०) जे महामोह थकी (अयं के०) आ (जंतुः के०) जीव (अचिरात् के०) वेगे करी (पदमपि गंतुं के०) एक पगलुं पण चालवाने (न प्रनवति के०) समर्थ थतो नथी. अर्थात् स्थावरपणाने प्राप्त थाय छे ॥ ९७ ॥ इति सामान्योपदेशप्रक्रमः ॥ २२ ॥

टीकाः—नवारण्यमिति ॥ नो श्राद्ध! नवारण्यं संसाररूपां अटवीं मुक्त्वा त्यक्त्वा यदि मुक्तिनगरीं सिद्धिपुरीं प्रति जिगमिषुरसि गंतुकामोऽसि तदानीं विषया एव विष-

वृक्षास्तेषां वसतिं निवासं माकार्षीः मा कृथाः । कुतः? यतो यस्मात् कारणात् एषां विषयविषवृक्षाणां छायाऽपि महामोहं महदज्ञानं प्रथयति विस्तारयति । अन्येषामपि विषवृक्षाणां छाया महामोहं महतीं मूर्छां जनयति । यस्मान्महामोहादयं जंतुः प्राणी अचिरादेगात् पदमपि गंतुं एकं पादमपि चलितुं न प्रभवति न शक्नोति । किंतु स्थावरत्वं प्राप्नोति ॥ ए७ ॥ सिंदूरप्रकरग्रंथ,—व्याख्यायां हर्षकीर्त्तिभिः ॥ सूरिभिर्विहितायां तु, सामान्यप्रक्रमोऽजनि ॥ २२ ॥ इति सामान्योपदेशप्रक्रमः ॥ २२ ॥

हवे एक काव्ये करी ग्रंथनुं समर्थन करे छे.

उपजातिवृत्तम् ॥ सोमप्रभा चार्यमभा च यन्न, पुंसां तमःपंकमपाकरोति ॥ तदप्यमुष्मिन्नुपदेशलेशे, निशम्यमानेऽनिशमेति नाशम् ॥ एए ॥ इति ग्रंथसमर्थनम् ॥

अर्थः—(सोमप्रभा के०) चंद्रनी कांति (च के०) वली (अर्यमभा के०) सूर्यनी कांति ते (पुंसां के०) पुरुषोना (यत् के०) जे (तमःपंकं के०) अंधकाररूप जे कचरो तेने (न अपाकरोति के०)-नथी नाश करती. (च के०) परंतु (तदपि के०)

तादृश एवो पण अज्ञान अने पापरूप कचरो ते (अमुष्मिन् के०) आ सिंदूरप्रकराख्य नामा (उपदेशलेशे के०) उपदेशनो लेश ते (निशम्यमाने के०) सांजले छते (अनिशं के०) रात्रि दिवस एटले निरंतर (नाशं के०) नाशने (एति के०) पामे छे. अर्थात् आ सिंदूरप्रकर सांजलवाथी तम जे पाप अने अज्ञान ते नाशने पामे छे. आ श्लोकमां 'सोमप्रज्ञा' ए पदथी ग्रंथकर्त्ताए पोतानुं सोमप्रज्ञाचार्य एवुं नाम पण सूचव्युं छे ॥९९॥

टीकाः—अथ समर्थयति ॥ सोमप्रज्ञेति ॥ सोमप्रज्ञा चंद्रकांतिश्च पुनः अर्यमज्ञा सूर्यप्रज्ञाऽपि पुंसां यत्तमःपंकं अंधकारकर्दमं न अपाकरोति न दूरीकरोति। तदपि तादृशमपि तमःपंकं अज्ञानपापं अमुष्मिन् सिंदूरप्रकराख्ये उपदेशलेशे निशम्यमाने श्रूयमाणे सति अनिशं निरंतरं नाशं एति क्षयं याति । एतत् श्रवणात्तमः पापं च क्षयं याति । अत्र सोमप्रज्ञाचार्य इति ग्रंथकृता स्वनामापि सूचितम् ॥ ९९ ॥ इति ग्रंथसमर्थनम् ॥

हवे एक श्लोकथी प्रशस्ति कहे छे.

मालिनीवृत्तम् ॥ अजनि जदजितदेवाचार्यपट्टोदयाद्रि,—द्युमणि-
विजयसिंहाचार्यपादारविंदे ॥ मधुकरसमतां यस्तेन सोमप्र-

भेण, व्यरचि मुनिपराज्ञा सूक्तमुक्तावलीयम् ॥ १०० ॥ इति प्रशस्तिः ॥ इति सिंदूरप्रक्रमः समाप्तः ॥

अर्थः—(तेन के०) ते (सोमप्रभेण के०) सोमप्रभ नामा (मुनिपराज्ञा के०) मुनिप जे मुनिश्रेष्ठ तेमना जे राजा एवा सूरीश्वर तेमणे (इयं के०) आ (सूक्तमुक्तावली के०) सु नाम शोभायमान प्रस्तावबालां उक्त एटले काव्य तेरूप मुक्ता जे मोतीर्ड तेनी आवली जे पंक्ति ते (व्यरचि के०) विरचित करी. ते कया सोमप्रभाचार्य ? तो के (यः के०) जे (अजितदेवाचार्यपट्टोदयाद्रि के०) अजितदेव नामा आचार्यना पट्टरूप उदयाचलने विषे (द्युमणि के०) सूर्य समान एवा जे (विजयसिंहाचार्य के०) विजयसिंहाचार्य तेना (पादारविंदे के०) चरणारविंदने विषे (मधुकरसमतां के०) भ्रमरनी समानताने (अभजत् के०) भजता हवा ॥ १०० ॥ ए प्रशस्ति कही ॥ इति सिंदूरप्रकरस्य बालावबोधः समाप्तः ॥

टीकाः—अथ प्रशस्तिमाह ॥ अभजदजितदेवेति ॥ तेन सोमप्रभेण मुनिपराज्ञा मुनिपाः मुनिश्रेष्ठास्तेषां राजा सूरीश्वरस्तेन मुनिपराज्ञा सूरीश्वरेण इयं सूक्तमुक्तावली सूक्तान्येव सुभूषितान्येव शोभनप्रस्तावकाव्यान्येव मुक्ता मौक्तिकानि मुक्ताफला-

नि तेषामावली श्रेणिः व्यरचि विरचिता । तेन केन ? यः सोमप्रनः अजितदेवनामाचार्यस्य पट्ट एव उदयाद्रिरुदयाचलः तत्र द्युमणिः सूर्यसमानो विजयसिंहाचार्यस्तस्य पादारविंदे चरणकमले मधुकरसमतां भ्रमरतुल्यतां अभजत् प्राप । अर्थात् पूर्वमजितदेवाचार्यस्तस्य सोमप्रभाचार्यस्तेनेयं सिंदूरप्रकरनामा सूक्तमुक्तावली व्यरचि कृता ॥ १०० ॥ इति प्रशस्तिः ॥ इति श्रीसिंदूरप्रकराख्यग्रंथस्य हर्षकीर्त्तिसूरिविरचिता व्याख्या समाप्ता ॥

भाषाकाव्यः—सवैय्या इकतीसा ॥ गहैं जे सुजनरीति, गुनीसों निवाहै प्रीति, सेवा साधै गुरुकी, विनैसों कर जोरिकैं ॥ विद्याको विसन धरै, परतिय संग हरै, दुर्जनकी संगतिसों, बैठे मुख मोरिके ॥ तजै लोकनिंद्य काज, पूजै देव जिनराज, करै जे करणि थिर, उमंग बहोरिकें ॥ तेही जीव सुखी होहिं, तेही मोखमुखी होहिं, तेही होइ परम, करमफंद तोरिके ॥ ए७ ॥

वृत्त उपर प्रमाणे ॥ पर निंदा त्याग करु, मनमें वैराग धरु, क्रोध मान माया लोभ, च्यारो परिहर रे ॥ हिरदेमें तोष गहु, समतासों सीरो रहु, धरमको भेद लहु, खेदमें न पर रे ॥ करमकों वंस खोउ, मुगतिको पंथ जोउ, सुकृतको बीज बोउ, दु-

रितसों मर रे ॥ अरे नर ऐसो होहि, वार वार कहुं तोहि, नांहि तौ सिधार भैया-निगोद तेरो घर रे ॥ ९९ ॥

कवित्त मात्रात्मक ॥ आलस त्यागु जागु नर चेतन, बल संभारु मति करहुं विलंब ॥ इहां न सुख लवलेश जगतमहिं, निंब विरखमहिं लगै न अंब ॥ तातें तुं अंतर विपक्ष हरु, करु विलक्ष निज अक्षकदंब ॥ गहु गुन ज्ञान बैठ चारित रथ, देहि मोख मग सनमुख बिंब ॥ १०० ॥

अथ अजोग कवित्त मात्रात्मक ॥ जैन वंस सर हंस सितंबर, मुनिपति अजित, देव अति आरज ॥ ताके पट्ट वादिमदभंजन, प्रगटे विजयसिंह आचारज ॥ ताके पट्ट भए सोमप्रभ, तिन्है गिरंथ कियो हितकारज ॥ जाके पढत सुनत अवधारत, होइ पुरुष जे पुरुष अनारज ॥ १०१ ॥ दोहा ॥ नाम सूक्तमुक्तावली, द्वाविंशति अधिकार ॥ सत सिलोक परधान सब, इति गरंथ विस्तार ॥ १०२ ॥ कौंरपाल बनारसी, मित्रयुगल इक चित्त ॥ तिन गरंथ भाषा कियो, बहुविधि छंद कवित्त ॥ १०३ ॥ सालहसें इक्यानवै, रितु ग्रीषम वैसाख ॥ सोमवार एकादशी, कर नक्षत्र सित पाख ॥ १०४ ॥ आ भाषा करनारे बीजी टीका उपरथी रचना करेली देखाय छे जे माटे

कोइ कोइ स्थले अर्थमां कचित् फेर दीठामां आवे छे, अने छेल्लां बे काव्यनो अर्थ फेरव्यो छे.

इति सोमप्रभाचार्यविरचितः सिंदूरप्रकरः (सूक्तमुक्तावली) ग्रंथ हर्षकीर्त्ति सूरिकृत युक्ति, व्याख्या अन्यपंक्तिकृत बालावबोध संयुत, बनारसीदासकृत भाषाकाव्यसहितः समाप्तः ॥ समाप्तोऽयं ग्रंथः ॥

जाहेरखबर.

श्री "जैन कुमारसंजव" महाकाव्य. (कर्ता जयशेखरसूरि) पानां आकारे. आ नामनुं अति अद्भुत तथा काव्यचमत्कृतिवालुं अने साहित्यना सारथी जरेलुं रमणिक काव्य अमोए तेना गुजराती अर्थ सहित छपावी प्रसिद्ध कीधुं छे. आ ग्रंथनां काव्यनी रचना एटली तो मधुर अने विद्वत्ता जरेली छे के ते वांचवाथी दरेक विद्वानोनां मनने आश्चर्य थया विना रहेतुं नथी. आ काव्यमां श्रीऋषजदेव प्रजुनुं जरत कुमारना जन्म पर्यंत वर्णन आपेलुं छे अने तेम करीने आ काव्यनुं नाम "जैन कुमारसंजव" एवुं नाम सफल कर्युं छे. वली आज दिन सुधीमां जैनजाइर्जने तथा मुनिराजो आदिकने संस्कृत जाषानुं व्याकरण जणी अन्य दर्शनीर्जनां जे काव्यो जणवानी जरुर पमती हती ते अमोएं गुजराती अर्थ साथे छपावी प्रसिद्ध करेला आ काव्यग्रंथथी दूर थइ छे. वली आ काव्यग्रंथ बीजा काव्यग्रंथो करतां कवित्वशक्तिमां चमीयातो होवाथी जैनबंधुर्जने उपयोगी छे. किमत रु० १—१२—०

"वैराग्यकल्पता." (कर्ता श्रीयशोविजयजी उपाध्याय) पानां आकारे. आ ग्रंथ एटलो तो रसिक तथा जैनवर्गना श्रावको अने साधु साध्वीओने माटे उपयोगी छे के ते ग्रंथ सर्वेने आदिथी ते अंत सुधी वांचवा अमारी खास जलामण छे.

आ ग्रंथनी रचना काव्यरूपे गुंथेली छे अने तेमां जीवने संसारभ्रमणथी केवी केवी विटंबनाओ जोगववी पडे छे तेनो कथाओ द्वाराए आबेहुब चितार आप्यो छे. तेम आ ग्रंथ रसिक बनाववा माटे साहित्यनो सार लइ तेमां रसालंकारोने पण घणीज उत्तम रीतिथी प्रदर्शित करेला छे. आ ग्रंथ जणवाथी काव्योनो बोध थवा साथे जैनदर्शननां तत्त्वोनो घणोज बोध थाय छे एटलुंज नहि पण आ ग्रंथना अभ्यासथी अमारा स्वधर्मी बंधुओने जवनाटकनुं स्वरूप केवुं छे तेनो खरेखरो ख्याल थाय छे. वली आ ग्रंथ मुनिराजो आदिकने व्याख्यानमां उपयोगी थाय तेवो छे, माटे दरेक जैनबंधु आ ग्रंथनो अवश्य लाज लेवा चुकशो नहीं. किमत रु० ३—०—०

कल्पसूत्र सुबोधिकानुं जाषांतर घणा सुधारा वधारा साथे. आवृत्ति चोथी.
५७ चित्रो सहित. कि. रु० २—८—०

कलिकालसर्वज्ञश्रीमद्धेमचन्द्राचार्यकृतं

श्रीवीतरागस्तोत्रम्

आ पुस्तकनी द्वितीयावृत्तिने यथामति संशोधन करावी
श्रावक भीमसिंह माणकनी वती
शा. नाणजी मायाए
श्रीमोहमयीपत्तनमध्ये
निर्णयसागर नामक मुद्रायंत्रमां बा. रा. घाणेकरे मुद्रित करावी छे.
संवत् १९६८ आश्विन, सन १९१२ अक्टोबर.

प्रस्तावना.

'कलिकालसर्वज्ञ'ना बिरुदने धारण करनार श्रीमद्धेमचंद्राचार्यें बनावेला ग्रंथो पैकीनो आ एक अत्युत्तम ग्रंथ छे. आ ग्रंथनी उत्पत्तिने माटे एम कहेवाय छे के ज्यारे तेरमा सैकामां कुमारपाळ राजा श्रीमद्धेमचंद्राचार्यनी विद्वत्ताथी जैनी थयो त्यारे हेमचंद्राचार्यें तेनी प्रार्थनाथी तेनी दंतशुद्धिने माटे ३२ प्रकाश बनावी आप्या हता, जेमांना पहेला बार प्रकाश योगशास्त्रना नामथी प्रसिद्ध करवामां आवेल छे अने बाकीना २० प्रकाश आ ग्रंथमां वीतरागस्तवना नामथी ग्रंथित करवामां आवेल छे.

आ ग्रंथनी उपर पंजीका अने टीका संस्कृतमां थयेल छे अने ते जूदी छपायेल छे, परंतु ते संस्कृतना अभ्यासीने उपयोगी छे.

आ ग्रंथनी गुजराती भाषांतर साथेनी प्रथमावृत्ति अमारा तरफथी संवत् १९४६ मां श्रीजैनकथा रत्नकोष भाग १ लानी अंदर छपायेल हती, पण ते भागनी नकल हालमां बहु मुदतथी अमारे त्यां सीलक रहेल न होवाथी तेमज तेमां समावेश करेल ग्रंथो (सिंदूरप्रकर, वीतरागस्तव अने गौतमपृच्छा) पैकी सिंदूरप्रकर जूदो बहार पडेल होवाथी आ ग्रंथ पण यथामति संशोधन करावी धर्माभिलाषी बंधुओने उपयोगी थाय तेटलामाटे जूदो छपावेल छे, अने बाकीनो गौतमपृच्छा नामनो ग्रंथ पण थोडा वखतमां बहार पडनार छे. एटले जैनकथा रत्नकोष भाग १ लानी खोट पूराइ जवानी छे.

आ ग्रंथ जिनजक्तिना अनुरागी सज्जनोने खास कंठे करवा लायक छे तेमज तेनी अंदर कर्ता महा-पुरुषे अनेक मतोनो निरास करेलो छे तेथी अने मागणी पण घणी आववाथी आ ग्रंथ खास उपयोगी जाणी तेने फरी प्रसिद्ध करवामां आव्यो छे.

शा. जाणजी माया.

अनुक्रमणिका-

॥ श्री ॥

॥ वीतरागस्तोत्रम् ॥

॥ श्रीहेमचंद्राचार्यकृतश्रीवीतरागस्तुतिः प्रारभ्यते ॥

तत्र

॥ प्रस्तावनानामा प्रथमः प्रकाशः ॥

यः परात्मा परंज्योतिः, परमः परमेष्ठिनाम् ॥
आदित्यवर्णं तमसः, परस्तादामनन्ति यम् ॥ १ ॥

अर्थ— जे जगवान् परमात्मा परब्रह्म तेजोरूप छे तेज जे अर्हन्, सिद्ध, आचार्य, उपाध्याय, सर्व साधुरूप पंच परमेष्ठी तेना मध्ये श्रेष्ठ छे; अने सूर्य समान प्रकाशवाला एवा जे जगवानने पाप थकी किंवा अंधकार (जे तमोगुणादि) ते थकी पर एवाने ज्ञानी पुरुषो कहे छे ॥ १ ॥

अर्थ– परंतु पशु करतां पण अज्ञानी एवो हुं क्यां !! अने श्री वीतरागनी स्तुति क्यां !!! (अर्थात् वीतरागनी स्तुति मने अत्यन्त दुर्घट छे.) एटलाज माटे पांगला जेवो हुं छुं. पांगलो जेम पोताना चरणे करी मोटा अरण्यने उल्लंघन करवानी इच्छा करे, तेम हुं भगवानना स्तुति करवानी इच्छावालो छुं ॥ ७ ॥

तथापि श्रद्धामुग्धोऽहं नोपालभ्यः स्खलन्नपि ॥
विशृंखलापि वाग्वृत्तिः, श्रद्दधानस्य शोभते ॥ ८ ॥

अर्थ– तथापि पंडित पुरुषोए, स्तुति मध्ये विपर्यास पामनारा मने आ श्रद्धाये करीने भोलो छे, पंडिताभिमानी नथी, एम जाणी दोषास्पद गणवो नहीं; अने एवुं पण छे के श्रद्धा धारण करनारा पंडितमानी पुरुषनी पूर्वापर संबन्ध रहित एवी पण वाग्वृत्ति शोभा पामे छे ॥ ८ ॥

श्रीहेमचन्द्रप्रभवात्, वीतरागस्तवादितः ॥
कुमारपालभूपालः, प्राप्नोतु फलमीप्सितम् ॥ ९ ॥

अर्थ– हवे फलश्रुति कहे छे– श्रीहेमचंद्रथी जेनी उत्पत्ति छे एवा आ वीत-

राग स्तवे करीने कुमारपाल नामनो राजा इच्छित फलने पाम्यो ॥ ए ॥ इति श्रीवीतरागस्तवे प्रस्तावनानामा प्रथमः प्रकाशः ॥ १ ॥

॥ अथ सहजातिशयनामा द्वितीयः प्रकाशः ॥

प्रियंगुस्फटिकस्वर्ण—पद्मरागांजनप्रभः ॥
प्रभो तवाधौतशुचिः, कायः कमिव नाक्षिपेत् ॥ १ ॥

अर्थ— हे प्रभो! प्रियंगु नामक नीलवर्ण वल्ली, स्फटिकरत्न, सुवर्ण, आरक्त एवुं पद्मरागरत्न अने काजल, एओना सरखी छे कान्ति जेनी एवो अने अप्रक्षालित छतां पण पवित्र एवो तमारो देह, कया पुरुषना मनने आश्चर्य करनार नथी ? अर्थात् सर्व कोइ पण तमने अवलोकन करी आश्चर्य पामे छे ॥ १ ॥

मंदारदामवन्नित्य—मवासितसुगंधिनि ॥
तवांगे भृंगतां यान्ति, नेत्राणि सुरयोषिताम् ॥ २ ॥

अर्थ— हे प्रभो ! निरन्तर कल्पवृक्षना पुष्पनी मालानी पेठे कर्पूरादिकोना लेपन

विना पण सुगंध युक्त एवा तमारा शरीरने विषे देवांगनाओनां नेत्रो भ्रमरताने पामे छे॥१॥

दिव्यामृतरसास्वाद-पोषप्रतिहता इव ॥
समाविशंति ते नाथ, नांगे रोगोरगव्रजाः ॥ ३ ॥

अर्थ– हे नाथ! तमारा शरीरने विषे, रोगरूप जे सर्पोना समूहो, ते प्रवेश करता नथी; कारणके ते जाणे दिव्य एवा अमृतरसना आस्वादने करीने प्राप्त थयेली जे पुष्टता तेणे करी प्रतिहत करेलाज होय नहीं? माटे प्रवेश करता नथी. ए उत्प्रेक्षा करी छे ॥ ३ ॥

त्वय्यादर्शतलालीन-प्रतिमाप्रतिरूपके ॥
क्षरत्स्वेदविलीनत्व-कथापि वपुषः कुतः ॥ ४ ॥

अर्थ– हे नाथ! दर्पणने विषे प्रतिबिंबित जे मूर्ति तेना सरखा जे तमे, ते तमारे विषे देहथी गलित थनारा स्वेद एटले परसेवाना विलीनपणानी वार्ता पण क्यांथी प्राप्त थशे? नहींज थाय. अर्थात् तमारे तो ते स्वेदादिक कांइ नथी, माटे ते वार्ता पण केम घटे? ॥ ४ ॥

न केवलं रागमुक्तं, वीतराग मनस्तव ॥
वपुःस्थितं रक्तमपि, क्षीरधारासहोदरम् ॥ ५ ॥

अर्थ— हे वीतराग ! केवल तमारुं मनज विषयोना राग रहित छे एवुं नथी; परन्तु तमारा शरीरने विषे रहेनारुं रक्त एटले रुधिर पण आरक्तताए रहित होतुं थकुं दूधनी धारा सरखुं शुभ्र छे; कारणके ते तीर्थंकरनुं रक्त पण दूध सरखुं उज्ज्वल होय छे एम प्रसिद्धज छे ॥ ५ ॥

जगद्विलक्षणं किंवा, तवान्यद्वक्तुमीश्महे ॥
यदविस्रमबीभत्सं, शुभ्रं मांसमपि प्रभो ॥ ६ ॥

अर्थ— हे प्रभो ! वली तमारा सर्व जगत्थी विलक्षण एवा अन्य स्वरूपने वर्णन करवा माटे अमे शुं समर्थ थनारा छीए? ना, कदापि थनार नथी; कारणके हे प्रभो ! तमारुं मांस पण दुर्गंध रहित, अबीभत्स एवुं अने शुभ्र उज्ज्वल वर्ण युक्त देदीप्यमान छे ॥ ६ ॥

जलस्थलसमुद्भूताः, संत्यज्य सुमनःस्रजः ॥
तव निःश्वाससौरभ्य-मनुयान्ति मधुव्रताः ॥ ७ ॥

अर्थ– हे नाथ ! जलने अने स्थलने विषे उत्पन्न थयेली उत्तम पुष्पोनी मालाने पण समस्तपणाए तजीने तमारा श्वासोच्छ्वास संबंधी सुगंध प्रत्ये सर्व भ्रमरो अनुगमन करे छे. एवो तमारो सुगंधमय श्वास छे ॥ ७ ॥

लोकोत्तरचमत्कार-करी तव भवस्थितिः ॥
यतो नाहारनीहारौ, गोचरश्चर्मचक्षुषाम् ॥ ८ ॥

अर्थ– हे नाथ ! जे कारण माटे तमारो आहार अने नीहार, ते चर्मचक्षुवाला मनुष्य तिर्यञ्चने दृष्टि विषय थता नथी. ते कारण माटे तमारा जन्मनी स्थिति सर्व लोकोने अत्यन्त विस्मय करनारी छे ॥ ८ ॥ इति सहजातिशयनामा द्वितीयः प्रकाशः ॥२॥

॥ अथ कर्मक्षयजातिशयनामा तृतीयः प्रकाशः ॥

सर्वाभिमुख्यतो नाथ, तीर्थकृन्नामकर्मजात् ॥
सर्वथा सन्मुखीनस्त्व-मानन्दयसि यत्प्रजाः ॥ १ ॥

अर्थ– हे नाथ ! जे कारण माटे सर्व प्रकारे सन्मुख एवा तमो, तीर्थंकर नाम कर्मथी उत्पन्न थयेला सर्वाभिमुखपणाथी एटले चार मुखपणा थकी सत्वाने विषे सर्व लोकोने आनन्द पमाडो छो. अर्थात् तमोने तीर्थंकर नाम रूप कर्मे करीने सर्वाभिमुख्य एटले चतुर्मुखपणुं प्राप्त थयुं छे. ए माटे सर्व प्रजाने सन्मुख एवा तमो सर्व प्रकारे करीने आनन्द उत्पन्न करो छो ॥ १ ॥

यद्योजनप्रमाणेऽपि, धर्मदेशनसद्मनि ॥
संमान्ति कोटिशस्तिर्यग्-नृदेवाः सपरिच्छदाः ॥ २ ॥

अर्थ– हे नाथ! तमारा योजन प्रमाण एवा धर्मोपदेशना समवसरणने विषे परिवार सहित कोटि प्रमाण एवा तिर्यंच, मनुष्य अने देवो ते सुखे करीने समाय छे ॥ २ ॥

तेषामेव स्वस्वभाषा-परिणाममनोहरम् ॥
अप्येकरूपं वचनं, यत्ते धर्मावबोधकृत् ॥ ३ ॥

अर्थ– हे नाथ ! तमारुं धर्मना अवबोधने करनारुं एकसरखुं एवुं पण जे वचन, ते तिर्यंच, मनुष्य अने देवादिकोने पोतपोतानी भाषाए परिणाम पामीने मनोहर लागे छे. अर्थात् तमारुं वचन सर्व कोइ पोतपोतानी भाषामां समजे छे, माटे सर्वने बोधरूप थाय छे ॥ ३ ॥

साग्रेऽपि योजनशते, पूर्वोत्पन्ना गदांबुदाः ॥
यदंजसा विलीयन्ते, त्वद्विहारानिलोर्मिभिः ॥ ४ ॥

अर्थ– हे नाथ ! जे कारण माटे तमारा विहाररूप वायुना तरंगे करी एकसो पचीश योजन पर्यंत, पूर्वे उत्पन्न थयेला जे रोगरूप मेघ, ते वेगे करीने विदीर्ण थाय छे. अर्थात् वायुए करी जेम मेघ नाश पामे छे, ते प्रमाणे तमारा विहारे करीने आसपास सवासो योजन पर्यंत वसनारा लोकोना रोग नाश पामे छे ॥ ४ ॥

नाविर्भवन्ति यद्भूमौ, मूषकाः शलभाः शुकाः ॥
क्षणेन क्षितिपक्षिप्ता, अनीतय इवेतयः ॥ ५ ॥

अर्थ— हे नाथ ! तमाराथी पृथ्वीने विषे उंदर, टीड अने शुक इत्यादिक उपसर्गो ते राजाए क्षण मात्रमां निराकरण करेला अन्यायो जेम प्रगटज थता नथी तेम तमारा विहारथी उंदरादिक प्रगटज थता नथी ॥ ५ ॥

स्त्रीक्षेत्रपद्रादिभवो, यद्वैराग्निः प्रशाम्यति ॥
त्वत्कृपापुष्करावर्त्त-वर्षादिव भुवस्तले ॥ ६ ॥

अर्थ— हे नाथ ! तमाराथी आ भूतलने विषे स्त्री, क्षेत्र, ग्राम इत्यादिकथी उत्पन्न थयेलो वैररूप अग्नि, ते उपशान्तिने पामे छे. ते जाणे तमारी कृपारूप मेघनी वृष्टिए करीनेज ते वैररूप अग्नि शान्त थतो होय नहीं ? एम भासे छे. ए उत्प्रेक्षा जाणवी ॥६॥

त्वत्प्रभावे भुवि भ्राम्य-त्यशिवोच्छेदडिंडिमे ॥
संभवन्ति न यन्नाथ, मारयो भुवनारयः ॥ ७ ॥

अर्थ– हे नाथ ! जे कारण माटे पृथ्वीतलने विषे अकल्याणने उच्छेदकारी एवुं पटह वाद्यरूप तमारुं पराक्रम स्फुरण पामे छते सर्व जगत्ने शत्रुरूप एवा महामारी नामना रोगो पण उत्पन्न थता नथी ॥ ७ ॥

कामवर्षिणि लोकानां, त्वयि विश्वैकवत्सले ॥
अतिवृष्टिरवृष्टिर्वा, भवेद्यन्नोपतापकृत् ॥ ८ ॥

अर्थ– हे नाथ ! जे कारण माटे सर्व जगत्ने वत्सल अने वांछित वस्तुनी वृष्टि करनार एवा आप छते अतिवृष्टि अने अनावृष्टि पण सवासो योजनमां लोकोने उपताप करनारी थती नथी ॥ ८ ॥

स्वराष्ट्रपरराष्ट्रेभ्यो, यत्क्षुद्रोपद्रवा द्रुतम् ॥
विद्रवन्ति त्वत्प्रभावा-त्सिंहनादादिव द्विपाः ॥ ९ ॥

अर्थ– हे प्रभो ! जे स्वचक्रथी अने परचक्रथी उत्पन्न थनारा क्षुद्रोपद्रव, ते तमारा सामर्थ्ये करीने सिंहनादथी हाथीओ जेम जलदी पलायन करे छे तेम ते उपद्रवो पण नाश पामे छे ॥ ९ ॥

यत्क्षीयते च दुर्भिक्षं, क्षितौ विहरति त्वयि ॥
सर्वाद्भुतप्रभावाढ्ये, जंगमे कल्पपादपे ॥ १० ॥

अर्थ– हे नाथ ! जे कारण माटे सर्वेने आश्चर्यकारक एवा प्रभावे करीने प्रकृष्ट अने केवल जंगम एटले चलित कल्पवृक्ष एवा तमे पृथ्वीतलने विषे विहार करे छते जे दुष्काल, ते पोतेज नाश पामे छे ॥ १० ॥

यन्मूर्ध्नः पश्चिमे भागे, जितमार्तंडमंडलम् ॥
मा भूद्वपुर्दुरालोक--मितीवोत्पिंडितं महः ॥ ११ ॥

अर्थ– हे नाथ ! तमारा मस्तकना पश्चिम भागने विषे जेणे सूर्यनुं मंडल जीत्युं छे एवुं जे एक ठेकाणे एकठुं थयेलुं भामंडलनुं तेज छे ते जाणे तमारुं शरीर, लोकने दुःखे करी अवलोकन करवाने योग्य न थइ शके एवुं छे, तोपण सुखे करीनेज लोकोने जोवा योग्य थाय ए माटेज होय नहीं शुं ? ए उत्प्रेक्षा जाणवी ॥ ११ ॥

स एष योगसाम्राज्य--महिमा विश्वविश्रुतः ॥
कर्मक्षयोत्थो भगवन्, कस्य नाश्चर्यकारणम् ॥ १२ ॥

अर्थ— हे भगवन्! सर्व जगत् मध्ये प्रख्यात अने कर्मक्षयथी उत्पन्न थयेला एवा आ तमारा योगसाम्राज्यनो महिमा, ते कोने आश्चर्यनुं कारण नथी ? सर्वने पण आश्चर्यनुं कारण छे ॥ १२ ॥

अनन्तकालप्रचित–मनन्तमपि सर्वथा ॥
त्वत्तो नान्यः कर्मकक्ष–मुन्मूलयति मूलतः ॥ १३ ॥

अर्थ— हे नाथ! तमाराथी बीजो कयो पुरुष, अनन्त काले करी निबिडीभूत थयेला अने सर्व प्रकारे करी अन्त रहित एवा कर्मवनने समूल उन्मूलन करशे ? अर्थात् कोइ पण करनार नथी ॥ १३ ॥

तथोपाये प्रवृत्तस्त्वं, क्रियासमभिहारतः ॥
यथानिच्छन्नुपेयस्य, परां श्रियमशिश्रियः ॥ १४ ॥

अर्थ— हे नाथ! तमे क्रियासमभिहारे करीने एटले क्रियाना अत्यादरे करीने मोक्षोपायने विषे तेवी रीते प्रवृत्त थया छो, के जेवी रीते तमे मोक्षनी उत्तम लक्ष्मीने न इच्छा करनारा होवा छतां पण मोक्षलक्ष्मीए आश्रय करेला छो, एटले मोक्षलक्ष्मीना

निरभिलाषी एवा तमे छो तोपण तमारो आश्रय मोक्षलक्ष्मीज स्वतः करे छे ॥ १४ ॥

मैत्रीपवित्रपात्राय, मुदितामोदशालिने

कृपोपेक्षाप्रतीक्ष्याय, तुभ्यं योगात्मने नमः ॥ १५ ॥

अर्थ—ए माटे परहित चिन्ता तेनुं पवित्र एवुं पात्र, परसुखतुष्टि अने गुणना पक्षपाते करी शोभायमान, तथा कारुण्य अने मध्यस्थपणुं, एणे करी पूज्य अने योगरूप एवा जे तमे ते तमने नमस्कार हो ॥ १५॥ इति कर्मक्षयजातिशयनामा तृतीयः प्रकाशः ३

॥ अथ सुरकृतातिशयनामा चतुर्थः प्रकाशः ॥

मिथ्यादृशां युगांतार्कः, सुदृशाममृतांजनम् ॥

तिलकं तीर्थकृल्लक्ष्म्याः, पुरश्चक्रं तवैधते ॥ १ ॥

अर्थ— हे नाथ ! मिथ्यादृष्टिने प्रलयकालना सूर्य सरखुं तापकारक अने सम्यग्दृष्टिने अमृतांजन सरखुं तथा तीर्थंकरनी लक्ष्मीना तिलक सरखुं एवुं तमारा अग्रभागने विषे धर्मचक्र शोभे छे ॥ १ ॥

एकोऽयमेव जगति, स्वामीत्याख्यातुमुच्छ्रिता ॥
उच्चैरिंद्रध्वजव्याजात्, तर्जनी जंभविद्विषा ॥ २ ॥

अर्थ– हे नाथ ! इंद्र जे तेणे अति उच्च एवा इंद्रध्वजना मिषे करीने पोताना अंगुठानी पासेनी आंगली जाणे ऊर्ध्व करेली होय नहीं ? एटले इंद्रेज जाणे सर्व जगत्ने विषे आ एकज स्वामी छे, एवुं कथन करवा माटेज पोतानी आंगली ऊर्ध्व करेली होय नहीं ? एम ते इंद्रध्वज भासे छे. ए उत्प्रेक्षा छे ॥ २ ॥

यत्र पादौ पदं धत्त–स्तव तत्र सुराऽसुराः ॥
किरंति पंकजव्याजा–च्छ्रियं पंकजवासिनीम् ॥ ३ ॥

अर्थ– हे नाथ ! तमारा चरण जे स्थानने विषे न्यास धरे छे एटले स्थापन थाय छे, ते स्थाने सुर अने असुर कमलने मिषे करीने कमलवासिनी एवी लक्ष्मीनेज विस्तार करे छे. अर्थात् पगतले सुवर्णमय नवकमलनी रचना करे छे ॥ ३ ॥

दानशीलतपोभाव–भेदाद्धर्मं चतुर्विधम् ॥
मन्ये युगपदाख्यातुं, चतुर्वक्त्रोऽभवद्भवान् ॥ ४ ॥

अर्थ— तमे दान, शील, तप अने भाव ए भेदे करीने चार प्रकारना धर्मने एकठा समकाले कथन करवा माटे चतुर्मुखज थया के शुं ? एम हुं मानुं छुं ॥ ४ ॥

त्वयि दोषत्रयात्त्रातुं, प्रवृत्ते भुवनत्रयीम् ॥
प्राकारत्रितयं चक्रु--स्त्रयोऽपि त्रिदिवौकसः ॥ ५ ॥

अर्थ— हे नाथ ! तमे भुवनत्रयने राग, द्वेष, मोहरूप दोषत्रयथी रक्षण करवा माटे प्रवृत्त थये छते भुवनपति, ज्योतिषि अने वैमानिक एवा त्रण प्रकारना देवो पण त्रण प्राकारने करता हवा ॥ ५ ॥

अधोमुखाः कंटकाः स्यु-र्धात्र्यां विहरतस्तव ॥
भवेयुः संमुखीनाः किं, तामसास्तिग्मरोचिषः ॥ ६ ॥

अर्थ— हे नाथ! पृथ्वीने विषे आपे विहार करे छते सर्व कंटक अधोमुख थाय छे. ए विषे दृष्टान्त कहे छे के रात्रीने विषे संचार करनारा जे घुवडादिक जीव ते, जेनो प्रकाश तीक्ष्ण छे एवा सूर्यनी संमुख थाय छे शुं? अर्थात् थता नथी ॥ ६ ॥

एकोऽयमेव जगति, स्वामीत्याख्यातुमुच्छ्रिता ॥
उच्चैरिंद्रध्वजव्याजात्, तर्जनी जंभविद्विषा ॥ २ ॥

अर्थ– हे नाथ! इंद्र जे तेणे अति उच्च एवा इंद्रध्वजना मिषे करीने पोताना अंगुठानी पासेनी आंगली जाणे ऊर्ध्व करेली होय नहीं? एटले इंद्रेज जाणे सर्व जगत्ने विषे आ एकज स्वामी छे, एवुं कथन करवा माटेज पोतानी आंगली ऊर्ध्व करेली होय नहीं? एम ते इंद्रध्वज जासे छे. ए उत्प्रेक्षा छे ॥ २ ॥

यत्र पादौ पदं धत्त–स्तव तत्र सुराऽसुराः ॥
किरंति पंकजव्याजा–च्छ्रियं पंकजवासिनीम् ॥ ३ ॥

अर्थ– हे नाथ! तमारा चरण जे स्थानने विषे न्यास धरे छे एटले स्थापन थाय छे, ते स्थाने सुर अने असुर कमलने मिषे करीने कमलवासिनी एवी लक्ष्मीनेज विस्तार करे छे. अर्थात् पगतले सुवर्णमय नवकमलनी रचना करे छे ॥ ३ ॥

दानशीलतपोभाव–भेदाद्धर्मं चतुर्विधम् ॥
मन्ये युगपदाख्यातुं, चतुर्वक्त्रोऽभवद्भवान् ॥ ४ ॥

अर्थ— तमे दान, शील, तप अने भाव ए भेदे करीने चार प्रकारना धर्मने एकठा समकाळे कथन करवा माटे चतुर्मुखज थया के शुं ? एम हुं मानुं छुं ॥ ४ ॥

त्वयि दोषत्रयात्त्रातुं, प्रवृत्ते भुवनत्रयीम् ॥
प्राकारत्रितयं चक्रु--स्त्रयोऽपि त्रिदिवौकसः ॥ ५ ॥

अर्थ— हे नाथ! तमे भुवनत्रयने राग, द्वेष, मोहरूप दोषत्रयथी रक्षण करवा माटे प्रवृत्त थये छते भुवनपति, ज्योतिषि अने वैमानिक एवा त्रण प्रकारना देवो पण त्रण प्राकारने करता हवा ॥ ५ ॥

अधोमुखाः कंटकाः स्यु-र्धात्र्यां विहरतस्तव ॥
भवेयुः संमुखीनाः किं, तामसास्तिग्मरोचिषः ॥ ६ ॥

अर्थ— हे नाथ! पृथ्वीने विषे आपे विहार करे छते सर्व कंटक अधोमुख थाय छे. ए विषे दृष्टान्त कहे छे के रात्रीने विषे संचार करनारा जे घुवडादिक जीव ते, जेनो प्रकाश तीक्ष्ण छे एवा सूर्यनी संमुख थाय छे शुं? अर्थात् थता नथी ॥ ६ ॥

केशरोमनखश्मश्रु, तवावस्थितमित्ययम् ॥
बाह्योऽपि योगमहिमा, नाप्तस्तीर्थंकरैः परैः ॥ ७ ॥

अर्थ– हे नाथ ! तमारा मस्तक संबन्धी केश, शरीर संबन्धी रोम, हाथ तथा पगना नख अने दाढी मुछ, ए सर्व एक स्थितिए रहे छे, एटले वृद्धि पामतां नथी. एवो आ बाह्य रहेलो तमारो योगमहिमा, ते पण अन्य जे बुद्ध, कपिलादिक तीर्थंकर, तेओने प्राप्त थयो नथी ॥ ७ ॥

शब्दरूपरसस्पर्श-गंधाख्याः पंच गोचराः ॥
भजन्ति प्रातिकूल्यं न, त्वदग्रे तार्किका इव ॥ ८ ॥

अर्थ– हे नाथ ! शब्द, रूप, रस, स्पर्श अने गंध नामक जे पांच विषयो, ते तमारा अग्रभागने विषे प्रतिकूलपणे आचरण करता नथी, ए विषे दृष्टान्त कहे छे. पंच तार्किक एटले पंच दर्शन प्रामाणिक, ते जेम तमारा आगल प्रतिकूलपणे आचरण करता नथी. अर्थात् तीर्थंकरनी पासे कुत्सित शब्द, रूपादिक अने अन्य दर्शनो प्रतिकूल थतां नथी ॥ ८ ॥

त्वत्पादावृतवः सर्वे, युगपत्पर्युपासते ॥
आकालकृतकंदर्प-साहायकभयादिव ॥ ए ॥

अर्थ–हे नाथ! सर्व रुतु एक साथे अनुकूलपणे तमारा चरणने सेवन करे छे;ते जाणे अनन्त काल पर्यंत करेलुं जे कामदेवनुं साहाय्य, तेना भये करीनेज सेवन करे छे के शुं? अर्थात् बए रुतुओ एम जाणे छे के अमे घणा दिवस कामदेवनुं सख्य कर्युं, तेनुं महा पाप लाग्युं ते पाप केम मटशे? माटे कामदेवनो जय करनार श्रीवीतरागने शरणे जइए एम मानी ते पोते वीतरागने शरणेज जाणे आवेली होय नहीं? ए उत्प्रेक्षा जाणवी ए

सुगंध्युदकवर्षेण, दिव्यपुष्पोत्करेण च ॥
भावित्वत्पादसंस्पर्शां, पूजयन्ति भुवं सुराः ॥ १० ॥

अर्थ–हे नाथ! सर्व देवो, सुगन्ध युक्त एवा उदकनी वृष्टिए करी अने दिव्य पुष्पोना समुदाये करी समवसरण संबन्धी भूमिने पूजे छे; ते जाणे आगल तमारो पादस्पर्श थइ ते भूमि पवित्र थनार छे, माटे पूजन करवा लायक छे, एम जाणीनेज पूजन करे छे के शुं? ए उत्प्रेक्षा छे ॥ १० ॥

जगत्प्रतीक्ष्य त्वा यान्ति, पक्षिणोऽपि प्रदक्षिणाम् ॥
का गतिर्महतां तेषां, त्वयि ये वामवृत्तयः ॥ ११ ॥

अर्थ– हे जगत्पूज्य ! पक्षीओ पण तमने प्रदक्षिणाभावे करी गमन करे छे, एम छतां ते महान्तोनी शी गति थशे के जे महान्तो तमारे विषे वामपार्श्ववृत्ति छे अथवा शब्दछले करीने प्रतिकूलवृत्ति छे जेनी एवा छे. अर्थात् ते महन्त छे तोपण तमारे विषे प्रतिकूल वृत्ति होवाथी तेओनी कया प्रकारनी गति थशे ? ते जाणवामां आवतुं नथी ॥ ११ ॥

पंचेंद्रियाणां दौःशील्यं, क्व भवेद्भवदन्तिके ॥
एकेन्द्रियोऽपि यन्मुञ्च–त्यनिलः प्रतिकूलताम् ॥ १२ ॥

अर्थ– हे नाथ ! तमारा समीप भागने विषे पंचेंद्रिये युक्त एवा पुरुषनुं दुःशीलपणुं क्यांथी थशे ? अर्थात् क्यांहि पण थनारुं नथी; कारणके एकेन्द्रिय एवो वायु पण तमारी प्रतिकूलतानो त्याग करे छे, एटले वायु पण पृष्ठानुयायीज थाय छे. अर्थात् एकेन्द्रिय एवो अज्ञानी वायु छे, ते पण ज्यारे तमारे विषे प्रतिकूलता छोडे छे, तो

ज्ञानाधिक्यवान् पंचेन्द्रिय जीव शुं प्रतिकूल थाय? ना थायज नहीं ॥ १२ ॥

मूर्ध्ना नमन्ति तरव-स्त्वन्माहात्म्यचमत्कृताः ॥
तत्कृतार्थं शिरस्तेषां, व्यर्थं मिथ्यादृशां पुनः ॥ १३ ॥

अर्थ– हे नाथ! तमारा माहात्म्ये करीने चमत्कारने पामेलां एवां वृक्षो, पोताना मस्तके करीने तमने नमे छे. ते कारण माटे ते वृक्षोनुं मस्तक सफल जाणवुं; परन्तु मिथ्यादृष्टिजनुं तमने न नमनारुं मस्तक छे ते निष्फल जाणवुं ॥ १३ ॥

जघन्यतः कोटिसंख्या--स्त्वां सेवन्ते सुराऽसुराः ॥
भाग्यसंभारलभ्यार्थे, न मंदा अप्युदासते ॥ १४ ॥

अर्थ– हे नाथ! सामान्य थकी कोटि संख्या प्रमाण सुर अने असुरो तमने सेवे छे; कारणके भाग्य समुदाये करी प्राप्त थवाने योग्य जे अर्थ ते विषे आलसु पण उदासीन थता नथी ॥ १४ ॥ इति सुरकृतातिशयनामा चतुर्थः प्रकाशः ॥ ४ ॥

॥ अथ प्रातिहार्यनामा पंचमः प्रकाशः ॥

गायन्निवालिविरुतै-र्नृत्यन्निव चलैर्दलैः ॥
त्वद्गुणैरिव रक्तोऽसौ, मोदते चैत्यपादपः ॥ १ ॥

अर्थ– हे नाथ ! आ समवसरणने विषे देवोए करेलुं जे चैत्यनामक अशोक वृक्ष, ते आनन्द पामे छे. केवी रीते आनन्द पामे छे ? तो के भ्रमरोना गुंजारवे करीने जाणे गीतगान करतुं होयज नहीं ? अने चंचल एवा पत्रोए करीने नृत्य करतुंज जाणे होय नहीं ? अने तमारा गुणे करीने अनुरक्त थयेलुंज जाणे होय नहीं ? एम आनन्द पामेलुं देखाय छे. ॥ १ ॥

आयोजनं सुमनसो-ऽधस्तान्निक्षिप्तबंधनाः ॥
जानुदघ्नीः सुमनसो, देशनोर्व्यां किरन्ति ते ॥ २ ॥

अर्थ– हे नाथ ! देवताओ, ते तमारी देशनाभूमिने विषे एक योजन पर्यंत, जेओनां दींटां अधोभागे करेलां छे एवां पुष्पोने जानु प्रमाण विस्तारे छे. ॥२ ॥

मालवकौशिकीमुख्य--ग्रामरागपवित्रितः ॥
तव दिव्यो ध्वनिः पीतो, हर्षोद्ग्रीवैर्मृगैरपि ॥ ३ ॥

अर्थ– हे नाथ ! मालवकौशिक प्रमुख ग्रामोए करी मनोहर राग विशेष, तेणे करी पवित्रित एटले पवित्र करेलो अर्थात् प्रशस्य मनोहर जे राग, तेणे उत्तम प्रकारे करी गान करेलो एवो जे तमारो दिव्य वाणीरूप ध्वनि ते, हर्षे करी जेणे ग्रीवा ऊर्ध्व करेली छे एवा हरिणादि वनचर जीवोए पण पान कर्यो छे. अर्थात् श्रवण कराय छे ॥ ३ ॥

तवेन्दुधामधवला, चकास्ति चमरावली ॥
हंसालिरिव वक्त्राब्ज-परिचर्यापरायणा ॥ ४ ॥

अर्थ– हे नाथ ! चन्द्रकान्ति सरखी निर्मल एवी चमरावली, तमारा पार्श्वभागने विषे तमारा मुखकमलनी सेवा करवा माटे तत्पर एवी हंसश्रेणीज जाणे होय नहीं? एवी शोभे छे ॥ ४ ॥

मृगेन्द्रासनमारूढे, त्वयि तन्वति देशनाम् ॥
श्रोतुं मृगाः समायान्ति, मृगेंद्रमिव सेवितुम् ॥ ५ ॥

अर्थ– हे नाथ! सिंहासनने विषे आरूढ एवा तमे धर्मदेशनाने विस्तार करवा लागे छते, सर्व वनचर जीवो ते धर्मदेशनाने श्रवण करवा माटे आवे छे, ते जाणे मृगादि वनचर जीवो वन मध्ये सिंहने सेवन करवा माटेज प्राप्त थया होय नहीं? एम जासे छे. ए उत्प्रेक्षा छे ॥ ५ ॥

भासां चयैः परिवृतो, ज्योत्स्नाभिरिव चन्द्रमाः ॥
चकोराणामिव दृशां, ददासि परमां मुदम् ॥ ६ ॥

अर्थ– हे नाथ! कान्तिना समुदाये करी आसपास सेवन करेला एवा तमे चन्द्रिकाए परिवृत्त एवो चन्द्र जेम चकोर पक्षीओनी दृष्टिने परमानन्द उत्पन्न करे छे, तेम तमे पण देशनाने श्रवण करनारा लोकोनी दृष्टिने परम आनन्द उत्पन्न करो छो॥६॥

दुंदुभिर्विश्वविश्वेश, पुरो व्योम्नि प्रतिध्वनन् ॥
जगत्याप्तेषु ते प्राज्यं, साम्राज्यमिव शंसति ॥ ७ ॥

अर्थ– हे विश्वविश्वेश! तमारा अग्रभागमां आकाशनेविषे नादने उत्पन्न करनारो जे दुन्दुभि, ते सर्व जगत् मध्ये निरागी पुरुषोने विषे पण तमारा उत्कृष्ट एवा साम्रा-

ज्यने जाणे कथन करतो होय नहीं? एम भासे छे. ए पण उत्प्रेक्षा छे ॥ ७ ॥

तवोर्ध्वमूर्ध्वं पुण्यर्द्धि-क्रमसब्रह्मचारिणी ॥
छत्रत्रयी त्रिभुवन-प्रभुत्वप्रौढिशंसिनी ॥ ८ ॥

अर्थ– हे नाथ! तमारा मस्तकने विषे एक उपर बीजुं, तेना उपर त्रीजुं, एवा क्रमे करी रहेनारी जे छत्रत्रयी छे, ते पुण्यलक्ष्मीए करी उत्तरोत्तर वृद्धि पामनारो जे अनुक्रम, तेना सरखी होती थकी तमारुं जे त्रिभुवननुं प्रभुत्व, तेनी प्रौढताने कथन करती छती रहे छे ॥ ८ ॥

एतां चमत्कारकरीं, प्रातिहार्यश्रियं तव ॥
चित्रीयन्ते न के दृष्ट्वा, नाथ मिथ्यादृशोऽपि हि ॥ ९ ॥

अर्थ–हे नाथ! आ पूर्वोक्त तमारी चैत्यवृक्षादिक चमत्कारकारक एवी अष्ट महाप्रातिहार्यनी लक्ष्मीने अवलोकन करी मिथ्यादृष्टि एवा पण कया पुरुषो आश्चर्य पामशे नहीं? अर्थात् सर्वे पण आश्चर्य पामशे ॥ ९ ॥ इति अष्टप्रातिहार्यनामा पंचमः प्रकाशः ॥ ५ ॥

अथ प्रतिपक्षनिरासनामा षष्ठः प्रकाशः ॥

लावण्यपुण्यवपुषि, त्वयि नेत्रामृतांजने
माध्यस्थ्यमपि दौःस्थ्याय, किंपुनर्द्वेषविप्लवः ॥ १ ॥

अर्थ– हे नाथ ! लावण्ये करी जेनुं शरीर पवित्र छे, अने नेत्रोने अमृतांजन एटले सिद्धांजन सरखा एवा जे तमे ते तमारे विषे मध्यस्थ भाव जे छे, ते पण दुःखने माटे थाय छे, तो पछी द्वेषे करी जे तमने संकट करवां ते दुःखरूप थाय, एमां तो शुंज कहेवुं ? ॥ १ ॥

तवाऽपि प्रतिपक्षोऽस्ति, सोऽपि कोपादिविप्लुतः ॥
अनया किंवदंत्याऽपि, किं जीवन्ति विवेकिनः ॥ २ ॥

अर्थ– केटलाएक एम कहे छे के, हे नाथ ! तमारे पण शत्रु छे अने ते कोपादिके करीने विडंबित छे, एटले महाभयंकर छे. एवी वात सांभळीने विचारनिपुण एवा जे पुरुषो, तेजो जीवे शुं ? अर्थात् नज जीवे; केमके विवेकी जीवो छे ते तमारे माथे

शत्रु छे, एम सांजलतांज प्राणनो पण त्याग करशो, पण तमारे शत्रु छे एवुं ते कदापि माननार नथी ॥ २ ॥

विपक्षस्ते विरक्तश्चेत्, स त्वमेवाथ रागवान् ॥
न विपक्षो विपक्षः किं, खद्योतो द्युतिमालिनः ॥ ३ ॥

अर्थ– हे नाथ! तमारे शत्रु ने मित्र बेहुए नथी, कारणके जो तमारो शत्रु निरागी छे एम कहीए तो तमारा सिवाय बीजो कोइ निरागी नथी; अने हवे तमारो शत्रु जो सराग छे एम कहीए तो ते शत्रु नथी. ए उपर दृष्टान्त कहे छे. खद्योत नामक कीट छे ते सूर्यनो शत्रु होय शुं? अर्थात् नथी. सूर्यना तेज आगल तेनुं हीनपणुं छे. एवुं अहीं पण जाणवुं ॥ ३ ॥

स्पृहयन्ति त्वद्योगाय, यत्तेऽपि लवसत्तमाः ॥
योगमुद्रादरिद्राणां, परेषां तत्कथैव का ॥ ४ ॥

अर्थ– हे नाथ! जे कारण माटे अनुत्तरविमानवासी एवा देवो पण तमारा योगने माटे इच्छा करे छे, तो प्रसन्नमुखत्वादि जे योगमुद्रा तेणे करी रहित एवा

अन्य हरिहरादिक जे छे, तेओने योगनी वार्ता पण क्यांथीज प्राप्त थशे ? अर्थात् प्रसन्नमुखत्वादि योगनी मुद्रा पण ते हरिहरादिकोने नथी तो ते योग तो तेने क्यांथीज होय ? ॥ ४ ॥

त्वां प्रपद्यामहे नाथं, त्वां स्तुमस्त्वामुपास्महे ॥
त्वत्तो हि न परस्त्राता, किं ब्रूमः किमु कुर्महे ॥ ५ ॥

अर्थ– हे नाथ ! अमे तो तमे जे नाथ, तेनोज अंगीकार करीए छीए अने तमारी स्तुति करीए छीए तथा तमारी उपासना करीए छीए; कारणके तमाराथी बीजो कोइ रक्षण करनारो नथी, ए माटे अमे बीजुं शुं बोलीए ? अने शुं करीए ? ॥ ५ ॥

स्वयं मलीमसाचारैः, प्रतारणपरैः परैः ॥
वंच्यते जगदप्येतत्, कस्य फूत्कुर्महे पुरः ॥ ६ ॥

अर्थ–हे नाथ ! स्वतः जेना अति मलिन आचार छे, अने बीजाने फसाववामां तत्पर एवा अन्य हरिहरादिकोए आ सर्व जगत् पण फसाव्युं छे. ए अमे कोना आगल पोकार करीए ? ॥ ६ ॥

नित्यमुक्तान् जगज्जन्म–स्थेमक्षयकृतोद्यमान् ॥
वंध्यास्तनंधयप्रायान्, को देवांश्चेतनः श्रयेत् ॥ ७ ॥

अर्थ– हे नाथ ! कयो सचेतन पुरुष एवी रीतना हरिहर देवोनो आश्रय करे ? अर्थात् कोइ पण जीव करेज नहीं. हवे ते देव कहेवा छे ? तो के निरन्तर मुक्तिपदने प्राप्त थयेला, अने वली जगत्नी उत्पत्ति, स्थिति अने संहारने विषे उद्युक्त, ए कारण माटे ते वंध्यापुत्र सरखा छे, एटले जे नित्यमुक्त सिद्ध छतां वली जगत्नी उत्पत्त्यादिक करे छे, माटे ते वंध्यापुत्र सरखाज जाणवा ॥ ७ ॥

कृतार्था जठरोपस्थ–दुःस्थितैरपि दैवतैः ॥
भवादृशान्निह्नुवते, हाहा देवास्तिकाः परे ॥ ८ ॥

अर्थ– हे देव ! बीजा केटलाएक आस्तिक एटले तीर्थिक, अरे शुं कहेवुं अने केवा खेदनी वात छे के, तमारा सरखा देवोने निंदे छे ! ! ! हवे ए आस्तिक जनो केवा छे ? तो के जठर अने उपस्थ एणे करी दुःखित एवा पण देवोएज कृतकार्य थया एम माननारा छे ॥ ८ ॥

खपुष्पप्रायमुत्प्रेक्ष्य, किंचिन्मानं प्रकल्प्य च ॥
संमांति देहगेहे वा, न गेहेनर्दिनः परे ॥ ए ॥

अर्थ– बीजा केटलाएक तीर्थिक, पोताना घरमांज शूर थता कांइक हरिहरादिकोए कहेलां आकाश पुष्प सरखां न होनार अने अविद्यमान एवां खोटां साधननी संन्नावना करी अने वली बीजा अनुमाननी पण कल्पना करीने पोतानोज मत खरो छे एवा गर्वे करीने देह अने घर, एओने विषे पण समाता नथी. अर्थात् अति गर्विष्ठ थाय छे ॥ ए ॥

कामरागस्नेहरागा--वीषत्करनिवारणौ ॥
दृष्टिरागस्तु पापीयान्, डुरुच्छेदः सतामपि ॥ १० ॥

अर्थ– हे नाथ ! स्त्रीराग अने पुत्रादिकराग, ते सुकर छे निवारण जेनुं एवा छे, पण पोताना मतनो अनुराग ते महा पापी छे. ए माटे ते राग सज्जनोने पण डुःखे करीने छेदवाने योग्य छे ॥ १० ॥

प्रसन्नमास्यं मध्यस्थे, दृशौ लोकंपृणं वचः ॥
इति प्रीतिपदे बाढं, मूढास्त्वय्यप्युदासते ॥ ११ ॥

अर्थ– हे नाथ ! तमारुं प्रसन्न एवुं मुख, मध्यस्थपणुं धारण करनारी दृष्टि अने लोकोने तृप्त करनारुं एवुं वचन, एवा प्रकारे करीने अत्यन्त प्रीतिना स्थानकरूप तमारे विषे पण मूढ पुरुषो उदासीन थाय छे. आ केवडुं महोटुं आश्चर्य छे ? ॥ ११ ॥

तिष्ठेद्वायुर्द्रवेदद्रि–र्ज्वलेज्जलमपि क्वचित् ॥
तथापि ग्रस्तो रागाद्यै–र्नाप्तो भवितुमर्हति ॥ १२ ॥

अर्थ– हे नाथ ! कदाचित् वायु पण स्थिर थाय, तेमज पर्वत पण द्रवरूप थाय अने जल पण प्रज्वलित थाय; परंतु रागादिकोए ग्रस्त एवा पुरुषने निरागी थवानो संभव होतो नथी ॥ १२ ॥ इति प्रतिपक्षनिरासनामा षष्ठः प्रकाशः ॥ ६ ॥

॥ अथ जगत्कर्तृनिरासनामा सप्तमः प्रकाशः ॥

धर्माधर्मौ विना नाङ्गं, विनाङ्गेन मुखं कुतः ॥
मुखाद्विना न वक्तृत्वं, तच्छास्तारः परे कथम् ॥ १ ॥

अर्थ– हे नाथ ! पुण्य पाप विना शरीरज होतुं नथी, कारणके धर्मे करीने सुंदर अने अधर्मे करीने कुत्सित एवुं शरीर थाय छे, अने ए शरीर विना मुख केम उत्पन्न थाय ? अर्थात् नज थाय. अने मुख विना वक्तृत्व एटले वाचकत्व न होय, ते कारण माटे अन्य जे ईश्वरादिक देव ते वली बीजाने शिक्षा देनारा केम थशे ? तेओने धर्माधर्मादिकना अभावे करीने मुखादिकनो पण अभावज छे, एटले तेओ उपदेश करवा माटे अशक्यज छे ॥ १ ॥

अदेहस्य जगत्सर्गे, प्रवृत्तिरपि नोचिता ॥
न च प्रयोजनं किंचित्, स्वातंत्र्यान्न पराज्ञया ॥ २ ॥

अर्थ– हे नाथ ! देह रहित जे पुरुष, तेने जगत्सृष्टिने विषे प्रवृत्ति करवी ते पण

योग्य नथी, ए माटे तेनुं जगत्ने विषे स्वतंत्रपणुं छे; माटे कांइ पण करवानुं प्रयोजन नथी; अने बीजानी आज्ञाए पण तेनी प्रवृत्तिनुं निरुपयोगीपणुंज जाणवुं. अर्थात् बेउ प्रकारनुं प्रयोजन अदेहधारी ईश्वरने होय नहीं ॥ २ ॥

क्रीडया चेत्प्रवर्त्तेत, रागवान्स्यात् कुमारवत् ॥
कृपयाथ सृजेत्तर्हि, सुख्येव सकलं सृजेत् ॥ ३ ॥

अर्थ– हवे जो ते अदेहवान् ईश्वर, जगत्ने विषे क्रीडाए प्रवृत्त थाय तो पछी राजपुत्रादिकनी पेठे आसक्त थाय अथवा जो ते केवल लोकोनी दयाएज जगत् सृजवा प्रवृत्त थाय तो सर्व जगत्ने सुखवालुंज उत्पन्न करे ॥ ३ ॥

दुःखदौर्गत्यदुर्योनि–जन्मादिक्लेशविह्वलम् ॥
जनं तु सृजतस्तस्य, कृपालोः का कृपालुता ॥ ४ ॥

अर्थ– हे नाथ! दुःख, दुर्गति, दरिद्रपणुं, दुष्ट योनिने विषे जन्म इत्यादिक क्लेशे करीने व्याकुल एवा लोकने उत्पन्न करनारा अने कृपालु कहेवाता एवा ते अदेह ईश्वरनी दयालुता शुं छे? अर्थात् कांइज नथी ॥ ४ ॥

कर्मापेक्षः स चेत्तर्हि, न स्वतंत्रोऽस्मदादिवत् ॥
कर्मजन्ये च वैचित्र्ये, किमनेन शिखण्डिना ॥ ५ ॥

अर्थ– हवे जो ते ईश्वर, कर्मनेविषे जेनुं जेवुं शुभ किंवा अशुभ कर्म होय, तेने तेवुं सुखदुःखादिक उत्पन्न करनार छे, तो ते ईश्वर अमारा सरखोज स्वतंत्र नथी, तो ते कर्मवश जाणवो. पछी कर्मे करीनेज सुखदुःखादि विचित्रपणुं उत्पन्न थाय छे एम छे, तो पछी विश्वकर्तृपणे करी कहेला नपुंसक सरखा ते ईश्वरे करी शुं कर्तव्य छे? अर्थात् कांइ कर्तव्य नथी ॥ ५ ॥

अथ स्वभावतो वृत्ति–रवितर्क्या महेशितुः ॥
परीक्षकाणां तर्ह्येष, परीक्षाक्षेपडिण्डिमः ॥ ६ ॥

अर्थ– अथवा महेश्वरनी स्वभावे करीनेज जगत्सृष्टिनी प्रवृत्ति विचारवा योग्य नथी. ते विषे शुं हेतु छे एम शंका करीए तो कहे जे ईश्वरनो स्वतंत्रपणानो स्वभाव छे तेज हेतु छे, तो ए स्वभावरूप हेतुज, परीक्षा करनाराओनी परीक्षाना आक्षेप

माटे डंको जाणवो. एटले कोइ पण परीक्षा करशो नहीं एवो अर्थ सूचवनारो डंको जाणवो ए ज्ञावार्थ छे ॥ ६ ॥

सर्वभावेषु कर्तृत्वं, ज्ञातृत्वं यदि संमतम् ॥
मतं नः संति सर्वज्ञा, मुक्ताः कायभृतोऽपि च ॥ ७ ॥

अर्थ— हवे जो सर्व पदार्थोने विषे कर्तृत्व अने ज्ञातृत्व अंगीकार करेलुं होय, तो ते अमोने मान्यज छे; कारणके जेओ सर्वज्ञ पुरुष छे, तेओ मुक्तिपदने विषे रहेनारा अने देहधारी होइने विहारना करनार छे ॥ ७ ॥

सृष्टिवादकुहेवाक—मुन्मुच्येत्यप्रमाणकम् ॥
त्वच्छासने रमन्ते ते, येषां नाथ प्रसीदसि ॥ ८ ॥

अर्थ— हे नाथ ! तमे जे जन उपर कृपा करो छो, तेज जन पूर्वोक्त रीतिए प्रत्यक्षादि प्रमाण रहित एवा जगत्ना कर्तृत्वादि वादनो जे खराब अभिलाष तेने तजीने तमारा शासनने विषे प्रीति धारण करे छे ॥ ९ ॥ इति जगत्कर्तृनिरासनामा सप्तमः प्रकाशः ॥ ७ ॥ श्लोकसंख्या ॥ ७५ ॥

॥ अथैकान्तवादनिरासनामाऽष्टमः प्रकाशः ॥

सत्त्वस्यैकान्तनित्यत्वे, कृतनाशाकृतागमौ ॥
स्यातामेकान्तनाशेऽपि, कृतनाशाकृतागमौ ॥ १ ॥

अर्थ— अन्यना मते एकान्तवाद अने श्रीजिन नामथी स्याद्वाद, ए माटे एकान्तवादना निराकरण माटे कहे छे. संपूर्ण घटपटादिक वस्तुने एकान्तपणाए शाश्वतपणानो अंगीकार करे छते कुंभारादिके करेला जे घटादिक तेना नाशनो प्रसंग आवे अने नित्यने करणत्वनो अयोग छे, माटे अकृतनी प्राप्ति थाय, अने अकृतनी प्राप्तिनो तो अभाव छे, ए माटे ए वात घटती नथी. ए मलीने आ बे दोषनो संभव छे, माटे एकान्त नित्य पक्ष पण बनतो नथी. तेमज सर्व वस्तुस्वरूपनुं अत्यन्त क्षणिकत्व पण कृतनाश अने अकृतागम एनो प्रसंग आवे छे माटे बनतुं नथी ॥ १ ॥ ए प्रमाणे अचेतन वस्तुस्वरूपनो निर्णय करीने हवे सचेतन आत्मस्वरूपनुं कथन करे छे ॥

आत्मन्येकान्तनित्ये स्या–न्न भोगः सुखदुःखयोः
एकान्तानित्यरूपेऽपि, न भोगः सुखदुःखयोः ॥ २ ॥

अर्थ— एकान्तत्वे करीने नित्य एवा आत्माने विषे सुख अने दुःख एओनो भोग एटले विपाक थाय नहीं तो एकनेज सुखनो किंवा दुःखनो भोग थशे; कारणके नित्यनुं एकरूपत्व छे. तेम वळी एकान्त नित्य रूपमां पण एकान्तत्वे करीने अनित्य छतां पण आत्माने विषे सुखदुःखनो भोग थनार नहीं. जे कारण माटे, जे समये सुखभोग थाय छे, तेज समये दुःखभोग बनतो नथी; अने क्षणिकने तो बे क्षणनी अवस्थिति होवानो अभाव छे, माटे ए बे प्रकारना दोषे करीने आत्माने विषे एकान्ते अनित्यत्व बनतुं नथी ॥ २ ॥

॥ वळी पण दोषान्तर कहे छे ॥

पुण्यपापे बंधमोक्षौ, न नित्यैकान्तदर्शने ॥
पुण्यपापे बंधमोक्षौ, नानित्यैकान्तदर्शने ॥ ३ ॥

अर्थ— पुण्य अने पाप एटले धर्म अने अधर्म ए एकताए करीने नित्यरूप नथी. कारण, जे पुण्यनो कर्ता ते पुण्यनोज कर्ता, परन्तु ते पापनो कर्ता नथी अने नित्यने तो एक स्वभावत्व छे; माटे पुण्य पापने भिन्नत्व छे. तेमज धर्म अने अधर्म, ए एकान्ते

करीने नित्य नथी; कारण नित्यने एक स्वरूपत्व छे; अने ते धर्माधर्म एकान्ते करीने अनित्यरूप नथी. कारण, जे समये पुण्य करे छे, तेज समये पाप करतो नथी. क्षणिकने बे समयने विषे स्थितिनो अभाव छे. तेमज बंध अने मोक्ष, ए पण एकान्ते करीने नित्य देखाता नथी; कारण, जेने बंध, तेनोज कालान्तरे मोक्ष थाय छे अने क्षणिकने तो कालान्तर स्थितिनो अभाव छे ॥ ३ ॥

॥ फरी एकान्त पक्षने विषे सर्व पदार्थोनो आश्रय करीने दोषान्तर कहेवा माटे कहे छे ॥

क्रमाक्रमाभ्यां नित्यानां, युज्यतेऽर्थक्रिया न हि ॥
एकान्तक्षणिकत्वेऽपि, युज्यतेऽर्थक्रिया न हि ॥ ४ ॥

अर्थ—एकान्ते करीने नित्य एवा पदार्थोने क्रमे करीने अने अक्रमे करीने अर्थक्रियाकारित्व संभवतुं नथी. कारण, नित्य एक स्वभावने क्रमनो अभाव छे; अने अक्रम कहीए तो एक कालेज सर्व क्रियानुं अकरण थशे, अने बीजे काले क्रियाना अकरणत्वे करीने अपदार्थत्वनो प्रसंग प्राप्त थशे. तेम एकान्त क्षणिकत्वमां पदार्थोनुं क्रमाक्रमे करीने अर्थक्रियाकारित्व बनतुं नथी. कारण, क्षणिकने क्रमाक्-

मनो अभाव छे, अने अक्रम पक्षने विषे क्षणिकने एक काले सर्व कालमां थनारी क्रिया करवाना सामर्थ्यनो अभाव छे ॥ ४ ॥

॥ एवा परमतना दोषोने प्रगट देखाडीने हवे पोताना मतनुं स्वरूप कहेवा माटे कहे छे ॥

यदा तु नित्यानित्यत्व—रूपता वस्तुनो भवेत् ॥
यथाऽत्र भगवन्नैव, तदा दोषोऽस्ति कश्चन ॥ ५ ॥

अर्थ—हे भगवन्, तमे जे प्रकारे करीने पदार्थोनी मुख्य रूपे करी नित्यता अने पर्याय रूपे करीने अनित्यता कहो छो, ते प्रमाणे पदार्थमात्रने जे वखते नित्यानित्य रूपता कहीये ते वखते कृतनाश अने अकृतागम इत्यादिक कांइ पण दोष प्राप्त थनार नथी ॥ ६ ॥

॥ ते विषे दृष्टान्त कहे छे ॥

गुडो हि कफहेतुः स्या—न्नागरं पित्तकारणम् ॥
द्वयात्मनि न दोषोऽस्ति, गुडनागरभेषजे ॥ ६ ॥

अर्थ—गोल जे छे ते निश्चये करीने कफकारक छे अने सुंठ जे छे ते पित्तकारक छे; परन्तु ते उजयात्मक गोल अने सुंठ, ए बे साथे मलवाथी एउंनो औषधने विषे कफ अने पित्तपणानो दोष नथी; तेमज अहींयां स्याद्वादमां पण जाणवुं ॥ ६ ॥

॥ कोइ कहेशे के एक ठेकाणे नित्यत्व अने अनित्यत्व ए विरुद्ध छे ?

तो तेना प्रतिषेधने माटे कहे छे ॥

द्वयं विरुद्धं नैकत्र, सत्प्रमाणप्रसिद्धितः ॥
विरुद्धवर्णयोगो हि, दृष्टो मेचकवस्तुषु ॥ ७ ॥

अर्थ—एक ठेकाणे रहेनारुं नित्यानित्यरूप द्वय पण विरुद्ध नथी, कारणके ते रूपो प्रत्यक्षप्रमाणे प्रसिद्ध छे. ते क्यां छे एम कोइ कहे तो, नील पीतादि वर्णे करीने मिश्रित जे कावरचितरी वस्तु तेने विषे नील पीतादिक विरुद्ध वर्णनो संयोग प्रत्यक्ष सर्वने देखायज छे ॥ ७ ॥

विज्ञानस्यैकमाकारं, नानाकारकरंबितम् ॥
इच्छंस्तथागतः प्राज्ञो, नानेकान्तं प्रतिक्षिपेत् ॥ ८ ॥

अर्थ—हे नाथ ! नाना प्रकारना आकारे करीने मिश्रित एवो ज्ञाननो एक जे प्रतिभास, तेने इच्छनारो निपुण जे बौद्ध ते स्याद्वादनो प्रतिक्षेप करवा माटे समर्थ नथी, अर्थात् स्याद्वादनुं खंडन करवाने समर्थ थतो नथी ॥ ए ॥

चित्रमेकमनेकं च, रूपं प्रामाणिकं वदन् ॥
योगो वैशेषिको वापि, नानेकान्तं प्रतिक्षिपेत् ॥ ए ॥

अर्थ—तेमज नैयायिक अथवा वैशेषिक ते पण प्रामाणिक अने एक एवाने अनेक रूप चित्रविचित्र बोलता थका स्याद्वादने प्रतिक्षेप करवा माटे समर्थ थता नथी ॥ ए ॥

इच्छन् प्रधानं सत्त्वाद्यै—र्विरुद्धैर्गुंफितं गुणैः ॥
सांख्यः संख्यावतां मुख्यो, नानेकान्तं प्रतिक्षिपेत् ॥ १० ॥

अर्थ—दक्ष पुरुषो मध्ये मुख्यपणाने मानतो एवो सांख्य ते सत्त्व, रजस् अने तमोरूपथी भिन्न स्वभाव एवा जे गुणो, तेणे रचित एवा प्रधान प्रकृति नामक तत्त्वने इच्छतो थको स्याद्वादनी निंदा करवा माटे समर्थ नथी ॥ १० ॥

विमतिः संमतिर्वापि, चार्वाकस्य न मृग्यते ॥
परलोकात्ममोक्षेषु, यस्य मुह्यति शेमुषी ॥ ११ ॥

अर्थ—हे नाथ ! चार्वाक नामना नास्तिकना विसंवाद अने संवाद तेउनुं अमे अवलोकन पण करता नथी; कारणके चार्वाकनी बुद्धि परलोक, आत्मा अने मोक्ष, एउने विषे मोह पामे छे, एटले मूढ थाय छे ॥ ११ ॥

तेनोत्पादव्ययस्थेम--संभिन्नं गोरसादिवत् ॥
त्वदुपज्ञं कृतधियः, प्रपन्ना वस्तु वस्तुसत् ॥ १२ ॥

अर्थ—हे नाथ ! ते परमत दोषदर्शनना कारणे करीने चतुर पुरुषो, तमे वर्णन करेली जे परमार्थे करीने प्रशस्त एवी चेतनाचेतनात्मक वस्तु ते अंगीकार करता हवा. ते वस्तु केवी छे ? तो के उत्पत्तिए, विनाशे अने स्थिरत्वे भेद पामेली एटले उत्पाद, व्यय अने ध्रौव्य युक्त एवो अर्थ छे जेमां एवी. ए उपर दृष्टान्त कहे छे के जेम एक पण गोरस त्रण प्रकारे करीने भिन्न होय छे ॥ उक्तं च ॥ पयोव्रतो न दध्यत्ति न पयोऽत्ति दधिव्रतः ॥ अगोरसव्रतो नोभे,तस्माद्वस्तु त्रयात्मकम्॥१२॥इत्य०प्रका०८

॥ अथ कलिस्तवनामा नवमः प्रकाशः ॥

यत्राल्पेनापि कालेन, त्वद्भक्तेः फलमाप्यते ॥
कलिकालः स एकोऽस्तु, कृतं कृतयुगादिभिः ॥ १ ॥

अर्थ—हे नाथ ! जे कलिकालने विषे थोडे पण काले करीने तमारी सेवानुं फल प्राप्त थाय छे, ते एक कलिकालज अमोने हो. ते कृत जाणे युगादिकालेज थयुं एम अमे मानशुं तो पछी ते काले शुं कर्तव्य छे ? कांइ कर्तव्य नथी ॥ १ ॥

सुषमातो दुःषमायां, कृपा फलवती तव ॥
मेरुतो मरुभूमौ हि, श्लाघ्या कल्पतरोः स्थितिः ॥ २ ॥

अर्थ—हे नाथ ! सुषम काल करतां दुःषम कालने विषे तारी कृपा फलवाली थाय छे. ए उपर दृष्टान्त कहे छे. जे कारण माटे मेरु पर्वत करतां मरु देशने विषे कल्पवृक्षनी जे स्थिति, ते निश्चये करी श्लाघ्य एटले वखाणवा योग्य होय ॥ २ ॥

श्राद्धः श्रोता सुधीर्वक्ता, युज्येयातां यदीश तत् ॥
त्वच्छासनस्य साम्राज्य—मेकछत्रं कलावपि ॥ ३ ॥

अर्थ—हे स्वामिन् ! धर्म विचार करनार श्रोता अने निपुण एवा धर्म विचार करनार वक्ता, ए बन्ने जो एक ठेकाणे मळे, तो आ कलिकालने विषे पण तमारा शासननुं एकछत्र एवुं साम्राज्य छे एम जाणवुं ॥ ३ ॥

युगान्तरेऽपि चेन्नाथ, भवंत्युच्छृंखलाः खलाः ॥
वृथैष तर्हि कुप्यामः, कलये वामकेलये ॥ ४ ॥

अर्थ— हे नाथ ! जो कलियुगथी अन्य जे कृतादिक युग तेने विषे पण निरंकुश एवा खल होय, तो अमे जेनी क्रीडा प्रतिकूल छे एवा कलिकालने माटे व्यर्थज कोप करीए छीए ॥ ४ ॥

कल्याणसिद्ध्यै साधीयान्, कलिरेव कषोपलः ॥
विनाग्निं गंधमहिमा, काकतुंडस्य नैधते ॥ ५ ॥

अर्थ—हे नाथ ! मोक्षनी सिद्धिने माटे अथवा शब्दछलथी सुवर्णसिद्धिने माटे कलिकाल, एज अत्यन्त प्रशस्य कसोटीनो पाषाण जाणवो. अर्थात् जेम कसोटीए सुवर्णनी परीक्षा थाय छे, तेम कलिए मोक्षनी सिद्धिनी परीक्षा थाय छे.

अहीं दृष्टान्त कहे छे. जेम अग्नि विना कृष्णागरुना गंधनो महिमा एटले सुगंधनुं गुरुत्व वृद्धि पामतुं नथी, कारणके ते तो अग्निएज वृद्धि पामे छे, तेम कलिकाले धर्मनो महिमा वृद्धि पामे छे. ए भावार्थ जाणवो ॥ ५ ॥

निशि दीपोऽम्बुधौ द्वीपं, मरौ शाखी हिमे शिखी ॥
कलौ दुरापः प्राप्तोऽयं, त्वत्पादाब्जरजःकणः ॥ ६ ॥

अर्थ—हे नाथ ! जेम रात्रीने विषे दीप, तथा समुद्रने विषे द्वीप एटले बेट, तथा मरु देशने विषे वृक्ष, तथा हिमने विषे अग्नि जेम प्राप्त थाय, तेम दुष्प्राप एवो तमारा पदकमलनो रजःकण कलिकालने विषे मने प्राप्त थयेलो छे ॥ ६ ॥

युगान्तरेषु भ्रान्तोऽस्मि, त्वद्दर्शनविनाकृतः ॥
नमोऽस्तु कलये यत्र, त्वद्दर्शनमजायत ॥ ७ ॥

अर्थ—हे नाथ ! हुं तमारा दर्शन रहित थको कृतयुगादिकने विषे भ्रान्ति युक्त करेलो छुं; माटे जे कलियुगने विषे तमारुं दर्शन थयुं, ते कलियुगने मारो नमस्कार हो ॥७॥

बहुदोषो दोषहीना—त्त्वत्तः कलिरशोभत ॥
विषयुक्तो विषहरा—त्फणींद्र इव रत्नतः ॥ ८ ॥

अर्थ—हे नाथ ! जेमां बहु दोषो छे एवो पण कलिकाल, दोषे रहित एवा तमारा योगे करीने शोभा युक्त थयो छे. ए विषे दृष्टान्त कहे छे के, विषे करी युक्त एवो जे सर्पश्रेष्ठ छे ते विषहरण करनारा मस्तक संबंधी जे रत्न तेणे करीने जेम शोभे छे तेम आ कलि पण शोभे छे ॥८॥ इति कलिस्तवनामा नवमः प्रकाशः ॥ ९ ॥

॥ अथ अद्भुतस्तवनामा दशमः प्रकाशः ॥

मत्प्रसत्तेस्त्वत्प्रसाद—स्त्वत्प्रसादादियं पुनः ॥
इत्यन्योऽन्याश्रयं भिंधि, प्रसीद भगवन्मयि ॥१॥

अर्थ—हे नाथ ! मारा प्रसन्नपणाथी तमारो अनुग्रह थाय छे, अने मारी प्रसन्नता तमारा अनुग्रहे करी थाय छे. एवो जे अन्योऽन्याश्रयरूप दोष छे, एटले एक, एक विना होय नहीं तेने तमे नाश करो; अने हे भगवन् ! तमेज मारे विषे प्रसन्न थाओ, अर्थात् तमे मारी प्रसन्नता प्रत्ये अवलोकन करशो नहीं ॥ १ ॥

निरीक्षितुं रूपलक्ष्मीं, सहस्राक्षोऽपि न क्षमः ॥
स्वामिन् सहस्रजिह्वोऽपि, शक्तो वक्तुं न ते गुणान् ॥ २ ॥

अर्थ—हे नाथ ! सहस्र लोचन एवो इंद्र पण तमारा रूपनी शोभाने निःशेषपणे अवलोकन करवा समर्थ थतो नथी, तेमज हे स्वामिन् ! जेने सहस्र जिह्वा छे, एवो जे पुरुष ते पण तमारा गुणोनुं वर्णन करवाने समर्थ थतो नथी ॥ २ ॥

संशयान्नाथ हरसे—ऽनुत्तरस्वर्गिणामपि ॥
अतः परोऽपि किं कोऽपि, गुणः स्तुत्योऽस्ति वस्तुतः ॥ ३ ॥

अर्थ—हे नाथ ! तमे अनुत्तर विमानवासी एवा देवोना पण संदेहने निराकरण करो छो. एटले अनुत्तर विमानवासी देवोने संदेह उत्पन्न थये छते तेमने अन्य स्थानके गमनागमननो अभाव छे, ए माटे तेओ त्यांज रहीने मनमांहे संदेह करे छे. ते संदेह युक्त एवा देवोने भगवान् सर्वज्ञ, तमो अहींयांज रह्या छता जाणीने ते देवोना प्रत्युत्तरने मनोवगर्णाए करीने परिणमावो छो. त्यारपछी ते देवताओ अवधिज्ञाने करी आपना मनःस्वरूप ज्ञानथी प्रत्युत्तरने पण जाणे छे. ए माटे हे

नाथ ! आ गुण करतां अपर कोइ पण गुण वस्तुताथी स्तवन करवा योग्य आ जगमांहे छे शुं ? अर्थात् नथीज ॥ ३ ॥

इदं विरुद्धं श्रद्धत्तां, कथमश्रद्दधानकः ॥
आनन्दसुखसक्तिश्च, विरक्तिश्च समं त्वयि ॥ ४ ॥

अर्थ—हे नाथ ! तमारे विषे एक कालेज परमानन्दसुखनी आसक्तता अने संसारथी वैराग्य, एवा आ विरुद्धपणुं जासनारा ह्रयने श्रद्धाने न धारण करनारो पुरुष, ते श्रद्धाए केम अंगीकार करे ? अर्थात् करे नहीं ॥ ४ ॥

नाथेयं घट्यमानापि, दुर्घटा घटतां कथम् ॥
उपेक्षा सर्वसत्त्वेषु, परमा चोपकारिता ॥ ५ ॥

अर्थ—हे नाथ ! सर्व प्राणीमात्रने विषे माध्यस्थ्य अने सर्व प्राणीमात्रने विषे उत्कृष्ट उपकार कर्तृत्व, ए स्थिति, संजाव्यमान छे तोपण महा दुर्घट छे. ते माटे ते बेउ वात तमारे विषे केम घटे ? ॥ ५ ॥

इयं विरुद्धं भगवं-स्तव नान्यस्य कस्यचित् ॥
निर्ग्रन्थता परा या च, या चोच्चैश्चक्रवर्त्तिता ॥ ६ ॥

अर्थ—हे भगवन् ! परस्पर अघटमान, जे हवे कहेशुं एवां बे वानां तमनेज छे, बीजा कोइने नथी. ते कयां बे वानां ? तोके एक तो उत्कृष्ट निष्परिग्रहता अने बीजुं अत्यन्त धर्मचक्रवर्त्तित्व. अर्थात् ए बेहु तमारा विना बीजा कोइने नथी ॥ ६ ॥

नारका अपि मोदन्ते, यस्य कल्याणपर्वसु ॥
पवित्रं तस्य चारित्रं, को वा वर्णयितुं क्षमः ॥ ७ ॥

अर्थ—हे नाथ ! जे तमारा च्यवनादिक पंच कल्याण पर्व तेने विषे नरकवासी जीवो पण आनन्दने पामे छे, तेवा तमारा पवित्र चरित्रने वर्णन करवा माटे अमारा सरखो कयो जन समर्थ थाय ? ॥ ७ ॥

शमोऽद्भुतोऽद्भुतं रूपं, सर्वात्मसु कृपाद्भुता ॥
सर्वाद्भुतनिधीशाय, तुभ्यं भगवते नमः ॥ ८ ॥

अर्थ—हे नाथ! तमारी शांति आश्चर्यकारक छे, तमारुं रूप अद्भुत छे, अने सर्व प्राणीमात्रने विषे अद्भुत एवी तमारे दया छे. ए माटे संपूर्ण आश्चर्यने उत्पन्न करनारा जे गुणो तेना केवल महा निधान अने भगवान् एवा तमोने मारो नमस्कार हो ॥ ८ ॥
इत्यद्भुतस्तवनामा दशमः प्रकाशः ॥ १० ॥

॥ अथ महिमास्तवनामा एकादशः प्रकाशः ॥

निघ्नन् परीषहचमू—मुपसर्गान् प्रतिक्षिपन् ॥
प्राप्तोऽसि शमसौहित्यं, महतां कापि वैदुषी ॥ १ ॥

अर्थ—हे नाथ! तमे क्षुधा, तृषा इत्यादिक बावीश परीषहनी सेनाने अत्यन्त हणता थका अने देव, मनुष्य, तिर्यंच एओए करेला उपद्रवोनो प्रतिक्षेप करता थका शमे करीने जे सौहित्य एटले सुसमाहितत्त्व, ते प्रत्ये प्राप्त थया छो. ए माटे उत्तम पुरुषनी जे निपुणता ते वचनातीत छे ॥ १ ॥

अरक्तो भुक्तवान् मुक्ति—मद्विष्टो हतवान् द्विषः ॥
अहो महात्मनां कोऽपि, महिमा लोकदुर्लभः ॥ २ ॥

अर्थ—हे नाथ! तमे विषयोने विषे प्रीति विना रहेता छतां मुक्तिनो उपभोग करता हवा; अने द्वेष रहित होता थका अंतरंग शत्रुने जीतता हवा. आश्चर्यज छे के, महात्मा जे गुरुपुरुष तेनो दुर्लभ एवो जे महिमा ते लोकोने अनिर्वचनीय छे ॥ २ ॥

सर्वथा निर्जिगीषेण, भीतभीतेन चागसः ॥
त्वया जगत्त्रयं जिग्ये, महतां कापि चातुरी ॥ ३ ॥

अर्थ—हे नाथ ! सर्व प्रकारे करीने जेने जयनी इच्छाज नथी एवा अने अपराधथी भय पामेला करतां पण जय पामेला एवा तमोए पोताना गुणोए करीने त्रैलोक्य जीत्युं छे. आ उपरथी एवुं सिद्ध थाय छे के, महात्मा पुरुषोनी चतुरता अनिर्वचनीय छे ॥ ३ ॥

दत्तं न किंचित्कस्मैचि—न्नात्तं किंचित्कुतश्चन ॥
प्रभुत्वं ते तथाप्येत—त्कला कापि विपश्चिताम् ॥ ४ ॥

अर्थ—हे नाथ ! तमे कोइने कांइ पण प्रसादे करीने धन कनकादिक दीधुं नथी, अने कोइथी रोषे करी दंडादिक कांइ पण ग्रहण कर्युं नथी, तथापि तमारुं सर्व लो-

कने विषे प्रसिद्ध एवुं आधिपत्य वर्त्ते छे, ते कारण माटे विचक्षण पुरुषनी कोइ एक कलानी कुशलता अनिर्वचनीयज छे ॥ ४ ॥

यद्देहस्यापि दानेन, सुकृतं नार्जितं परैः ॥
उदासीनस्य तन्नाथ, पादपीठे तवाऽलुठत् ॥ ५ ॥

अर्थ– हे नाथ ! तमाराथी अन्य एवा तीर्थिकोए देहना त्यागे करीने पण जे पुण्य संपादन नथी कर्युं ते पुण्य, सुकृतसंपादन विषे उदासीन एवा जे तमो, तेना पादपीठना अग्र भागने विषे आलोटतुं हतुं ॥ ५ ॥

रागादिषु नृशंसेन, सर्वात्मसु कृपालुना ॥
भीमकान्तगुणेनोच्चैः, साम्राज्यं साधितं त्वया ॥ ६ ॥

अर्थ– हे नाथ ! वली तमे अत्यन्त साम्राज्यने स्ववशमां संपादन करेलुं छे. ते तमे केवा छो ? तो के रागादिकने विषे निर्दयपणुं अने सर्व प्राणीमात्रने विषे कृपाशीलता, तथा अंतरंग शत्रुना दमनने विषे भयंकरपणुं अने संयमादिक पालवाने विषे सुंदरपणुं धारण करनारा छो ॥ ६ ॥

सर्वे सर्वात्मनाऽन्येषु, दोषास्त्वयि पुनर्गुणाः ॥
स्तुतिस्तवेयं चेन्मिथ्या, तत्प्रमाणं सभासदः ॥ ७ ॥

अर्थ—अन्य जे हरि हरादिक देव, तेओने विषे सर्व प्रकारे करीने दोषो छे, अने हे नाथ ! तमारे विषे सर्वात्मताए करी निरागादिक गुणो रहेला छे. आ में करेली तमारी गुणस्तुति जो मिथ्या होय तो ए विषे सभासद प्रमाण छे. एटले सभासदो जे कहेशे तेज सत्य छे ॥ ७ ॥

महीयसामपि महा—न्महनीयो महात्मताम् ॥
अहो मे स्तुवतः स्वामी, स्तुतेर्गोचरमागमत् ॥ ८ ॥

अर्थ—आश्चर्य छे के हे भगवन्, स्वामी एवा जे तमे ते, स्तुति करनारो एवो जे हुं तेना स्तुतिविषयने विषे आवता हवा. ते तमे केवा छो ? तो के अत्यन्त महान् मध्ये पण महान् अने महात्मा जे गुरुपुरुषो तेनी मध्ये पण पूज्य छो ॥ ८ ॥ इति महिमास्तवनामा एकादशः प्रकाशः ॥ ११ ॥

अथ वैराग्यस्तवनामा द्वादशः प्रकाशः ॥

पट्वभ्यासादरैः पूर्वं, तथा वैराग्यमाहरः ॥
यथेह जन्मन्याजन्म, तत्सात्मीभावमागमत् ॥ १ ॥

अर्थ– हे नाथ ! तमे पूर्वजन्मने विषे उत्तम अभ्यासना आदरे करीने तेवो वैराग्य संपादन कर्यो छे के, आ जन्मने विषे पण ते वैराग्य, तमारा जन्मदिवसथी मांडीने सहज धर्मने पाम्यो छे ॥ १ ॥

दुःखहेतुषु वैराग्यं, न तथा नाथ निस्तुषम् ॥
मोक्षोपायप्रवीणस्य, यथा ते सुखहेतुषु ॥ २ ॥

अर्थ–हे नाथ ! मोक्षोपायभूत जे संतोषादिक साधनो, तेने विषे निपुण एवा जे तमे ते तमने दुःखहेतु जे इष्टवियोगादिक तेने विषे तेवो अत्यन्त निस्तुष वैराग्य नथी, के जेवो सुखहेतु जे इष्टसंयोगादिक तेने विषे निस्तुष वैराग्य छे ॥ २ ॥

विवेकशाणैर्वैराग्य–शस्त्रं शातं तथा त्वयाः ॥
यथा मोक्षेऽपि तत्साक्षा–दकुंठितपराक्रमम् ॥ ३ ॥

अर्थ—हे नाथ ! तमे विवेकरूप शस्त्रघर्षण यंत्रे करीने वैराग्यरूप शस्त्र एवुं तीक्ष्ण कर्युं छे, के ते वैराग्यशस्त्र मोक्षने विषे पण अथवा शब्दछले करी मूके छते पण, स्पष्टपणे अकुंठित छे पराक्रम जेनुं एवुं छे ॥ ३ ॥

यदा मरुन्नरेन्द्रश्री—स्त्वया नाथोपभुज्यते ॥
यत्र तत्र रतिर्नाम, विरक्तत्वं तदापि ते ॥ ४ ॥

अर्थ—हे नाथ! तमाराथी जे प्रस्तावने विषे देव अने राजा, एओनी लक्ष्मी उपभोग कराय छे, ते प्रस्तावने विषे पण तमारी जे ते स्थले रति, ते समाधि एवे नामे करीने वैराग्यपणुंज रहे छे ॥ ४ ॥

नित्यं विरक्तः कामेभ्यो, यदा योगं प्रपद्यसे ॥
अलमेभिरिति प्राज्यं, तदा वैराग्यमस्ति ते ॥ ५ ॥

अर्थ—हे नाथ ! तमे जे समये निरन्तर मनोज्ञ एवा शब्दादिक विषयोथी विरक्त थका चारित्रयोगनो अंगीकार करो छो, ते समये तमारे ते विषये करीने शुं ? अर्थात् कांइ नहीं. एवो तमारे विषे अति श्रेष्ठ वैराग्य रहेलो छे ॥ ५ ॥

सुखे दुःखे भवे मोक्षे, यदौदासीन्यमीशिषे ॥
तदा वैराग्यमेवेति, कुत्र नासि विरागवान् ॥ ६ ॥

अर्थ—हे नाथ ! तमे जे समये सुख, दुःख, भव अने मोक्षने विषे औदासीन्य धारण करो छो, ते समये पण तमने वैराग्यज रहे छे. ए माटे तमे कया काले कया स्थले वैराग्यवान् नथी ? अर्थात् सर्व काले सर्व स्थले वैराग्यवान्ज छो ॥ ६ ॥

दुःखगर्भे मोहगर्भे, वैराग्ये निष्ठिताः परे ॥
ज्ञानगर्भं तु वैराग्यं, त्वय्येकायनतां गतम् ॥ ७ ॥

अर्थ—हे नाथ ! अन्य एवा संसारी जीव, दुःखगर्भित वैराग्यने विषे अने मोह-गर्भित वैराग्यने विषे निष्ठा प्रत्ये पामेला छे, अने तमारे विषे ज्ञानगर्भित एवो वैराग्य एकाश्रयताने पामेलो छे. अर्थात् तमारा जेवो वैराग्य कोइने नथी ॥ ७ ॥

औदासीन्येऽपि सततं, विश्वविश्वोपकारिणे ॥
नमो वैराग्यनिघ्नाय, तायिने परमात्मने ॥ ८ ॥

अर्थ—ए माटे निरन्तर उदासीनत्व छते पण संपूर्ण जगत् उपर उपकार करनारा, वैराग्यतत्पर अने सर्व प्राणीमात्रनुं रक्षण करनारा एवा परमात्मा जे तमे ते तमने मारो नमस्कार हो ॥ ८ ॥ इति वैराग्यस्तवनामा द्वादशः प्रकाशः ॥ १२ ॥

॥ अथ हेतुनिरासनामा त्रयोदशः प्रकाशः ॥

अनाहूतसहायस्त्वं, त्वमकारणवत्सलः ॥
अनभ्यर्थितसाधुस्त्वं, त्वमसंबन्धबांधवः ॥ १ ॥

अर्थ— हे नाथ ! तमे न बोलाव्या छतां पण सखा प्रमाणे आचरण करनारा, कारण विना हितकर्ता, प्रार्थना कर्या विना परकार्य साधन करनारा अने संबन्ध विना बांधव छो ॥ १ ॥

अनक्तस्निग्धमनस--ममृजोज्ज्वलवाक्पथम् ॥
अधौतामलशीलं त्वां, शरण्यं शरणं श्रये ॥ २ ॥

अर्थ—ए माटे अभ्यंग विनाज जेनुं मन स्नेह युक्त छे, मलापकर्षण विना

जेनो वचनमार्ग निर्मल बे अने प्रक्षालन कर्या विनाज जेनो स्वजाव निर्मल बे, एवा शरण जवा योग्य जे तमे, ते तमारा शरणनो हुं आश्रय करुं बुं ॥ २ ॥

अचंम्फवीरव्रतिना, शमिना समवर्त्तिना ॥
त्वया काममकुट्यन्त, कुटिलाः कर्मकंटकाः ॥ ३ ॥

अर्थ—हे नाथ ! शान्त बतां पण सुजटव्रतवाला अने शमशील अने शत्रु मित्रादिकोने विषे समान रूपे करीने वर्तनारा एवा तमे अत्यन्त कुटिल एवा कर्मरूप कांटाउं तोमी नाख्या बे ॥ ३ ॥

अजवाय महेशाया--गदाय नरकच्छिदे ॥
अराजसाय ब्रह्मणे, कस्मैचिझवते नमः ॥ ४ ॥

अर्थ—नहीं जव केतां शंकर अथवा नथी जव केतां जन्म जेने ते अजव कहीए. ए अजव एवा ईश्वर अथवा त्रिजुवनना स्वामी, अने नथी गदा नामनुं आयुध अथवा नथी रोग जेने एवा, वली नरकयातनाना बेद करनारा एवा अने नथी रजोजाव एटले विषयाजिलाष जेने एवा तथा परब्रह्मस्वरूप एवा कोइ एक अलक्ष्य स्वरूप जे तमे, तेने

मारो नमस्कार हो. आ ठेकाणे शिव, विष्णु, ब्रह्मा न छतां पण तेउनां अन्य कार्ये करी नाम धारण करनारा भगवान् कह्या. ए विरोधाभास अलंकार छे एम जाणवुं ॥ ४ ॥

अनुद्दितफलोदग्रा–दनिपातगरीयसः ॥
असंकल्पितकल्पद्रो–स्त्वत्तः फलमवाप्नुयाम् ॥ ५ ॥

अर्थ–हे नाथ ! सिंचन कर्या विनाज फलोए करीने अद्भुत, पतन रहित छतां अत्यन्त महान्, अने असंकल्पित एवा पण मनोरथने पूर्ण करनार, कल्पवृक्ष एवा जे तमे, ते तमाराथी हुं अभीष्ट फलने पामुं ॥ ५ ॥

असंगस्य जिनेशस्य, निर्ममस्य कृपात्मनः ॥
मध्यस्थस्य जगत्त्रातु–रनंकस्तेऽस्मि किंकरः ॥ ६ ॥

अर्थ–हे नाथ ! जेने धन कनकादिकनो परिग्रह नथी, सामान्य केवलीना स्वामी, ममता रहित, अने जेनुं चित्त कृपारूप छे, अने बीजानी अपेक्षाए रहित, अने सर्व जगत्‌ना त्राता एवा जे तमे, ते तमारो त्रिशूलपातादिक चिह्न रहित एवो हुं सेवक छुं ॥ ६ ॥

अगोपिते रत्ननिधा–ववृते कल्पपादपे ॥
अचिन्त्ये चिन्तारत्ने च, त्वय्यात्माऽयं मयार्पितः ॥ ७ ॥

अर्थ– हे नाथ ! नहीं ढांकेलो एवो जे रत्ननो निधि, अने नहीं सेवन करेलुं एवुं जे कल्पवृक्ष अने चिंतन करवा माटे अशक्य एवुं जे चिन्तामणि, ते सरखा जे तमे, ते तमारे विषे में आ मारो आत्मा समर्पण कर्यो छे ॥ ७ ॥

फलानुध्यानवंध्योऽहं, फलमात्रतनुर्भवान् ॥
प्रसीद यत्कृत्यविधौ, किंकर्त्तव्यजडे मयि ॥ ८ ॥

अर्थ–हे नाथ ! हुं फलनी इच्छा रहित छुं, अने तमे फलरूप शरीर छो, ए माटे कये समये शुं करवुं ? ए विषे मूर्ख जेवो जे हुं, ते मारे विषे, मारे शुं करवुं जोइए ? ते वातमां मारा उपर प्रसाद करो ॥८॥ इति हेतुनिरासनामा त्रयोदशः प्रकाशः ॥ १३ ॥

॥ अथ योगस्तवनामा चतुर्दशः प्रकाशः ॥

मनोवचःकायचेष्टाः, कष्टाः संहृत्य सर्वथा ॥
श्लथत्वेनैव भवता, मनःशल्यं वियोजितम् ॥ १ ॥

अर्थ—हे नाथ ! तमे अनायासे करीनेज कष्टकारक एवी मन, वचन अने देहनी, व्यापाररूप क्रियाओने सर्व प्रकारे करी संवृत करीने मनोरूप शल्यनुं प्रथ-करण कर्युं छे ॥ १ ॥

संयतानि न चाक्षाणि, नैवोछृंखलितानि च ॥
इति सम्यक्प्रतिपदा, त्वयेंद्रियजयः कृतः ॥ २ ॥

अर्थ—उत्तम प्रकारनुं जेनुं ज्ञान छे एवा जे तमे ते तमे, पोतपोताना विषयोने विषे प्रवृत्त एवी कर्णादि पंचेन्द्रियोने अत्यन्त संयमित न करी, अने अत्यन्त विषयासक्त पण न करी; कारणके शुभाशुभ पदार्थरूप विषयोने विषे हर्ष अने विषाद, एओनुं त्यागपणुं छे. माटे हे नाथ ! तमे पूर्वोक्त रीते इन्द्रिय जय कर्यो छे ॥ २ ॥

योगस्याष्टांगता नूनं, प्रपंचः कथमन्यथा ॥
आबालभावतोप्येष, तव सात्म्यमुपेयिवान् ॥ ३ ॥

अर्थ—हे नाथ ! अध्यात्म योगनी पण अष्टांगता यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, ध्यान, धारणा अने समाधि ए निश्चयथी आठ प्रकारनी छे. जो ए अष्टां-

गता प्रपंच न होय तो आ योग, बालपणाथी पण तमारा स्वरूपना सहितपणा प्रत्ये केम प्राप्त थाय ? अर्थात् प्राप्त थायज नहीं ॥ ३ ॥

विषयेषु विरागस्ते, चिरं सहचरेष्वपि ॥
योगे सात्म्यमदृष्टेऽपि, स्वामिन्निदमलौकिकम् ॥ ४ ॥

अर्थ—हे स्वामिन् ! चिरकाल सहचर एवा मनोज्ञ शब्दादिक विषयोमां आपने, आपमां अध्यात्मयोग न दीसतां छतां पण सहज भावे करीने वैराग्य छे, ए केवल अलौकिकज छे; कारणके लोक मध्ये तो दृष्टने विषे राग थाय, पण अदृष्टमां तो राग होतो नथी ॥ ४ ॥

तथा परे न रज्यन्त, उपकारपरे परे ॥
यथापकारिणि भवा—नहो सर्वमलौकिकम् ॥ ५ ॥

अर्थ—हे नाथ ! जेवा तमे अपकार करनारा जनोने विषे स्नेहयुक्त छो, तेवा अन्य लोक, उपकार विषे तत्पर एवा पण अन्य जनने विषे स्नेहयुक्त थता नथी, ते माटे अहो ! ! ! आ सर्व तमारुं चरित्र लोकोत्तर छे ॥ ५ ॥

हिंसका अप्युपकृता, आश्रिता अप्युपेक्षिताः ॥
इदं चित्रं चरित्रं ते, के वा पर्यनुयुंजताम् ॥ ६ ॥

अर्थ—हे नाथ ! तमे हिंसा करनारा पुरुषोने पण स्वर्गादिकने विषे पहोंचाडीने उपकार संयुक्त कर्या; अने सेवापर एवा पण श्रेणिकादिक पुरुषो उपेक्षित कर्या. एटले तेओनी नरकगति निवारण करी नहीं. तेथी हे नाथ ! आ पूर्वोक्त तमारा आश्चर्यकारक चरित्रने विषे कया पुरुषोने पूछीए ? अर्थात् कयो पुरुष तमारा सरखुं आचरण करवाने समर्थ छे ? कोइ नथी ॥ ६ ॥

तथा समाधौ परमे, त्वयात्मा विनिवेशितः ॥
सुखी दुःख्यस्मि नास्मीति, यथा न प्रतिपन्नवान् ॥ ७ ॥

अर्थ—हे नाथ ! तमे उत्कृष्ट समाधिने विषे तेवे प्रकारे करीने आत्मा स्थापन कर्यो छे के, हुं सुख संयुक्त छुं अथवा दुःख संयुक्त छुं ! ए कांइ जाणता नथी ॥ ७ ॥

ध्याता ध्येयं तथा ध्यानं, त्रयमेकात्मतां गतम् ॥
इति ते योगमाहात्म्यं, कथं श्रद्धीयतां परैः ॥ ८ ॥

अर्थ—हे नाथ ! ध्यान करनार, शुभाशुभ परिणामरूप मननो व्यापार, तेमज ध्यान करवाने योग्य एवुं परमात्मस्वरूप, ए त्रणे एकात्मताए करी तमारे विषे प्राप्त थयेलां छे, माटे तमारुं योगप्रभुत्व ते, अन्य जे अमारा सरखा जन, तेओए केवी रीते श्रद्धाए ग्रहण थाय ? अर्थात् अन्य पुरुषोए पण तमारुं योगमाहात्म्य अतर्क्य छे ॥८॥

इति योगस्तवनामा चतुर्दशः प्रकाशः ॥ १४ ॥

॥ अथ भक्तिस्तवनामा पंचदशः प्रकाशः ॥

जगज्जैत्रा गुणास्त्रात–रन्ये तावत्तवासताम् ॥
उदात्तशांतया जिग्ये, मुद्रयैव जगत्त्रयी ॥ १ ॥

अर्थ—हे त्रातः ! तमारा जगत्‌ने जीतनारा अन्य गुण तो प्रथम दूर रहो, परन्तु उद्भट होइने शान्त एवी तमारी आकृतिएज आ त्रिभुवनने जीत्युं छे ॥ १ ॥

मेरुस्तृणीकृतो मोहा–त्पयोधिर्गोष्पदीकृतः ॥
गरिष्ठेभ्यो गरिष्ठो यैः, पाप्मभिस्त्वमपोहितः ॥ २ ॥

अर्थ—हे नाथ ! जे पापी पुरुषोए, सर्व मध्ये श्रेष्ठ अने गुरुना पण अत्यन्त गुरु

एवा जे तमे, तेनी निन्दा करी, तो ते पापी पुरुषोए मोहे करीने एटले अज्ञाने करीने मेरु पर्वत पण तृण सरखो गण्यो, अने समुद्रने पण गोष्पद सरखो गण्यो एवुं जाणवुं. अर्थात् तमारी निन्दा करनारा प्राणी अति मूर्ख जाणवा ॥ २ ॥

च्युतश्चिन्तामणिः पाणे–स्तेषां लब्धा सुधा मुधा ॥
यैस्ते शासनसर्वस्व–मज्ञानैर्नात्मसात्कृतम् ॥ ३ ॥

अर्थ–हे नाथ! जे ज्ञान रहित एवा पुरुषोए तमारी आज्ञानुं रहस्य अंगीकार कर्युं नहीं, ते पुरुषना हस्तथी चिन्तामणिज भ्रष्ट थयुं, किंवा ते पुरुषोने प्राप्त थयेलुं अमृत व्यर्थ गयुं एम जाणवुं ॥ ३ ॥

यस्त्वय्यपि दधौ दृष्टि–मुल्मुकाकारधारिणीम् ॥
तमाशुशुक्षणिः साक्षा–दालप्यालमिदं हि वा ॥ ४ ॥

अर्थ– हे नाथ! जे जन तमारे विषे ज्वलित काष्ठना आकारने धारण करनारी एटले क्रोधे आरक्त वर्ण एवी दृष्टिने धारण करे छे, तेने अग्नि एवुं साक्षात् कही स्तुतिकर्ता पूर्ण थयुं एम कही रही गयो. अर्थात् स्तुतिकर्ता पुरुष, तेने अग्नि बालो, एवुं

कहेवा माटे प्रथम प्रवृत्त थयो, परन्तु तेने अग्नि एम कहीने बालो एवुं नाशसूचक क्रियापद कहेवुं ए ठीक नहीं एम विचार करी तेने अग्नि एटलुंज बोली आगल स्तब्ध रही गयो ॥ ४ ॥

त्वच्छासनस्य साम्यं ये, मन्यन्ते शासनान्तरैः ॥
विषेण तुल्यं पीयूषं, तेषां हन्त हतात्मनाम् ॥ ५ ॥

अर्थ—हे नाथ ! जे पुरुषो तमारा शासनने परशासननी साथे समान माने छे, ते जनने अमृत, ते विष सरखुं छे, ए मोटा खेदनी वात छे ! वली ते जन केवा जाणवा ? तो के निन्दा करवा योग्य छे मन जेनुं एवा जाणवा ॥ ५ ॥

अनेडमूका भूयासु—स्ते येषां त्वयि मत्सरः ॥
शुभोदर्काय वैकल्य—मपि पापेषु कर्मसु ॥ ६ ॥

अर्थ—हे नाथ ! जे पुरुषोने तमारे विषे अत्यन्त द्वेष प्राप्त थयो, ते पुरुषो कर्ण अने वचन एबंए रहित थाओ; अने ए प्रकारना कथन करनारना पापकर्मने विषे जे व्यंगत्व थाय, ते पण शुभ फलने माटे छे ॥ ६ ॥

तेभ्यो नमोऽञ्जलिरयं, तेषां तान् समुपास्महे ॥
त्वच्छासनामृतरसै–र्यैरात्मा सिच्यतान्वहम् ॥ ७ ॥

अर्थ–हे नाथ! जे जनोए तमारा शासनरूप अमृतरसे प्रतिदिवस पोतानो आत्मा सिंचन कर्यो छे, ते जनोने नमस्कार हो; अने ते जनोने आ मे करसंपुट करेलो छे, अने हे नाथ! अमे ते जनोने सेवीए छीए ॥ ७ ॥

भुवे तस्यै नमो यस्यां, तव पादनखांशवः ॥
चिरं चूडामणीयन्ते, ब्रूमहे किमतः परम् ॥ ८ ॥

अर्थ–हे नाथ! जे भूमिने विषे तमारा चरणना नखनां किरणो घणा वखत सुधी रत्नाभरण सरखां आचरण करे छे, ते भूमिने अमारो नमस्कार हो. हे नाथ! अमे ए पछी शुं भाषण करीए ? कारणके जे तमारा चरणनखे स्पर्श करेली पृथ्वी भूमि छे तेने पण अमे नमस्कार करीए छीए ॥ ८ ॥

जन्मवानस्मि धन्योऽस्मि, कृतकृत्योऽस्मि यन्मुहुः ॥
जातोऽस्मि त्वद्गुणग्राम–रामणीयकलंपटः ॥ ९ ॥

अर्थ—हे नाथ! जे कारण माटे हुं वारंवार तमारा गुणसमुदायनुं जे मनोहरपणुं, तेने विषे तत्पर एवो छुं, ते कारण माटे हुं सफल जन्मा छुं, हुं वखाणवा योग्य छुं अने हुं कृतकृत्य छुं एटले कृतकार्य थयो छुं ॥ ए ॥ इति जक्तिस्तवनामा पंचदशः प्रकाशः ॥ १५ ॥

॥ अथात्मगर्हास्तवनामा षोडशः प्रकाशः ॥

त्वन्मतामृतपानोत्था, इतः शमरसोर्मयः ॥
पराणयन्ति मां नाथ, परमानन्दसंपदम् ॥ १ ॥

अर्थ— हे नाथ! आ एक पार्श्व जागथकी शमरसना जे तरंगो ते, मने परमानन्दनी संपत्ति प्रत्ये पमाडे छे. ते शमरसना तरंगो केवा छे? तो के तमारा मतरूपज जे अमृतपान छे, तेनाथी उत्पन्न थयेला छे ॥ १ ॥

इतश्चानादिसंसार–मूर्च्छितो मूर्च्छयत्यलम् ॥
रागोरगविषावेगो, हताशः करवाणि किम् ॥ २ ॥

अर्थ—हे नाथ! आ बीजा पार्श्व जागथी अनादि संसारनी वासनाए वृद्धि पामेला

एवा विषयरूप सर्पना विषनो वेग, मने अत्यन्त मूर्छाने पमाडे छे; माटे जेनी आशा भंग थइ छे एवो जे हुं ते शुं करुं ? ॥ २ ॥

रागादिगरलाऽऽघ्रातो–ऽकार्षं यत्कर्म वैशसम् ॥
तद्वक्तुमप्यशक्तोऽस्मि धिग्मे प्रच्छन्नपापिनः ॥ ३ ॥
क्षणं सक्तः क्षणं मुक्तः, क्षणं क्रुद्धः क्षणं क्षमी ॥
मोहाद्यैः क्रीडयेवाहं, कारितः कपिचापलम् ॥ ४ ॥

अर्थ–हे नाथ ! हुं राग एज कोइ एक सर्प, तेने विषे मूर्छित होतो थको, परस्त्री विषे इच्छा विगेरे जे दुष्ट कर्म तेने करतो हवो. ते कर्म केवां छे ? तो के ते कर्मने कहेवा पण हुं समर्थ नथी. माटे गुप्त पापी जे हुं तेने धिक्कार हो ॥३॥ वली मोहादिकोए (मोह, मद, मत्सर) मने वानर सरखी चपलताने पमाडेलो छे. ते केवी रीते ? तो के बीजा पुरुषो क्रीडाए करी जेवी रीते वानरने चपल करे छे. तेथी हुं पण आ असार संसारने विषे एक घडी प्रीतिवालो, एक घडी मुक्त, एक घडीमां क्रोधायमान अने एक घडीमां दयावालो एवी रीते मोहे मने चपल कर्यो छे ॥ ४ ॥

प्राप्यापि तव संबोधिं, मनोवाक्कायकर्म्मजैः ॥
दुश्चेष्टितैर्मया नाथ, शिरसि ज्वालितोऽनलः ॥ ५ ॥

अर्थ—हे नाथ ! तमारा सारा धर्मने पामीने पण मन, वाणी अने शरीरना व्यापारथी उत्पन्न थयेलां जे पापो तेनाथी मारा माथा उपर में अग्नि प्रज्वलित कर्यो छे. अर्थात् ते अग्नि मने अत्यन्त बाले छे ॥ ५ ॥

त्वय्यपि त्रातरि त्रात–र्यन्मोहादिमलिम्लुचैः ॥
रत्नत्रयं मे ह्रियते, हताशो हा हतोऽस्मि तत् ॥ ६ ॥

अर्थ—हे रक्षण करनारा ! तमे रक्षक छतां मोहादिक चोरोए मारुं ज्ञान दर्शन चारित्ररूप, अथवा देव, गुरु, धर्मरूप रत्नत्रय हरण कर्युं, माटे आशा विनानो हुं थयो एज खेदकर छे ॥ ६ ॥

भ्रान्तस्तीर्थानि दृष्टस्त्वं, मयैकस्तेषु तारकः ॥
तत्तवांह्रौ विलग्नोऽस्मि, नाथ तारय तारय ॥ ७ ॥

अर्थ—हे नाथ ! में अनेक तीर्थ भ्रमण कर्यां, पण ते सर्व तीर्थने विषे में संसारसमुद्रथी तारनारा एवा एक तमनेज जोया, माटे हुं तमारा चरणकमलने विषे प्रीतिवालो थयो छुं, तो हे नाथ ! मने तारो, तारो ॥ ७ ॥

भवत्प्रसादेनैवाह—मियतीं प्रापितो भुवम् ॥
औदासीन्येन नेदानीं, तव युक्तमुपेक्षितुम् ॥ ८ ॥

अर्थ—हे नाथ ! तमारी कृपाथीज हुं आ मनुष्यजन्मादिक भूमिका प्रत्ये पाम्यो छुं, माटे हालमां उदासीनपणे मारा तरफ उपेक्षा करवी ते योग्य नथी ॥ ८ ॥

ज्ञाता तात त्वमेवैक—स्त्वत्तो नान्यः कृपापरः ॥
नान्यो मत्तः कृपापात्र—मेधि यत्कृत्यकर्मठः ॥ ९ ॥

अर्थ— हे तात ! तमेज एक निपुण छो. तमाराथी बीजो कोइ दयालु नथी, अने मारा विना बीजुं कोइ कृपा करवाने गरीब पात्र नथी, ए माटे तमे जे कार्य करवा माटे योग्य छो ते कार्य करीने वृद्धि पामो ॥ ९ ॥ इत्यात्मगर्हास्तवनामा षोडशः प्रकाशः ॥ १६ ॥

॥ अथ शरणगमननामा सप्तदशः प्रकाशः ॥

स्वकृतं दुष्कृतं गर्हन्, सुकृतं चानुमोदयन् ॥
नाथ त्वच्चरणौ यामि, शरणं शरणोज्झितः ॥ १ ॥

अर्थ—हे नाथ ! आश्रय विनानो हुं मारां करेलां पापोनुं निंदतो अने पुण्यने अनुमोदन करतो तमारा चरणने शरण आव्यो छुं ॥ १ ॥

मनोवाक्कायजे पापे, कृतानुमतिकारिते ॥
मिथ्या मे दुष्कृतं भूया—दपुनःक्रिययान्वितम् ॥ २ ॥

अर्थ— हे नाथ ! मारा पोताना करवाथी अने बीजानी पासे कराववाथी उत्पन्न थएलां जे कयिक, वाचिक अने मानसिक पापो तेने विषे, फरीथी तेम न थाय तेवी क्रिया युक्त जे दुष्कर्म ते मिथ्या हो. अर्थात् मिथ्यादुक्कड हो.

यत्कृतं सुकृतं किंचि—द्रत्नत्रितयगोचरम् ॥
तत्सर्वमनुमन्येऽहं, मार्गमात्रानुसार्यपि ॥ ३ ॥

अर्थ—हे नाथ ! में ज्ञान, दर्शन, चारित्र विषयक जे कांइ पुण्य कर्यु होय, ते सर्वने केवल आचार मात्रने अनुसरनारो हुं अनुमोदन करुं छुं ॥ ३ ॥

सर्वेषामर्हदादीनां, यो योऽर्हत्त्वादिको गुणः ॥
अनुमोदयामि तं तं, सर्वं तेषां महात्मनाम् ॥ ४ ॥

अर्थ—हे नाथ ! संपूर्ण अर्हदादिकोना एटले अर्हत्, सिद्ध, आचार्य, उपाध्याय अने सर्व साधुओना अर्हत्त्व सिद्धत्वादिक जे जे गुणो छे, ते संपूर्ण एवा अर्हदादिक महात्माओना गुणो प्रत्ये हुं अनुमोदन करुं छुं ॥ ४ ॥

त्वां त्वत्फलभूतान् सिद्धां–स्त्वच्छासनरतान्मुनीन् ॥
त्वच्छासनं च शरणं, प्रतिपन्नोऽस्मि भावतः ॥ ५ ॥

अर्थ—हे नाथ ! हुं तमारा प्रत्ये अने तमारा फलभूत एटले तमारी उपासना करीने सिद्ध थयेला जे सिद्ध अने तमारा मतने विषे आसक्त एवा जे मुनिओ, अने तमारुं जे शासन, ए सर्व प्रत्ये भावे करीने शरणे आव्यो छुं ॥ ५ ॥

क्षमयामि सर्वान् सत्त्वान्, सर्वे क्षाम्यन्तु ते मयि ॥
मैत्र्यस्तु तेषु सर्वेषु, त्वदेकशरणस्य मे ॥ ६ ॥

अर्थ—हे नाथ ! हुं एकेंद्रियथी मांडीने पंचेंद्रिय पर्यंत सर्व प्राणीओने क्षमा करवानी प्रार्थना करुं छुं, अने ते सर्व प्राणीओ मने क्षमा करो. जेने तमेज एक शरण छो एवो जे हुं तेने सर्व प्राणीओ विषे हितबुद्धि थाओ ॥ ६ ॥

एकोऽहं नास्ति मे कश्चि—न्न चाहमपि कस्यचित् ॥
त्वदंह्रिशरणस्थस्य, मम दैन्यं न किञ्चन ॥ ७ ॥

अर्थ—हे नाथ ! हुं एक छुं, मारे अन्य कोइ नथी, अने हुं पण कोइनो संबंधी नथी, ए माटे हे नाथ ! तमारा चरणने शरणे आवेला मने कांइ पण दीनपणुं नथी ॥ ७ ॥

यावन्नाप्नोमि पदवीं, परां त्वदनुभावजाम् ॥
तावन्मयि शरण्यत्वं, मा मुञ्चः शरणं श्रिते ॥ ८ ॥

अर्थ—हे नाथ ! हुं ज्यांसुधी तमारा प्रभावे करीने प्राप्त थयेली उत्तम मोक्षपद

वीने प्राप्त थयो नथी, त्यांसुधी हे भगवन् ! शरणे आवेलाने छोडो नहीं. अर्थात् मारुं रक्षण करो ॥ ८ ॥ इति शरणगमननामा सप्तदशः प्रकाशः ॥ १७ ॥

॥ अथ कठोरोक्तिस्तवनामाष्टादशः प्रकाशः ॥

न परं नाम मृद्वेव, कठोरमपि किंचन ॥
विशेषज्ञाय विज्ञप्यं, स्वामिने स्वान्तशुद्धये ॥ १ ॥

अर्थ—वली कोमल आमंत्रणथी कहे छे के हे स्वामिन्! अत्यन्त निपुण एवा आप स्वामीने केवल अत्यन्त कोमल विज्ञापना करवी योग्य नथी तो कांइक पण कठोर विज्ञापना करीए; कारणके कठोर विज्ञापनाए पोतानुं अन्तःकरण शुद्ध थाय छे ॥ १ ॥

न पक्षिपशुसिंहादि-वाहनासीनविग्रहः ॥
न नेत्रवक्त्रगात्रादि-विकारविकृताकृतिः ॥ २ ॥

अर्थ—हे नाथ ! तमे पक्षी, पशु, सिंहादिक वाहनने विषे बेसनारा नथी, तेमज आंखोए करीने, मोढे करीने अने शरीरादिकना विकारे करीने भयंकर आकृतिवाला पण नथी ॥ २ ॥

न शूलचापचक्रादि–शस्त्रांककरपल्लवः ॥
नांगनाकमनीयांग–परिष्वंगपरायणः ॥ ३ ॥

अर्थ–अने तमे शुल, चाप, चक्र, इत्यादिक चिह्न जेने छे एवा हस्तपल्लवे करी युक्त पण नथी; अने स्त्रीनुं जे सुंदर अंग तेने आलिंगन करवाने तत्पर नथी ॥ ३ ॥

न गर्हणीयचरित–प्रकंपितमहाजनः ॥
न प्रकोपप्रसादादि–विडंबितनरामरः ॥ ४ ॥

अर्थ–अने निंदवा लायक कर्मो करीने जेणे शिष्ट लोकोने अत्यंत कंपित कर्या छे तेवा पण तमे नथी; तेमज अत्यंत कोप अने प्रसादथी जेणे मनुष्य तथा देवोने विडंबन करेला छे तेवा पण तमे नथी ॥ ४ ॥

न जगज्जननस्थेम–विनाशविहितादरः ॥
न लास्यहास्यगीतादि–विप्लवोपप्लुतस्थितिः ॥ ५ ॥

अर्थ–अने सर्व जगत्‌नी उत्पत्ति, पालन अने नाश ए करवा माटे जेणे आदर

कर्यो छे, एवा पण तमे नथी; अने नाटक, हास्य, गायन इत्यादिक खराब चेष्टाओए करी दुष्ट आचारवाला पण तमे नथी ॥ ५ ॥

तदेवं सर्वदेवेभ्यः, सर्वथा त्वं विलक्षणः ॥
देवत्वेन प्रतिष्ठाप्यः, कथं नाम परीक्षकैः ॥ ६ ॥

अर्थ—माटे करीने हे नाथ ! परीक्षा करनार पुरुषोए तमारुं देवत्वरूपे करीने केम स्थापन करवुं ? कारणके तमे केवा छो ? तो के पूर्वोक्त प्रकारे करीने सर्व लोक प्रसिद्ध, पशु सिंहादि वाहन रहित अने हरि हरादिक देवोथी सर्व प्रकारे भिन्न छो॥६॥

अनुश्रोतःसरत्पर्ण–तृणकाष्ठादि युक्तिमत् ॥
प्रतिश्रोतः श्रयद्वस्तु, कया युक्त्या प्रतीयताम् ॥ ७ ॥

अर्थ—ए विषे दृष्टान्त कहेवा माटे कहे छे. हे नाथ ! पांदडां, तृण अने काष्ठादि वस्तुओ, जलप्रवाहनी साथे वहे छे, एज योग्य छे. पछी ते तृण, काष्ठादिक वस्तुओ जलप्रवाहनी सामे चालनारी कइ युक्तिथी विश्वास प्रत्ये आवे ? अर्थात् कोइ पण युक्तिए ते तृणादिक वस्तुओनो प्रवाहनी सामे चालवानो विश्वास आवे नहीं ॥ ७ ॥

अथवाऽल मंदबुद्धि–परीक्षकपरीक्षणैः ॥
ममापि कृतमेतेन, वैयात्येन जगत्प्रभो ॥ ८ ॥

अर्थ–हे प्रभो ! अथवा तुच्छ बुद्धि एवा परीक्षकोनी परीक्षाए बस. तथा हे जगत्प्रभो ! मारुं पण तमारी परीक्षाना पिष्टपेषण विषे जे उद्धतपणुं, तेणे हवे पूर्ण थयुं, कारणके तमारुं ज्ञान जे लक्षण तेज तमारी योग्यताने कहे छे, माटे निरर्थक विचारनो उपयोग शा माटे करवो ? हवे ते कयुं लक्षण ? ते आगलना श्लोके करीने कहे छे ॥ ८ ॥

यदेवं सर्वसंसारि–जंतुरूपविलक्षणम् ॥
परीक्षन्ता कृतधिय–स्तदेव तव लक्षणम् ॥ ए ॥

अर्थ–हे नाथ ! आ पूर्वोक्त प्रकारे करीने जे संपूर्ण संसारी प्राणीना स्वरूपथी भिन्न तमारुं लक्षण छे, तेने निपुण पुरुषो परीक्षाए जाणे छे ॥ ए ॥

क्रोधलोभभयाक्रान्तं, जगदस्माद्विलक्षणः ॥
न गोचरो मृडधियां, वीतरागः कथञ्चन ॥ १० ॥

अर्थ--हे नाथ ! आ सर्व जगत् क्रोध, लोभ, अने भय एथी व्याप्त छे, अने वीत-राग एवा तमे तो आ सर्व जगत्थी भिन्न होता थका कोइ पण प्रकारें करीने कोमल बुद्धिवाला पुरुषोने पण प्रत्यक्ष थता नथी॥१०॥इति कठोरोक्तिस्तवनामाष्टादशः प्रकाशः

॥ अथ आज्ञास्तवनामा एकोनविंशतितमः प्रकाशः ॥

तव चेतसि वर्त्तेऽह–मिति वार्तापि दुर्लभा ॥
मच्चित्ते वर्त्तसे चेत्त्व–मलमन्येन केनचित् ॥ १ ॥

अर्थ--हे नाथ ! हुं तमारा चित्तने विषे रहुं छुं, एवी वार्ता पण दुर्लभ छे; परन्तु हे नाथ ! तमे जो मारा चित्तने विषे रहेता हो, तो पछी बीजा कोइ पण साधननी शुं जरुर छे ? अर्थात् कांइ नहीं ॥ १ ॥

निगृह्य कोपतः कांश्चि–त्कांश्चित्तुष्ट्याऽनुगृह्य च ॥
प्रतार्यन्ते मृदुधियः प्रलम्भनपरैः परैः ॥ २ ॥

अर्थ-- हे नाथ ! प्रतारणने विषे तत्पर एवा हरि हरादिक देवोए कोमल बुद्धिवाला पुरुषोने फसाव्या छे. केवी रीते फसाव्या छे ? तो के केटलाएक लोकोने

कोपथी अने केटलाएक लोकोने तुष्टि अने अनुग्रह करीने फसाव्या छे ॥ २ ॥

अप्रसन्नात् कथं प्राप्यं, फलमेतदसंगतम् ॥
चिन्तामण्यादयः किं न, फलन्त्यपि विचेतनाः ॥ ३ ॥

अर्थ—कोइक शंका करे के भगवान् श्री वीतराग कोइने पण प्रसन्न नथी अने अप्रसन्न पण नथी. ए माटे तेमना उपासकोने तेनाथी फलप्राप्ति केम शक्य थशे? ए शंकानी निवृत्ति माटे दृष्टान्त कहे छे के, अप्रसन्न एवा देव गुरुथी फलप्राप्ति थवी केम थशे? एवुं जे बोलवुं ते असंगत छे; कारणके चेतना रहित एवां पण चिन्तामणि, कल्पवृक्ष अने दक्षिणावर्त शंखादिक ते सर्वे फल शुं नथी आपतां? अर्थात् आपे छे ॥ ३ ॥

वीतराग सपर्यात–स्तवाज्ञापालनं परम् ॥
आज्ञाराद्धा विराद्धा च, शिवाय च भवाय च ॥ ४ ॥

अर्थ—हे वीतराग! तमारी पूजा करवा करतां तमारी आज्ञानुं पालन करवुं ए श्रेष्ठ छे, कारणके तमारी आज्ञानुं पालन करवाथी मोक्षप्राप्ति थाय छे, अने खंडन करवाथी संसारवृद्धि थाय छे ॥ ४ ॥

आकालमियमाज्ञा ते, हेयोपादेयगोचरा ॥
आश्रवः सर्वथा हेय, उपादेयश्च संवरः ॥ ५ ॥

अर्थ—हे नाथ । कर्मबंधनहेतु जे आश्रव, ते सर्व प्रकारथी तजवो, अने कर्मछेदननो उपाय एवो जे संवर, ते सर्वथा ग्रहण करवो. माटे तजवा योग्य अने ग्रहण करवा योग्य छे विषय जेनो एवी प्रसिद्ध जे तमारी आज्ञा ते अनादि सिद्ध छे ५

आश्रवो भवहेतुः स्यात्, संवरो मोक्षकारणम् ॥
इतीयमार्हती मुष्टि--रन्यदस्याः प्रपञ्चनम् ॥ ६ ॥

अर्थ—आश्रव ए संसारनुं कारण, अने संवर ए मोक्षनुं कारण जाणवुं. एवुं सूचववा माटेज अर्हत् संबंधीनी ग्रन्थि छे. ए विना सर्व कथन, ते अर्हद्ग्रन्थिनो विस्तार छे ॥ ६ ॥

इत्याज्ञाराधनपरा, अनन्ताः परिनिर्वृताः ॥
निर्वान्ति चान्ये क्वचन, निर्वास्यन्ति तथाऽपरे ॥ ७ ॥

अर्थ—हे नाथ ! ए प्रकारनी आज्ञाना आराधनमां तत्पर एवा अनन्त जीवो मोक्षने

पामता हवा, अने केटलाएक जन, महाविदेहादिकने विषे मोक्षने पामे छे. तेमज बीजा केटलाएक आगल मोक्षने पामशे ॥ ७ ॥

हित्वा प्रसादनादैन्य–मेकयैव त्वदाज्ञया ॥
सर्वथैव विमुच्यन्ते, जन्मिनः कर्मपंजरात् ॥ ८ ॥

अर्थ—हे नाथ ! प्राणी जे छे, ते तमारी प्रसन्नता विषे याचनारूप दीनपणानो त्याग करीने एक तमारी जे आज्ञा तेणे करीनेज सर्वे प्रकारथी पोते कर्मरूप पांजरामांथी मुक्त थाय छे ॥ ८ ॥ इत्याज्ञास्तवनामा एकोनविंशतितमः प्रकाशः॥ १९ ॥

॥ अथ वीतरागस्तवनामा विंशतितमः प्रकाशः ॥

पादपीठलुठन्मूर्ध्नि, मयि पादरजस्तव ॥
चिरं निवसतां पुण्य–परमाणुकणोपमम् ॥ १ ॥

अर्थ—हे नाथ ! तमारा चरणपीठने विषे जेनुं मस्तक नमेलुं छे एवा मारे विषे पुण्यपरमाणु कणनी जेने उपमा छे एवी तमारी पादरज घणा वखत सुधी निवास करो ॥ १ ॥

मद्दशौ त्वन्मुखासक्ते, हर्षबाष्पजलोर्मिभिः ॥
अप्रेक्ष्यप्रेक्षणोद्भूतं, क्षणात्क्षालयतां मलम् ॥ २ ॥

अर्थ—हे नाथ ! तमारा मुखने विषे प्रीतिवाळी मारी दृष्टि, हर्षथी प्राप्त थयेला अश्रुजलना तरंगे करी जोवा सारु अयोग्य पुरुषोना जोवाथी उत्पन्न थयेला पापने अथवा शब्दच्छले करी थयेला अनास्थारूप कर्दमने क्षणनरमां स्वच्छ करो ॥ २ ॥

त्वत्पुरो लुठनैर्भूया—न्मद्भालस्य तपस्विनः ॥
कृतासेव्यप्रणामस्य, प्रायश्चित्तं किणावलिः ॥ ३ ॥

अर्थ—हे नाथ ! सेवन करवाने अयोग्य पुरुषोने जेणे नमस्कार कर्यो छे एवुं जे मारुं मस्तक तेने तमारी आगल लुंठने करीने किणावलिरूप प्रायश्चित्त थाओ ॥ ३ ॥

मम त्वद्दर्शनोद्भूता—श्चिरं रोमाञ्चकंटकाः ॥
तुदन्तां चिरकालोत्था—मसद्दर्शनवासनाम् ॥ ४ ॥

अर्थ—हे नाथ ! घणे काले थयेलुं जे तमारुं दर्शन, तेथी उत्पन्न थयेला जे मारा रोमाञ्चकंटक ते चिरकाल उत्पन्न थयेली जे कुदर्शनवासना तेने नाश करो ॥ ४ ॥

त्वद्वक्त्रकान्तिज्योत्स्नासु, निपीतासु सुधास्विव ॥
मदीयैर्लोचनाम्भोजैः, प्राप्यतां निर्निमेषता ॥ ५ ॥

अर्थ—हे नाथ ! मारां नेत्ररूप रात्रीविकासी कमळो, तमारा मुखचन्द्रनी कान्ति-रूप अमृततुंज जाणे पान होय नहीं तेवुं प्राशन करे छते ते नेत्रकमलो निर्निमेषता अर्थात् देवतापणुं पाम्या छे ॥ ५ ॥

त्वदास्यलासिनी नेत्रे, त्वदुपास्तिकरौ करौ ॥
त्वद्गुणश्रोतृणी श्रोत्रे, भूयास्तां सर्वदा मम ॥ ६ ॥

अर्थ—हे नाथ ! मारां नेत्रो तमारा मुखना अवलोकनने विषे निरन्तर विलास-शील थाओ, एटले तत्पर थाओ, अने मारा हाथ तमारी सेवा करनारा थाओ; अने मारा कर्ण निरन्तर तमारा गुणनुं श्रवण करनारा थाओ ॥ ६ ॥

कुण्ठापि यदि सोत्कण्ठा, त्वद्गुणग्रहणं प्रति ॥
ममैषा भारती तर्हि, स्वस्त्येतस्यै किमन्यया ॥ ७ ॥

अर्थ—हे नाथ ! आ मारी वाणी, तमारी स्तुति करवा माटे कुंठित थइ छती पण

गुणग्रहण प्रत्ये जो उत्कंठा युक्त छे तो आ वाणीनुं कल्याण थाओ. तमारा गुण विषे उत्कंठित न होनारी वाणीए शुं कर्तव्य छे? अर्थात् कांइ नथी. एटले तमारा गुण रहित जे वाणी होय, ते वाणी निष्फल जाणवी ॥ ७ ॥

तव प्रेष्योऽस्मि दासोऽस्मि, सेवकोऽस्म्यस्मि किंकरः ॥
ओमिति प्रतिपद्यस्व, नाथ नातः परं ब्रुवे ॥ ८ ॥

अर्थ--हे नाथ! हुं तमारो प्रेष्य छुं, सेवक छुं, दास छुं अने किंकर छुं. अहीं प्रेष्य, दास, सेवक, किंकर ए सर्व शब्द कर्मकरवाचक छे. ते माटे हे नाथ! पूर्वोक्त प्रेष्यादि शब्दयुक्त जे हुं ते मारो अंगीकार करो. हुं हवे पछी आगल कांइ बोलतो नथी; एथी अधिक बोलवा हुं समर्थ नथी ॥ ८ ॥

श्रीहेमचंद्रप्रभवा-द्वीतरागस्तवादितः ॥
कुमारपालभूपालः, प्राप्नोतु फलमीप्सितम् ॥ ९ ॥

अर्थ--ए कारण माटे कुमारपाल राजा, आ वीतरागना स्तवथी इच्छित फलने

पामो. ते वीतरागस्तव केवुं छे ? तो के श्री हेमचंद्रसूरिथी छे उत्पत्ति जेनी, एवुं छे ॥ ए ॥ इति वीतरागस्तवनामा विंशतितमः प्रकाशः ॥ २० ॥

॥ इत्याचार्यश्रीहेमचंद्रसूरिविरचितो बाला-
वबोधसहितः श्रीवीतरागस्तवः संपूर्णः ॥

Printed by B R. Ghanekar, at the N. S Press, 23, Kolbhat Lane, Bombay, and Published by Bhanji Maya, for Shravak Bhimsi Manek, Mandvi, Saka Lane, No. 225–231. Bombay

श्रीगौतमपृच्छा.

मूल, बालावबोध तथा कथाओ सहित.

आ पुस्तकनी द्वितीयावृत्तिने यथामति संशोधन करावी
श्रावक भीमसिंह माणकनी वती
शा. भाणजी मायाए
श्रीमोहमयीपत्तनमध्ये
निर्णयसागर नामक मुद्रायंत्रमां मुद्रित करावी छे.
संवत् १९६९ मार्गशीर्ष, सन १९१२ डीसेंबर.

प्रस्तावना.

आ ग्रंथमां जीवने सुखदुःख केवीरीते प्राप्त थाय छे ते संबंधी श्रीगौतमस्वामीए श्रीमहावीरस्वामीने जूदा जूदा अडतालीश प्रश्नो पूछेल तेना जवाबमां श्रीमहावीरस्वामीए शुभाशुभ कर्मोनां फल दार्ष्टांतिक कथाउ सहित कही बताव्यां छे के जेथी तेनुं बरोबर स्वरूप जाणीने सुज्ञ वांचको धर्ममार्गमां प्रवर्तवाने प्रयत्न करे.

आ ग्रंथनी प्रथमावृत्ति मूल, बालावबोध तथा कथाउ सहित अमारा तरफथी संवत् १९४६ मां श्रीजैनकथारत्नकोष भाग १ लानी अंदर छपायेल हती, पण ते भागनी नकल हालमां घणो वखत थया अमारे त्यां सीलक नहीं होवाथी तेमज भाग १ लानी अंदर समावेश करेला ग्रंथो (सिंदुरप्रकर, वीतरागस्तव अने गौतमपृछा) पैकी सिंदुरप्रकर तथा वीतरागस्तव जूदा बहार पाडवाथी आ ग्रंथने यथामति संशोधन करी अमोए जूदो बहार पाड्यो छे, जेथी जैनकथारत्नकोष भाग १ लानी खोट पूराइ जाय छे.

आ ग्रंथनी अंदर दृष्टिदोषथी कांइ पण अशुद्धि रही गइ होय तो धर्माभिलाषी विद्वान् बंधुउने सुधारी वांचवा अने बनी शके तो अमने जणाववा विनंति करवामां आवे छे.

शा. भाणजी माया.

અનુક્રમણિકા.

॥ श्रीगौतमगुरुभ्यो नमः ॥

अथ

॥ संक्षिप्तबालावबोधसहिता श्रीगौतमपृच्छा प्रारभ्यते ॥

तत्र

प्रथम बालावबोधकर्त्ता मंगलाचरण करे छे.

॥ नत्वा वीरजिनं बाला—वबोधो लिख्यते मया ॥ श्रीमद्गौतमपृच्छाया, वाचनार्थं विशेषतः ॥ १ ॥ श्रीसोमसुंदर श्री—मुनिसुंदरमहिशालराजेंद्राः ॥ श्रीसोमदेवगुरवो, जयंति जिनकल्पवृक्षसमाः ॥ २ ॥

हवे प्रथम ग्रंथकर्त्ता मंगलाचरण माटे गाथा कहे छे.

॥ नमिऊण तित्थनाहं, जाणंतो तहय गोयमो भयवं ॥ अबुहाण बोहणत्थं, धम्माधम्मं फलं वुच्छे ॥१॥ भावार्थः--तीर्थना नाथ एवा श्रीमहावीर भगवानने नमस्कार करीने श्रुत-

केवली एवा श्रीगौतमस्वामी पोते चार ज्ञानना धणी श्रुतज्ञानना बले करी असंख्याता नव संबंधी संदेहने पोते जाणता छतां पण अबोध जीवोने बोध थवाने अर्थे अम्रतालीश पृछाए करी पुण्य पापनुं फल श्रीमहावीर देव प्रत्ये पूछता हवा ॥ १ ॥

हवे दश गाथाए करी अम्रतालीश पृछानां नाम कहे छे.

॥ नयवं सच्चिय निरयं, सच्चिय जीवो पयाइ पुण सग्गं ॥ सच्चिय किं तिरिएसु, सच्चिय किं माणुसो होइ ॥ २ ॥ सच्चिय जीवो पुरिसो, सच्चिय इछी नपुंसउं होइ ॥ अप्पाऊ दीहाऊ, होइ अजोगी सजोगी य ॥ ३ ॥ केणव सुहउं जायइ, केणव कम्मेण दूहउं होइ ॥ केणव मेहाजुत्तो, डुम्मेहो कह नरो होइ ॥ ४ ॥ कह पंडिउत्ति पुनिणे, केणव कम्मेण होइ मुरकत्तं ॥ कह धीरु कह नीरू, कह विज्जा निप्फला सफला ॥ ५ ॥ केणव नासइ अछो, कह वा संमिलइ कह थिरो होइ ॥ पुत्तो केण न जीवइ, बहु पुत्तो केण वा बहिरो ॥ ६ ॥ जच्चंधो केण नरो, केण विभुत्तं न जिवइ नरस्स ॥ केणव कुठी कुज्जो, केणव कम्मेण दासत्तं ॥ ७ ॥ केण दरिद्दो पुरिसो, केणव कम्मेण ईसरो होइ ॥ केणव रोगी जायइ, रोग विहूणो हवइ केण ॥ ८ ॥ कह हीणंगो मूउं, केणव कम्मेण टूंटउं पंगू ॥ केणव रूवो जायइ, रूव विहूणो हवइ केण ॥ ९ ॥ केणव बहुवेय-

पत्तो, केणव कम्मेण वेयण विमुक्को ॥ पंचिंदिउंवि होइ, केणव एगिंदिउं होइ ॥ १० ॥ संसारो कहवि थिरो, केणव कम्मेण होइ संखित्तो ॥ कह संसार तरिउं, सिद्धिपुरं पावए पुरिसो ॥ ११ ॥ इति ॥

भावार्थः--हे भगवन् ! (सच्चिय निरयं के०) सएव एटले तेज जीव नरके केम जाय ? वली २ तेहीज जीव स्वर्गे पण केम जाय ? वली ३ तेहीज जीव तिर्यंच केम थाय ? वली ४ तेहीज जीव मनुष्यजन्म पण केवी रीते पामे ? ॥ २ ॥

वली हे भगवन् ! ५ तेहीज जीव पुरुष केम थाय ? ६ तेहीज जीव स्त्री केम थाय ? ७ तेहीज जीव नपुंसक केम थाय ? ८ वली तेहीज जीव अल्पायुष्यवालो केम थाय ? ए वली तेहीज जीव मोटा आयुष्यवालो केम थाय ? १० वली तेहीज जीव भोग रहित केम थाय ? ११ वली तेहीज जीव मोटा भोग भोगवनारो केम थाय ? ॥ ३ ॥

वली हे भगवन् ! १२ कया कर्मना उदयथी जीव सौभाग्यवंत थाय ? १३ वली कया कर्मने योगे जीव डुर्भागी थाय ? १४ वली कया कर्मने योगे जीव (मेहाजुत्तो के०) मेधा जे बुद्धि तेणे करी युक्त एटले बुद्धिमान् थाय ? १५ वली कया कर्मने योगे जीव हीन बुद्धिवालो थाय ? ॥ ४ ॥

वली १६ कया कर्मे करी पुरुष पंमित थाय ? तथा १७ कया कर्मने योगे मूर्ख थाय ? तथा १८ कया कर्मने योगे धीर साहसिक थाय ? अने १९ कया कर्मने योगे जीरु एटले बीकण थाय ? तथा २० कया कर्मने योगे जणेली विद्या निष्फल थाय? अने २१ कया कर्मने योगे जणेली विद्या सफल थाय ? ॥ ५ ॥

वली हे जगवन् ! २२ कया कर्मने योगे प्राप्त थयेली लक्ष्मी जती रहे ? अने २३ कया कर्मने योगे घणी लक्ष्मी प्राप्त थाय ? २४ वली कया कर्मने योगे ते पुरुषने थयेला पुत्रो जीवता न रहे ? २५ तथा कया कर्मने योगे घणा पुत्रो थाय ? तेमज २६ कया कर्मने योगे जीव बहेरो थाय ? ॥ ६ ॥

वली २७ कया कर्मने योगे ते जीव जात्यंध थाय ? तथा २८ कया कर्मने योगे जीवने जमेलुं अन्न पचे नहीं ? एटले अपचो अजीर्ण थाय ? तथा २९ कया कर्मने योगे जीव कोढ रोगवालो एटले कोढीयो थाय ? अने ३० कया कर्मे करी जीव कूबमो थाय ? तथा ३१ कया कर्मने योगे ते जीव दासपणुं पामे ? ॥ ७ ॥

वली ३२ कया कर्मे करी जीव दरिद्री थाय ? तथा ३३ कया कर्मना उदयथी

जीव धनवंत थाय ? तथा ३४ कया कर्मे करी ते जीव रोगी थाय ? तथा ३५ कया कर्मने योगे जीव नीरोगी थाय ? ॥ ८ ॥

वळी ३६ कया कर्मने योगे जीव हीन अंगवालो थाय ? तथा ३७ कया कर्मने उदये जीव मुंगो तथा बोबडो थाय ? तथा ३८ कया कर्मने उदये जीव ठूंठो थाय, तथा ३९ कया कर्मने योगे जीव पांगलो लंगडो थाय ? तथा ४० कया कर्मे करी जीव घणो स्वरूपवंत थाय ? तथा ४१ कया कर्मे करी हीन रूपवालो एटले रूप रहित थाय ? ॥ ९ ॥

वळी ४२ कया कर्मे करी जीव अत्यंत वेदनाए करी पीडित थको रहे ? तथा ४३ कया कर्म थकी जीव वेदना रहित थको शातामां होय ? तथा ४४ कया कर्मे करी जीव पंचेंद्रियपणुं पामे ? अने ४५ कया कर्मे करी जीव एकेंद्रियपणुं पामे ? ॥ १० ॥ वळी ४६ कया कर्मने योगे जीव घणो काल संसारमां स्थिर थको रहे ? तथा ४७ कया कर्मने योगे पुरुष संसारमां स्वल्प काल रहे, तथा ४८ कया कर्मने योगे जीव संसारसमुद्र तरीने मोक्ष नगर प्रत्ये जाय ? ॥ ११ ॥

॥ हवे गौतमस्वामीए अरुतालीश प्रश्न प्रत्ये पूछी पछी ते
प्रश्नना उत्तरनी जिज्ञासावंत थका वली पण कहे छे ॥

॥ सवजगजीव बंधव, सवन्नू सवदंसण मुणिंद ॥ सवं साहुसु नयवं, कस्सव कम्मस्स फलमेयं ॥ १२ ॥ नावार्थः—हे नगवन्! तुं सर्व जगतवासी जीवोनो बांधव छो, वली सवन्नू एटले सर्वज्ञ छो, अर्थात् सर्व वस्तुनो जाण छो, तथा सवदंसण एटले सर्व वस्तुनो देखवावालो छो, तथा केवलज्ञाने करी सर्व मुनिउंमां नगवान् एटले इंद्र छो, माटे में जे जे प्रश्न पूछ्या, ते सर्व कया कया कर्मनां फल छे? ते संबंधी सर्व वात कहो ॥ १२ ॥

एवं पुठो नयवं, तियसिंद नरिंद नमिय पयकमलो ॥ अह साहिउं पयत्तो, वीरो महुराइ वाणीए ॥ १३ ॥ नावार्थः—ए प्रकारनी पृछा श्रीगौतमस्वामीए कस्या पछी तियसिंद एटले त्रिदश जे देवता तेना इंद्र अने नरिंद जे राजाउ ते जेना पदकमलने नमे छे एवा श्रीवीर नगवान् ते मधुरी वाणीए करी प्रश्नना उत्तर प्रत्ये कहेवा माटे पयत्तो एटले प्रवर्त्या ॥ १३ ॥

इहां परमेश्वरनी वाणी सांनलतां थकां जीवने कष्ट, नूख, तृषा जाणवामां आवे

नहीं, ते उपर कोइ एक वृद्ध ज्ञानी एटले कोशीनी कथा कहे ठेः—एक गाममां कोइ वणिक रहे ठे, तेने घेर एक कोकरी चाकर ठे, ते घरनुं वैयावच्च करे ठे. एकदा ते डोकरी इंधण लेवा माटे वनमां गइ. ते मध्याह्ने जूख अने तृषाए पीडाणी, तेथी थोडांक इंधण लइने पाठी घेर आवी. तेने देखीने शेठे कह्युं के अरे कोशी ! आजे इंधण थोडां केम लावी ? वली बीजां इंधण लइ आव. ते सांजली फरी तेवीज पाठी वनमां गइ, ते पण बपोरनो वखत हतो तेथी लू अने तापने सहन करती थकी काष्ठजारी उपाडी चाली. मार्गमां एक मूलनुं काष्ठ नीचे पडी गयुं तेने उपाडवा लागी, एटलामां श्रीवीर जगवाननी वाणी सांजलवामां आवी, तेथी तिहांज उजी रही, तेने योगे जूख, तृषा अने तापनी वेदना तेने जाणवामां न आवी, अने धर्मदेशना सांजली हर्ष पामती सांजे घेर आवी. तेने शेठे घेर आववामां असूर थयानुं कारण पूछ्युं, ते वारे तेनी आगल खरेखरी वार्त्ता कही संजलावी. ते वारे शेठे पण ते श्रीमहावीरनां वचन सांजल्यां, तेथी ते थिविरामां धर्मनो गुण जाणीने तेने बहुमान दीधुं. तेने योगे ते सुखी थइ. ए रीते परमेश्वरनी वाणी सांजलवाथी दुःख टली जाय ठे. उक्तं च ॥ दोहो ॥ जिनवरवाणी जे सुणे, नर नारी सुविहाण ॥

सूक्ष्म बादर जीवनी, रक्षा करे सुजाण ॥ १ ॥ पदाब्धरे नमीए. ए श्रीजिनवाणी महिमा उपर कोकरीनी कथा कही.

हवे वीर जगवान् कहे बे के हे गौतम ! जे प्रश्न तुं मुजने पूबे बे, ते सर्व वानां एकज जीव पोते पोताने कर्मने वश थयो थको पामे बे, जे कर्मस्वरूप हुं तुजने कहुं बुं, ते सांजल. एम कही हवे जगवान् पूर्वोक्त अमतालीश प्रश्नोना उत्तर कहे बे. तिहां प्रथम जीव कया कर्मने योगे करी नरके जाय ? तेनो उत्तर त्रण गाथाए करी कहे बे.

॥ गाथा ॥ जे घायइ सत्ताइं, अलियं जंपेइ परधणं हरइ ॥ परदारं चिय वंचइ, बहुपाव परिग्गहासत्तो ॥ १५ ॥ चंमो माणी थिद्धो, मायावी निठुरो खरो पावो, पिसुणो संगह सीलो, साहूणं निंदर्ज अहमो ॥१६॥ आलप्पाल पसंगी, छुठो बुद्धिइ जो कयग्घो य ॥ बहुछुक्ख सोग पउरे, मरिउं नरयम्मि सो जाइ ॥१७॥ जावार्थः—जे १ (सत्ताइं के०) जीवोनी (घायइ के०) घात करे एटले जीवहिंसा करे, तथा २ (अलियं जंपेइ के०) अलिक एटले जूठुं वचन बोले, तथा जे ३ पारका धननुं हरण करे, एटले चोरी करे, तथा जे ४ परदारं एटले पारकी स्त्री साथे गमन करे, तथा जे ५ घणा पापपरिग्रहने विषे आसत्तो एटले आसक्त होय. ए रीते पांच अणुव्रतने जे विराधे, ते जीव नर-

कनुं आयुष्य बांधे ॥ १५ ॥ तथा जे ६ चंमो एटले प्रकृतिए अत्यंत रीसाल होय, ७ माणो एटले मानी अहंकारी होय, धिठो एटले धृष्ट ते कोइने नमे नहीं, ८ मायावी कपटी होय, ए निठुरो निष्ठुर ते कठोर चित्तवालो होय, १० खर ते रौद्र स्वजाववालो होय, ११ पावो एटले पापी होय, १२ पिशुन एटले पारकी चाडी करनारो होय, डुर्जनता परायण होय, १३ अति पापहेतु वस्तुनो संग्रहशील होय, १४ साधुनी निंदा करे, जपलक्षणथी साधुनो प्रत्यनीक होय, १६ अधम नीच स्वजाववालो होय ॥ १६ ॥ आलप्पाल एटले असंबंध वचन.बोले, १७ डुष्ट बुद्धिवालो होय, १८ तथा जे कृतघ्न होय एटले करेला जपकारने न जाणे, (सो के०) ते जीव मरण पामीने प्रचुर एटले घणां डुःख अने शोक तेणे करीने जरेला एवा नरकने विषे जाय ॥ १७ ॥

इहां प्रथम हिंसा आश्चर्यी आठमो सुजूम नामनो चक्रवर्त्ती घणां पापोए करीने नरके गयो तेनी कथा कहे छेः—वसंतपुरी नगरीना वन मध्ये एक आश्रमे जमदग्नि तापस रहेतो हतो. ते घणां कष्ट सहन करतो तपस्या करे, शिवनुं ध्यान हृदयमां धारण करे, तेना योगे ते तापस सर्वत्र प्रसिद्धताने पाम्यो. एकदा देवलोकने विषे एक धन्वंतरी नामे देव तापसजक्त मिथ्यादृष्टि छे, अने वीजो विश्वानर नामे देव जिन-

भक्त सम्यग्दृष्टि छे. ए बेहु मित्र छे. ते बेहु मित्र शूरतापणे पोतपोताना अंगीकार करेला धर्मनां वखाण करवा लाग्या. एके कह्युं के श्रीजिनधर्म समान कोइ धर्म नथी, तो बीजाए कह्युं के शिवधर्म समान बीजो कोइ धर्म नथी. पछी बेहु देवोए एवो ठराव कर्यो जे आपणे बेहु धर्मना गुरुओनी परीक्षा करीए. ते वखते जिनधर्मी देव बोल्यो के श्रीजिनधर्म मांहेलो जे जघन्य नवीन दीक्षित गुरु होय, तेनी परीक्षा करीए, अने शिवधर्म मांहे जे चिरंतन कालनो महा तपस्वी गुरु होय, तेनी परीक्षा करीए, ते उपरथी सारा नरसानी समजण तरत पडशे. एवो निश्चय करी ते बेहु पृथ्वीतल उपर आव्या.

॥ ते वखते मिथिला नगरीनो पद्मरथ राजा राज त्यागीने चंपा नगरीए श्रीवासुपूज्यस्वामी पासेथी तरतनी दीक्षा लइने वल्यो हतो, तेने रस्तामां आवतो देखीने प्रथम तेनीज परीक्षा करवा माटे अनेक प्रकारनां मिष्टान्न जात पाणी सरस बनावीने तेने देखाड्यां. ते साधु भूख्यो तरस्यो हतो, तथापि तेणे ते मिष्टान्नने असुजतां जाणी लीधां नहीं. पोताना साहसथी चल्यो नहीं. ते वारे ते देवोए एक रस्ते कांटा कांकरा विकुर्व्या अने एक तरफना रस्ता उपर घणां नानां नानां देडकां

विकूर्व्यां, तोपण ते महात्मा देडकां तरफना मार्गने ढांकीने जे रस्ते कांटा कांकरा हता, ते रस्तेथी चालवा लाग्यो. तेने जो पण कांटाने योगे पगमांथी लोहीनी धारा चाली जाय छे, तोपण क्षोभ पाम्यो नहीं. ते पछी त्रीजी परीक्षामां ते साधुनी आगल देवोए गीत नाटक कर्यां, स्त्रीओनां रूप बनावीने क्षोभवी जो ., तोपण ते क्षोभाणो नहीं. ते वारे चोथी परीक्षा करवा माटे वली ते देवो निमित्तियानां रूप विकूर्वी साधुनी पासे आवीने कहेवा लाग्या के हे महात्मन्! अमे निमित्तशास्त्रना बलथी कहीए छीए के तमारुं आयुष्य हजी घणुं छे, माटे हमणां यौवनावस्थाए भोग भोगवी, पछी वृद्धावस्थामां चारित्र लइ तप करजो. ते सांभली साधु बोल्या के हे सिद्धपुरुषो! जो मारुं आयुष्य घणुं हशे, तो हुं घणा काल पर्यंत चारित्र पालीश, तेथी घणां कर्मनी निर्जरा थशे. वली हमणां लघुवयमां तप थइ शकशे, परंतु जरा अवस्था प्राप्त थया पछी कांइ विशेष तप थाय नहीं, एवी ते साधुनी दृढता जोइ देवो हर्ष पामी जिनधर्मनी प्रशंसा करवा लाग्या.

हवे ते बेहु देवो आगल जतां वन मांहे घणा कालनुं तप करता, मोटी जटा-वाला, एकांत ध्याने रहेला एवा जमदग्नि नामक तापसने दीठो. तेनी परीक्षा

करवाने अर्थे ते बेहु देवो, चकला अने चकलीनुं रूप धारण करी ते ऋषिनी दाढीना वाळ मांहे मालो करी रह्या. एवामां चकलो मनुष्यनी भाषाए चकलीने कहेवा लाग्यो के हुं हिमवंत पर्वते जइ आवुं, तिहांसुधी तुं इहां रहेजे. ते वात चकलीए न मानी अने कहेवा लागी के तुं तिहां जइने बीजी कोइ चकली साथे आसक्त थइ जा, तो मारा शा हवाल थाय? ते वारे चकलो बोल्यो के जो फरी नहीं आवुं तो मारा उपर गोहत्या, स्त्रीहत्यादिकनुं पाप छे. इत्यादि वातो कही; परंतु चकलीए कांइ मान्युं नहीं, अने कहेवा लागी के जो तुं कोइ चकली साथे यारी करे तो आ ऋषिनुं जेटलुं पाप छे, ते सर्व पाप तारी उपर पडे. एवी रीतनी प्रतिज्ञा कर, तो तुजने जवा दउं.

ते वात सांभळतांज जमदग्नि तापस रीसे भराणो थको दाढीमूछमां हाथ नाखीने बेहुने पकडीने पूछवा लाग्यो के अरे! हुं कठिण तप करीने पापोनो नाश करुं छुं, तेम छतां तमे मुजने पापी कहीने केम बोलावो छो? ते वारे चकली बोली के हे ऋषि! तमे कोप म करो, अने आपणुं शास्त्र जूओ. कह्युं छे के ॥ अपुत्रस्य गतिर्नास्ति, स्वर्गो नैव च नैव च ॥ तस्मात् पुत्रमुखं दृष्ट्वा, स्वर्गं गछंति मानवाः ॥१॥ माटे अपुत्री,

आमे गति नथी अने स्वर्ग पण नथी अने तमे पण अपुत्रीआ छो, तेथी तमारी गति किहां छे ? ते वात ऋषिए सत्य करी मानी लीधी, अने विचार्युं जे कोइक स्त्री साथे पाणिग्रहण करीने पुत्र उपजावुं. पछी तपनो त्याग करीने कोष्टिक नगरे जितशत्रु राजानी घणी पुत्रीउं छे, एवुं सांजली विचारवा लाग्यो के चाल, तेनी पासे जइ हुं कन्यानी याचना करुं. ए रीते ऋषिने चलायमान थयेला जोइने मिथ्यात्वी देव जे हतो, तेणे श्रावकधर्म अंगीकार कर्यो.

हवे तापस राजा पासे कन्यानी याचना करवा गयो, तिहां राजा आसनथी उठी सामो आव्यो. ऋषिए कन्यानी मागणी करी ते वारे राजाए तापसने कह्युं के मारी सो पुत्रीउं छे तेमां जे तमारी वांछा करे, तेने तमे अंगीकार करो. ते सांजली ऋषि पण अंतेउरमां गयो. तिहां ते कन्याउं तेने जटाधारी, दूबलो, जीख मागीने खावा-वालो, धोला केशवालो, असंस्कारी शरीरवालो देखी थुंकीउं, तेथी ते ऋषि रोषित थइ पोताना तपने प्रजावे करी ते सर्व कन्याउंने कूबडी अने कुरूपिणी करी तुरत पाछो वल्यो. तिहां आंगणा आगल धूलमां रमत करती एवी राजानी एक पुत्री दीठी. तेने हाथमां बीजोरुं लइ कहेवा लाग्यो के हे रेणुका ! तुं मुजने वांछे छे ?

ते वारे छोकरीए बीजोरा तरफ पोतानो हाथ घाल्यो ते देखी ऋषिए जाण्युं जे ए मुजने वांछे छे, एम विचारी तेने उपाडी लइ गयो. राजा पण शापना जयथी बीतो थको सहस्र गोकुल तथा दास दासी सहित ते कन्या ऋषिने दीधी. ऋषिए बीजी सो कन्याने पोतानी साळीओना स्नेहथी तपने बळे कूबडापणुं टाळी सारी कीधी. ए रीते सर्व तपस्या गमावीने ते कन्याने वनमां आश्रमस्थानके लइ आव्यो. तिहां लाली पाली यौवनवय प्राप्त करी महा स्वरूपवान् थयेली जोइ, तेनी साथे अग्निनी साखे फरी पाणिग्रहण कीधुं. ऋतुकाले तेने कहेवा लाग्यो के हुं एक चरु मंत्रे करी साधी तुजने आपुं के जेथी तारे घणोज रुडो एवो ब्राह्मण पुत्र थशे. तेने रेणुकाए कह्युं के मंत्रे करी बे चरु साधजो. जे थकी एक ब्राह्मण पुत्र थाय, अने बीजो क्षत्रिय पुत्र थाय; केमके क्षत्रिय पुत्र मारी बहेन जे हस्तिनापुरे परणी छे तेने आपशुं. पछी ऋषिए बे चरु मंत्रे साधीने स्त्रीने आप्या. ते वारे रेणुकाए चिंतव्युं जे मारो पुत्र क्षत्री महा शूरवीर थाय तो हुं आ जंगलमां रहेवाथी छूटुं. एवा हेतुथी क्षत्रिय औषध पोते खाइ गइ अने ब्राह्मण औषध पोतानी बहेनने माटे हस्तिनापुरे मोकल्युं, ते तेणीए खाधुं.

हवे धूलीना ढगलामां रमत करती हती, माटे एनुं नाम रेणुका पाडी दीधुं. तेने राम एवे नामे पुत्र थयो अने बहेनने कृतवीर्य एवे नामे पुत्र थयो. एवामां अतिसारना रोगे करी पीडित एवो एक विद्याधर ते आश्रमे आव्यो. ते अतिसारना प्रभावथी आकाशगामिनी विद्या भूली गयो. तिहां ते विद्याधरनी रामे घणी औषधादिक संबंधी सार संभाल कीधी, तेथी ते विद्याधरे हर्षवंत थइने रामने परशु नामे विद्या आपी. तेने रामे साधी लीधी. तेने योगे ते परशुराम एवे नामे जगत्मां प्रसिद्ध थयो. देवताधिष्ठित कुठार प्रहरण लइने फरतो रह्यो.

हवे एकदा जमदग्निनी आज्ञा लइने रेणुका पोतानी बहेनने मलवा माटे हस्तिनापुरे गइ. तिहां रेणुकाने पोतानी साळी जाणीने अनंतवीर्य राजा तेनी हांसी मश्करी करवा लाग्यो, अने रेणुकानुं घणुं सुंदर रूप जोइ राजा कामातुर थइ निरंकुशपणे रेणुका साथे विषय सेववा लाग्यो. तेना योगथी रेणुकाने वली एक पुत्र थयो. पछी जमदग्नि ते पुत्र सहित रेणुकाने पोताने आश्रमे तेडी लाव्यो अने तेने पुत्र सहित दीठी, ते वारे परशुरामे क्रोधमां आवी परशुए करी तरत पोतानी माता तथा भाइनां मस्तको छेदी नाख्यां. ते वात सांभली अनंतवीर्य राजा क्रोधे भर्यो

थको सेना लइ आवी जमदग्निना आश्रमने बालीने त्रोमी फोमी नाख्यो अने सर्व तापसोने त्रास पमाड्या. ते तापसोनो ककलाट सांजली परशुराम तिहां आव्यो, तेणे अनंतवीर्यने मारी नाख्यो. प्रधान लोकोए ते वात सांजलीने अनंतवीर्यना पुत्र कृतवीर्यने हस्तिनापुरनी गादीए बेसाड्यो. तेणे एक दिवसे पोतानी माताना मुखथी बाप मार्यानुं वैर जाणी आश्रमे जइ जमदग्नि ऋषिने मारी नाख्यो. ते वात परशुरामे सांजली ते वारे हस्तिनापुरे आवीने कृतवीर्यने मारी पोते राजगादीए बेठो. ते वखत कृतवीर्यनी तारा नामे राणी सगर्जा हती, ते परशुरामना जयथी नाशीने वनमां गइ. तेनी उपर कोइ तापसे दया आणीने पोताना आश्रमना जोंयरामां बूपावी राखी. तिहां तेणीए चौद सुपन सूचित पुत्रने जन्म आप्यो. तेनुं नाम सुजूम पाड्युं.

हवे परशुरामे क्षत्रीउं उपर रोष करी फरी फरी सात वखत निःक्षत्री पृथ्वी कीधी. जिहां क्षत्री होय तिहां परशुरामनो कुहाको जाज्वलमान थाय. एकदा जे स्थानके राणी बूपी बेठेली बे, ते आश्रमे आवतां परशुरामनो कुहाको जाज्वलमान थयो, ते वारे परशुरामे तापसोने पूब्युं के इहां कोइ क्षत्री बे ? ते वारे तापसो बोल्या के

गृहस्थावासमां अमे सर्व क्षत्री हता, ते वारे तेने कृपिउं जाणी बोडी दीधा. एम परशुरामे सर्व क्षत्रीउंने मारीने तेमनी दाढाउं लइने एक थाल नर्यो. एकदा परशुरामे बानुं कोइ निमित्तियाने पूछ्युं के मारुं मरण केवी रीते थशे ? ते वारे निमित्तियाए कह्युं के जेना देखवाथी आ दाढाउं खीररूप थशे, अने आ ते खीरने सिंहासन उपर बेसीने जे जमशे, तेना हाथथी तारुं मरण थशे.

ते वात सांजली परशुरामे एक दानशाला मंमावी तेनी आगल एक सिंहासन रचाव्युं अने दाढाउंनो थाल सिंहासन उपर रखाव्यो.

एवा अवसरे वैताढ्य पर्वत उपर मेघनाद नामना विद्याधरे पोतानी पुत्रीनो वर कोण थशे ? ते माटे निमित्तियाने पूछ्युं. निमित्तियाए सुभूम वर बताव्यो तथा सर्व तेनी हकीकत कही संजलावी, ते वारे ते विद्याधर पोतानी पुत्री लइने सुभूमना आश्रमे आव्यो. तिहां पोतानी पुत्री सुभूमने परणावी दीधी, अने पोते पण सुभूमनो सेवक थइ रह्यो.

एकदा सुभूमे पोतानी माताने पूछ्युं के हे माता ! पृथ्वी शुं आटलीज छे ? त्यारे तेने माताए कह्युं के पृथ्वी तो घणीज छे. तेमां एक माखीनी पांख जेटली जग्यामां

आ आश्रम छे. तेमां आपणे परशुरामना जय थकी रह्या छीए तथा आपनी पोतानी राजभूमि हस्तिनापुर छे. इत्यादि सर्व वृत्तांत कही संजलाव्यो. ते सांजली सुभूम रीसे जराणो नोंयराथी बाहिर नीकळ्यो अने मेघनाद विद्याधर सहित हस्तिनापुरमां जिहां दानशाला छे, तिहां गयो. तेनी नजर पमतांज क्षत्रीनी दाढानो थाल खीररूप थयो. तेने जमवा लाग्यो, ते जोइ परशुरामना रखवाला ब्राह्मणो तेने मारवा माटे दोड्या, तेमने मेघनाद विद्याधरे त्रास पमाडी मारी नाख्या. परशुराम पण ते वात सांजली तिहां आव्यो, अने सुभूमने मारवा माटे परशु चलाव्यो, ते परशु सुभूमनी दृष्टिए पमतांज अंगारानी माफक उलवाइ गयो, अने सुभूमे परशुरामनी उपर थालज उपाडीने मूक्यो, ते थाल फीटीने चक्ररत्न थयो, तेणे परशुरामनुं मस्तक छेदी नाख्युं.

पछी जेम परशुरामे सात वार निःक्षत्री पृथ्वी करी, तेम परशुरामना वैरी सुभूमे एकवीश वार निर्ब्राह्मणी पृथ्वी कीधी. कोइ पण जाणमां रही गयो एवो ब्राह्मण जीवतो राख्यो नहीं. चक्ररत्नने बले छ खंड पृथ्वी साधीने चक्रवर्त्ती थयो. पछी लोजनो वाह्यो थको धातकी खंडनुं जरत क्षेत्र साधवा माटे लवणसमुद्र मांहे चर्मरत्न उपर कटक चमावीने लवणसमुद्र मांहे चालतो थको वचमां अधिष्ठित सर्व देवोए सहाय आपवाने

पमतो मूक्यो, तेथी समुद्रमां डूबी मरण पामी अनेक जीवहिंसानां पातके करी सातमी नरके गयो ॥ इति जंतुघात विषे बहुपापपरिग्रहासक्त सुभूम चक्रीनी कथा समाप्त ॥

॥ हवे बीजा प्रश्ननो उत्तर एक गाथाए करी कहे छेः— ॥

॥ गाथा ॥ तव संजम दाण रउं, पयईए नद्दउं किपालूउं ॥ गुरुवयण रउं निच्चं, मरिउं देवेसु सो जाइ ॥ १७ ॥ नावार्थः—जे जीव तप, संयम अने दान तेने विषे रक्त होय, सहज प्रकृतिए नद्रक परिणामी होय, कृपालु दयावंत होय, गुरुनां वचन उपर निरंतर रक्त होय, गुरुना कह्या प्रमाणे चाले, ते जीव मरीने देवलोकमां जइ उपजे ॥ १७ ॥ जेम आनंद श्रावक तपस्या करी प्रतिमा आदरी, दान दइ, श्रीमहावीर देव गुरुनां वचन उपर निरंतर रक्त, दयावंत, नद्रक परिणामी थको, अवधिज्ञान पामी देवपदवी पाम्यो, माटे ए बीजा उत्तर आश्रयी आनंद श्रावकनी कथा कहे छे.

वाणिज्य नामना ग्रामे जितशत्रु राजा राज्य करे छे. तिहां आनंद नामे गृहस्थ रहे छे. तेनी शिवनिंदा नामे स्त्री छे. घरमां बार क्रोड सुवर्ण छे. दश हजार गायनुं एक गोकुल, एवां चार गोकुल छे. वली ते गामथी ईशान खूणे कोलाग ग्रामे आनंद श्रावकनां सगां, संबंधी घणां वसे छे.

एवामां एकदा तिहां द्युतिपलाश नामना वनने विषे, श्रीमहावीरस्वामी आवी समोसस्या. तेमने जितशत्रु राजा अने आनंद गृहस्थादि वांदवा माटे आव्या. तिहां श्रीवीर जगवाननी धर्मदेशना सांजलीने आनंदे श्रावकनां बार व्रत पडिवज्यां. तेमां पांचमा परिग्रह परिमाणव्रतने विषे चार क्रोड सुवर्ण थापण राखवुं, चार क्रोड व्याजे आपवुं अने चार क्रोड व्यापार माटे राखवुं. एम सर्व मली बार क्रोड सुवर्ण अने एक गोकुलमां दश हजार गाय होय तेवां चार गोकुल गायोनां राख्यां. तेमज खेतर खेडवा माटे पांचसें हल मोकलां राख्यां, तथा पांचसें शकट बाहिर देशांतर मोकलवा योग्य अने पांचसें शकट घरनां कामकाज करवा योग्य खेत्रमांथी धान्य, काष्ठ अने तृणादि लाववा माटे राख्यां. तथा जलमार्गे जो परदेशे जाउं तो, चार वहाण अने चार वहाण क्षेत्रथी धान्यादि लाववा माटे. ए रीते आठ वहाण फेरववा राख्यां. तथा स्नान करी राते धोतीए अंगलूहण करवुं, उपरांत अंगलूहणांनो नियम कस्यो, तथा नीला जेठीमधनुं दातण करवुं, तथा क्षीरामलक फल टाली बीजां फलना नियम कस्या, तथा शतपाक अने सहस्रपाक ए बे तेल मर्दन करवाने मोकलां राख्यां. बीजां तेलना नियम कस्या, तथा शिलारस अने अगरना धूप

टाली बीजा धूपना नियम कस्या. जाइफुल अने कमलिनी, ए बे जातिनां फूल टाली बीजां पुष्पना नियम कस्या. काननां आभरण तथा नामांकित मुद्रिका टाली बीजां आभरण राखवाना नियम लीधा: आठ पारी भराय एवा पाणीना घडाथी स्नान करवुं तथा गहूंचूर्णनी पीठी करवी.

बे श्वेत पटकुल टाली बीजां वस्त्रना नियम लीधा, चंदन, अगरु, कुंकुम, ए त्रण टाली बीजां विलेपन करवाना नियम लीधा. मग प्रमुखनी खीचडी तथा तंडुलनी खीर तेमज उज्ज्वली खांडथी भरेलां ऊंचा मेंदानां अने घणा घृतथी तलेलां एवां पक्वान्न खावां, उपरांत नियम लीधा. द्राक्षादिक नीली काष्ठ पेया टाली बीजी पेयाना नियम लीधा. सुगंधीमय कल्मशालिनो कूर टाली बीजा ओदनना नियम लीधा. अडद अने मग टाली बीजा विदलना नियम लीधा. शरत्काल संबंधी गायनां घृत टाली बीजां घृतना नियम लीधा. तूंबक, मंडुकी अने वत्थुलनां शाक टाली बीजां शाकना नियम लीधा. वडां पूर्णादिक टाली बीजां धान्य शाकना नियम लीधा. आकाशनुं पाणी टाली बीजां पाणी पीवाना नियम लीधा. एलची लविंग कस्तूरी कंकोल कपूर जायफल, ए पांच वस्तुए करी संस्कारित जे तंबोल ते टालीने बीजां तंबोल खावाना नियम

लीधा. जे कांइ प्रथमथीज घरमां वस्तु छे, घरवखरी छे तेनी उपरांत परिग्रह राखवाना नियम कस्या. ए पांचमा तथा सातमा व्रत संबंधी वात कही, तेम बीजा पण सर्व व्रतना यथायोग्य नियम लइ श्रीमहावीरने वांदीने घेर आव्यो. शिवनंदा स्त्रीए पण श्रीमहावीर पासे आवी तेमज आनंदनी पेठे श्राविकाधर्म अंगीकार कस्यो. बेहु जणाए चौद वर्ष पर्यंत ए रीते श्रावकधर्म पाल्यो. जो कोइ देव मनमां द्वेष धरी चलाववा आवे तोपण चले नहीं एवो निश्चल थयो.

पछी आनंद श्रावकने प्रतिमा आराधवानो मनोरथ थयो, ते वारे सर्व कुटुंबनी आज्ञा लइने कोल्लाग ग्रामे पौषधशाला करावी. मोटा पुत्रने घरनो जार सोंपी, सर्व सज्जनने जमाडी हकीकत कहीने पौषधशालाए जइ महा तप करतो थको अगीयार प्रतिमाना आराधन करवामां प्रवर्त्यो. ॥ उक्तं च ॥ दंसण वय सामाइय, पोसह पडिमा अबंज सच्चित्ते ॥ आरंज पेस उद्दिठ, वज्जए समणजूए अ ॥ १ ॥ एवी रीते प्रतिमानुं आराधन करता थका आनंदनुं शरीर अत्यंत डुर्बल थयुं.

एम धर्मजागरण करतां अनशननो मनोरथ उपन्यो, ते वारे संलेषणा करी अनशन लीधुं, ते पछी अवधिज्ञान उपन्युं. एवामां श्रीमहावीरस्वामी आवी उद्याने

समोसर्या, ते वारे श्रीगौतमस्वामी छठने पारणे भिक्षाने अर्थ नगरमां जइ अन्न पाणी वहोरीने पाछा वलतां कोल्लाग ग्राम तरफ घणा लोक जतां देखी गौतमस्वामीए पूछ्युं के आ लोको क्यां जाय छे ? ते वारे कोइ एके जवाब आप्यो के हे महाराज ! आनंद श्रावके अनशन कर्युं छे, तेमने वांदवा जाय छे. ते सांभली श्रीगौतमस्वामी पण आनंद श्रावकने वंदाववा माटे तिहां गया. तेमने आव्या जोइने आनंद श्रावक अत्यंत हर्ष पाम्यो थको कहेवा लाग्यो के हे महाराज ! हुं उठी शकतो नथी, माटे तमे ढूकडा पधारो तो आपना पगने हुं मारा मस्तके करी फरसुं. ते सांभली श्रीगौतमस्वामी ढूकडा बेठा. ते वारे आनंद श्रावके त्रिधा शुद्धे करी मस्तक पगे लगाडीने वांद्या, अने पूछ्युं के महाराज ! गृहस्थने अवधिज्ञान उपजे ? श्रीगौतमस्वामी बोल्या के हा उपजे. ते वारे आनंदे कह्युं के मुजने तमारा प्रसादथी अवधिज्ञान उपन्युं छे, ते केटलुं उपन्युं छे? तो के पूर्व, दक्षिण अने पश्चिम दिशाए समुद्र मांहे पांचसें योजन पर्यंत देखुं छुं, अने उत्तर दिशिए हिमवंत पर्वत पर्यंत देखुं छुं. तथा उंचुं सौधर्मदेवलोक लगे अने नीचुं पहेली नरकपृथ्वीना लोलुआ नरकावासा लगे देखुं छुं. ते सांभली श्रीगौतमस्वामी बोल्या के गृहस्थने एटलुं अवधिज्ञान उपजे नहीं,

माटे तमे मिछामि डुक्कड द्यो. आनंदे कह्युं के सत्य कहेवानुं मिछामि डुक्कड देवाय नहीं. श्रीगौतमस्वामीए कह्युं के एटलुं अवधि गृहस्थपणे न उपजे, ते वारे आनंदे कह्युं के तमेज मिछामि डुक्कड द्यो. ते वात सांजली श्रीगौतमस्वामी शंका पामता श्रीमहावीर पासे आवी जातपाणी आलोइ पछी पूछवा लाग्या केहे जगवन् ! आनंद श्रावक मिछामि डुक्कड दीये के हुं दउं ? जगवाने कह्युं के हे गौतम ! तुंज मिछामि डुक्कड दे; जे माटे आनंदने एटलुंज अवधिज्ञान उपन्युं छे. ते वारे श्रीगौतमस्वामीए आनंद श्रावक पासे आवीने मिछामि डुक्कड दीधुं अने आनंदने खमाव्यो. वीश वर्ष पर्यंत श्रावकधर्म पालीने पहेले सौधर्मदेवलोके अरुणाज विमाने चार पल्योपमने आउखे देवतापणे जइ उपन्यो. तिहांथी चवी महाविदेह क्षेत्रे उपजी तिहां चारित्र लइ मोक्षे जशे. ए बीजा प्रश्नना उत्तर उपर आनंद श्रावकनी कथा कही.

ए रीते नरक स्वर्गपणुं पामवा आश्रयी बे प्रश्न कह्या. हवे तिर्यंच अने मनुष्यपणुं पामवा आश्रयी बे पृछा करी, तेनो उत्तर बे गाथाए करी कहे छे.

॥ गाथा ॥-कज्जछी जो सेवइ, मित्तं कज्जे कएवि संवयई ॥ कूरो गूढमईउ, तिरिअं

सो होइ मरिऊणं ॥ १ए ॥ अज्जव मद्दव जुत्तो, अकोहणो दोस वज्जिउं मचो ॥ नय साहुगुणेसु ठिउं, मरिउं सो माणुसो होइ ॥ २० ॥

जावार्थः—(जो के०) जे कज्जार्थी एटले पोताना कार्यनो अर्थी थको मित्रनी सेवा करे, ते कार्य (कएवि के०) कृतेऽपि एटले सिद्ध थया पछी मित्रने संवयई एटले विहडे विखोडे एवो क्रूर परिणामनो धणी होय, गूढमईउं एटले गूढ मतिवालो होय अर्थात् पोताना हृदयनी वात कोइनी आगल कहे नहीं, ते जीव मरीने तिर्यंच थाय. जेम अशोक कुमरे मायाए करी मित्रद्रोह कीधो, जे थकी विमलवाहन कुलगरनो हाथी थयो ॥ १ए ॥

तथा आर्यव एटले सरल चित्तवालो होय, मार्दव एटले मान रहित निरहंकारी होय, अक्रोधी क्षमावंत होय, दोषवर्जित एटले जीवघातादि दोष रहित होय, 'मध्यस्थो नयसाधुगुणेषु स्थितः' एटले सुपात्रने दान दीये, न्यायवंत होय, महात्मा साधुना गुण वखाणे ते जीव मरण पामीने मनुष्य थाय. जेम सागरचंद्र मरीने पहेलो कुलगर विमलवाहन थयो ॥ २० ॥

हवे ए बे पृच्छा उपर सागरचंद्र शेठ अने अशोकदत्तनी मली एकज कथा कहे

छेः—यथा महाविदेह क्षेत्रने विषे अपराजिता. नगरीए ईशानचंद राजा राज्य करे छे. तिहां चंदनदास एवे नामे श्रेष्ठी वसे छे. तेने गुणवंत एवो सागरचंद्र नामनो पुत्र छे. ते सरल चित्तवालो, निरंतर धर्मी अने आचारे करी निर्मल छे. तेने अशोकदत्त नामे मित्र छे; ते मायावी छे. मनमां कपटी कूडो छे. एकदा वसंतमास आवे थके राजानो आदेश थयो जे आजे वसंतक्रीडा करवाने माटे सर्व लोके वन मांहे आववुं. ते वात सांभलीने सागरचंद्र तथा अशोकदत्त ए बेहु वनमां गया, अने राजा पण परिवार सहित वनमां आव्यो. एम लाखोगमे लोक तिहां एकठा थया. सर्व स्थले गीत, गान, नाटक, जूलणादि कौतुक सर्व लोक करवा लाग्या. ते अवसरे 'राखो राखो' एवो कलकलाट शब्द सांभल्यो. ते वारे सागरचंद्र नजीक होवाथी तरवार हाथमां लइने तिहां गयो, तो चोरोए अपहराती एवी पुण्यभद्र शेठनी दीकरी प्रियदर्शनाने दयामणी दीठी. तेने सागरचंद्रे बले करी मूकावी. ते वात सागरचंद्रना पिता चंदनदासे सांभली. जे वारे पुत्र घेर आव्यो ते वारे पिताए शिखामण दीधी जे हे वत्स! उद्धतपणुं न करीए, कुलनी मर्यादा प्रमाणे बल फोरवीए, द्रव्यने अनुसारे वेश पहेरीए, कुसंगति परहरीए, मोटानो विनय सेवीए, वडाए कहेलां

चार वचन सहन करीए, तो महत्त्व पामीए. माटे तुं तारो जे अशोकदत्त मित्र छे, तेनी संगति टाळीने श्रीजिनधर्मनुं पालन कर. एवी पितानी शिखामण सांभळी सागरचंद्र बोल्यो के हे तातजी ! जेम लाज जाय ते वात हुं नहीं करुं. एवा पुत्रना वचनथी पिता हर्ष पाम्यो.

हवे पुण्यचंद्र शेठे पण सागरचंद्र कुमरनो उपकार जाणीने पोतानी प्रियदर्शना कन्या मोटा महोत्सवथी कुमरने परणावी बेहुनो विधाताए रूडो समागम मेळव्यो. कुमर कुमरी बेहु सुखे समाधे रह्यां.

एकदा सागरचंद्र ग्रामांतरे गयो, तेवामां अशोकदत्त तिहां मित्रने घेर आवी मायाए करी प्रियदर्शनाने स्नेह देखाडतो कहेवा लाग्यो के आवो, आपणे स्नेह संबंध करीए. ते वात सांभळतां स्त्रीने क्रोध उपन्यो, तेथी तेने घरथी बहार काढी मूक्यो. बाहिर नीकळतां रस्तामां सागरचंद्र पण ग्रामांतरथी आवतो तिहां सामो मळ्यो, तेने अशोकदत्ते कह्युं जे तमारी स्त्री मारी साथे स्नेह करवा तत्पर थइ तेने में निषेधी छे. ते वात सांभळी सागरचंद्रे विचारीने कह्युं के अघटित कार्य करवुं योग्य नहीं. घेर आव्यो, ते वारे स्त्रीना मुखथी मित्रनुं स्वरूप सर्व जाण्युं. ते वखत

विचार्युं जे मारा बापे कह्युं हतुं जे तारा मित्रनी तुं सोबत करीश नहीं ते वात सत्य थइ. एम निर्धारी धर्मकार्य करवाने प्रवर्त्तमान थयो. पोतानी लक्ष्मी सात क्षेत्रे वावरतो थको रह्यो. अनुक्रमे स्त्री जरतार बेहु जण काल करी जंबुद्वीपना जरत क्षेत्रे दक्षिण खंडे गंगा अने सिंधु बेहु नदीनी वच्चे त्रीजा आरा मांहे पल्योपमने आठमे जागे थाकते नवसें धनुष्य प्रमाण शरीरवाला युगलियां थयां. तिहां कल्पवृक्ष मनोवांछा पूर्ण करे छे. अल्प कषायवालां थयां. मांहोमांहे बेहुने घणो स्नेह थयो अने अशोकदत्त मित्र पण मरीने तिहांज चार दांतवालो हाथी थयो. ते हाथीए जमतां जमतां एकदा बेहु युगलियांने दीठां, ते वारे पाछला स्नेहना वशथी बेहुने सूंढथी उपाडीने पोतानी पीठ उपर चडावी लीधां, तेथी ते युगलियानुं विमलवाहन एवुं नाम प्रसिद्ध थयुं. आर्यव गुणना प्रतापथी सात कुलगरमां ए प्रथम कुलगर थयो, अने अशोकदत्त मायाए करी तिर्यंच थयो. ए मनुष्य तथा तिर्यंचपणुं पामवा आश्रयी सागरचंद्र तथा अशोकदत्तनी कथा कही ॥

हवे स्त्री मरण पामीने पुरुषपणुं पामे अने पुरुष मरण पामीने स्त्रीपणुं पामे, ए बे पृछाना उत्तर बेहु गाथाए करी कहे छे.

॥ गाथा ॥ संतुठा सुविणीआ, अज्जवजुत्ता य जा थिरा निच्चं ॥ सच्चं जंपइ महिला, सा पुरिसो होइ मरिऊणं ॥ २१ ॥ जो चवलो सढभावो, माया कवडेहिं वंचए सयणा ॥ न य कस्सय वीसस्सइ, सो पुरिसो महिलया होइ ॥ २२ ॥ भावार्थः— जे स्त्री संतोषवान् होय, रूडी विनीत होय, सरल चित्तवाली होय, स्थिर स्वभाववाली होय, सत्य वचन बोलनारी होय, ते स्त्री मरीने पुरुषपणुं पामे ॥ २१ ॥ जे पुरुष चपल स्वभावी होय, शठ होय, कदाग्रही होय, माया कपट करी सगां संबंधीने वंचे, ठगे, वली कोइनो विश्वास न करे, ते पुरुष मरण पामीने परभवे स्त्री थाय ॥ २२ ॥

हवे ए बेहु उत्तर उपर पद्म पद्मिनीनी कथा कहे छेः—स्वस्तिमती नगरीए न्यायसार नामे राजा राज्य करे छे. ते नगरमां एक पद्म नामे शेठ सत्यवादी अने संतोषी वसे छे. तेनी स्त्री पद्मिनी एवे नामे महा रूपवंत छे, परंतु कर्मना योगे मुखरोगे करी पीडाती थकी काहल स्वरवाली छे. ते असत्यवादी अने मायावी छे. शेठे स्त्रीनो मुखरोग मटाडवा माटे घणा उपचार कर्या, पण कोइ रीते गुण थयो नहीं. एकदा ते स्त्री कपटे करी भरतारने कहेवा लागी के हे महाराज ! मने सारुं न थयुं, माटे तमे सुखे बीजी स्त्री परणो. तेने शेठे कह्युं के मारे परम संतोष छे, माटे ए वात कहीश नहीं.

विचार्युं जे मारा बापे कह्युं हतुं जे तारा मित्रनी तुं सोबत करीश नहीं ते वात सत्य थइ. एम निर्धारी धर्मकार्य करवाने प्रवर्त्तमान थयो. पोतानी लक्ष्मी सात क्षेत्रे वावरतो थको रह्यो. अनुक्रमे स्त्री भरतार बेहु जण काल करी जंबुद्वीपना भरत क्षेत्रे दक्षिण खंडे गंगा अने सिंधु बेहु नदीनी वच्चे त्रीजा आरा मांहे पल्योपमने आठमे भागे थाकते नवसें धनुष्य प्रमाण शरीरवाला युगलियां थयां. तिहां कल्पवृक्ष मनो-वांछा पूर्ण करे छे. अल्प कषायवालां थयां. मांहोमांहे बेहुने घणो स्नेह थयो अने अशोकदत्त मित्र पण मरीने तिहांज चार दांतवालो हाथी थयो. ते हाथीए भमतां भमतां एकदा बेहु युगलियांने दीठां, ते वारे पाछला स्नेहना वशथी बेहुने सूंढथी उपाडीने पोतानी पीठ उपर चडावी लीधां, तेथी ते युगलियानुं विमलवाहन एवुं नाम प्रसिद्ध थयुं. आर्यव गुणना प्रतापथी सात कुलगरमां ए प्रथम कुलगर थयो, अने अशोकदत्त मायाए करी तिर्यंच थयो. ए मनुष्य तथा तिर्यंचपणुं पामवा आश्रयी सागरचंद्र तथा अशोकदत्तनी कथा कही ॥

हवे स्त्री मरण पामीने पुरुषपणुं पामे अने पुरुष मरण पामीने स्त्रीपणुं पामे, ए बे पृछाना उत्तर बेहु गाथाए करी कहे छे.

॥ गाथा ॥ संतुठा सुविणीआ, अज्जवजुत्ता य जा थिरा निच्चं ॥ सच्चं जंपइ महिला, सा पुरिसो होइ मरिऊणं ॥ २१ ॥ जो चवलो सढभावो, माया कवडेहिं वंचए सयणा ॥ न य कस्सय वीसस्सइ, सो पुरिसो महिलया होइ ॥ २२ ॥ भावार्थः—जे स्त्री संतोषवान् होय, रूडी विनीत होय, सरल चित्तवाली होय, स्थिर स्वभाववाली होय, सत्य वचन वोलनारी होय, ते स्त्री मरीने पुरुषपणुं पामे ॥ २१ ॥ जे पुरुष चपल स्वभावी होय, शठ होय, कदाग्रही होय, माया कपट करी सगां संबंधीने वंचे,-ठगे, वली कोइनो विश्वास न करे, ते पुरुष मरण पामीने परभवे स्त्री थाय ॥ २२ ॥

हवे ए बेहु उत्तर उपर पद्म पद्मिनीनी कथा कहे छेः—स्वस्तिमती नगरीए न्यायसार नामे राजा राज्य करे छे. ते नगरमां एक पद्म नामे शेठ सत्यवादी अने संतोषी वसे छे. तेनी स्त्री पद्मिनी एवे नामे महा रूपवंत छे, परंतु कर्मना योगे मुखरोगे करी पीडाती थकी काहल स्वरवाली छे. ते असत्यवादी अने मायावी छे. शेठे स्त्रीनो मुखरोग मटाडवा माटे घणा उपचार कर्या, पण कोइ रीते गुण थयो नहीं. एकदा ते स्त्री कपटे करी भरतारने कहेवा लागी के हे महाराज ! मने सारुं न थयुं, माटे तमे सुखे बीजी स्त्री परणो. तेने शेठे कह्युं के मारे परम संतोष छे, माटे ए वात करीश नहीं.

एकदा शेठ जुना उद्याने देह चिंताने अर्थे गयो. तिहां मेघनी वृष्टिथी निधान प्रगट थयुं. तेने देखी शेठ तिहांथी उठीने घेर जतो रह्यो. तिहां दूकडो कोटवाल उभो हतो, तेणे निधान दीठुं अने राजाने जइ कह्युं के पद्म शेठ वनमां निधान प्रगट थतुं देखी घेर जतो रह्यो. ते वारे राजाए कोटवालने कह्युं के ए शेठ पाछलथी धन लेवा गयो हशे, माटे तुं फरी तिहां जइ छानो रहीने जोइ आव्य. कोटवाल फरी तिहां गयो, पण शेठने तिहां दीठो नहीं. ते वारे वली राजानी आगल आवीने कह्युं के स्वामी ! शेठ कांइ निधान लेवा आव्यो नहीं. एवुं सांभली राजाए शेठने तेडावी पूछ्युं के, तमे निधान शा वास्ते नहीं लीधुं ? शेठे कह्युं हे महाराज ! मारी पासे अखूट निधान पड्युं छे, तो पछी बीजा निधानने हुं शुं करुं ? राजाए पूछ्युं के कयुं तमारी पासे निधान छे? ते वारे शेठे कह्युं के मारी पासे संतोषरूप अक्षय निधान छे. ते सांभली राजा घणोज रीज पाम्यो अने शेठने निर्लोभी जाणी नगरशेठनी पदवी आपी.

एकदा प्रस्तावे उद्यान मांहे श्रुतकेवली पधार्या. तेमने राजा तथा पद्म शेठ मली वांदवा गया. धर्मदेशना सांभल्यानंतर शेठे गुरुने पूछ्युं के हे महाराज ! मुजने अत्यंत

सत्य अने संतोष रुच्यो छे तेनुं कारण शुं ? अने मारी स्त्रीने मुखरागे करी काहल स्वर थयो छे तेनुं पण कारण मुजने कहो.

एवुं शेठनुं बोलवुं सांजलीने गुरु तेमना पाछला जव कहेता हवा के एज नगरमां नाग शेठ असत्यवादी, असंतोषी अने मायावी रहेतो हतो. तेनी नागिला नामे स्त्री ते माया रहित तथा सत्य संतोषने धारण करनारी हती.

एकदा नाग शेठनो कोइक नागमित्र नामे मित्र देशांतर जतो हतो, तेनी स्त्री चपल हती तेना जयथी पोताना पुत्रने कही नाग शेठनी स्त्री नागिलानेज साक्षी राखी पोतानुं सुवर्ण, नाग शेठनी पासे थापण मूक्युं, अने पोते देशांतर गयो. तिहां घणुं धन उपार्जन करी पाछो वलतां मार्गमां चोर लोकोए धाड पाडी तेने मारी नाख्यो. ते वात तेनी स्त्री तथा पुत्रे सांजली ते वारे घणा दुःखित थइ शोक करवा लाग्या. अनुक्रमे केटलाएक दिवस पछी ते शेठना पुत्रे पोताना पिताए राखेली थापण नाग शेठनी पासेथी मागी. ते वारे शेठ ना कबूल थयो, अने कहेवा लाग्यो के मारी पासे तारा पिताए कांइ पण थापण राखी नथी.

नागमित्रना पुत्रे राजानी आगल जइ ते वात कही. राजाए पूछ्युं के तारी पासे

कोइ साक्षी छे ? तेणे कह्युं के नाग शेठनी स्त्री नागिला साक्षी छे. ते वारे राजाए प्रथम शेठने तेडी पूछ्युं, पण तेणे कह्युं के मारी पासे एना बापे कांइ थापण मूकी नथी. पछी राजाए नागिलाने तेडावीने पूछ्युं, ते वारे नागिला विचारवा लागी जे एक बाजु तरु अने एक बाजु वाघ, ए न्याय मारे थयो छे. केमके एक पासे भरतार छे, वळी उत्तम स्त्रीनी ए रीत छे, जे भरतारने प्रतिकूल न थवुं; अने बीजी रीते विचारुं तो सत्य वचन लोपाइ जाय छे. ते आ भवे अने परभवे महा दुःखनुं देवावाळुं थाय एम चिंतवी छेवट निर्धार्युं जे साचुं बोलतां जे थवानुं हशे ते थशे. अमृत पीवाथी मरण थवानुं नथी एम विचारी खरेखरी सत्य वात राजा आगळ कही दीधी. ते वचनथी राजा घणोज हर्षायमान थयो, अने नाग शेठनी पासेथी थापण अपावीने मूकी दीधो, अने तेनी स्त्रीने उत्तम वस्त्रोनी पहेरामणी आपी विदाय करी. पछी नगरनी स्त्रीओ मध्ये नागिला सत्य बोलनारपणे प्रसिद्धताने पामी. एकदा नाग शेठने घेर मासखमणने पारणे कोइ ऋषि आव्या, तेने भाव सहित फासु अन्न पाणी वहोराव्यां, तेथी बेहु जणे शुभ कर्म उपार्जन कर्युं. अनुक्रमे तिहां आयु पूर्ण थये छते ते नागिलानो जीव मरण पामीने तुं इहां पद्म शेठ-

पणे आवी उपन्यो छो, अने नाग शेठ मरण पामी कपटने योगे इहां तारी पद्मिनी स्त्री थइ छे. जीजथी कूडुं बोल्यो, तेथी मुखरोग अने काहल स्वर थयो छे. ए रीते पाछलो जव सांजली वैराग्य पामी बेहु जण दीक्षा लइ मोक्षे पहोच्यां ॥ दोहो ॥ जीजे साचुं बोलीए, राग द्वेष करी दूर ॥ उत्तमशुं संगत करो, लाजे जिम सुखपूर ॥ जीराउला नाम पदाद्याक्षरैः ॥ ए पांचमा अने छठा बे उत्तर आश्रयी पद्म पद्मिनीनी कथा कही ॥ ५ ॥ ६ ॥

हवे सातमी पृछानो उत्तर एक गाथाए करी कहे छे.

॥ गाथा ॥ अस्स वसह पसुउं, जो लंछइ वंधियं पि हु करइ ॥ सो सवाणनिहीणो, नपुंसउं होइ मरिऊणं ॥ २२ ॥ जावार्थः—जे पुरुष (अस्स के०) घोडा अने (वसह के०) वृषज एटले बलद तथा बोकडा प्रमुख पशुउंने (लंछइ के०) लांछे, आंक देवरावे, नाक वींधे, गलकंबल कापे, श्रोत्र कापे, ते जीव सर्व मनुष्यो मांहे हीणो अधम जाणवो अने मरीने नपुंसक थाय ॥ २२ ॥ जेम गोत्रासे अनेक जीवना अवयव छेद्या, तेथी घणा जव लगे नपुंसकपणुं पाम्यो, ते गोत्रासनी कथा कहे छे.

वणिक ग्रामे मित्रदेव राजा राज्य करे छे. तेनी श्रीदेवी नामे पट्टराणी छे. एकदा

तिहां श्रीवर्द्धमान जिन समोसर्या· बार पर्षदा मली धर्मदेशना सांजलीने सर्व हर्षवंत थया· तिहां श्रीमहावीरना प्रथम शिष्य अने सात हाथ प्रमाण शरीरवाला, अक्षीणमहाणसी प्रमुख अनेक लब्धिना धारक एवा श्रीगौतमस्वामी ते बठने पारणे श्रीमहावीरने आदेशे पात्रां पडिलेहीने वणिक ग्रामे वहोरवा माटे आव्या. तिहांथी वहोरी पाछा वलतां मार्गमां घणा राउलजने वींटेलो अने आकरा बंधने बांधेलो एवो एक पुरुष दीठो· ते केवो दीठो? तो के जेनां कान, नाक, होठ, जीज बेद्यां बे, जेनुं धूलथी शरीर खरड्युं बे, अने तिल तिल जेटलुं तेना शरीरनुं मांस बेदी बेदी तेने खवरावे बे. एवो दयामणो अने डुःखीउं देखी, ए पापनुं फल बे, एम जाणी मनमां वैराग्य आणीने श्रीमहावीर पासे आवी इरियावहि पडिक्कमी, जात पाणी आलोइने पूबवा लाग्या के हे जगवन्! केवा प्रकारना रौद्र कर्म करीने ए पुरुष एवो महा डुःखीउं थयो बे? ते वारे जगवान् बोल्या के हे गौतम! सांजल.

हस्तिणाउर नगरे सुनंद राजा राज्य करे बे. ते गाममां गायोने बेसवा माटे लोकोए एक मांडवो करावेलो बे. ते गायो बाहेर जंगलमांथी तृणादिक चरी पाणी पीने सांजनी वखते मंरूपमां आवी सुखे बेसे· ते गाममां कोइ जीम नामे पुरुष रहे बे. तेनी

उत्पला नामे स्त्री छे. तेनो पुत्र गोत्रास नामे छे. ते बालपणा थकीज महा दुष्ट, धीर, निर्दयी, पापी, जीवघातनो करनार छे. एकदा रात्रिनी वखते सर्व लोक सूता पछी ते गोत्रास पोताना हाथमां कार्ती लइने गायोना मांढवामां आव्यो. तिहां केटलीएक गायोनां पूंछ, कान, नाक, होठ, जीभ, स्तन, उहाडा, पग प्रमुख अवयव छेदी नाख्या. एवुं पाप करी पांचसें वर्षनुं आयु पाली मरण पामीने बीजी नरकने विषे जइ नारकीपणे उपन्यो ॥ उक्तं च ॥ दोहो ॥ घोडा बलद समारीया, कीधा जीवविणास ॥ पुण्यविहूणा जीव ते, पामे नरकनिवास ॥ १ ॥ पछी ते गोत्रासनो जीव नरकनां महा अघोर दुःख भोगवी तिहांथी मरण पामीने आ नगरमां सुमित्र शेठनी सुभद्रा नामे वांझणी स्त्रीने घेर पुत्रपणे उपन्यो छे. तेने जन्मतां वार उकरडा उपर नाखी दीधो. वली तिहांथी उपाडी लावीने उच्चित एवुं नाम दीधुं छे. ते जे वारे मोटो थयो, ते वारे सुमित्र शेठ धन उपार्जवा माटे एने साथे लइ प्रवहणे चढ्यो. कर्मवशे संवर्त्तक वायरे करी प्रवहण भाग्युं. तिहां सुमित्र शेठ देवशरण थयो अने उच्चित पुत्र घरे आव्यो. पिताना मरणनी वात संभलावी तेथी सुभद्रा शेठाणी पण शोक संताप करती मरण पामी. पाछलथी छोकरो दुराचारी पापिष्ठ थयो. ते वात सज्जनोए जाणीने एने घरथी

बाहिर काढी मूक्यो. गाममां फरतो साते डुर्व्यसन सेवन करे. सर्व अनर्थनुं मूलरूप थयो. हमणां एणे राजानी मानीती महा रूपवंत, कलावान्, सर्व देशोनी भाषा जाणनारी एवी कामध्वजा नामे वेश्या बे, तेनी साथे राजाने घणो स्नेहसंबंध बे, तेना घरमां प्रवेश करतो ए उचित पुत्रने राजाना माणसोए दीठो. ते वारे तेने बांधीने राजा आगल लाव्या. ते राजाए एने विडंबना करेली बे, ते विडंबना करीने मारी नाखशे. मरीने वली पहेली नरकने विषे जइ नारकीपणे उपजशे. तिहांथी मरीने नपुंसक थशे. एम घणा भव पर्यंत नपुंसकपणे डुःख वेठशे, एम जाणी निर्लज्ज कर्म न करवुं. ए सातमा प्रश्नना उत्तर आश्रयी गोत्रासनी कथा कही ॥

हवे आठमी पृछानो प्रत्युत्तर एक गाथाए करी कहे बे.

॥ गाथा ॥ मारेइ निद्दयमणो, परलोअं नेव मन्नए किंचि ॥ अइसंकिलिठ कम्मो, अप्पाऊसो भवे पुरिसो ॥ २४ ॥ भावार्थः—जे निर्दय मन थको जीवने मारे, स्वर्ग मोक्ष प्रमुख परलोकने किंचित्मात्र पण माने नहीं, अने जे जीव अतिसंक्लिष्ट विरुद्ध कर्मोने आचरे, ते जीव, परभवे अल्पायुष्यवालो थाय ॥ २४ ॥ जेम उज्जयणी नगरीए समुद्रदत्त शेठनी भार्या धारिणी डुराचारी हती, ते यज्ञदत्त नामना चाकरनी

साथे आसक्त थइ थकी कर्मकरनी साथे मलीने पोताना पुत्र शिवकुमारनो द्रोह करवा चिंतव्यो, ते सर्वने मराव्यां अने पोते पण मरण पामी. आगल घणा जवे अल्पायु पाम्यां. माटे इहां शिवकुमार अने यज्ञदत्तनी कथा कहे छेः—

उज्जयणी नगरीए समुद्रदत्त शेठ वसे छे. तेनी धारिणी नामनी स्त्री छे, तेने शिवकुमार नामे पुत्र छे, अने यज्ञदत्त नामे कर्मकर छे. एकदा समुद्रदत्त शेठने रोग उपन्यो तेथी ते मरण पाम्यो. पाछल तेना बेटाए मृतकार्य कर्यां. कर्मने योगे धारिणी राणी पहेला यज्ञदत्त कर्मकरनी साथे लुब्ध थइ. जे जणी यौवनावस्थामां इंद्रियोने जीतवी महा दुर्लभ छे. तेमां पण कामने जीतवो वली विशेष दोहिलो छे. पछी ते वात लोक विरुद्ध जाणीने शिवकुमार तेने वारे, तोपण माता माने नहीं.

एकदा धारिणीए यज्ञदत्तने एकांते कह्युं के मारो पुत्र शिवकुमार रूडो नथी, माटे जेम कुमुदिनीनो सूर्य विनाश करे छे, अने कांठानो जेम नदीनो प्रवाह नाश करे छे तथा वननो जेम दावानल नाश करे छे, तेम आपणो शिवकुमार विनाश करशे, तेथी प्रछन्नपणे एने मारी नाखवो जोइए. ते सांभली यज्ञदत्ते कह्युं के ए वात

शुक्त नथी, केमके तारो पुत्र ते मारो स्वामी छे. एना पसायथी आपणे बेहु सुखीयां
छीए. वली स्वामीद्रोह करवो ते महा पापनो हेतु छे.
ते सांजली धारिणी बोली के एमां शेनुं पाप छे? जो ए जीवतो हशे तो आपणने
सुखनो अंतराय करशे इत्यादि वातो सांजली विषयांध यज्ञदत्ते पण शिवकुमारने मार-
वानी कबूलात आपी. हवे कपटे करी धारिणीए पोताना पुत्रने कह्युं के हे वत्स !
कोइ पण हथियार धारण करनार पुरुषनो विश्वास करीश नहीं. एकदा प्रस्तावे कुम-
रने कहेवा लागी के गोवालिक लोको आपणा गोकुलनी रक्षा रूडी रीते करता नथी,
माटे तमे बेहु जण गायोनी रक्षा करवा जाउ, ते सांजली बेहु जण हाथमां हथि-
यार लइने जंगलमां गया. बेहु जण आगल पाछल जाय छे, एक बीजानो विश्वास
करता नथी. नीचा उतरतां छाहडीमां यज्ञदत्ते खड्ग काढ्युं ते पाछलथी शिवकुमारे
जाण्युं ते वारे त्यांथी नासीने गोकुलमां जतो रह्यो. तिहां जइ गोवालीयाने शिखामण
आपी समजावी राख्या.
संध्या समये गायना वाडामां बेहु जण शय्या पाथरीने सूता, एवामां शिवकुमारे
उठीने शय्याए खड्ग राखी उपरथी ढांकी मूक्युं अने पोते गायोना समूहमां छानो

जइ बेसी रह्यो. एटलामां यज्ञदत्ते छानो रही खड्ग काढीने शिवकुमारनी शय्या उपर घा कर्यो, ते वखत शिवकुमार गायोमांथी नीकली छानो आवी घा करीने यज्ञदत्तने मारी नाख्यो, अने मुखथी चोर ! चोर ! ! एवो कलकलाट शब्द करता गोवालीया अने शिवकुमार कांइक बाहेर जइ पाछा वली आवीने बूम पाडवा लाग्या के यज्ञदत्तने चोरे मारी नाख्यो. ए काम करीने शिवकुमार घेर आव्यो. तेने माताए पूछ्युं के यज्ञदत्त किहां छे ? त्यारे शिवकुमारे कह्युं के पाछल आवे छे. एम कही मनमां चिंतवणा करे छे के मारी मातानां कर्म तो जूओ, केवां छे ? जे पुत्रने पण मारवानी तजवीज करी. एम विचारी वली माताने कहेवा लाग्यो जे हुं रात्रे जाग्यो छुं, माटे हमणां निद्रा आवे छे, एम कही सुइ रहे छे. एटलामां तेनी माताए खड्ग उपर कीडीओ चडती दीठी, ते वारे खड्ग काढी जोयुं तो लोहीए खरड्युं दीठुं, तेथी विचार्युं जे निश्चय थकी यज्ञदत्तने एणेज मार्यो छे. एम चिंतवीने झांखी थइ. पछी तेज खड्गे करी पोताना पुत्रने मार्यो. ते धावमाताए दीठो, तेणे मुसलथी धारिणीने मारी. तिहां मरती धारिणीए चपेटाए करी धावमाताना मर्मस्थानने हण्यां, तेथी ते पण मरण पामी. एम निर्दयपणे मांहोमांहे द्रोह करी मरण पाम्यां. ते सर्वे जीव

ते जवमां पण पापे करी अल्पायुष्यवालां थयां, अने आवते जवे महा दुःखी थशे,
माटे जीववध न करवो ॥ दोहो ॥ जीववधे पापज करे, आणे हिये कुबुद्धि ॥ जारी-
कर्मा जीव जे, ते किम पामे सिद्धि ॥ १ ॥ ए आठमा प्रश्नना उत्तरमां शिवकुमार
यज्ञदत्तनी कथा कही ॥

हवे नवमी पृच्छानो उत्तर एक गाथाए करी कहे छे.

॥ गाथा ॥ मारेइ जो न जीवे, दयावरो अजयदाण संतुठ्ठा ॥ दीहाउ सा पुरिसो,
गोयम जणिउं न संदेहो ॥ २५ ॥ जावार्थः—जे पुरुष जीवने न मारे, दयावंत होय,
जे अजयदान दइने हैया मांहे संतुष्ट थाय, हर्ष आणे, ते जीव दीर्घायुवालो आवते
जवे घणुं जीवे, संपूर्ण आयुष्यवान् थाय. हे गौतम ! ए वातमां कांइ पण संदेह
नथी ॥ २५ ॥ जेम राजगृही नगरीए मणिकार शेठनो पुत्र दामनक हतो, ते एकलो
घणा वखत मरणसंकटथी उगर्यो, मोटी ऋद्धिनो धणी थयो, दीर्घायुष्यवालो थयो.
अहीं तेनी कथा जाणवी. ते प्रथम बार पर्वोनी कथामां छपाइ गयेली छे. तथा एक
ऋषीश्वर वन मांहे तपस्या करता हता. एवामां एक आहेडीए त्रास पमाडेला मृगलां
तेमनी आगलथी नासी जतां हतां. पाछलथी आहेडीए आवी ऋषीश्वरने पूछ्युं के

मृगलां किहां गयां ? ते वारे ऋषिए दयाथी आ प्रमाणे कह्युं के ॥ यत्पश्यति न तद्ब्रूते, या ब्रूते सा न पश्यति ॥ एटले जे चक्षु देखे छे, ते चक्षु कांइ बोलती नथी, अने जे जीभ बोले छे, ते जीभ कांइ देखती नथी ॥ दोहो ॥ देखे ते बोले नहीं, बोले ते नवि आंख ॥ आहेडी मृगलां किहां, धनुष्यबाण सवि लाख ॥ १ ॥ एम कही ते आहेडी जतो रह्यो. ए दयावान् ऋषिनी कथा नवमा प्रश्नना उत्तर उपर कही ॥

हवे दशमी अने अगीयारमी पृछाना उत्तर बेहु गाथाए करी कहे छेः—

॥ गाथा ॥ देइ न नियसंसत्तं, दिन्नं हारेइ वारए दित्तं ॥ एएहिं कम्मेहिं, भोगेहिं विवज्जिउ होइ ॥ २६ ॥ सयणासण वत्थं वा, भत्तं पत्तं च पाणियं वावि ॥ हियएण देइ तुट्ठो, गोयम भोगी नरो होइ ॥ २७ ॥

भावार्थः—जे आपणी पासे छती वस्तु होय तोपण न आपे, तथा दीए तो पछी संताप करे, अनेरो जे आपतो होय तेने देतां वारे. एवे एवे कर्मे करी जीव भोगे विवर्जित एटले भोग रहित थाय. जेम धनसार शेठ छासठ कोडी द्रव्यनो धणी छतां अत्यंत कृपण हतो तेथी भोग रहित थयो ॥ २६ ॥

तथा जे पुरुष शयन, पाट, संथारो, आसन, पाटलो, पोंछणुं, कांबलो, वस्त्र, भात,

पाणी जे महात्माने देवा योग्य वस्तु ते हैयानी वासनाए करी संतुष्ट थको आपे ते पुरुष हे गौतम ! ज्ञोगवंत सुखी थाय ॥ २७ ॥ जेम धनसार शेठ सुपात्रने दान आपी ज्ञोग संबंधी सुख पाम्यो ॥ दोहो ॥ विनतमी सामी सुणो, तप जप क्रिया न कीध ॥ राग द्वेष पातक कर्‌यां, गर्वे दानज दीध ॥ १ ॥ पदाग्रक्वरैर्वीतरागनाम श्रेयोर्थं ॥ हवे ते शेठनी कथा कहे बे.

मथुरा नगरीए धनसार शेठ वसे बे, ते बासठ कोमी ड्व्यनो अधिपति बे, परंतु महा कृपण बे. एक दमकी पण धर्मने अर्थे आपे नहीं. दरवाजा आगल कोइ ज्ञिक्षाचरने देखे तो तेनी उपर रोष करे, जो कोइ आवी मागे तो तेनी उपर रीस करे, याचकने देखे के स्थान थकी उठी जाय, धर्मने अर्थे धन आपवानी वातमां पासे पण आवे नहीं, पोताना घरमां कोइना देखतां सारी रसोइ पण जमे नहीं. पूरुं खाय पण नहीं. ते नगरनी मांहे कोइ ज्ञूख्यो माणस धनसार शेठनुं नाम पण जम्या विना लीए नहीं. ते एवुं विचारे के एनुं नाम लेशुं, तो आजे अन्न पण मलशे नहीं.

हवे ते धनमांथी त्रीजो ज्ञाग बावीश क्रोड ड्व्य धरतीमां दाटी राखेलुं हतुं, एटले पृथ्वीगत करेलुं हतुं, तेने एक दिवस उघामी जोतां लीयाला जेवुं दीठुं. ते जोइ शेठने मूर्छा

आवी गइ. धरती उपर पमी गयो. थोमी वार पछी सचेत थयो, एटलामां वली कोइके आवी कह्युं के शेठजी, आपनां बावीश क्रोमना मालथी जरेलां प्रवहण डूबी गयां. वली त्रीजे कोइके आवीने कह्युं के अमुक स्थले आपणा मालनां गाडां चोरोए लूंटी लीधां. इत्यादिक ड्रव्य नाश पाम्यानी वातो सांजली शेठ शून्य थइ गयो. रात्रि दिवस जम्या करे, लोको तेनी हांसी कस्या करे.

वली एकदा दश लाख जांम लइ प्रवहण जरी पोते वहाणमां बेसी देशांतर जणी चाल्यो, त्यां पण कर्मयोगे समुड्रमां गाज, वीज, वर्षाद थयो, तोफानथी प्रवहण जांगी गयुं. पाटीयुं हाथमां आव्युं, तेनी मददथी कांठे आव्यो. तिहांथी रझलतो घेर आवी पहोंच्यो. मनमां चिंतववा लाग्यो जे हुं ड्रव्य पाम्यो, परंतु कोइ वारे सुपात्रने दान दीधुं नहीं, देताने पण वास्या, माटे मारी लक्ष्मी बाहिर परोपकारादि कोइ पण सुकृतमां काम आवी नहीं. जे माटे शास्त्रमां लक्ष्मीनी त्रण गति कही छे ॥ दानं जोगो नाशस्तिस्रो गतयो जवंति वित्तस्य ॥ यो न ददाति न जुंक्ते तस्य तृतीया गतिर्जवति ॥ १ ॥ ए कहेली दान, जोग अने नाश एवी त्रण गतिमांथी मारी लक्ष्मीनी तो मात्र एक त्रीजी गतिज थइ, एटले नाशपणुंज पामी.

एकदा वनमां केवली भगवान् समोसर्या, तेमने शेठ वांदवा गया. वांदीने पछी पूछ्युं के हे भगवन् ! हुं केवा कर्मना उदयथी कृपण थयो ? तथा मारी लक्ष्मी सर्व जती रही तेनुं शुं कारण हशे ? ते वारे गुरु कहेवा लाग्या के हे शेठ ! धातकीखंडना भरत क्षेत्रमां एक गामे बे भाइ मोटी ऋद्धिना धणी हता. तेमां मोटो भाइ तो सरल चित्तवालो, उदार, गंभीर हतो, अने बीजो नानो भाइ रौद्र परिणामी कृपण हतो, ते मोटा भाइने पण दानादिक आपतां थको वारे, तथापि ते तो दान अवश्य आप्याज करे.

एम करतां मोटा भाइने दिवसे दिवसे लक्ष्मी वृद्धि पामवा लागी, अने नानो भाइ जोतो रहे, पण कोइने पाइ पण आपे नहीं, तेथी उलटी लक्ष्मी खूटवा लागी. ते वारे ऋद्धि लेवा माटे मोटा भाइ साथे मोटो कलह करवा लाग्यो. ते कलहना योगथी एकदा मोटा भाइए गुरुनी देशना सांभली वैराग्य पामी, दीक्षा लीधी. काल करी पहेले देवलोके देवतापणे उपन्यो, अने नानो भाइ कृपण छतां निर्धन थयो. लोके निंदातो थको तापसी दीक्षा लइ अज्ञान तप करी असुरकुमार देवोमां जइ उपन्यो. तिहांथी चवी इहां तुं धनसार नामे शेठ थयो छो, अने हुं मोटो भाइ देवलोकथी

चवी तामलिप्ती नगरीए एक व्यवहारीआने घेर पुत्रपणे उपन्यो, अने तिहां दीक्षा लइ कर्म क्षय करी केवलज्ञान उपार्जीने हुं हमणां अहीं आव्यो छुं. ते सांजली शेठ पोताना पाछला जवनो जाइ जाणीने हर्षवंत थयो. पछी गुरुए कह्युं के तें दान न दीधुं, तेथी अंतराय कर्म उपार्ज्युं तथा दान देतांने वार्यो, तेथी धन सर्व क्षय थइ गयुं. इत्यादि वात सांजली धनसार शेठे एवो नियम लीधो के हवेथी हुं जेटलुं धन उपार्जन करुं तेमांथी चोथो जाग धर्मकार्यमां वापरुं; एवी जिहांसुधी जीवुं, त्यांसुधी प्रतिज्ञा करुं छुं. तथा पारका दोष न बोलुं. एम कही श्रावकधर्म अंगीकार कर्यो, अने केवली जगवाननी साथे पाछला जवनो अपराध खमाव्यो.

हवे शेठ तामलिप्ती नगरीए जइ व्यापार करवा लाग्यो. तिहां लक्ष्मी उपार्जन करी तेमांथी घणी लक्ष्मी धर्म अर्थे सात क्षेत्रे खरचवा लाग्यो, अष्टमी चतुर्दशीए पोसह करे, सुपात्रने दान आपे.

एकदा प्रस्तावे शून्य घरमां पोसह लइ काउस्सग्ग ध्याने रह्या. तिहां व्यंतर देव कोप करी सर्पनुं रूप करी शेठने डस्यो. एक दिवस पर्यंत शेठ प्रतिमाए रह्या तिहांसुधी व्यंतर देवे अनेक प्रकारना उपसर्ग कर्या, पण शेठ क्षोज पाम्यो नहीं. एवी

शेठनी स्थिरता जोइ, व्यंतर संतुष्ट थइ बोल्यो के जे मागो ते हुं आपुं, परंतु शेठे कांइ माग्युं नहीं. तोपण व्यंतरे कह्युं के तमे फरी मथुरा नगरीए जाओ, अने तमारा भंडारे मूकेला बावीश क्रोड सोनैया जे लीयाला थइ गया छे, ते तमारा पुण्यने योगे सोनैया थशे. पछी शेठे मथुरामां आवी निधान उघाडी जोयुं तो पूर्वे जे लीयाला दीठा हता ते न दीठा, अने सोनैयाज दीठा. तेमज जलमार्गनां वहाणो पण पाणीनी ताणथी क्यांक खरावे चडेलां हतां, ते पण फरी कुशले आव्यां. एम सर्व स्थलेथी फरी पण छासठ कोटी द्रव्य एकठुं थयुं. तेमांथी दान देतो थको भोग भोगववा लाग्यो, घणां जिनप्रासाद कराव्यां. एम साते क्षेत्रे सारी रीते धन वावरीने रूडी धर्म संबंधी कीर्त्ति उपार्जन करी अंते पुत्रने घरनो भार सोंपी अनशन लेइ पहेले देवलोके अरुणाभ विमाने चार पल्योपमने आउखे देवतापणे जइ उपन्यो. तिहांथी चवी महाविदेह क्षेत्रे मनुष्यपणुं पामी दीक्षा लइ मोक्षे जशे. ए अगीयारमी पृछाना उत्तरमां धनसार शेठनी कथा कही.

हवे बारमी अने तेरमी पृछाना उत्तर बे गाथाए करी कहे छे.

॥ गाथा ॥ गुरु देव य साहूणं, विणयपरो संत दंसणीओ अ ॥ न य जणइ किंपि

कडुअं, सो पुरिसो जायए सुहिओ ॥ २८ ॥ अगुणोवि गव्विउच्चिय, निंदइ रागी तव-स्सिणो धीरो ॥ माणी विडंबओ जो, सो जायइ दूहओ पुरिसो ॥ २९ ॥

भावार्थः—जे पुरुष पोताना गुरु, देव अने साधु महात्मानो विनय करवामां तत्पर होय अने जेनुं दर्शन शांत मुद्रावालुं होय, एटले शांत मुद्रा होय, अने कोइने कटुक वचन न बोले, एटले कोइनां मर्मयुक्त, निंदायुक्त तथा आगमतां विरुद्ध वचन न बोले, ते पुरुष सौभाग्यवंत होय ॥ २८ ॥ तथा जे पुरुष निर्गुण होय एटले गुण रहित थको पण गव्विओ एटले गर्वित अहंकारी होय, अने गुणवंत धैर्यवान् एवा तपस्वीनी निंदा करे, तथा जे मानी एटले जातिमदना करनार अहंकारी, अने जिनशासन विडंबक होय, ते पुरुष दुर्भागी थाय ॥ २९ ॥ जेम राजदेवनो भाइ भोजदेव एवा पापे करी दुर्भागी थयो. माटे ए बेहु प्रश्नना उत्तर उपर राजदेव अने भोजदेव ए बे भाइनी कथा कहीए छीए.

अयोध्या नगरीए सोमचंद्र राजा सौम्य प्रकृतिवालो छे. ते नगरमां देवपाल नामे शेठ रहे छे. तेनी देवनी नामे स्त्री छे, तेने राजदेव अने भोजदेव, एवे नामे बे पुत्र थया छे. तेमां मोटो भाइ सर्व कोइने गमतो सुभागी छे, आठमे वर्षे सर्व कलाओ

शीखी लीधी, अनेक शास्त्र जण्यो, अने यौवनवय आवे थके स्वयंवरकन्या कोइक व्यवहारीए आणी दीधी, तेनुं पाणिग्रहण कराव्युं. जिहां जइने कोइ पण चीजनो व्यापार करे तिहां अवश्य लाभ थाय. ते पुत्र राजाने पण मानीतो थयो.

हवे बीजो नानो भाइ भोजदेव छे, ते धुरथीज दुर्भागी छे. ते जे वारे यौवन पाम्यो, ते वारे तेना पिताए घणा शेठीआ पासेथी कन्यानी मागणी करी, पण एने आपवानी कोइए वांछा करी नहीं. ते वारे शेठे कोइ एक दरिद्रीने पांचसो सोनैया आपीने तेनी कन्या परणवानुं ठराव्युं. ते कन्याने बापे सोनैयाना लोभथी कन्या देवानी कही, परंतु कन्या कहेवा लागी के हुं अग्निमां प्रवेश करवाने कबूल करीश, पण ए दुर्भागीने परणीश नहीं. एवो हठ लइ बेठी. एम करतां वेश्याने धन आपीने तेने घेर जवा मांड्युं. तिहां पण वेश्या एवुं चिंतववा लागी के जेम तेम करी ए इहांथी उठी जाय तो सारुं. तेमज जे कोइ वेपार करी आवे तेमां पण अवश्य नुकशानज थाय, पण पूरुं नाणुं थवुं मुश्केल थइ पडे. एवी रीते जो पण ते बेहु सगा भाइ छे, तोपण आंतरुं घणुं पडी गयुं.

एकदा कोइ ज्ञानी गुरु वन मांहे समोसर्या. तेमने शेठजी बेहु पुत्रने साथे तेडीने

वांदवा माटे गया. तेमने वांदी धर्मदेशना सांजल्यानंतर शेठे पूछ्युं के हे जगवन्! मारा बे पुत्रमां एक महा सुजागी अने एक महा दुर्जागी थयो छे, ते कया कया कर्मने योगे थया हशे ?

ते वारे गुरु बोल्या के हे देवपाल! संसारमां सर्व जीवो पोतपोतानां करेलां शुजाशुज कर्मने जोगवे छे. माटे तारा पुत्रोनुं वृत्तांत कहुं ते सांजल.

एज नगरमां आ जवथी त्रीजे जवे एक गुणधर अने बीजो मानधर एवे नामे बे वाणीया रहेता हता. तेमां गुणधर तो देव, गुरु अने साधुने विषे विनीत तेमज उपशांत चित्तवालो अक्रोधी हतो, कोइने कटु वचन कहे नहीं, अने बीजो मानधर जे हतो ते महा निर्गुणी अहंकार करतो थको साधुनी तथा धर्मवंत पुरुषोनी निंदा करतो रहे. महा पुरुषोनी हास्य करतां कर्म उपार्जन करतो हतो.

एकदा एक साधुए वरसाले मासखमण तप कीधुं, ते तपना बलथी आकर्ष्या देवता पण तेनी सेवा करवा लाग्या. तेने देखीने मानधर तेनी निंदा करतो कहेवा लाग्यो के अरे! आ पाखंडी मायावी लोकोने विप्रतारवा ठगवा माटे तपस्या करे छे. महत्त्व पामवाने अर्थे कष्ट करे छे. एम निंदा करतां तेने एक देवताए वार्यो, तोपण

निंदा करतो रह्यो नहीं. ते वारे देवताए क्रोध आणी चपेटो मार्यो, तेथी मरण पामीने पहेली नरके गयो, अने मोटो गुणधर नामनो वणिक मरीने देवता थयो. हवे ते नरकथी नीकलीने जोजदेव नामे तमारे घेर पुत्रपणे आवी उपन्यो छे. ते पूर्वकृत कर्मने योगे दुर्जागी थयो छे अने पहेला देवलोकथी चवीने तारे घेर राजदेव नामे पुत्र थयो छे ते सुकृतने योगे सुजागी थयो छे. एवी गुरुनी वाणी सांजली बेहु जाइने जातिस्मरण ज्ञान उपन्युं, तेथी पाछला जव दीठा. ते वारे जोजदेवे पोतानी निंदा करी केटलांएक कर्म क्षय कर्यां, अने बे जाइ तथा त्रीजो बाप त्रणे जणे मली केवलीनी पासेथी श्रावकधर्म अंगीकार कर्यो. अनुक्रमे बेहु पुत्र दीक्षा लइ चारित्रधर्म पाली आयु पूर्ण थये देवलोके गया. त्रीजे जवे मोक्षे जशे ॥ दोहो ॥ गुण बोले निंदे नहीं, ते सोजागी हुंत ॥ अवगुण बोले पर तणा, दोहग ते पामंत ॥१॥ इति राजदेव जोजदेव कथा ॥

हवे चौदमी अने पन्नरमी पृछाना उत्तर बे गाथाए करी कहे छे.

॥ गाथा ॥ जो पढइ सुणइ चिंतइ, अन्नं पाढेइ देइ उवएसो ॥ सुअ गुरु जत्तिजुत्तो, मरिउं सो होइ मेहावी ॥ ३० ॥ तव नाण गुण समिद्धं, अवमन्नइ किर न याणइ एसो ॥ सो मरिऊण अहन्नो, दुम्मेहो जायए पुरिसो ॥ ३१ ॥

भावार्थः—जे पुरुष ज्ञान भणे, ज्ञान सांभळे तथा तेनो अर्थ मनमां चिंतवे, तथा (अन्नं पाढेइ के०) अनेरा बीजा पुरुषोने ज्ञान भणावे, तेमने धर्मोपदेश दीए अने जे पुरुष सिद्धांतनी तथा सद्गुरुनी भक्तिए करी सहित होय, एटले सिद्धांतनी, रूडा गुरुनी भक्ति करे ते पुरुष मरीने मेधावी एटले बुद्धिमान् चतुर डाह्यो विचक्षण थाय. जेम मतिसागरनो पुत्र सुबुद्धि प्रधान बुद्धिवालो थयो ॥ ३० ॥ तथा जे तपस्वी ज्ञानवंत गुणवंत पुरुष होय, तेनी जे पुरुष अवगणना करे, मुखथी एम कहे के ए कांइ नहीं, एमां शो माल छे ? ए कांइ पण जाणतो नथी, मूर्ख छे. एम अवगणना करे, ते पुरुष अहन्नो एटले अधन्य अर्थात् अभाग्यवान् छतां दुष्ट पापिष्ठ दुम्मेहो एटले दुर्बुद्धिवालो थाय, एटले बुद्धि रहित थाय. जेम सुबुद्धि प्रधाननो नानो भाइ माठी बुद्धिए करी दुःखीउं थयो ॥ ३१ ॥

हवे बे पृछानी उपर सुबुद्धि कुबुद्धिनी कथा कहे छे.

क्षितिप्रतिष्ठित नगरे चंद्रयशा राजा राज्य करे छे. तेनो मतिसागर नामे प्रधान छे. तेने सुबुद्धि नामे पुत्र थयो, ते नानपणमां भएयो अने प्रज्ञान बळे करी सर्व कलाउं शीख्यो. चार प्रकारनी बुद्धिनो जाण थयो. हवे ते प्रधानने वली बीजो पुत्र थयो,

ते जणवा योग्य थयो. तेवारे निशाले जणवा मोकल्यो. तेने जणाववा माटे चार मास पर्यंत पंकिते उद्यम कस्यो, पण जेम कर्षणी लोको उखर जूमिमां बीज वावे, ते निष्फल थाय, तेम ए गुणवंत बुद्धिवंत न हतो, माटे जणावनार पंकितनो उद्यम सर्व निष्फल थयो. तेथी लोके ए पुत्रनुं डुर्बुद्धि एवुं नाम पाड्युं.

एवामां तेज गामनो रहेनार कोइ धन्नो नामे शेठ व्यवहारीउं ले. तेने एक जावड, बीजो बहारू, त्रीजो जावरू अने चोथो सावड एवे चार नामे चार पुत्र ले. ते चारेने परणाव्या, एटलामां धन्नो शेठ रोगे पीडाणो. तेवारे पोताना चारे पुत्रने तेडी शिखामण देवा लाग्यो के हे पुत्रो ! तमे चारे जण मांहोमांहे स्नेह राखीने एकठा मली रहेजो, परंतु पोतानी स्त्रीउंनां वचन सांजली जूदा थशो नहीं. जे माटे कह्युं ले के ॥ चोपाई ॥ स्त्रीने वचने जाये सनेह, स्त्रीने वचने जाये देह ॥ स्त्रीने वचने बांधव जडे, एकठा रहे तो गूअड चडे ॥ १ ॥ एवी वात तमे करशो नहीं. क्यारे पण कलह करी एक बीजाथी जूदा पडशो नहीं. जूदा पडवाथी लोकमांहे हांसी थाय अने एम करतां जो कदापि जूदा थाउं तो तमो चारेने माटे जूदां जूदां चार निधान आपणा घरना

चारे खूणामां चारेने नामे थापी मूक्या छे, ते लेजो. एवी वात पिताना मुखथी सांभलीने पुत्रो बोल्या के हे तात ! जेम तमे कहो छो, तेमज अमे करीशुं.

पछी पिताने समाधिमरण थयुं. तेनुं मृतकार्य करी चारे भाइ स्नेहपूर्वक एकठा रह्या. अनुक्रमे चारे भाइओने संताननी प्राप्ति थइ. ते वारे स्त्रीओ वढवा लागी के, हवे जूदा थाओ. ते वखते चारे भाइए मली चारे निधान काढ्यां. तेमां पहेला मोटा भाइना निधानमांथी केश नीकल्या, बीजाना निधानमांथी माटी नीकली अने त्रीजाना निधानमांथी चोपडा तथा कागलीया नीकल्या अने चोथाना निधानमांथी सोनुं तथा रत्न नीकल्यां, तेथी ते भाइ हर्षवंत थयो अने त्रण भाइ दुःहवाणा थका कहेवा लाग्या जे पिताए आपणी साथे वेर राख्युं. मात्र एक नानो पुत्र वल्लभ हतो, माटे तेनेज सर्व लक्ष्मी आपी दीधी, परंतु रीतसर तो आपणे चारे भाइओ मली ते लक्ष्मी वहेंची लेशुं. ते वारे नानो भाइ कहेवा लाग्यो के मुजने पिताए जे निधान आप्युं, तेमांथी हुं कोइने आपीश नहीं. एम मांहोमांहे रात्रि दिवस कलह करता रह्या. कोइनुं वचन कोइ माने नहीं.

पछी त्रणे भाइए जइ राजाना प्रधान आगल वात कही, परंतु प्रधानथी पण तेनो

न्याय थयो नहीं. तेथी अफसोसमां पड्या. एवामां मेतानो पुत्र सुबुद्धि तिहां आव्यो, तेनी आगल ते चारे निधाननो संबंध कही संजलाव्यो. सुबुद्धिए कह्युं के राजानो आदेश होय तो हुं तमारो ऊगमो जांगी नाखुं. राजाए आदेश आप्यो, ते वारे सुबुद्धिए तेमने एकांतमां तेनी वात कही के तमारो पिता घणो चतुर हतो, तेणे चारे जाइने लाख लाख टका आपवा कह्या छे. केमके मोटा जाइना निधानमां केश राख्या छे, माटे घोडा, गाय, जेंश, ऊंट आदिक जे चोपदरूप धन छे, ते एने आप्युं छे, अने बीजाना निधानमां माटी नीकली छे; माटे तेने खेत्र धरतीरूप धन आप्युं छे तथा त्रीजाना निधानमां कागल चोपडा छे माटे व्याजे नाणुं आपेलुं खत पत्र सर्व लेहेणुं जे लोको उपर छे, तेरूप धन तेने आप्युं छे; अने चोथाने सोनुं तथा रत्न जे घरमां छे, तेरूप धन आप्युं छे. ते सांजली चारे जणे मली हिसाब तपासी जोयो तो ते चारेने सरखे हिसे लाख लाख टकानी वहेंचण करी आपेली दीठामां आवी. ते जोइ चारे जणे जइ राजानी आगल कह्युं के हे स्वामी! सुबुद्धिए रूमी बुद्धिए करी अमारा ऊगडानो निवेडो करी आप्यो छे, ते सांजली राजा खुशी थयो, अने सुबुद्धि

लोकमां प्रसिद्ध थयो तथा बीजो पुत्र तो लोकोमां हांसीनुं पात्र थको निंदा पामतो कुबुद्धिउं कहेवातो प्रसिद्धिने पाम्यो.

एवामां कोइ ज्ञानी गुरु ते वनना उद्यानमां आव्या. तेमने राजा तथा प्रधान पोताना पुत्रो सहित तेमज अन्य जनो पण वांदवा गया. वांदी धर्मोपदेश सांजल्या-नंतर मेताए सुबुद्धि डुर्बुद्धि नामे बेहु पुत्र आश्चर्यी वात पूछवाथी गुरु कहेवा लाग्या के हे प्रधान! एज नगरमां एक विमल अने बीजो अचल, ए बे नामे बे वाणीया हता, परंतु बेहुना स्वजाव जूदा हता. तेमां विमले दीक्षा लीधी, देव गुरु सिद्धांतनी जक्ति कीधी, सिद्धांत जएयो, तेना अर्थ विचार जाएया, बीजा साधुउंने पण जणाव्या, छेवट आचार्यपद पाम्यो, ते वारे घणा जीवोने धर्मोपदेश दइ पोतानुं आयुष्य पूर्ण करी बीजे देवलोके देवता थयो.

तथा बीजो अचल वाणीयो तो जे तपस्वी, ज्ञानी अने धर्मवंत होय, तेनी निंदा करे अने कहे ए साधु शुं जाणे छे ? एम सर्व कोइनी अवज्ञा करतो हतो. तेने पापे करी मरीने बीजो नरके गयो.

हवे विमलनो जीव देवलोकथी चवीने तारो सुबुद्धि नामे पुत्र थयो अने अच-

लनो जीव नरकथी नीकली पूर्वे आचरेली निंदाने पापे करी अहीं तारो डुर्बुद्धि नामे पुत्र थयो छे. ते हजी पण संसार मांहे घणो रझलशे. इत्यादि पूर्वजवनी वात सांजली सुबुद्धिए श्रावकधर्म अंगीकार कस्यो. वली केटलाएक दिवस पछी दीक्षा पण लीधी, सिद्धांत जण्यो, चारित्र पाली पांचमे ब्रह्मदेवलोके देवतापणे उपन्यो. अनुक्रमे मोक्षे पण जशे ॥ दोहो ॥ जणे जणावे ज्ञान जे, थाये निर्मल बुद्धि ॥ देव गुरु जक्ति करे, अनुक्रमे पामे सिद्धि ॥ १ ॥ गाथा ॥ जिणपवर सुरतेअं, वीरं नमिऊं विसाल राय तयं ॥ लहिउं बालाबोहो, जणंति निसुणंति सुख्क करो ॥ १ ॥ इति सुबुद्धि-डुर्बुद्धिकथा समाप्ता ॥

॥ हवे सोलमी अने सत्तरमी पृछाना उत्तर बे गाथाए करी कहे छे ॥

गाथा ॥ जो पुण गुरुजण सेवी, धम्माधम्माइ जाणिऊं मइइ ॥ सुय देव य गुरुजत्तो, मरिऊं सो पंम्प्रिउं होइ ॥ ३२ ॥ मारेइ खाइ पीयइ, किंवा पढिएण किंच धम्मेण ॥ एअंचिय चिंततो, मरिऊं सो काहलो होइ ॥ ३३ ॥

जावार्थः—वली जे पुरुष गुरुजन एटले वडेरानी सेवा जक्ति करवामां तत्पर होय, धर्माधर्म एटले पुण्यपापनो विचार जाणवानी वांछा करे, तथा जे श्रुत सिद्धांतनो अने

देव गुरुनो नक्त होय ते कुशल पुरुष मरीने पंक्ति थाय ॥ ३१ ॥ तथा जे पुरुष मारेह एटले जीवोने मारे हिंसा करे, मद्य मांसादिक खाय, पीये, मोज मजाह करे अने नणवा पढवाथी शुं थाय ? तथा धर्म करवाथी पण शुं थवानुं छे ? ए प्रकारनी चिंतवणा करे, ते जीव, मरीने काहलो मूक मूर्ख थाय ॥ ३२ ॥ जेम पाछले नवे आंबानो जीव मरीने कुशल थयो अने आंबानो मित्र लींबो हतो, ते मरीने कुशलने घेर कुमार एवे नामे सेवक थयो. तेनी कथा कहे छे ॥ श्लोक ॥ श्री वीरजिनपं वंदे, गौतमं नवलब्धिकम् ॥ तत्त्वज्ञं सूर्यतेजस्कं, महीश्वरसुरार्चितम् ॥ १ ॥

धारावास नगरे वेसमण शेठ धनवंत वसे छे, तेने कुशल एवे नामे पुत्र थयो, ते नणी गणीने बहोंतेर कलानो जाण थयो, पदानुसारिणी प्रज्ञावालो थयो. हवे ते शेठने घेर एक कर्मकर छे, ते कुरूप, कुर्नागी, मूक, मूखरोगी छे. तथापि कुशल ते कर्मकरनी उपर स्नेह आणे, कुशल पोते जिनधर्मनो जाण छे, धर्मकरणी करे छे.

एकदा कुशल क्रीडा करवा माटे वनमां गयो. तिहां एक विद्याधरने उंचो उछली पाछो नीचे पडतो दीठो. तेने कुशले पूछ्युं के तमे उत्तम पुरुष छतां पांख रहित पंखीनी पेठे केम चडो पडो छो ? ते सांनली विद्याधर बोल्यो के हुं वैताढ्यनो वासी

विचित्रगति नामे विद्याधर बुं. हमणां हुं श्रीपर्वते गयो हतो, तिहांथी वलतां मारो मित्र विद्याधर मल्यो तेने केटलांएक शस्त्रना घाव लागेला दीठा, ते वारे में पूछ्युं के तुजने आ शुं थयुं ? तेणे कह्युं के मारी स्त्रीने एक बीजो विद्याधर लइ जतो हतो, तेनी पछवाडे जइ युद्ध करी मारी स्त्रीने वाली इहां रह्यो बुं. युद्धमां घा लाग्या बे एवुं सांजलीने में व्रणसंरोहणी ओषधीए करी तेने सज्ज कीधो. ते विद्याधर स्त्रीने लइ पोताने स्थानके गयो, परंतु हे नाइ ! मुजने व्याकुलपणाथी आकाशगामिनी विद्यानुं पद वीसरी गयुं, तेथी पडी जाउं बुं. एवी वात सांजलीने कुशले कह्युं के तमारी विद्यानुं धुरलुं पद याद करी कहो. ते विद्याधरे धुरनुं पद कही संजलाव्युं. तेने अनुसारे कुशले पदानुसारिणी प्रज्ञाने बले समस्त पूरेपूरी आकाशगामिनी विद्यानां पदो कही संजलाव्यां, तेथी विद्याधर हर्षवंत थयो थको विस्मय पाम्यो, अने विचार्युं जे आ पुरुष प्रज्ञाए, बुद्धिए, रूपे अने गुणे करी श्रेयस्कर बे, परोपकार करवामां दक्ष बे. एवा पुरुष विरलाज होय. एम चिंतवी कुशलनां मातापितानुं नाम पूबी विद्याधर पोताने स्थानके गयो.

बीजे दिवसे वेसमण शेठनुं घर पूछतो विद्याधर तिहां आव्यो, तिहां कुशलने

देवपूजा करतो देखी विद्याधरे पूछ्युं के तुं आ शुं करे छे? तेणे कह्युं के देवपूजा गुरुभक्ति करतो श्रीजिनधर्मनुं आराधन करुं छुं. ते जोइ विद्याधरे पण जिनधर्म पडिवज्यो, अने कहेवा लाग्यो के एक तो आकाशगामिनी विद्यानुं पद संभारी आप्युं तेनो उपकार अने बीजो श्रीजिनधर्म बताव्यो. ए बे उपकार तें मुजने कर्या, तेथी हुं तारो उसींगण कोइ रीते थइ शकुं नहीं. एटलुं कही फरी शेठने कहेवा लाग्यो के मारा पिताए एक निमित्तियाने पूछ्यु हतुं के मारी पुत्रीनो वर कोण थशे? निमित्तियाए कह्युं हतुं के तारा पुत्रने विद्या वीसरी जशे तेने जे संभारी आपशे, ते तारी पुत्रीनो वर थशे. ते माटे हे शेठ! तमारा पुत्रने मारी साथे वैताढ्य पर्वते मोकलो तो विवाह करीए. ते सांभली शेठे पुत्रने वैताढ्य पर्वते मोकल्यो. तिहां शुभलग्ने विवाह करी पछी विद्याधर तथा कुशल अने कुशलनी स्त्री ए त्रणे जण शाश्वतां चैत्य वांदवाने माटे गयां, सर्व चैत्य वांदीने चैत्यना मंडपे आव्यां. तिहां चारणश्रमण मुनिने वांद्या. मुनिए विद्याधरने कह्युं के तुं तारा बनेवी थकी जिनधर्म पाम्यो छो.

ते वारे मुनिने ज्ञानवंत जाणी कुशले पूछ्युं के हे महाराज! कया शुभ कर्मना उदयथी पदानुसारिणी प्रज्ञा जे बुद्धि ते अत्यंत निर्मल मुजने प्राप्त थइ? अने मारो

कुमारो मुखरोगी मूर्ख कुरूपवान् थयो, ते कया कर्मथी थयो ? वली एनी उपर मारे घणो स्नेह शाथी थयो छे ? ते मुजने कहो.

मुनि बोल्या के आ जव थकी त्रीजे जवे तुं अने कुमारो मली बे जण आंबो अने लींबो एवे नामे कुलपुत्र मित्र हता. तमारें परस्पर घणो स्नेह हतो, तेमां आंबो निरंतर गुरुनी सेवा करे, पुण्य पाप संबंधी विचार पूछतो रहे. वली गुरुना कहेवा उपरथी पांच वर्ष ने पांच मास पर्यंत ज्ञानपंचमीनुं तप, विधिपूर्वक एकाग्रचित्ते तेणे कीधुं. ज्ञान अने ज्ञानवंतनी घणी जक्ति कीधी. तेना पुण्यथी आंबानो जीव मरीने देवलोके देवता थयो. तिहांथी चवी तुं वेसमण शेठनो पुत्र थयो छो.

अने लींबानो जीव तो नास्तिकवादी थको जीवहिंसा करे, रूडुं खावुं, रूडुं पीवुं, खेलाए फरवुं, जणवाथी शुं थाय? तथा धर्म करवाथी शुं थाय ? एनुं फल कांइ नथी. जे धर्म करे ते वधारे दुःखी थाय. एवी चिंतवणा करतो तथा लोकोने पण एवोज उपदेश देतो फरे. यद्यपि बेहु मित्र हता, तथापि स्वजावमां एक बीजाने आंतरुं घणुं हतुं, जो पण एकज गांठे बांधेला होय, तोपण जे काच ते काचज कहेवाय, अने मणि ते मणिज कहेवाय. तेम बे मित्र हता तोपण आंबो ते धर्म स्थापन करतो अने

लींबो ते धर्म उडापतो निंदा करतो नरके गयो. तिहांथी नीकलीने तमारे घेर कुमारो मूक, मूर्ख, दुर्भागी कुरूपो थयो. जेवुं नाम तेवुंज परिणाम थयुं अने हे कुशल ! तें ज्ञानपंचमीनुं तप कीधुं, गुरुनी ज्ञानवंतनी भक्ति कीधी, तेथी तुं चोखी बुद्धिवालो थयो छो, माटे तुजने धर्मने विषे भावप्रज्ञा छे.

एवी गुरुनी वाणी सांभली कुशलने जातिस्मरण उपन्युं, पूर्वभव दीठा, ते वारे गुरु पासेथी श्रावकनां व्रत लइ देशविरति थयो थको तिहांथी सुंदरी नामे स्त्री सहित पोताने घेर आव्यो, अने विद्याधर वैताढ्ये पोताने नगर गयो.

घेर आव्यानंतर अनुक्रमे पुत्रप्राप्ति थइ. स्त्री भरतार बेहुए पंचमीनुं तप कर्युं ते पूर्ण थये तेनुं उजमणुं कीधुं. श्रीसंघनी भक्ति करी. पछी घरनो भार पुत्रने सोंपी कुशले पिता सहित दीक्षा लीधी. अगीयार अंग अने चौद पूर्व भणी शुद्ध चारित्र पाली मोक्षनां सुख पाम्यो, अने लींबानो जीव घणो संसार भम्यो ॥ गाथा ॥ जे नाण पंचमि तवं, उत्तम जीवा कुणंति भावजुआ ॥ उवभुंजिय मणुअ सुहं, पावंति केवलं नाणं ॥ १ ॥ इति आंबा लींबानी कथा ॥ ११ ॥

हवे अढारमी तथा ओगणीशमी पृछाना उत्तर बे गाथाए कहे छे.

॥ गाथा ॥ सव्वेसिं जीवाणं, तासं ण करेइ णो करावेइ ॥ परपीड वज्जणाओ, गोयम धीरो भवे पुरिसो ॥ ३४ ॥ कुक्कुड तित्तर लावे, सूअर हरिणे अ विविह जीवे अ ॥ धारेइ निच्चकालं, स सवकालं हवइ भीरू ॥ ३५ ॥

भावार्थः—जे जीव पोते सर्व प्रकारना जीवो प्रत्ये त्रास करे नहीं, एटले भय पमाडे नहीं, बीवरावे नहीं तेम बीजा पासे त्रास करावे नहीं जे परजीवने पीडा करवानुं वर्ज्यो ते पुरुष, हे गौतम! धैर्यवंत साहसिक थाय. जेम पृथ्वीतिलक नगरे धर्मसिंह क्षत्रियनो पुत्र अभयसिंह एवे नामे महा धैर्यवान् थयो ॥ ३४ ॥ तथा जे जीव कूकडा, तीतर, लावां, सूअर, हरिण प्रमुख विविध प्रकारना जीवोने निरंतर बंधन ताडनादिक करे, पांजरा मांहे घाले, ते जीव सदैव बीकण होय, उचाटमां रहे. जेम पहेलां कह्यो जे अभयसिंह तेनो नानो भाइ धनसिंह क्षत्री बीकण थयो ॥ ३५ ॥

हवे बेहु उत्तरनी उपर अभयसिंह अने धनसिंह बे भाइउनी कथा कहे छे. पृथ्वीतिलक नगरे पृथ्वीतिलक राजा राज्य करे छे. ते राजानो सेवक धर्मसिंह क्षत्री छे, ते जिनधर्ममां रक्त छे. तेने एक अभयसिंह अने बीजो धनसिंह ए बे नामे बे पुत्र थया;

परंतु तेनां पोतपोतानां कर्म जूदां जूदां ढे. मोटो जाइ तो वाघ सिंह, सर्प, शस्त्र, जूत, प्रेत इत्यादिक जीवोथी पण बीहे नहीं, आकाशथी वज्र पडे तोपण डरे नहीं अने बीजो नानो जाइ जे धनसिंह ढे, ते तो मात्र सींदरी देखे, तोपण तेने सर्प मानीने बीक आणे, कोइक पांदडुं हाले, तेटलामां बीहे.

एक वार ते नगरनी ढुकडो एक सिंह आव्यो जाणीने ते रस्तेथी कोइ पण जाय नहीं. ते वारे प्रधाने राजा आगल आवी विनंति करी के हे महाराज ! सिंहनी बी-कथी मार्गमां कोइ चाली शकतुं नथी. ते वारे राजाए सजा मांहे सिंहने मारी ला-ववानुं बीडुं आपवा मांड्युं, पण कोइए झाल्युं नहीं, परंतु अजयसिंहे ते बीडुं झाल्युं अने कह्युं के हे महाराज ! तमारो आदेश ढे तो हुं एकलोज जइने सिंहनो वध करी आवीश अने लोकोने सुख करी आपीश. एम कही वनमां गयो, तिहां सिंहने बोलावी जालुं मारी तेनो वध करी पाछो आवी राजाने प्रणाम कीधो. राजाए खुशी थइने तेने मोटो सिरपाव आप्यो, घणांक वस्त्राजरण दीधां.

वली एकदा कोइ एक सीमाडीयो राजा ढे ते राजानी आण न मानतो थको वाट पाडे, गामोने लूंटे ढे, तेनो निग्रह करवा माटे राजाए बीडुं फेरव्युं ते पण अज-

यसिंहे झाल्युं अने कटक लइने ते सीमाडीया सामंतना नगरे पहोंच्यो. ते राजानी पासे दूत मोकलीने कहेवराव्युं के अमारा राजानी आण मान्य कर. नहीं तो युद्ध करवानी सज्जाइ कर. ते वारे सामंते कह्युं के आगल पण घणा वखत राजानुं कटक मारी उपर चढाइ करी आव्युं हतुं ते में जीत्युं हतुं. तेने दूते कह्युं के स्वामी ! हमणां तो अजयसिंह सिंह आव्यो छे. ते सांभली सामंत बोल्यो जे मोढाथी वखाण करवे शुं थवानुं छे ? सिंह छे के शियालीयुं छे ? ते तो संग्राममां पाधरुं जणाइ आवशे. ते सांभली दूत पाछो आव्यो अने अजयसिंहने कह्युं के एमां अहंकार घणो छे, माटे युद्ध कर्या विना मानशे नहीं.

हवे अजयसिंह रात्रिने वखत निष्टचर्याए गढ उलंघीने सामंत राजाना महेलमां पेठो. सामंत सूतो हतो तेने जगाड्यो अने कह्युं के उठ उठ, सिंह आव्यो छे तेनी सामो आव. ते सांभली सामंत पण उठीने सामो आव्यो. बेहुए मल्लयुद्ध कर्युं. अजयसिंहे सामंतने भूमिए पाडी बांधी लीधो. ते वारे तेनी स्त्रीए पगे लागीने भरतारनी भिक्षा मागी भरतारने मूकाव्यो. ते राजा अहंकार मूकीने अजयसिंहनो सेवक थयो.

हवे प्रजात थयुं, ते वारे कटकमां अजयसिंहने कोइए दीठो नहीं, तेथी सर्व सैन्य चिंतातुर थयुं. तेटलामां एक जणे आवीने कह्युं के अजयसिंहे सामंतने जीत्यो छे अने तमो सर्वने तेणे तेड्या छे. तमे कांइ शंका करशो नहीं. ते वारे सैन्यना सर्व लोक गाममां आव्या, तेने सामंते जोजन करावी सर्वने वस्त्रनी पहेरामणी करी खुशी कर्या.

हवे अजयसिंह सामंतने पोतानी साथे तेडी पृथ्वीतिलक नगरे आव्यो. तिहां सामंत सहित जइ पृथ्वीतिलक राजाने प्रणाम कर्यो. ते जोइ राजा हर्षित थइ विचारवा लाग्यो के आ मनुष्य छे, पण देवशक्ति धारण करे छे. एम चिंतवी अजयसिंहने एक देश बक्षीस आप्यो, अने सामंतने जोजन करावी वस्त्र पहेरामणी करी विदाय कर्यो. ते पण राजाने जेट आपी रजा लइने पोताने देश गयो.

एकदा ते नगरना उद्यानमां चार ज्ञानना धणी श्रुतसागर नामना आचार्य पधार्या, ते सांजली राजा परिवार सहित तेमने वांदवा गया. देशना सांजल्यानंतर धर्मसिंहे पूछ्युं के हे महाराज ! आ मारा अजयसिंह पुत्रे शुं पुण्य कीधुं छे के जे थकी ए महा साहसिक थयो छे? अने नाना पुत्रे शुं कुकर्म कीधुं छे के जे थकी ते महा बीकण थयो छे ?

गुरु कहेता हवा के एज नगरने विषे एक पूरण अने बीजो धरण एवे नामे ए बेहु जण आहिर हता. तेमां पूरण तो घणोज दयालु हतो, धर्मात्मा हतो, सर्व जीवनी रक्षा करतो, कोइने त्रास देतो न हतो, अने बीजो धरण जे हतो ते तो कूकडा, सूडा, तेतर, मृगलां प्रमुख जीवोने पकडीने बांधी राखे, कोइनो वार्यो रहे नहीं, कोइनुं कह्युं माने नहीं, तेथी तेने जूदो कर्यो, माटे जीवरक्षाने पुण्ये करी पूरणनो जीव ते तारो अजयसिंह नामे शूरवीर अने जाग्यवंत पुत्र थयो तथा धरणनो जीव घणा जीवोने डुहवी मरीने तारो धनसिंह नामे लघु पुत्र बीकण थयो छे. एवी पूर्वजव संबंधी वार्त्ता सांजलीने सघलाए श्रावकधर्म पडिवज्यो. धर्माराधन करी पिता तथा बेहु पुत्र मली त्रणे जण देवलोके पहोंच्या ॥ चोपाई ॥ गोयम आगल जिणवरे कह्युं, पुण्य पापनुं फल जूजूउं ॥ गौतम पृछा बालावबोध, सुणतां कहेतां होय प्रतिबोध ॥ १ ॥ इति अजयसिंह धनसिंह कथा ॥

हवे वीशमी पृछानो उत्तर एक गाथाए करी कहे छे.

॥ गाथा ॥ विद्या विन्नाणं वा, मिछा विणएण गिन्हिउं जोउ ॥ अवमन्नइ आयरियं, सा विद्या निप्फला तस्स ॥ ३६ ॥ जावार्थः—जे जीव विद्या अथवा विज्ञान जे कला

प्रमुख तेने मिथ्या एटले कूडा विनये करी सेवा वांछे अर्थात् जणावनार जे आचार्य तेनुं नाम ओलवी नाखे, अवगणी नाखे, ते जीवने परजवे जणेली विद्या सफल न थाय, निष्फल थाय. जेम त्रिदंडीयाए नापितनी पासेथी विद्या शीखीने ते विद्याने बले विदेशे जइ त्रिदंडने आकाशने विषे राख्यो अने गुरुनुं नाम ओलवी नाख्युं तेणे करी आकाश थकी त्रिदंड पडी गयो, विद्या निष्फल थइ. इहां नापितनी कथा कहे छे.

राजापुर नगरे कोइक विद्यावंत नापित वसे छे. ते विद्याने बले आकाशने विषे पोतानो छरो निराधारपणे राखे, परंतु तेने लोक माने नहीं. एवो तेनो प्रजाव देखीने एक त्रिदंडीयो ब्राह्मण ते विद्या लेवानी वांछा करतो ते नापितनो मिथ्यात्वे बाह्य विनय करवा लाग्यो, जाण्युं जे कोइ रीते पण विद्या आपे तो ठीक थाय "अमेध्यादपि कांचनं" एटले अपवित्रथी पण सोनुं लीजे. एम चिंतवी सदैव तेनी सेवा करे, जक्ति करे, पछी विद्या मागवानी प्रार्थना कीधी, ते वारे तेणे पण संतुष्ट थइने विधिपूर्वक विद्या दीधी. ते त्रिदंडीए पण विधिपूर्वक आराधीने विद्या साधी लीधी. पछी पोतानो जे त्रिदंड हतो, तेने आकाशमंडले राखीने लोकोने कौतुक देखाडतो फरे.

लोक पण तेनी पूजा नक्ति करी प्रशंसा करवा लाग्या. एकदा लोके पूब्युं के हे स्वामी ! ए विद्या तमे कया गुरुनी पासेथी पाम्या डो ?

ते वारे ते ब्राह्मणे लज्जा थकी नावीनुं नाम कह्युं नहीं अने तेने बदले हिमवंत-वासी विद्याधर मारो गुरु बे, तेनी सेवा विनय थकी हुं आ विद्या पाम्यो बुं. ए रीते गुरुनुं नाम उंलवतांज ते ब्राह्मणनो त्रिदंरू जे आकाशमां अधर रहेलो हतो, ते खरु-खराट करतो आकाश थकी नीचे धरतीए आवी पड्यो, ते वारे लोको सर्व हांसी करवा लाग्या अने जेवुं मान महत्त्व वृद्धि पाम्युं हतुं तेथी वली बमणी अवहेलना थइ. लोक जे पूजा नक्ति करता हता, तेणे पूजा नक्ति करवी मूकी दीधी. ए रीते जे पुरुष विनय विना विद्या शीखे, गुरुनुं नाम उंलवे, गुरुनी अवगणना करे, तेनी विद्या निष्फल थाय. तेमज आवते नवे तेने ज्ञानप्राप्ति पण दोहेली थाय. ए गुरुनि-न्हवण उपर नापितनी कथा कही.

हवे एकवीशमी पृछानो उत्तर एक गाथाए करी कहे बेः—

॥ गाथा ॥ बहु मन्नइ आयरियं, विणय समग्गो गुणेहिं संजुत्तो ॥ इय जा गहिया विद्या, सा सफला होइ लोगंमि ॥ ३७ ॥ नावार्थः—जे जीव पोताना नणावनार आचार्य

प्रत्ये घणुंज माने, जे विनयवंत होय, समग्र गुणे करी सहित होय. एवी रीते जे विद्या ग्रणी लीधी होय, ते विद्या लोक मांहे सफल थाय ॥ ३७ ॥ जेम श्रेणिक राजाए पोताना सिंहासननी उपर चंडालने बेसाडी विनये करी अवनमन नामनी विद्या लीधी, ते सफल थइ. माटे इहां ते श्रेणिक राजानी कथा कहे छे.

राजगृही नगरे श्रेणिक राजा राज्य करे छे. तेने चेलणा नामे पट्टराणी छे. एकदा राणीने एकथंभा धवलगृहे वसवानो डोहलो उपन्यो, ते वात राजाए अजयकुमारने कही. अजयकुमारे देव आराध्यो, देवता प्रत्यक्ष आवी उभो तेनी पासे एकथंभो आवास कराव्यो. तेने चारे बाजु फरतां चार वन कराव्यां. ते चारे वनमां सर्व ऋतुनां फल फूल निरंतर सदैव लागे, एम करी राणीने एकथंभा आवासे बेसाडी तेनो डोहलो पूर्ण कर्यो.

एवामां एक मातंगनी स्त्रीने अकाले आंबा खावानो डोहलो उपन्यो. तेना धणी मातंगे अवनमन नामनी विद्याने बले करी राजानी वाडी मांहेला सर्व वनना आंबानी डाल नमावी तेनां फल लेइ स्त्रीनो डोहलो पूर्ण कर्यो. राजाए अजयकुमारने कह्युं के आंबानां फल रावली वाडी मांहेथी कोणे लीधां? ते चोरने शोधी कहाडवो जोइए.

अजयकुमारे मोटी कुंआरी कन्यानी कथा कहीने बुद्धिने बले ते मातंग चोरने प्रगट कीधो, अने पकमी लाव्या. तेने राजाए पूछ्युं के गढनी मांहेली कोरे मारी वाडी छे, तेनां फल तें केवी रीते लीधां? ते वारे मातंगे बीहीने कह्युं जे में विद्याने बले लीधां.

श्रेणिक राजाए कह्युं ते विद्या जो मुजने आपे, तो हुं तुजने मूकी आपुं. मातंगे ते वात मान्य करी. ते वारे राजाए पोते सिंहासन उपर बेठां थकांज विद्या जणवा मांडी. तेने घणा वखत मातंगे विद्या कही, पण राजाने आवमी नहीं. ते वारे अजयकुमार मंत्रीए कह्युं के हे महाराज! विद्या तो विनय करवाथी आवडे, ते सांजली राजाए पोते सिंहासनथी हेठा उतरी मातंगने सिंहासन उपर वेसाड्यो. पोते मातंगनी आगल बे हाथ जोमी विद्या लेवा बेठो, तेथी एक वारे चंमाले कहेली विद्या राजाने मुखाग्रे थइ गइ, सफल थइ. ए रीते विनय करीने विद्या लेवाथी कार्य सखुं

॥ इति विनये विद्या लेवा आश्रयी श्रेणिक राजानी कथा ॥ २१ ॥

॥ हवे बावीशमी अने त्रेवीशमी पृछाना उत्तरो बे गाथाए करी कहे छे ॥

गाथा ॥ जो दाणं दाऊणं, चिंतइ हा किसमं मए दिन्नं ॥ होऊणवि धण रिद्धी,

अचिराविं हु नासए तस्स ॥ ३८ ॥ थोवधणोवि हु सत्तिइ, देई दाणं पयट्टइ परेवि ॥ सो पुरिसो तस्स धणं, गोयम संमिलइ परजम्मे ॥ ३९ ॥

भावार्थः—जे मनुष्य दान दइ करीने पछी हृदयमां एवी चिंतवणा करे के हा इति खेदे! अरे में आ दान फोकट शा वास्ते दीधुं? एवी रीते दान दइने पछी तेनो पश्चात्ताप करे, तेने घेर धन ऋद्धि होइने एटले लक्ष्मी एकठी थइने पछी पाछी अचिर एटले स्वल्पकालमांज अर्थात् थोडा दिवस रहीने हु इति निश्चे पाछी जती रहे. जेम दक्षिणमथुरानो वासी धनदत्त शेठनो पुत्र सुधन नामे हतो तेनी लक्ष्मी नीकळी पराइ थइ गइ, पारके घेर जती रही ॥ ३८ ॥ तथा जे स्वल्प धनवान् छतो पण पोतानी सत्तिइ एटले शक्ति प्रमाणे पोते सुपात्रने दान आपे, परेवि एटले बीजा पासे (पयट्टइ के०) दान देवरावे एवो जे पुरुष होय, (तस्स धणं के०) ते पुरुषने धन जे लक्ष्मी ते, हे गोयम! (परजम्मे के०) परजन्म एटले भवांतरने विषे (संमिलइ के०) सम्यक् प्रकारे मळे छे, संपजे छे. जेम उत्तरमथुरा वासी मदन शेठने घेर अकस्मात् घणी ऋद्धि आवी मळी ॥ ३९ ॥

॥ ए बेहु बोल उपर सुधन अने मदन शेठनी कथा कहे छे ॥

दक्षिणदेशे दक्षिणमथुरा नगरीए धनदत्त शेठ वसे छे. ते कोटिद्रव्यनो धणी छे. तेने सुधन नामनो पुत्र थयो. ते शेठ पांचसें शकट करियाणांनां भरी वाणोतरने परदेश वेचवा मोकले, ते तिहां करियाणां वेचीने वली बीजां नवां करियाणां लइ आवे. तेमज केटलोक माल समुद्रमार्गें वहाणो भरी मोकले, तथा मगावे, तथा केटलुंएक धन व्याजे आपे छे अने केटलुंएक धन तो घरमां भंडारे भरी मूक्युं छे.

हवे उत्तरमथुरामां समुद्रदत्त व्यवहारीयो वसे छे, तेनी साथे ए शेठने घणो स्नेह छे, प्रीति छे. मांहोमांहे करियाणां एक बीजानी उपर वेचवा लेवा माटे मोकले छे. तेमां लाभ घणो थाय छे. एम करतां एकदा धनदत्त शेठ दाघज्वरे पीडाणो थको देवशरण थयो, ते वारे सगां संबंधीए तेना पुत्र सुधनने तेनी पाटे थाप्यो. सुधन घरना कुटुंबनो भार निर्वहवा लाग्यो.

हवे ते सुधन एक वार सोनाना बाजोठ उपर स्नान करवा बेठो. आगल सोनानी कूंडी पाणीथी भरीने सेवकोए मूकी. स्नान करी रह्यो के तरतज सोनानी कूंडी आकाशमार्गें चाली गइ, अने स्नान करी पाट उपरथी नीचे उतर्यो, एटले सोनानो

पाट पण आकाशमार्गे चालतो थयो. वली देवपूजा करवा माटे देरासरमां गयो, तिहां देवपूजा करी लीधी के तरतज देरासर तथा बिंब कलश सर्व अदृश्य थइ गयां. धोतीयानो समुदाय आकाशे चाल्यो गयो. पछी घरमां आव्यो, त्यां घेर आवतां वहाण बूडी गयानी खबर सांजली. पछी जमवा बेठो, आगल सुवर्णना थालमां जोजन मूक्युं. तथा सुवर्णमय बत्रीश कचोलां दाल, कढी, शाक प्रमुखनां जरी मूक्यां. तथा बत्रीश वाटकी रूपानी मूकी, ते सर्व आकाशे चाली गइ, अने जे वखते थाल आकाशे जवाने थरहर्यो, ते वखते सुधने तेने थरहरतो जाल्यो, तेनो एक कटको तेना हाथमां रही गयो, पण थाल तो चाल्यो गयो. एम देखतां देखतां सघली ऋद्धि जती रही. कर्मनी आगल कोइनुं कांइ जोर चाले नहीं. एवामां एक मागनारे आवी कह्युं के मारुं एक लाख द्रव्य लहेणुं छे, ते आपो. ते वारे निधान खोली जोयुं, तो द्रव्य सर्व राख थयेलुं दीठुं, तेथी वली घणोज दुःखी थयो.

पछी मातानी आज्ञा लइ सोनाना थालनो कटको साथे राख्यो, देशांतर जणी चाल्यो. मार्गे जतां महा कष्टथी कंटालीने एक पर्वत उपर चढी तिहांथी झंपापात करी मरवा तैयार थयो. तेने झंपापात खातो एक साधुए दीठो. तेणे ज्ञानने बले तेनुं

नाम जाणीने बोलाव्यो के हे सुधनशाह! तमे साहस म करो, केमके पर्वत उपरथी
पडी अकाल मरणे व्यंतर थइए. ते सांजली सुधन पण ते ज्ञानी रुषि पासे आव्यो,
रुषिने वांद्या, रुषिए कह्युं के कर्मथी कोइ बूटतो नथी ॥ कर्मे करी सुदंसण शेठ,
हरिचंद कीधी मातंग वेठ ॥ मेतारज रुषि काढी दृष्ट, कर्में कीधुं सहु पग हेठ ॥ १ ॥

माटे हे शेठ! जे लक्ष्मीना डुःखथी तमे मरवा तैयार थया गे, ते लक्ष्मी असार
गे, चपल गे, मलिन गे, अनर्थनुं मूल गे, वीजलीना ऊबकारनी पेठे हाथमांथी जती
रहे, एवी लक्ष्मीने अर्थे कोण मरीने व्यर्थ हीरा जेवा मनुष्यजवने निष्फल करे.
इत्यादिक उपदेश सांजली शेठ प्रतिबोध पाम्यो. मुनिनी पासेथी दीक्षा लइ सूत्र
जणी गीतार्थ थयो, अवधिज्ञान उपन्युं. एवो सुधन रुषि विहार करतो उत्तरमथुराए
समुद्रदत्त शेठने घेर वहोरवा आव्यो.

तेने घेर पोतानां सुवर्णपाट, कूंडी, लोटी, कचोली, थाल, देरासर प्रमुख सर्व
दीठां अने उलखी लीधां. सोनाना खांडा थालमां समुद्रदत्त शेठने जमता दीठा.
ए रीते ते रुषिने पोताना घरमां अरहो परहो फरतो अने वस्तुउने जोतो देखी शेठे
पूछ्युं के महाराज! शुं जुउ गो? ते वारे रुषिए कह्युं के हे शेठ! आ पाट, कुंडी

कचोलां, थाल प्रमुख तमे करावेलां बे किंवा तमारा पूर्वजोनां करावेलां बे ? शेठे कह्युं, ए प्रथमथीज मारा घरमां बे. ऋषिए कह्युं के तमे आवा खांडा थालमां शामाटे जमो बो ? शेठे कह्युं के शुं करीए ए थालमां खंरू चोंटतो नथी. एटले ऋषिए केरूमांथी थालनो खंरू काढी थाल जपाकीने तेनी साथे मेलव्यो. एटले पोतानी मेले चोंटी गयो. थाल संपूर्ण अखंरू थयो, ते जोइने शेठना कुटुंबने कौतुक थयुं. साधुए चालवा मांड्युं, तेने शेठे वंदना करी पूब्युं के महाराज ! ए शी वात बे ? साधुए कह्युं के तुं असत्य बोले बे, तो तुजने हुं शुं कहुं !! शेठे कह्युं के हुं असत्य बोल्यो बुं, परंतु खरी वात तो एज बे जे ए ऋद्धिने मारे घेर आवे आठ वर्ष थयां बे.

साधुए कह्युं के ए ऋद्धि में जेलखी बे. ए सर्व मारा पिताना पितानी वारनी बे, पण मारा पिता मरण पाम्यानंतर हुं तेनो सुधन नामे पुत्र हतो, ते मारा हाथथी गइ, तेथी में वैराग्य पामी दीक्षा लीधी. मने अवधिज्ञान जपन्युं बे, तेथी हुं इहां आव्यो बुं. शेठे कह्युं के ए लक्ष्मी सर्वे तमारीज बे. हवे एने ल्यो अने सुख जोगवो. साधु बोल्या के मारा देखतां तो ए जती रही, माटे हुं हवे एने शी रीते जोगवुं ? शेठे पूब्युं के हे जगवन् ! तमारा हाथथी गइ अने अमारे घेर आवी, तेनुं कारण शुं हशे ?

ते वारे ऋषि बोल्या के पूर्वे श्रीपुर नगरे जिनदत्त शेठ वसे छे, तेनो एक पद्माकर अने बीजो गुणाकर, एवे नामे बे पुत्र हता. ते शेठे मरती वखते निधान कही समजाव्युं, जे अमुक जगाए द्रव्य राखेलुं छे. पछी मोटा भाइए रात्रिए छानो जइने निधान मांहेलुं सर्व द्रव्य काढी लीधुं. पाछलथी नाना भाइने कह्युं के चालो, निधान काढीने आपणे बंने वहेंची लइए. पछी बे भाइए धरती खोदी तेमांथी कांइ मळ्युं नहीं, ते वारे मोटा भाइना कपटने योगे नाना भाइने मूर्छा आवी गइ. सचेत थया पछी वळी मोटा भाइए नाना भाइने कह्युं के ए धन सर्व तुं काढी छानो लइ गयो छे. एम कही तेने ।धज कराव्युं. ए रीते में वंचना करी तेथी मरीने हुं सुधन थयो अने नानो भाइ मरीने तारो मदन नामे पुत्र थयो. में वंचना कीधी तेथी मारी लक्ष्मी मदनने घेर आवी तथा वळी में पूर्व भवे दान आपीने पछी पश्चात्ताप कर्यो, तेथी मारी लक्ष्मी गइ अने ए मदनने जीवे घणा सुपात्रोने दान दीधां, देवराव्यां, तेथी एने घणी लक्ष्मी मळी.

ए वात सांभळी शेठने वैराग्य उपन्यो तेथी दीक्षा लीधी, ते वारे सर्व लक्ष्मीनो मालेक मदन थयो. श्रावकनो धर्म पाळी अंते देवलोके देवता थयो, अने सुधन ऋषि मोक्षसुख पाम्या ॥ इति सुधन मदन कथा ॥ १२ ॥

हवे चोवीशमी पृछानो उत्तर एक गाथाए करी कहे छे.

॥ गाथा ॥ जं जं नियमण इठं, तं तं साहूण देइ सद्धाए ॥ दिन्नेवि नाणु तप्पइ, तस्स थिरा होइ धण रिद्धि ॥४०॥ भावार्थः—जे जे आपणा मनने गमती एवी इष्ट वस्तु आपणी पासे होय, ते ते वस्तु साधुने श्रद्धाए करी एटले पोताना भावे करीने जे दीए, दइने तेनी अनुमोदना करे, पण पश्चात्ताप विषाद करे नहीं ते पुरुषने घणी ऋद्धि स्थिर थइने रहे. जेम शालिभद्र शेठने घेर ऋद्धि स्थिर थइने रही, बत्रीश कन्या परण्या, तेमने नित्य नवनवां वस्त्राभरण मलतां हतां ॥४०॥ तेनी कथा कहे छे.

मगध देशमां राजगृही नगरीनी ढूंकडुं शालिग्राम नामे गाम हतुं. तिहां धन्यानो पुत्र संगमो एवे नामे गोवालीयो लोकोनां वाछरां चारतो पेट भरे. एकदा पर्वने दिवसे मातानी साथे आक्रो मांडी तेणे खीर मागी, पण घरमां कांइ चीज न हती के जेनी खीर रांधी छोकराने खवरावे, तेथी रडवा बेठी. ते देखीने पाडोशणे खीर, खांड अने शालिधान्य आणी आप्युं, तेनी उत्तम खीर रांधी संगमाने भाणामां पीरसीने पोते बाहिर गइ. एवामां पाछलथी तिहां मासखमणने पारणे एक साधु आव्या, तेने संगमाए मोटा उल्लासथी भाव सहित हर्ष आणीने ते सर्व खीर वहोरावी दीधी,

ते पुण्यने योगे राजगृही नगरीमां गोजद्र शेठनी जद्रा नामे स्त्रीनी कूखे उपन्यो. शालिक्षेत्रनुं सुपनुं माताने आव्युं, माटे शालिजद्र एवुं नाम दीधुं. तरुणपणुं पाम्यो, ते वारे बत्रीश कन्या परणावी. गोजद्र शेठ दीक्षा लइ देवता थयो. पुत्र उपर घणो स्नेह हतो, तेथी बत्रीश वहूरो तथा शालिजद्र पुत्रने सारु देवलोकथी नवनवां आजरण वस्त्रादिक नित्य मोकले.

एक दिवस नेपाल देशना व्यापारी लक्ष मूल्यनां सोल रत्नकंबल वेचवा लाव्या, ते श्रेणिक राजाए न लीधां, पण जद्रा शेठाणीए सोले चीर वेचातां लइ तेने फाडीने बत्रीश टूकडा करी बत्रीश वहूरोने एकेको टूकडो वहेंची आप्यो. सांजे सर्व वहूरोए पग लूइने नाखी दीधा.

हवे श्रेणिक राजानी पट्टराणी चेलणाए एक रत्नकंबल लेवा माटे घणो आग्रह कर्यो. श्रेणिके व्यापारीने तेडाव्या, ते बोल्या, जद्रा शेठाणीने वेचातां दीधां. राजाए एक रत्नकंबल लेवा माटे जद्रा शेठाणी पासे माणस मोकल्युं, तेने जद्राए कह्युं के ए तो मारी वहूरोए पग लूइने नाखी दीधां बे. जूना टूकडा पड्या बे, ते जोइए तो लइ जाउ. ते वात सांजली आश्चर्य पामीने श्रेणिक राजा शालिजद्रने

जोवा माटे तेने घेर आव्यो, ते वारे भद्रा शेठाणी सातमी भूमिए बेठेला शालिभद्रने कहेवा गयां के हे वत्स! आपणे घेर श्रेणिक आव्या छे, माटे तमे नीचे चालो.

पुत्रे जाण्युं के श्रेणिक एवे नामे कोइ जातनुं करियाणुं हशे, माटे माताने कह्युं तमेज लइ वखारमां भरो. वली लाभ आवे वेची नाखजो. माताए कह्युं के ए करियाणुं नथी, ए तो आपणो राजा छे. ते वचन सांभली शालिभद्र चिंतववा लाग्यो जे हुं सेवक छुं, ए ठाकुर छे, माटे में पूर्ण पुण्य कर्यां नथी, एम विचारी नीचे आवी राजाने प्रणाम कर्यो. राजाए खोलामां बेसाडी चुंबी आपी. शालिभद्र राजानी पासे कुमलाइ गयो, तेथी खोलामांथी उठी सातमी भूमिकाए गयो. भद्राए राजाने भोजन कराववा माटे खमाव्यो. श्रेणिक स्नान करवा बेठो, न्हातां पोतानी मुद्रिका वाव्य मांहे पडी गइ. भद्राए वाव्यनुं पाणी बहार कढाव्युं, तेमांथी पार विनानां अनेक प्रकारनां झलहलतां आभूषण नीकल्यां दीठां, ते आभरण आगल पोतानी मुद्रिका तो दीवाला सरखी दीसवा लागी, ते जोइ चमत्कार पामी राजाए दासीने पूछ्युं के आ अमूल्य आभरण वाव्यमां क्यांथी आव्यां ? ते वारे दासीए कह्युं के अमारो स्वामी तथा तेनी बत्रीश स्त्रीओ नित्य प्रत्ये नवनवां आभरण पहेरे छे,

आगला दिवसनां पहेरेलां आज्ञरण उतारी वाव्यमां नाखी दीए ठे; माटे ए अमारा स्वामीनुं निर्माल्य ठे. श्रेणिक मोटो चमत्कार पामी दान पुण्यनां ए फल ठे, एवुं चिंतवी जोजन करी पोताना महेलमां आव्यो. पाठलथी शालिजद्रे वैराग्य पामी एवो मनमां निर्धार कस्यो के बत्रीश स्त्रीमांथी नित्य प्रत्ये एकेक ठांडवी.

हवे एज गाममां धन्नो शेठ रहे ठे. तेने शालिजद्रनी बहेन परणी ठे. ते धन्नाने स्नान करावे ठे, तेने रोती थकी देखीने धन्नाए पूछ्युं के केम रडे ठे ? तेणे कह्युं मारो जाइ नित्य एकेकी स्त्री परहरे ठे अने दीक्षा लेशे. तेने धन्नाए हसीने कह्युं के तारो जाइ एवो रांक कां थयो ठे ? बत्रीशे स्त्रीने एकज वारे केम त्यागतो नथी? ते वारे स्त्री बोली के वातो कहेवी तो सुलज ठे, पण करवी अति डुर्लज ठे. तमे केम मूकी शकता नथी ? धन्नाए कह्युं के मने एटलुंज वचन तारा मुखथी कहेवरावतुं हतुं. हवे तुं बोलीश नहीं. जा, में मारी आठे स्त्रीने हमणांज मूकी दीधी. ते सांजली स्त्री पगे लागी मनाववा लागी के महाराज ! में तो हसतां हसतां तमारी साथे वातो करी, माटे तमारे रोष न करवो. इत्यादि रीते घणो समजाव्यो, पण धन्ने कह्युं के मारा मुखमांथी वात नीकली ते फरे नहीं. एम कही तिहांथी उठीने पोताना

शाळा पासे गयो, तेने समजावी साथे तेडीने शालिभद्र तथा धन्नो ए वेहु जणे मली श्रीमहावीर पासे जइ दीक्षा लीधी. धन्नानी आठे स्त्रीए दीक्षा लीधी. दीक्षा-महोत्सव श्रेणिक राजाए कराव्यो. वेहु साधु छठ, अठम, दशम, दुवालस मासखमणादि तप करतां शरीरे अत्यंत दुर्बल थया. एकदा श्रीमहावीरनी साथे विहार करतां राजगृही नगरीए आव्या. पारणा माटे भगवाने कह्युं के आज तमारे माताने हाथे पारणुं थशे. ते भणी भद्राने घेर गया, पण शरीर दुर्बल थवाथी कोइए ओलख्या नहीं. पाछा वलतां मार्गमां पाछला भवनी माता महियारण मली. तेणे ऋषिने दीठाथी हर्षे करी तेना स्तनमांथी दूधधारा वहेवा लागी, पोतानी पासे महीनी माटली हती, तेनुं दान दीधुं. साधुए भगवान् पासे आवी पूछ्युं के अमोने माताने हाथे पारणुं न थयुं. भगवाने कह्युं के जेने हाथे पारणुं थयुं ते शालिभद्रनी पूर्व भवनी माता हती. पछी वेहु साधुए अनशन लीधुं. भद्राने खबर पडी, बहु पश्चात्ताप करती बत्रीश वहूओनी साथे तथा श्रेणिक राजा मली अनशनस्थानके आव्या, साधुओने वांदी कष्ट खमता देखी आश्चर्य पामी पाछा पोताने घेर आव्या. ते ऋषि सर्वार्थसिद्ध विमाने पहोंच्या. एकावतारी थइ मोक्ष पामशे, माटे जे भावथी सुपा-

ञने दान आपे, तेने लक्ष्मी स्थिर थाय, दिवसे दिवसे नवनवा ञोग पामे. ते उपर ए शालिञजडनी कथा कही ॥ श्रीमद्वीरं जिनाधीशं, गौरवर्णं गुणोत्तमम् ॥ तरुणं करुणाकारं, महिमाश्रितमाश्रये ॥ पदाद्याक्षरैः श्रीगौतमनाम ॥ २४ ॥

हवे पच्चीशमी बव्वीशमी पृछानो उत्तर दोढ गाथाए करी कहे छे.

॥ गाथा ॥ पसुपक्खि माणुसाणं, बालेवि हु जो विउेअए पावो ॥ सो अणवच्चो जायइ, अह जायइ तो विवज्जिज्जा ॥ ४१ ॥ जो होइ दयापरमो, वहुं पुत्तो गोयमा ञवे पुरिसो ॥ ञावार्थः—जे पापी पुरुष ढोर प्रमुख पशुनां बालको तथा हंस प्रमुख पक्षीउनां बालको तेमज मनुष्यनां (बालेवि के०) बालकोनो हु इति निश्चे (विउे- अए के०) विछोह करे एटले तेमनो मातपिताथी वियोग करे ते पुरुष (अणवच्चो के०) अनपत्यो एटले अपत्य जे छोरु तेणे करी रहित थाय. (अह के०) अथवा कदापि तेने छोरु थाय तोपण (विवज्जिज्जा के०) विवर्जिता एटले जीवे नहीं. जेम सिद्धिवास नगरे वर्द्धमान शेठनो दत्तो एवे नामे पुत्र हतो ते संतान विना अपार डुःखी थयो ॥ ४१ ॥ तथा जे पुरुष सर्व जीवदयापर होय एटले दयावंत होय, ते पुरुषने हे गौतम ! गुणवान्, ज्ञाह्या, विवेकी एवा घणा पुत्र थाय. जेम पूर्वोक्त वर्द्ध-

मान शेठनो मोटो पुत्र देसल हतो तेने घणा पुत्र थया ॥ ते देसल तथा दद्दानी कथा कहे छे.

सिद्धिवास नगरे वर्द्धमान नामे वणिक वसे छे, तेने देसल अने दद्दो ए नामे बे पुत्र थया. तेमां देसल महा दयावान् छे, अने दद्दानुं हृदय निर्दय छे. युवावस्थाए देसलने देवीनी अने दद्दाने देमती एवे नामे कन्याउं बापे परणावी. तेमां देसल धर्मकरणी पण करे, लक्ष्मी पण उपार्जे, अने सुख पण जोगवे. ए रीते त्रणे पुरुषार्थ साधे; अने दद्दो तो मात्र लक्ष्मी पेदा करवी अने सुख जोगववुं एटलुंज साधे, पण धर्म न करे. महा लोजी थको धर्मनी वात पण जाणे नहीं. अनुक्रमे देसलने गुणवंत पुत्रो थया, तेनी माता देवीनी पोताना पुत्रोनुं लालन पालन करे, खोले बेसाडे, मांहोमांहे वढता होय तो वारी राखे, एक घूघरे बाधे, उतावला बाहिरथी आवी पोतानी माताने मले, एक देखे, एकने मुखे माता चुंबी आपे. एवुं देखी दद्दो अने देमती पोताना हृदयमां चिंतातुर थयां थकां मांहोमांहे वातो करवा लाग्यां के आपणने पुत्र नथी, माटे आपणो ए संयोग, ए ऋद्धि, ए स्नेह अने ए जीवितव्य इत्यादि सर्व शा कामनुं छे? जे माटे कह्युं छे के ॥ श्लोक ॥ अपुत्रस्य गृहं शून्यं,

दिशः शून्या अबांधवाः ॥ मूर्खस्य हृदयं शून्यं, सर्वशून्यं दरिद्रता ॥ १ ॥ एम विचारी पछी घणां देव देहरांनी मानता करतां, छतां, एक दिवस सत्यवादी यक्षनुं आराधन कर्युं. दद्दो यक्षनी पूजा अने उपवास करी आगल बेठो, अने कह्युं के जे वारे पुत्र मने आपशो, ते वारे हुं उठीश. एम बेसतां तेने अगीयार उपवास थइ गया. ते वारे यक्षदेव प्रत्यक्ष थयो अने कहेवा लाग्यो के हे शेठ! तुं शामाटे कष्ट करे छे? कारणके देव, दानव, व्यंतर, यक्ष, गमे ते हो, परंतु कोइ पण उपार्जन करेला कर्मने दूर करी शके तेम नथी. हे शेठ! तें पूर्वे पुत्र पामवा संबंधी अंतराय कर्म बांध्युं छे, तेमां मारुं शुं चाले? एम यक्षे कह्युं तोपण शेठ तिहांथी उठ्यो नहीं. ते वारे यक्षे कह्युं के कदाचित जो हुं तने पुत्र आपुं, तोपण ते पुत्र जीवतो रहेशे नहीं. ते वारे पाछो तुं मने उलंभो आपीश; तोपण शेठे कह्युं के एक वार पुत्र थाय, एवुं करो. पछी जे थनार होय, ते थाओ. यक्ष पण ते वातनी हा कहीने पोताने स्थानके गयो.

शेठे घेर आवीने पोतानी स्त्री आगल वात कही. स्त्री तथा शेठे कांइक हर्ष कांइक विषाद पामतां थकां पारणुं कर्युं. अन्यदा गर्भाधान थयुं. पुत्र जन्म्यो. वधामणी आवी. तेने जीवाडवा माटे तुलाए करी तोल्यो, अने तेनुं नाम पण तोलो

पाड्युं. वळी, दशोट्टण प्रमुख करतां स्वजनोने जमण जूठण करावी दान मान दीधां. पछी यक्षने जेटवा माटे वली, फूल प्रमुख लइ बालकने तेडी यक्षने जवने गया. तिहां बारणां बंध करेलां हतां, ते कोइ रीते उघडे नहीं. घणा उपाय कस्या, पण कोइ रीते यक्षे दर्शन आप्यां नहीं. ते वारे सर्व पाछां घेर आव्यां. शेठ बोल्या के यक्षे कह्युं हतुं जे छोकरो जीवशे नहीं, ते रखे तेमज थइ जाय? एम विचार करतां ते दिवस तो गयो, पण रात्रिए अणचिंत्यो एकाकी बालक आजारी पक्षीने जेम वायराथी दीवो उलवाइ जाय, तेम देखतां देखतां बालक देवशरण थइ गयो. ते जोइ दशो शेठ अने देमती शेठाणी मूर्छा पामी भूमिए पड्यां. थोडी वारे सचेत थया पछी घणुं रुदन तथा आक्रंद करतां, पडतां, आखडतां थयां; परंतु हाथमांथी गयेलो पुत्र पाछो आव्यो नहीं.

पछी मोटा भाइ देसले कह्युं के तमे स्नान भोजन करो. मारा छोकरां छे, ते तमारांज जाणजो; माटे हवे तमे शोक मूको. एवामां आकाशमार्गे चार ज्ञानना धणी चारणऋषि चाल्या जता हता, ते तेनुं रुदन सांभळीने त्यां आव्या, तेमने सर्व जनोए उठीने वंदना करी. ऋषिए धर्मलाभ दीधो. पछी धर्मोपदेश आपीने वली कहेता

हवा के हे शेठ! तमे शोक म करो; कारणके जे जीवे जेवुं कर्म उपार्ज्जन कर्युं होय, तेवुं फल ते जीवने मले. आपणे कोदरा वाव्या होय तो तेने बदले शाल क्यांथी मले? लींबोली वावीने रायणनी आशा राखीए ते क्यांथी मले?

शेठे पूछ्युं के महाराज! मारा बेहु पुत्रे पूर्वे कया कया प्रकारनां कर्म कर्यां छे? जेने योगे एकने संतान घणां छे अने बीजाने संतानज नथी. ते वारे मुनि कहेता हवा के हे शेठ! एज नगरीमां आ भवथी पाछले त्रीजे भवे विल्हण अने तिल्हण ए बे नामे बे कुलपुत्र रहेता हता, तेमां मोटो भाइ तो मोटो धर्मात्मा अने दयावंत हतो, अने नानो भाइ तो नित्य वनमां जइने मृगली अने तेनां बालकनो वियोग करतो. हंस, सूडा, मोर आदिक पक्षीउने तेमनां बालकथी छूटां पाडी पकडीने पांजरामां नाखी वेचे. तेमज माणसनां बालकोने एक गाममांथी लइ बीजे गामे जइ वेचे. ए रीते धनने लोभे पाप करे, तेने घणा सज्जनोए वार्यो, तोपण ते दुष्ट कर्मथी वल्यो नहीं. दुर्व्यसन मूक्युं नहीं. जेनो जेवो स्वभाव होय, ते कोइ पण वखत पोताना स्वभावने मूके नहीं.

एकदा कोइ क्षत्रियना बालकने वेचवा माटे चोरीथी उपाड्यो. तेना मावतरे

दीठो, तरत पकडी बांधीने सारी पेठे मार मास्यो, छेदन नेदन कस्यो, तेनी वेद-
नाथी रौद्र ध्याने मरण पामी पहेली नरके गयो. मोटो नाइ विल्हण पोताना नाइनुं
मृत्यु सांनली वैराग्य पामी अनशन व्रत लइ समाधिमरणे सौधर्मदेवलोके देवता
थयो. तिहांथी चवीने तारो देसल नामे मोटो पुत्र थयो छे. एणे पूर्वेला नवे नूख्या
तरस्या उपर दया कीधी छे, तेथी एने गुणवंत पुत्र घणा थया छे, अने तिल्हणनो
जीव नरकथी नीकलीने तारो दद्दो नामे नानो पुत्र थयो छे. एणे पूर्वेले नवे मनुष्य
अने तिर्यंचनां बालको विछोह्यां हतां, ते माटे एने छोकरां थतां नथी. एवां गुरुनां
वचन सांनली बेहु नाइने जातिस्मरणज्ञान उपन्युं, तेथी पूर्वेला नव दीठामां आव्या,
ते वारे वैराग्य पामी समकित मूल बार व्रत लीधां. चारणमुनि आकाशमार्गे चालता
थया. घणा काल श्रावकधर्म पाली पछी बेहु नाइए दीक्षा लीधी. समाधिमरणे देव-
लोके देवतापणे उपन्या ॥ दोहा ॥ जीवदया जिनवर कही, जे पाले नर नार ॥ पुत्र
होवे शूरा सबल, तेहने रंग मझार ॥ इति देसल अने दद्दानी कथा ॥ २५ ॥ २६ ॥

॥ हवे सत्यावीशमी अठावीशमी पृछानो उत्तर दोढ गाथाए करी कहे छे ॥

गाथा ॥ असुयं जो नणइ सुयं, सो बहिरो होइ परजम्मे ॥ ४२ ॥ अदिठ्ठंविय

दिठ्ठं, जो किर जासिव कइ विमूढप्पा ॥ सो जच्चंधो जायइ, गोयम नियकम्मदोसेण ॥ ४३ ॥ जावार्थ—जे पुरुष अश्रुतं एटले अणसांजळ्याने सांजळ्युं कहे, एटले ते वात क्यांहीथी सांजळी पण न होय, तथापि जे एम कहे के आ वात में सांजळी छे, वळी पारका दोषने प्रकाशे, ते जीव निश्चे जवांतरे बहेरो थाय. एटले काने सांजळे नहीं ॥ ४२ ॥

तथा जे पुरुष अणदीठी वस्तुने दीठी कहे. एवी रीते जे मूढात्मा पुरुष धर्मने उवेखतो थको जाषण करे, ते जीव हे गौतम ! मरीने पोताना कर्मने दोषे करी जवांतरे जात्यंध थाय ॥ ४३ ॥ जेम महेंद्रपुरना रहेवासी गुणदेव शेठनो पुत्र वीरम हतो ते पूर्वकृत पापना उदयथी जन्म पर्यंत बहेरो जात्यंध त्रींद्रिय जेवो थयो, एटले कान अने आंख विना शेष त्रण इंद्रियवालोज जाणे होय नहीं ? एवो थयो. इहां ए वीरमनी कथा कहे छेः—

माहेंद्रपुर नगरे गुणदेव नामे शेठ वसे छे, तेने गावत्री नामे स्त्री छे. तेने घणे दिवसे पुत्र थयो, ते पण कर्मने योगे जन्मांध अने बहेरो थयो, तेथी वधामणी आपवी तो दूर रही, परंतु ते छोकरानुं नाम पण पाड्युं नहीं. आंधलो अने बहेरो एवे नामे प्रसिद्ध थयो. तेनी बाल्यावस्था वीती अने यौवनवय प्राप्त थयुं ते वारे तेना

मावित्रे मोहना वश थकी जेटला जेटला मंत्र प्रमुख तंत्र जे कांइ हता, ते सर्व कस्या. कोइ बाकी राख्युं नहीं. तेमज निमित्तिया,ज्ञानी, जोशी, चूडामणीयादिक सर्व कोइ सिद्ध पुरुषोने पूछ्युं, मंडल मंडाव्यां, दीपावतार, अंगुष्ठावतार, पात्रावतार जोयां. तथा ग्रहपूजा, शांतिकर्म कराव्यां, पादरदेवतानी मानता करी, इष्टा करी, यक्ष सेव्या, सुणवइविद्यावंतजाण जोगीयाने पूछ्या, पुत्रना मोहथी एवुं कोइ देवस्थान शेष रह्युं नहीं के जे स्थान एना माविशे पूज्या पूज्या विना मूकी दीधुं होय; पण ते सर्व प्रयास जेम ऊखर भूमिए वावेलुं बीज निष्फल थाय, तेम निष्फल थयो. वली वैद्यनां औषध पण कस्यां, तथापि ते छोकरो कोइ रीते साजो थयो नहीं. आंखे कांइ देखे नहीं अने काने कांइ सांभले नहीं, तेथी भोजन पान करावबुं पडे, ते पण शान करीने करावे. माविशे विचाखुं जे अमे पूर्वला भवे शुं जाणीए केवुं पाप कखुं हशे के जे थकी आ पुत्ररूपे पण सदेव शल्यज थयुं ? एवा पुत्र विना सखुं. आवा पुत्र करतां पुत्र न होय तेज सारुं, अने ए पुत्र जीव्या पाखे मूवोज रुडो. एवा विचार कस्याज करे.

एकदा ज्ञानी गुरु वनमां पधास्या, तेमने सर्व लोक वांदवा गया. वांदीने बेठा, ते वारे

ज्ञानबले जाणीने गुरु बोल्या के हे गुणदेव शेठ ! तमे तमारा अंधा बहेरा छोकरानुं घणुं दुःख करो छो, ते करशो नहीं. जे माटे करेलां कर्म इंद्रथी पण दूर थइ शके तेम नथी. पोतपोतानुं करेलुं पुण्य पाप सहु कोइ जोगवे छे, एवी गुरुनी वाणी सांजलीने सर्व कोइ कहेता हवा के जुओ, आ मुनिमहाराजनुं केवुं ज्ञान छे? केवुं परहितचिंतन छे? केवुं जाणपणुं छे? इत्यादि प्रशंसा करवा लाग्या.

पछी शेठे पूछ्युं हे महाराज ! कया पापकर्मना उदयथी मारा पुत्रने अंधपणुं तथा बधिरपणुं प्राप्त थयुं छे? ते वारे ज्ञानी गुरु बोल्या के एहीज नगरमां वीरम नामे कणबी रहेतो हतो, ते महा अधर्मी, जूठाबोलो, अन्यायी, परना दोष सांजलनार, परदोष प्रकाशक, परनिंदा करनार अने कूडां कलंक चढावनार इत्यादिक दुष्ट कर्म करतो हतो.

एकदा गामना राजा साथे कोइ सीमाडीया राजाने वैर थयुं, तेनो जय राजा राखे छे. एटलामां बे पुरुष मांहोमांहे छानी वात करता देखीने वीरमे कोटवालने जइ कह्युं के अमुक बे जण सीमाडीया राजाने तेडाववानी वातो करता हता. ते वात सांजली कोटवाले ते बेहु जणने पकडीने राजा आगल उजा राख्या. राजाना पूछ-

वाणी ते कहेवा लाग्या के महाराज ! अमे अमारा घर संबंधी कामकाजनी वातो करता हता, अमे सम खाइने कहीए छीए, के कोइ दिवसे स्वप्नमां पण अमे अमारा ठाकोरनुं मातुं चिंतव्युं नथी. एवी तेमनी वात सांजली राजाए वीरमने तेडावी पूछ्युं, ते वारे धूर्त्त, पापी, दुष्ट चित्तवालो वीरम बोल्यो के महाराज ! ए साचेसाची वात छे. में मारे काने सांजली छे. राजाए पण तेनुं कहेण मानीने ते बेहु जणने दंडनी शिक्षा करी.

वली एक वार वीरमनो पाडोशी ग्रामांतरे गयो. ते पाछो घेर आवतो हतो तेने मार्गमां वीरम मल्यो तेने पाडोशीए पोताना घर संबंधी सुखसमाधिनी खबर पूछी, ते वारे दुष्ट वीरमे कह्युं के कामदेव नामे वाणीयो तमारे घेर सदैव आवे छे, ते तमारी स्त्री साथे बहु स्नेह राखे छे, रमे छे, ते वात सांजली शेठे कामदेव उपर कोप करी राजानी आगल वात करी, राजाए कामदेवने पकडी तेनुं सर्वस्व लूंटी लइ दंड्यो.

वीरम एवां पाप करतो जूठुं बोलतो, परनिंदा करतो, लोकोने कूडां कलंक चढावतो हतो. एक दिवसे कोइक क्षत्रीए तेने सारी पेठे मार आप्यो, तेनी पीडाथी घणा दिवस दुःख जोगवी मरण पामीने तारे घेर पुत्रपणे उपन्यो छे. ए अणसांजल्या अणदीठा जनापवाद बोल्यो छे, तेथी जन्मांध अने बधिर थयो छे, ए जीव घणो संसार रझ-

लशे. एवी गुरुना मुखथी वात सांजलीने मावित्र धर्म करवामां प्रवर्त्त थयां. आंधलो दुःख सहन करतो मरण पामीने दुर्गतिए पहोंच्यो ॥ दोहो ॥ असमंजस बोले घणुं, परने दीये कलंक ॥ ते मूरख किम बूटशे, पापी हुआ निःशंक ॥ १ ॥ इति वीरम कथा ॥

॥ हवे उंगणत्रीशमी पृछानो उत्तर एक गाथाए करी कहे छे ॥

॥ गाथा ॥ उच्छिठ मसुंदरयं, जत्तं तह पाणियं च जो देइ ॥ साहूण जाणमाणो, जुत्तंपि न जिज्जए तस्स ॥ ४४ ॥ जावार्थः—जे पुरुष उच्छिष्ट, उखराफां, गंध्यां, विटाल्यां, एवां एवां विरुवां जे पोताने कोइ पण काममां न आवे एवां जात पाणी जाणतो उतो साधु महात्माने दीए, ते पुरुषने जमेलुं खाधेलुं अन्न जरे नहीं, अपचानो रोग थाय ॥ ४४ ॥ जेम श्रीवासुपूज्यस्वामीनो पुत्र जे मघवा तेनी पुत्रिका रोहिणी हती ते पूर्वले जवे डुगधा एवे नामे प्रसिद्धि पामी, कुष्टादिक रोगे पीमाणी. जे माटे एणे घणा जव पहेलां जाणी बूझीनें साधुने कडवुं तुंबडुं वहोराव्युं हतुं. तेनी कथा कहे छेः—

॥ श्लोक ॥ श्रीवासुपूज्यमानम्य, तथा पुण्यप्रकाशकम् ॥ रोहिण्याश्च कथायुक्तं, रोहिणीव्रतमुच्यते ॥ १ ॥ चंपा नगरीए श्रीवासुपूज्यस्वामीनो पुत्र मघवा नामे राजा राज्य करे छे. तेनें लखमणा नामे राणी सदाचार अने सुशीलवाली छे. तेने आठ

पुत्र थया. उपर एक रोहिणी नामे पुत्री थइ. मातापिताने अत्यंत वल्लभ छे, माटे जन्मी ते वारे राजाए वधामणां, दान, मान दीधां. मोटी थइ. चोसठ कला शीखी. रूप लावण्य सौभाग्य गुणवंती थइ. तेने यौवनावस्थाए पहोंचेली जोइने राजाए चिंतव्युं जे एने योग्य वर मले तो सारुं, माटे स्वयंवरमंडप मंडावीए. ए मनगमतो वर वरे, तो पछी पश्चात्ताप न थाय. एम विचारी स्वयंवरमंडप रचाव्यो. कुरु, कौशल, लाट, कर्णाट, गौड, वैराट, मेदपाट, नागपुर, गौड, चौड, द्राविड, मगध, मालव, सिंधु, नेपाल, डाहल, कोंकण, सौराष्ट्र, गुर्जर, जालंधर आदिक चारे दिशिउना राजकुमारो तेडाव्या. सर्व राजा स्वयंवरे आवी बेठा. एवामां रोहिणी राणी पण स्नान विलेपन करी, क्षीरोदक श्वेत वस्त्र पहेरी हीरा मोती माणकनां आभरणे अलंकृत थकी जाणे देवलोकथी उतरीनेज आवी होय नहीं? एवी अप्सरा सरखी शोभती पालखीए बेठी, सखीउना वृंदे परवरी थकी तिहां आवी. तिहां प्रतिहारी दासीए राजकुमरोनां नाम, गोत्र, गुण, बल, देश, गाम, सीम जूदां जूदां वर्णन करी कही देखाड्यां, समजाव्यां. एम करतां नागपुरनो वीतशोक राजानो अशोक नामे कुमर तेने कंठमां वरमाला पहेरावी. योग्य वर वरवाथी सहुको हर्ष

पाम्यां. पिताए विवाह कर्यो. बीजा सर्व राजाने हाथी, घोडा, वस्त्र, भोजन, तंबोल आपी सर्वने सन्मान्या. सहु पोतपोताने स्थानके गया.

तथा अशोककुमरने पण सुवर्ण मोतीनां आभरण प्रमुखनां दान, मान दइ रोहिणी सहित नागपुरे पहोंचाड्यो. तिहां वीतशोक राजाए पण नगरमां प्रवेश करवानो शुभ दिवसे महोत्सव कीधो.

केटलाएक दिवस पछी अशोककुमरने राज्यपाटे थापी वीतशोक राजाए दीक्षा लीधी. हवे अशोक राजाने राज्य संपदा तथा राणी साथे सुख भोगवतां गजेंद्र सरिखा आठ पुत्र थया, अने वली चार पुत्री थइ.

एकदा राजा राणी बेहु सातमी भूमिए गोखे लोकपाल पुत्र खोलामां लेइ बेठा छे. एवामां कोइ एक स्त्री हैयुं पीटती, विलाप करती, रोती, पुत्रना गुण बोलती देवने ठलंभो देती जाय छे. तेने देखी रोहिणीए राजाने पूछ्युं के स्वामी? ए केवा प्रकारनुं नाटक करे छे? राजाए कह्युं हे राणी! तुं धन, यौवन, राज्य, मंदिर, भरतार, प्रासाद अने पुत्रे पूरण थकी अहंकार म कर. यद्वा तद्वा म बोल. राणी बोली, स्वामी! रीस म करो. मने अहंकार कांइ नथी. में तो मात्र एवुं नाटक क्यारे पण

दीठुं न हतुं, तेथी तमोने पूछ्युं छे. राजाए कह्युं ए कांइ नाटक नथी, पण एनो पुत्र मरण पाम्यो, तेथी ए रुदन करे छे. राणीए कह्युं ए रुदन करवानी कला क्यांथी शीखी हशे? राजाए कह्युं जो तुजने पण हुं रुदन करवुं शीखावुं छुं. एम कही राणीना खोलामांथी बालकने लइ बेहु हाथे करी गोख बाहेर हींडोलता हाथ थकी नीचे नाखी दीधो. ते जोइ सर्व लोक कोलाहल करवा लाग्या, परंतु रोहिणीना मनमां कांइ पण दुःख थयुं नहीं. पुत्रने पडतां थकां नगरदेवताए पकडीने सिंहासन ऊपर बेसाड्यो. ते देखी सर्व लोक हर्षवंत थया अने राजा कहेवा लाग्यो के हे रोहिणि! तुं धन्य कृतपुण्य छो. जेथी तुं दुःखनी वात पण जाणती नथी.

एकदा श्रीवासुपूज्यस्वामीना शिष्य सुवर्णकुंभ अने रूपकुंभ एवे नामे बे साधु चार ज्ञानना धणी, छठ्ठ अठम तप करता तिहां आव्या. राजा राणी पुत्र प्रमुख सर्व परिवार वांदवा गया. गुरुए धर्मलाभ दइ धर्मदेशना दीधी. पछी राजाए पूछ्युं, हे भगवन्! मारी रोहिणी राणीए शुं तप कर्युं छे? के जेणे करी ए दुःखनी वात पण जाणती नथी. तथा वली मारो पण एनी ऊपर घणो स्नेह छे तेनुं शुं कारण छे? तेमज एने पुत्र पण घणा गुणवंत थया छे, तेनो हेतु शुं छे? ते कहो.

गुरु कहेता हवा, हे राजन्! एज नगरे धनमित्र शेठनी धनमित्रा स्त्री हती, तेने कुरूपिणी दुर्भागिणी एवी दुर्गंधा नामे पुत्री थइ. ते जे वारे यौवनावस्था पामी ते वारे पिताए तेनो विवाह करवा माटे एक कोटि द्रव्य आपवा ठराव कर्यो, तथापि कोइ रांक जेवाए पण परणवाने मन कर्युं नहीं. एवामां एक श्रीषेण नामे चोरने मारवा माटे लइ जतां शेठे तेने मरतो मूकावी घेर राखी पुत्री परणावी दीधी. ते पण दुर्गंधाना शरीरनी दुर्गंध सहन न थवाथी रात्रिए नाशी गयो. ते वारे शेठ विषवाद करतो कहेवा लाग्यो के कर्मना दोष आगल कोइनुं चाले नहीं. पुत्रीने कह्युं तुं घर रही थकी दान पुण्य कर. ते पुत्री दान धर्म करवा वांछे, पण तेना हाथनुं दान पण कोइ लीए नहीं.

एकदा ज्ञानी मुनिने दुर्गंधा संबंधी वात पूछवाथी तेमणे कह्युं के गिरनार पर्वत पासे गिरिनगरीए पृथ्वीपाल राजा छे तेनी सिद्धिमती राणी छे. कोइ अवसरे राजा राणी बेहु वनमां क्रीडा करवा गयां. एवामां कोइक गुणसागर मुनि मासखमणनुं पारणुं करवा माटे नगरमां जता हता. तेने देखी राजाए तेमने वांदी नमस्कार करी पछी राणीने पराणे पाछी वालीने कह्युं के ए जंगमतीर्थ छे, एने फासु आहार पाणी

देजो; पण राणीए विचार्युं जे आ मूंडाए आवीने मारी क्रीडामां अंतराय पाड्यो, तेथी क्रोधित थकी एक करुवुं तुंबडुं साधुने वहोराव्युं. साधुए विचार्युं जे आ आहार जिहां परठवाय, तिहां अनेक जीव मरे; ए माटे पोतेज आहार कर्यो एटले कडवा तुंबडाना विषप्रयोगे शुभ ध्याने मरण पामी देवता थयो.

पाछलथी राजाने ते वातनी खबर पडी. राजाए राणीने घरथी बाहेर काढी मूकी. राणीने जंगलमां रखडतां सातमे दिवसे कोढ रोग नीकल्यो. तेने दुःखे पीडाती मरीने छठे नरके गइ. तिहांथी मरी तिर्यंचमां उपनी, वली नरकमां गइ. एम साते नरकमां क्रमे क्रमे दुःख भोगवीने सापणी, उंटणी, कूकडी, सीयालणी, सूयरी, घिरोली, उंदरी, जलो, कागडी, चंडालिणी, रासभी प्रमुखना अवतार पामी. एकदा गायना अवतारमां मरती वेलाए नवकार सांभली शेठने घेर दुर्गंधा पुत्रीपणे उपनी. तिहां निकाचित कर्म थाकतां स्वल्प रह्यां, तेथी ज्ञानीनी देशना सांभली जातिस्मरणज्ञान उपन्युं, पूर्वला भव दीठा. ते वारे दुर्गंधाए हाथ जोडी पूछ्युं के महाराज ! ए दुःखनो निस्तार थाय तेवो उपाय कहो. गुरुए कह्युं के आर्तिनुं भांजणहार एवुं रोहिणी तप करो. ते तपनो विधि हुं कहुं छुं ते सांभलो. सात वर्ष ने सात मास पर्यंत रोहिणी नक्षत्रना दिवसे

उपवास करवो. श्रीवासुपूज्यजीनी पूजा करवी, तप तपतां शुज ध्यान ध्यावुं, तेना प्रजावथी रूडुं थशे. आवता जवे अशोक राजानी राणी थइश. तिहां सुख जोगवी श्रीवासुपूज्यने तीर्थे मोक्ष पामीश. वली तप पूर्ण थये उजमणुं करीए, श्रीजिन प्रासाद करावबा, श्रीवासुपूज्यजीनी रत्नमय प्रतिमा कराववी. तेने सोना मोतीनां आजरण करावी चढाववां. तथा स्नान विलेपन कुंकुम कपूर सुगंध द्रव्ये पूजा करवी. श्रीसंघनी जक्ति करवी, अमारी प्रवर्त्तावी, दीन जनोने दुःखथी मूकाववा, स्वामीवात्सल्य, संघपूजा करवी, सिद्धांत लखाववां, ए तप करवाथी सुगंध राजानी पेठे सर्व दुःख टली जशे, ते वारे दुर्गंधाए पूछ्युं के सुगंध राजा ते कोण थयो छे ? तेनुं वृत्तांत कहो.

गुरुए कह्युंः—सिंहपुर नगरमां सिंहसेन राजा राज्य करे छे तेनी कनकप्रजा राणी छे, तेमने एक पुत्र थयो ते अतिशय दुर्गंध हतो, तेथी ते सर्वने अप्रिय थयो. एक वखते ते नगरीमां पद्मप्रजस्वामी समोसर्या. त्यां कुटुंब परिवार सहित जइ राजाए कर अंजलि बांधी वांदीने पूछ्युं, हे जगवन् ! मारो पुत्र दुर्गंध थयो, तेनुं कारण शुं हशे ? एणे पूर्वला जवमां शुं कर्म कर्युं हशे ? त्यारे जगवान् कहेवा लाग्या. नागपुरथी बार योजन छेटे नील पर्वते एक शिलानी उपर मासोपवासी साधु धर्मध्यान करता हता. तिहां

ते साधुना प्रभावथी आहेडीने शिकार मळे नहीं, तेथी आहेडीए साधुनी उपर रोष करीने तेने उपद्रव करवा माटे ज्यारे मासखमण पूर्ण थयुं त्यारे साधु गाममां एषणार्थे गया. पाछळथी व्याधे आवी, ते शिलानी नीचे काष्ठ नाखीने अग्नि सळगाव्यो. साधु पण गोचरी करी फरी त्यां शिला उपर आवी बेठा. तेमने नीचेथी ताप आववा लाग्यो. ते जेम जेम ताप थाय, तेम तेम शुभ ध्यान आणे. एम उष्ण परिसह सहन करी केवलज्ञान पामी मोक्षे गया. ते व्याध दुष्ट कर्मथी कुष्ठी थयो. मरीने सातमी नरके गयो. पछी सर्प थइने पांचमे नरके गयो. पछी सिंह थइने चोथे नरके गयो. पछी चित्रक थइने त्रीजे नरके गयो. पछी मार्जार थइने बीजे नरके गयो. पछी उलूक थइने पहेले नरके गयो. एवा भव भमीने एकदा दारिद्री गोवाळीयो थयो. पशुपालनो धंधो करतो नाघोरी श्रावक पासेथी नवकार शीख्यो. एक वखते वनमां सूतो हतो, एवामां दावाग्नि बळतो एना उपर आवी पड्यो. तेथी बळी मरण पाम्यो. तिहां नवकार समर्यो तेने प्रभावे तारो पुत्र थयो. थाकता कर्मना दोषथी दुर्गंधी शरीर थयुं छे. एवा पूर्व भव सांभळतांज ते दुर्गंध कुमरने जातिस्मरणज्ञान उपन्युं. दुःख संभारी भय पाम्यो. ते वारे भगवंतने पगे लागीने पूछवा लाग्यो के हुं ए दोषथी केम छूटीश?

तेनो उपाय कहो. त्यारे जिनेश्वरे कह्युं, रोहिणीनुं तप कर. तेथी सर्व निराबाध थशे. पछी ते राजपुत्रे रोहिणीनुं तप कर्युं. तेथी तेनुं शरीर सुगंधमय थयुं. माटे हे दुर्गंधा ! तुं पण ए तप कर. एना प्रजावथी सुगंध कुमारनी पेरे तारां सर्व दुःख नाश पामशे. एवुं सांजलीने ते दुर्गंधाए रोहिणी तप अंगीकार कर्युं. विधिपूर्वक शुज्ज ध्यानथी तपस्या करतां आत्मानी निंदा करतां दुर्गंधाने जातिस्मरणज्ञान उपन्युं. तेना योगे पूर्वलो जव सांजरी आव्यो, तेथी वली विशेषे तप करवा माड्युं. आयु पूर्ण थयाथी शुज्ज ध्याने मरण पामीने देवलोकने विषे देवतापणे उपनी. त्यांथी चवीने अहीं चंपा नगरीने विषे मघवा राजानी पुत्री थइ. तेनुं रोहिणी नाम पड्युं. तेने तमे परण्या बो. एणे घणुं दान आप्युं बे, तेथी तमारी पट्टराणी थइ बे. एणे पूर्वे रोहिणी तप कर्युं बे. तेना प्रजावथी दुःख ते वली शी चीज बे ? एवुं पण ए जाणती नथी. वली उजमणुं कर्युं तेना प्रजावथी ए ऋद्धि पामी बे. वली हे राजा ! ते सिंहसेन राजाए पोताना सुगंध कुमरने राज्यपाटे थापी पोते दीक्षा लीधी. सुगंध राजा राज्य पालतो धर्मकृत्य करतो जैनधर्म पालतो मरण पामी देवलोके गयो. तिहांथी चवीने पुष्कलावती विजये पुंडरगिणी नगरीमां विमलकीर्त्ति राजाने घेर अर्ककीर्त्ति नामे

राजा चक्रवर्त्तीपणे उपन्यो. त्यां राज्य पाली जितशत्रु साधु पासेथी दीक्षा लइ बारमे देवलोके अच्युतेंद्र थयो. त्यांथी चवीने अहीं तुं अशोक नामे राजा थयो छो. तारी राणीए अने तें बेहु जणे मली पूर्वे एकमना थइने एज रोहिणी तप एक सरखुं कर्युं छे, ते माटे तारो स्नेह एनी उपर घणो छे. वली राजाए पूछ्युं के हे स्वामी ! मारी स्त्रीने आठ पुत्र अने चार पुत्रीउं थइ. ते तेमना कया पुण्योदयथी थइ? ते वारे गुरु बोल्या के, हे महाभाग्य ! एमांथी सात पुत्र तो पूर्वला भवे मथुरानगरीए एक अग्निशर्मा ब्राह्मण भिखारी रहेतो हतो, तेने घेर साते पुत्रपणे उपन्या हता. ते दरिद्री कुलमां उपन्या तेथी साते भिख मागवा जाय, पण तेने कोइ उंटले बेसवा आपे नहीं. ज्यां जाय त्यां धक्को मारी बाहेर काढी मूके. एम ते पुत्र गामोगाम फरतां भिख मागता मागता एकदा पाडलीपुरे गया. तिहां तेणे एक वाडीमां राजाना पुत्र तथा प्रधानना पुत्रने घणां हीरा मोतीनां अमुल्य आभरण पहेरीने खेलता थका दीठा. तेथी मनमां आश्चर्य पाम्या. ते वारे मोटा भाइए कह्युं के जूउं, विधाताए केवो अंतर कर्यो छे ? जे माटे ए वांछित सुख भोगवे छे अने आपणे भिक्षा मागता घर घर भटकीए छीए. ते सांभली नानो भाइ बोल्यो के, ए उंलंभो आपणे केने आपीए?

जो एणे पूर्वे पुण्य कर्यां छे, तो तेनां फल ए भोगवे छे, अने आपणे पुण्यहीन छीए, तो घर घर भिख मागता फरीए छीए. त्यांथी फरतां फरतां वनमां गया. तिहां एक साधु मुनिराज काउस्सग्ग ध्याने रह्या हता. तेमनी पासे जइ उभा. साधुए पण काउस्सग्ग पारी दया आणीने तेमने धर्मदेशना दीधी, ते सांभली साते भाइ वैराग पामी, दीक्षा लइ, चारित्र पाली, देवलोके गया. तिहांथी चवीने अहीं तारे घेर आवी पुत्रपणे उपन्या छे. तथा आठमो पुत्र तो वैताढ्य पर्वत उपर एक भद्रक नामे विद्याधर हतो ते नंदीश्वर द्वीपे शाश्वत जिनप्रतिमानी पूजा करतो, यात्रा करतो, धर्म सेवतो विचरतो हतो, ते मरण पामी सौधर्म देवलोके देव थयो. त्यांथी चवी तारो लोकपाल नामे आठमो पुत्र थयो छे. जेने खोलामांथी पडतां देवताए सान्निध्य कर्युं, अने जे तारी चार पुत्रीओ छे, ते पूर्वले भवे वैताढ्य पर्वते विद्याधर राजानी पुत्रीओ हती. अनुक्रमे यौवनावस्था पामी. एकदा प्रस्तावे बागमां रमवा गइ, तिहां साधुने उभेला दीठा. साधुए तेमने कह्युं, हे कुमरीओ ! तमे धर्म करो, त्यारे तेमणे कह्युं, अमाराथी धर्मकरणी न थाय. वली साधुए कह्युं, तमारुं आयुष्य स्वल्प रह्युं छे, माटे धर्मकरणीमां प्रमाद करशो नहीं. ते सांभली ते पुत्रीओए पूछ्युं के, अमारुं आयु

केटलुं बाकी रह्युं छे ? साधुए कह्युं, आठ पहोर शेष रह्युं छे. पुत्रीउं कहेवा लागी, आटला स्वल्प कालमां शुं पुण्य करीए ? मुनिए कह्युं आजेज अजुवाली पांचम छे माटे ज्ञानपांचमनुं तप करो. एटला तपथीज सुखी थशो. जे माटे कह्युं छे केः—जे नाणपंचमिवयं, उत्तमजीवा कुणंति भावजुया ॥ उवभुंज अणुवमसुहं, पावंति केवलं नाणं ॥ एवो उपदेश सांभली ते पुत्रीउंए घेर आवी मावतर आगल वात करी, आज्ञा लइ, गुरुना दर्शनथी आजनो दिवस सफल मानी, देवपूजा करी, पुण्यनी अनुमोदना करी पच्चक्खाण लीधुं. पोताना आत्माने कृतार्थ मान्यो. एक स्थानके चारे जणीउं बेठी. एटलामां विद्युत्पात थयो, तेथी चारे पुत्रीउं मरण पामी देवता थइ. तिहांथी चवीने तारी पुत्रीउं थइ छे. मात्र एकज दिवस ज्ञानपंचमी तप करवानुं ए फल थयुं. ए वात सांभलतांज राजा तथा राणी अने पुत्र पुत्रीउं सर्वने जातिस्मरणज्ञान उपन्युं. पूर्वला भव सांभर्या, तेथी वैराग्य पाम्यां थकां श्रावकधर्म अंगीकार करी पोताने घेर आव्यां. वली एकदा श्रीवासुपूज्य भगवान् आवी समोसर्या. तेमने राजा तथा रोहिणी राणी प्रमुख परिवार सहित वांदवा गया. तिहां प्रभुनी देशना सांभली घेर आवी पुत्रने राज्यपाटे थापी, सात क्षेत्रे धन वावरी, चारित्र अंगीकार करी, बेहु जण मोक्षे गयां ॥ उक्तं

च ॥ रोहिणी पंचमी तप तणां, गिरुवां ए फल जाण ॥ दुःख न होय सुख होय सदा, बोले केवली वाण ॥ १ ॥ इति रोहिणी अशोककथा ॥ श्लोक ॥ श्रीमद्वरवीरपदौ, श्रीजिनमतगजनैः सदा वंद्यौ ॥ श्रीपतिनिकराराध्यौ, श्रीदौ प्रणमामि चंगगती ॥ १ ॥ स्वस्तिकः श्री वीतरागः नाम गुप्तम् ॥

॥ हवे त्रीशमी पृछानो उत्तर एक गाथाए करी कहे छे ॥

॥ गाथा ॥ महुघाय अग्गिदाहं, अंकं वा जो करेइ पाणीणं ॥ बालारामविणासी, सो कुठी जायए पुरिसो ॥ ४५ ॥ भावार्थः—(जो के०) जे पुरुष (महुघाय के०) मध पाडे, मधपुडा पाडे, महुयालनो आरंभ करे, तथा अग्निदाह एटले दावानल दीए वा एटले तथा (पाणीणं के०) प्राणीउने आंके लांछन करे, ढोरने डाम दीए. तथा (बालारामविणासी के०) सूक्ष्म वनस्पतिकायनो विनाश करे, कुमली वनस्पतिने छेदे, भेदे, त्रोडे, मोडे, खूंटे, चूंटे (सो के०) ते पुरुष भवांतरे कोढीउ थाय. जेम गोविंद पुत्र गोसलीउ मध वगेरे पाडवानां पाप करीने पद्म शेठनो पुत्र गोरो एवे नामे वणिक महा कुष्ठी थयो ॥ ४५ ॥ ते गोसलनी कथा कहे छे.

पेठाणपुर नगरे गोविंद नामे गृहस्थ वसे छे, तेनी गौरी नामे स्त्री छे, तेने गोसल

नामे पुत्र महा दुर्व्यसनी छे. एकलो वन मांहे जइने लाकडीए मधुयाल पाडे, निर्दयपणे जाल मांहे ससलादिक जीव होय तिहां दावानल दीए, अग्नि सलगावे, बलद, गाय, घोडाने आंके, कूमला नवा उगता रोपा कूंपलने छेदी नाखे, उन्मूलन करी नाखे, एवुं कृत्य करतां देखी लोके तेना बापने ठबको दीधो, ते वारे बापे तेने शिखामण दीधी, पण ते सर्व राख मांहे होम्यानी पेठे निष्फल थइ. ते पुत्र मावतरने पण उचाटनो करावनारो थयो. धर्मनी तो वात पण ते न जाणे.

एवामां तेनां मावतर देवशरण थयां. पछी तो वली ते गोसल निरंकुश हाथीनी पेठे उछृंखल थयो थको फरे. एक दिवसे नगरनी वाडीउंमां जइ नारिंगादिकनां वृक्ष उन्मूली नाख्यां तेने कोटवाले दीठो, बांधीने राजानी पासे आएयो, राजाए तेनुं सर्व धन लइने मूकी दीधो.

वली एक दिवस छानो राजानी वाडीमां जइने कूमली अनेक जातिनी वनस्पति छेदी नाखी. एटलामां वनपालके दीठो, ते वारे मार मारी बांधी, कूटी, राजा आगल आणीने वनपालके विनंति करी के महाराज! एणे तमारी वाडीनो विनाश कीधो छे. राजाए तेना बेहु हाथ छेदी नखाव्या, तेथी महा दुःखी थयो. पछी तेणे

घणोज पश्चात्ताप कीधो ॥ दोहो ॥ माय बाप मोटा तणी, शीख न माने जेह ॥ कर्मवशे पडीया थकां, पछी पस्तावे तेह ॥ १ ॥ पछी ते गोसल पोतानी निंदा करतो मरण पामीने तेहीज नगरे पद्म शेठने घेर गोरो एवे नामे पुत्र थयो. ते जन्मथीज रोगीयो गलत कोढीउं थयो, नख अने नाक बेसी गयेलां, भ्रकुटीना केश सफी गया, दांत पडी गया, निरंतर माखीउं बणबणाट करती शरीर उपर वींटी रहे, दुर्गंध तो एटली नीकले के कोइथी सहेवाय नहीं. बापे घणां घणां औषध कस्यां पण ते सर्व व्यर्थ गयां. कष्ट व्याधि टव्यो नहीं.

एकदा दमसार नामना ज्ञानी मुनि ते नगरना वनमां पधास्या, तेमने वांदवा माटे नगरना लोकोने जता देखी पद्म शेठ पण तेमने वांदवा गयो. तिहां साधु मुनिराजे धर्मदेशनामां कह्युं के जीव जे छे, ते कीधां कर्मने वशे दुःखीउं थाय छे. जेम आ नगरमां पद्म शेठनो पुत्र दुःखी थयो छे. ते सांभली पद्म शेठे पूछ्युं के हे भगवन्! मारे पुत्रे शुं पाप कस्युं छे? गुरुए तेने पूर्वोक्त गोविंदना पुत्र गोसलनुं सर्व वृत्तांत संभलावीने कह्युं के ते गोसल मरीने तारो पुत्र थयो छे. पद्म शेठे घेर आवी पोताना पुत्रने कह्युं तें पाछला भवे घणां पाप कस्यां छे, ते सांभलतांज तेने

जातिस्मरणज्ञान उपन्युं. पछी मुनिराज पासे आव्यो, तेमने वंदना करी पापनी निंदा गर्हा करी अनशन लइ मरण पामी पहेले देवलोके देवता थयो॥इति गोसल कथा॥

हवे एकत्रीशमी पृछानो उत्तर एक गाथाए करी कहे छे.

॥ गाथा ॥ गो महिस खरं करहं, अइजारारोवणेण पीडेइ ॥ एएण पावकम्मे, ए गोयमा सो जवे खुज्जो ॥ ४६ ॥ जावार्थः—बलद, जेंस अने उंटादिकनी उपर लोजे करी अतिजार आरोपण करे एटले एमनी उपर घणो जार जरीने जे पुरुष उक्त जीवोने पीमा करे, ते जीव निष्केवल एज पापकर्मे करी निश्चयथी हे गौतम ! खुज्जो एटले कुब्जो अर्थात् कूबमो थाय. जेम धनावह शेठनो पुत्र धनदत्त पाछले जवे घणा जीवोनी उपर जार वहेवरावीने कूबमो थयो ॥ ४६ ॥ इहां धनदत्त अने धनश्रीनी कथा कहे छे.

जूमिमंडन नगरे शत्रुदमन नामे राजा राज्य करे छे. तिहां धन्नो नामे शेठ रहे छे. तेनी धीरू नामे स्त्री छे. जामानो धंधो करी आजीविका चलावे छे. तेणे पोताने घेर पोठीया, उंट, रासज अने महिष ते पाडानो संग्रह कीधो छे. ते शेठ लोजे

वाह्यो थको अवाचक जीवोनी उपर तेमनी शक्तिथी उपरांत घणो जार जरे अने घणुं जाडुं लइ निर्वाह करे छे.

एकदा कोइ साधु वहोरवा सारु तेने घेर आव्या, तेमने स्त्री जरतारे बेहुए मली जावथी दान आप्युं. तेने योगे शुज कर्म उपार्जी तेज नगरे धनावह शेठने घेर धनदत्त नामे पुत्रपणे जइ उपन्यो. ते वणिज कला सर्व जाणे, पण पूर्वला जवमां जीवोनी उपर घणो जार जरतो हतो, तेने योगे कूबडो थयो.

हवे तेहीज नगरमां धन शेठ वसे छे, तेने घेर धीरूनो जीव मरीने पुत्रीपणे उपन्यो, तेनुं धनश्री एवुं नाम पाड्युं. ते घणी रूपवंत गुणवंत छे, ते यौवनवय पामी थकी पूर्व जवने स्नेहे धनदत्त कूबडाने परणवा वांछे छे. वली एज धन्ना शेठने एक बीजी पुत्री थइ छे, पण कर्मने योगे ते कूबडी छे. एकदा तेना बापनी आगल कोइ निमित्तियाए कह्युं के जे कोइ तारी पुत्री धनश्रीने परणशे, ते मोटो व्यवहारी थशे. एवी वात सांजलीने कोइ धनपाल नामे शेठीयाए धनश्रीनी मागणी करी. धनश्रीना पिताए ते वात कबूल करी तथा बीजी जे कूबडी बेटी हती ते धनदत्तने दीधी, अने बेहु कुमरीने परणावावनुं मुहूर्त्त एकज लग्ने लीधुं.

हवे धनश्रीए पूर्व जवना स्नेहने लीधे धनदत्त कूबडाने परणवानी वांछाए त्यां मनो-रथ पूरव एवे नाम कोइ यक्ष छे, तेने आराध्यो. यक्षे संतुष्ट थइने माग, माग, एवुं त्रण वखत कह्युं. धनश्रीए कह्युं के जेम मारो भरतार धनदत्त थाय तेम तमे करो. ते वारे यक्षे कह्युं के तारा पिताए बेहु पुत्रीने एकज दिवसे एकज लग्ने बेहु वरने पाणिग्रहण करावबा वांछ्युं छे, ते वखत हुं दृष्टिबंधन करीश, तुं धनदत्तने परणजे. पछी जे वारे तुजने परणी घेर लइ जशे, ते वारे मोह जशे. एम कही यक्ष अदृष्ट थइ गयो.

हवे लग्नने दिवसे बेहु वर साथेज परणवा आव्या. यक्षे सर्व लोकने मोह पाड्यो. बेहु परणीने पोतपोताने घेर आव्यां ते वारे धनदत्त तो धनश्रीने घणीज स्वरूपवान् देखीने हर्ष पाम्यो अने धनपाल पोतानी परणेली स्त्रीने कूबडी देखी झांखो थयो थको मनमां विचारवा लाग्यो के आ ते वली इंद्रजाल केवी थइ! मतिविभ्रम केम थइ गयो!!! ते वात राजाए सांभली अने गामना लोकोए पण जाणी लोकनां टोले-टोलां मली वातो करवा लाग्यां. पछी मांहोमांहे बन्ने जण स्त्रीने अर्थे कलह करता राजानी आगल गया. राजाए तेमने पाछा घेर मोकलीने धनश्रीने तेडावी एकांते पूछ्युं के धनदत्त जाते कूबडो छे, ते तने मनगमतो थाय नहीं, माटे साचे साचुं

कहे जे तुं कया वरने वरी छो ? ते सांभली धनश्रीए राजानी आगल खरेखरी वात कही दीधी के में मोहने वशे अवश्य ए धनावहना पुत्रनी साथे परणवा माटेज यक्षनुं आराधन कर्युं हतुं, ते संतुष्ट थयो तेना सान्निध्यथी हुं धनदत्तने परणी छुं अने मारी कूबडी बहेनने यक्षे धनपालनी साथे परणावी छे. हवे जेम युक्त होय, तेम करो. जे देवताए कीधुं ते अन्यथा शी रीते थाय ? माटे मारे ए कूबडोज भरतार हो. पछी राजाए सज्जनोने तेडी सर्व वात कही समजावी. ते पण सर्व समजीने घेर गया.

एकदा ते नगरना वनमां कोइ धर्मरुचि नामना आचार्य चार ज्ञानना धणी आवी समोसर्या. तेमने वांदवा माटे सर्व लोक गया, तेनी साथे धनदत्त पण पोतानी स्त्री सहित गयो. मुनिने वांदी धनदत्ते पूछ्युं के हे भगवन्! कये कर्मे करीने हुं कूबडो थयो ? अने कया कर्मे मारी स्त्री धनश्रीनो मारी उपर घणो स्नेह छे ? तथा कया शुभ कर्मे करी हुं घणी लक्ष्मी सुख सौभाग्य पाम्यो छुं, ते मारी उपर कृपा करीने कहो.

गुरु बोल्या के हे धनदत्त! तुं पूर्वले भवे धन्नो हतो, अने धनश्रीनो जीव धीरू एवे नामे तारी स्त्री हती, तिहां पोठीया रासभादिक उपर घणो भार भरवाथी तुं

कूवको थयो, अने जाव थकी साधुने दान दीधुं, तेने योगे लक्ष्मीनो योग अखंड रह्यो. तेमज पाछले जवे बेहु स्त्री जरतार हतां, तेथी तमारो स्नेह पण अखंम रह्यो छे. एवी वात सांजली बेहुने जातिस्मरणज्ञान उपन्युं. पूर्वला जव दीठा. पछी समकित मूल बार व्रत पमिवज्जी मुनिने वांदी घेर पहोंच्यां. अनुक्रमे धर्म पालतां सुपात्रने दान देतां आयु पूर्ण थये देवलोके देवता थया ॥ इति धनदत्तधनश्रीकथा ॥

॥ हवे बत्रीशमी पूछानो उत्तर एक गाथाए करी कहे छे ॥

गाथा ॥ जाइमर्ज मत्तमणो, जीवे विक्किणइ जो कयग्घो य ॥ सो इंदजूइ मरिउं, दासत्तं वच्चए पुरिसो ॥ ४७ ॥ जावार्थः—जे जीव जातिमद करे, अहंकार करे एटले जातिकुलादिकना मदे करी मदोन्मत्त उन्मत्त थाय तथा जे मनुष्यादिक जीवोने (विक्किणइ के०) वेचे विक्रय करे अने कृतघ्न थाय एटले परनो करेलो उपकार वीसरी जाय, पारकी निंदा करे, पोतानी आत्मप्रशंसा करे, अन्य कोइ प्रशंसा करवा योग्य होय छतां तेना गुणने ढांके, पोते कोइ गुणवाननी प्रशंसा न करे, पारका अछता दोष कहेवे करी नीच गोत्र कर्म उपार्जन करे. हे इंद्रजूति ! हे गौतम ! (सो के०)

ते पुरुष मरीने दासपणुं पामे. जेम हस्तिनापुरे सोमदत्त पुरोहित पदभ्रष्ट थइ मरीने डुंबपुत्र थयो ॥ ४७ ॥ तेनी कथा कहे छे:—

॥ कुरु देशे हस्तिनागपुरे सोमदत्त नामे पुरोहित रहे छे. तेने घणा मनोरथे एक बलजड नामे पुत्र थयो. ते ब्राह्मणजातिना मदे करी बीजा लोकोने तृण समान गणे. नगर मांहे मार्गमां आजोखुं नाखी चाले, राजपुत्र आजडे तो स्नान करे, अने जो कोइ मातंग दृष्टिए पडे, त्यारे तो वली वस्त्र सहित स्नान करे, प्रायश्चित्त लीए, एवी रीते ब्राह्मण विनानी बीजी जाति उपर द्वेष धरतो, तेमनी निंदा करतो पोतानी जातिने प्रशंसतो रहे. तेनी उपर लोक हांसी करे, ए प्रमाणे वर्त्तन करी ते पुत्र पोताना मावित्रोने अत्यंत उचाट करवानुं कारण थइ पड्यो.

तेना पिताए तेने कह्युं के हे वत्स ! लोकव्यवहारज रूडो छे, जीव कर्मे करी ब्राह्मण पण हीन जाति थाय, माटे जाति शाश्वती कोइने न होय. ते माटे मद करवो नहीं. एटलो करवो के जेणे करी लोक हांसी न करे. इत्यादिक तेनो पिता शिखामण आपे पण ते माने नहीं. उन्मत्त हाथीनी पेठे खुमारीमां जातिअभिमान धरतो रहे. एम करतां तेनो पिता देवशरण थयो. ते वारे राजाए पुरोहितनो पुत्र अहंकारी हतो

माटे अयोग्य जाणीने तेना पितानी पाटे थाप्यो नहीं. बीजाने पुरोहितपदवी आपी दीधी. एवी रीते मदे करी इहांज पदभ्रष्ट थयो, लोकमां हांसी थइ, लोकोए तेनुं ब्रह्मदत्त नाम पाड्युं. पदवी गयाथी निर्धनपणाने प्राप्त थयो. कृतघ्न थयो. पछी गाय, बलद वेची पेट भराइ करवा लाग्यो. लोको सर्व निंदा करवा लाग्या. एकदा गायोने चारो नाखतां कोइए कह्युं के हे ब्रह्मदत्त! आ तृण जे तुं तारे हाथे उपाडे छे ते सर्व तृणने मातंगीए पगे करी चांप्यां छे, तेथी तुंने आभडछेट नथी लागती? एवी अनेक ठेकडी लोको करे, तेथी क्रोधे भराइने ते गाम छोडी जतो रह्यो. जतां जतां मार्गमां भूलो पड्यो. तिहां डुंबोने देखी आक्रोश करी हणवा लाग्यो, ते वारे डुंबे कोप करी ब्रह्मदत्तने पेटे छरी मारी तेथी त्यां मरण पामीने डुंबोने घेर पुत्रपणे जइ उपन्यो. ते पण कांणो, खोडो, कुरूपडो, कालो, दुर्भागी थयो. राजालोकोनुं दासपणुं करे. माणसने शूली प्रमुख चडाववानो वध करवानो धंधो करे. तिहांथी मरण पामी पांचमी नरके नारकी थयो. तिहांथी मरीने मत्स्य थयो. तिहांथी वली नरके गयो. एम अनेक भवभ्रमण करी जे वारे मनुष्यमां उपजे, ते वारे हीन कुलमां उपजे अने दासपणुं करे. एकदा अज्ञानतपना बले करी ज्योतिषी देवोमां उपन्यो.

तिहांथी चवीने पद्मखेड नगरे कुंददत्ता गणिकाने तिहां पुत्रपणे ऊपन्यो. तेनुं नाम मयण पाड्युं. तिहां बहोंतेर कला शीख्यो, परोपकारी, दक्ष, दयालु, लज्जालु, गंभीर, सरल, प्रियवादी, सत्यवादी थयो. जेवा तेमां उत्तम गुणो छे, तेवा गर्वनुं ममत्व नथी. जे वारे लोको तेने गणिकानो पुत्र कही बोलावे, ते वारे दुःखीउं थको चिंतवे जे में कोइ पूर्व भवे पाप कीधां छे, तेथी विधाताए मने गणिकाने घेर जन्म दीधो. जेथी हुं आटला गुणने धरतो छतो पण जातिहीन थयो छुं. अथवा अमृतमय चंद्रमा छे पण कलंकित छे तथा रत्नाकर जे समुद्र ते रत्नोथी भरेलो छे ते छतां तेनुं पाणी खारुं छे, तेम जिहां गुण तिहां दोष पण होय.

एकदा ते नगरे केवली भगवान् पधार्या. तेमने वांदवा माटे मयण गयो. वांदीने पूछ्युं के हे भगवन् ! मारामां केटलाएक उत्तम गुणो छतां हुं कया कर्मना उदयथी हीनजातिमां ऊपन्यो छुं ? भगवाने पाछला भवनुं स्वरूप कही संभलाव्युं अने तें जातिकुलनो मद कीधो तथा परनिंदा कीधी, तेना पापे करी गणिकाने घेर ऊपन्यो छो, ते वारे मयणे कह्युं के हे भगवन् ! जो मारामां योग्यता होय, तो दीक्षा आपो. केवलज्ञानीए तेने योग्य जाणी दीक्षा दीधी, साधुसमाचारी शीखवी, पछी दुष्कर

तप करी अनशन लइ देवता थयो. अनुक्रमे कर्म क्षय करी मोक्षसुख पाम्यो ॥ इति ब्रह्मदत्त ब्राह्मण कथा

॥ हवे तेत्रीशमी पृछानो उत्तर एक गाथाए करी कहे छे ॥

॥ गाथा ॥ विणयविहीणो चारि–त्तवज्जिओ दाणगुणविउत्तो य ॥ मणसा य दंड जुत्तो, पुरिसो दारिद्दियो होइ ॥ ४७ ॥

भावार्थः—जे पुरुष विनये करी हीण होय एटले विनय रहित होय तथा चारित्र वर्जित होय एटले चारित्र जे विरतिपणुं ते थकी रहित होय तथा दानगुण थकी वियुक्त होय एटले दानगुणथी रहित होय, तथा मनोदंड, वचनदंड अने कायदंड, ए त्रण दंडे करी युक्त होय. एटले मने करी आर्त्तध्यान रौद्रध्यान चिंतवे अने वचने करी दुर्वचन बोले, लोकोने कुबुद्धि आपे, कायाए करी कुचेष्टा करे. एवो पुरुष मरीने दरिद्री थाय ॥४७॥ जेम हस्तिनापुरे सुबंधु शेठनो पुत्र मनोरथ नामे हतो, ते अविनीत अविरति थको मरीने दरिद्री थयो. तेनुं निष्पुण्य एवुं नाम पड्युं. तेनी कथा कहे छे.

हस्तिनाउर नगरे अरिमर्दन नामे राजा राज्य करे छे. ते गाममां सुबंधु नामनो शेठ वसे छे. तेने बंधुमती भार्या छे, तेने घणे मनोरथे एक पुत्र थयो, माटे तेनुं

मनोरथ एवुं नाम दीधुं. ते मोटो थयो, तेवारे तेनो पिता देव गुरुने नमस्कार करवा कहे, पण ए स्तब्ध थइ रहे, प्रणाम न करे; तेमज निशाले जणवा मोकल्यो, तोपण तेवोज कोरे कोरो रह्यो, पण एक अक्षर शीख्यो नहीं. पिताए मोटानो विनय करवा शीखव्यो, तोपण कोइनो विनय करे नहीं. जे माटे जेनो जेवो स्वजाव होय, ते कोइ रीते मटे नहीं.

एकदा तेनो पिता एने गुरुनी पासे तेडी गयो. गुरुने कह्युं के एने प्रतिबोध आपो. गुरुए मनोरथने पूछ्युं हे वत्स! व्रतपच्चख्काण नियम पालवाथी बहु फल थाय, माटे तारी इछा प्रमाणे कांइ नियम ले. मनोरथे कह्युं के माराथी नियम पले नहीं. गुरुए कह्युं त्यारे दान आपवानुं व्यसन राख, मनोरथे कह्युं हुं दान आपी शकतो नथी. एम करतां तेनो पिता मरण पाम्यो. पोते महा कृपण हतो तेथी घरमां कोइ जिखारी पण मागवा आवे नहीं.

एकदा एकलो ग्रामांतरे जतो हतो तेने मार्गमां चोर लोकोए मारी नाख्यो, पासे जे कांइ धन हतुं, ते सर्व चोरो लइ गया. मरीने दरिद्रीना कुलमां जइ पुत्रपणे उपन्यो. तिहां निष्पुण्यक एवुं नाम दीधुं. मोटो थयो, त्यारे लोकोनां ढोर चारे, हल

खेडे, लोकोनी सेवा करे, दास थइ रहे, वहीत्रुं करे, माथे भार उपाडे, तोपण पेट भरवुं दोहेलुं थाय.

एकदा धन कमावा सारु देशांतरे चाल्यो, तिहां लक्ष्मी मेलववाना घणा उपाय कर्या, परंतु कर्मयोगे दरिद्रीज रह्यो. हवे तिहां एक षण्मुख नामे देव छे, तेनो साचो परतो छे, तेनी आगल धन मेलववा माटे उपवास करी बेठो. सातमे दिवसे देव प्रत्यक्ष थइ बोल्यो के तुं शामाटे लांघण करे छे? ते वारे दरिद्रीए कह्युं के लक्ष्मीने अर्थे करुं छुं. देवताए कह्युं लक्ष्मी मलवी तारा कर्ममां लखी नथी. दरिद्री बोल्यो के तो मारुं इहांज मरण थाउं. एवो तेनो हठ जाणीने देवताए कह्युं प्रभाते इहां सोनानो मोर नाचशे, ते एक पिछ सोनानुं मूकशे, ते तुं लेजे. एम कही देव अदृश्य थयो.

प्रभाते सोनानुं पीछ मल्युं, एम नित्य प्रत्ये एक पीछ लेतां लेतां वली दरिद्रीने कुबुद्धि उपनी अने विचार्युं जे आ जंगल मांहे केटला दिवस रहीए? माटे आ मोरने पकडी एक वखतेज एनां सर्व पीछां लइ लहीए. एम चिंतवी मोरने पकड्यो, के तरत मोर फीटीने कागडो थइ गयो, अने देवताए आवी दरिद्रीने पादप्रहारे

माख्यो, तेथी पकी गयो. प्रथमथी जेटलां मोरनां पींछां लीधां हतां, तेटलां सर्वे कागडानां पींछां थइ गयां. जे माटे कह्युं छे के "बुद्धिः कर्मानुसारिणी ॥ दोहा ॥ उतावल कीजे नहीं, कीधे काज विणास ॥ मोर सोनानो कागडो, करी हुउं घरदास ॥ १ ॥

पछी पोतेज पोताने निंदतो थको झंपापात खावा माटे पर्वत उपर चढ्यो, तिहां एक साधुने दीठा, ते वारे मनमां विचार्युं जे एमने धन मेलववानो हुं उपाय पूछुं. एम चिंतवीने तेमने वांद्या, ते वारे ऋषिए कह्युं के तें देवनुं आराधन कर्युं, तिहां मोरनो काग थयो, तेथी हमणां इहां झंपापात करवा आव्यो छो. ते सांभली आश्चर्य पामी विचार्युं जे जूउ, आ ऋषिनुं केवुं ज्ञान छे! पछी साधुने कहेवा लाग्यो के महाराज! मने धन मेलववानो उपाय कहो. ज्ञानीए कह्युं के तें पूर्वला भवमां कोइ नियम पाल्यो नथी, विनय कीधो नथी अने कोइने दान पण दीधुं नथी, तेने योगे दरिद्री थयो छो. एवी वात सांभलतां जातिस्मरणज्ञान उपन्युं; तेथी पूर्वला भव सर्वे दीठा. ते वारे वैराग्य पामी दीक्षा लीधी. तेने सारी रीते आराधीने देवलोके देवता थयो. ए दरिद्रीपणा उपर निष्पुण्यनी कथा कही ॥

॥ हवे चोत्रीशमी प्रश्नानो उत्तर एक गाथाए करी कहे छे ॥

॥ गाथा ॥ जो पुण चाइ विण-य जूर्ज चारित्त गुणसयाइन्नो ॥ सो जण सय विक्खार्ज महड्ढिर्ज होइ लोगंमि ॥ ४ए ॥ भावार्थः—जे पुरुष वली चाइ एटले त्यागी होय, दातार होय, विनय सहित होय, चारित्रना गुण संबंधी जे सैंकडा तेणे करी आइन्नो आकीर्ण एटले व्याप्त होय अर्थात् चारित्र जे विरति आदिक गुणोना सैंकडा तेणे करी व्याप्त होय, ते पुरुष (जण के०) सज्जन लोकना (सय के०) सैंकडा ते मांहे (विक्खर्ज के०) विख्यात होय. एटले सैंकडा गमे महर्द्धिकमां प्रसिद्ध होय. जेम सांकेतपुर पाटण मांहे स्वल्प ऋद्धिनो धणी धनमित्र शेठनो पुण्यसार नामे पुत्र थयो, तेणे पूर्व पुण्यने योगे घरमां चार निधान दीठां. ते राजाए लइ लीधां अने वली पण तेने आप्यां, तेनी कथा कहे छे ॥ ४ए ॥

सांकेतपुरे भानुमित्र राजा राज्य करे छे. तिहां धनमित्र नामे शेठ वसे छे. तेने धनमित्रा नामे भार्या छे, तेणे सहित ते सुखीर्ज छे. एकदा धनमित्रा स्त्रीए रात्रे सूतां स्वप्न मांहे सोनानो पूर्ण कलश रत्ने भरेलो मुखमां पेसतो दीठो. पछी जागीने भरतार आगल वात कही, भरतारे विचारीने कह्युं के तुजने कोइ महा भाग्यशाली

पुत्र थशे, ते सांभली स्त्री अत्यंत हर्ष पामी. अनुक्रमे पूर्ण मासे पुत्र प्रसव्यो. वधामणीआने वधामणी दीधी. तेनुं पुण्यसार एवुं नाम दीधुं. ते पुत्र अनुक्रमे रूप अने गुणे करी वृद्धि पाम्यो, सर्व कला शीख्यो, यौवनवये एक व्यवहारीयानी धन्या नामे कन्या परण्यो.

एकदा ते पुण्यसार रात्रिए सुखे निद्रामां पोढ्यो छे, ते वखते लक्ष्मी देवताए आवी कह्युं के हे पुण्यसार! हुं तारे घेर आवीश. पछी सुविहाणमां घरने चारे खूणे चार रत्ने भर्यां सोनाना कलशरूप निधान दीठां. ते वारे पुण्यसारे जाण्युं जे देवीए कह्युं ते सत्य थयुं, परंतु जो कोइ दुर्जनना वचने राजा जाणशे तो अनर्थ उपजशे, माटे प्रथमथीज राजाने जाण करुं. एवुं चिंतवीने राजानी आगल निधाननुं स्वरूप कह्युं, ते जोवा माटे राजा पोते पुण्यसारने घेर आव्यो. भंडार देखी विस्मय पाम्यो, तिहांथी उपाडी पोताना भंडारमां मूकाव्या. वली बीजे दिवसे पण तेमज प्रभातसमये पुण्यसारे चार भंडार दीठा, अने राजानी आगल कह्युं. ते पण राजाए पुण्यसारना घेरथी मंगावी पोताने भंडारे थाप्या. वली त्रीजे दिवसे पण पुण्यसारे तेमज चार भंडार दीठा अने राजा आगल कह्युं, महाराज! मारे घेर तेवीज रीते वली

पण चार भंडार आव्या छे. ते पण राजाए पोताने भंडारे मूकवानो हुकम कर्यो. ते वारे प्रधान बोल्यो के महाराज! तमे जे प्रथम बे दिवस निधान लावी भंडारे मूक्यां छे, ते अहीं मगावो. राजाए भंडारो उघडाव्यो, तेमां जोयुं तो निधान दीठां नहीं, ते वारे राजाए कह्युं के ए तो जेना पुण्यने योगे निधान आव्यां छे, तिहांज रहेशे. मारी पासे रहेवानां नथी. में जे लोभाधीन थइने निधान आण्यां, ते मारो प्रयास व्यर्थ छे.

पछी राजाए ते भंडारगत द्रव्य सर्व पुण्यसारने आपी नगरशेठनी पदवी दइ वस्त्र, मुद्रिका पहेरावी वाजित्र वाजते गाजते परिवार सहित ते पुण्यसारने घेर पहोंचाड्यो. पछी पुण्यसारनुं दिवसे दिवसे महत्त्व वृद्धि पाम्युं. पोतानी लक्ष्मीथी पुण्यकार्य साधतो रहे छे, परंतु गांठ बांधे नहीं.

एकदा ते नगरने उद्याने सुनंद नामे केवली भगवान् समोसर्या. तेमने राजा पोताना परिवार सहित तथा पुण्यसार शेठ पण पोतानां माता पिता स्त्री सहित अन्य जनोनी साथे वांदवा गया. वांदीने बेठा. केवलीए धर्मोपदेश दीधो. पछी धनमित्र शेठे पूछ्युं हे भगवन्! मारा पुत्रे पूर्व भवे शुं पुण्य कर्युं छे, के जेनाथी ए लक्ष्मी,

राज्यमान, सौभाग्य, महत्त्वने पाम्यो? ते वारे गुरुए कह्यु के पूर्वे एज नगरमां धन-
कुमर शेठ हतो, तेणे गुरुनी पासेथी बावीश अजक्ष्य अने बत्रीश अनंतकायना
नियम लीधा, सुपात्रोने दान दीधां, देव, गुरु अने वडेरानी जक्ति विनय करतो,
श्रावकधर्म पालतो, वृद्धावस्थाए दीक्षा लीधी, सिद्धांत जण्यो, तपस्या करी, क्षमा
उपशमादिक अनेक गुण पोताने विषे आण्या, अंते अनशन लइ आउखुं पूर्ण करी
त्रीजे देवलोके इंद्र सामानिक देवता थयो. तिहां देव संबंधी जोग जोगवी चवीने
शेष थाकते पुण्ये तारो पुत्र थयो छे. पूर्व पुण्यने योगे ए लक्ष्मी महत्त्वादिक पाम्यो
छे. ए वात सांजली पुण्यसारने जातिस्मरणज्ञान उपन्युं, पूर्वला जव दीठा. पछी
कुटुंब सहित श्रावकधर्म आदरी पोताने घेर आव्यो. देवपूजा करे, नवकार गुणे,
गुरुने वांदे, दान आपे, पछी पोताना पुत्रने योग्य जाणी तेने घरनो जार सोंपी
पोतानी शेठपदवीए थापी पुण्यसारे पोते सुनंद नामे गुरुनी पासे दीक्षा लीधी. तेने
निरतिचारपणे पाली देवता थयो. तिहांथी चवी वली मनुष्यजन्म पामी मोक्षसुख
पामशे ॥ दोहा ॥ जिण पूजे वंदे सुगुरु, जावे दान दियंत ॥ पुण्यसार जिम तसु
घरि, रुद्धि अचिंती हूंत ॥ १ ॥ इति महर्द्धिकत्वोपरी पुण्यसार कथा ॥ ३४ ॥

॥ हवे पांत्रीश तथा छत्रीशमी पृछाना उत्तर बे गाथाए करी कहे छे ॥

गाथा ॥ वीसछघायकारी, सम्ममणालोइऊण पछित्ते ॥ जो मरइ अन्न जम्मे, सो रोगी जायए पुरिसो ॥ ५० ॥ वीसछ रक्खणपरो, आलोइअ सयलपावठाणो य ॥ जो मरइ अन्न जम्मे, सो रोगविवज्जिओ होइ ॥ ५१ ॥

भावार्थः—जे मनुष्य विश्वासघात करे, अने सम्यक् मने एटले सूधा मने करी शुद्ध आलोयणा न लीए, ते पुरुष मरीने अन्य जन्मे एटले भवांतरने विषे रोगी थाय ॥ ५० ॥ तथा जे पुरुष विश्वासीनी रक्षा करवामां अग्रेसर होय अने पोतानां करेलां जे पापस्थानक होय, ते सर्वने साचें मने आलोचे, ते भवांतरने विषे रोगविवर्जित होय, नीरोगी होय ॥ ५१ ॥ ए बेहु उपर अट्टणमल्लनी कथा कहे छेः—

उज्जयणी नगरीए जितशत्रु राजा राज्य करे छे. तेने अट्टणमल्ल नामे महा मल्ल छे. हवे सोपारा नगरे सिंहगिरि राजा छे. ते वर्षोवर्ष मल्लयुद्ध करावे छे, मल्लमहोत्सव करावे जे कोइ जीते, तेने घणुं धन आपे, तिहां अट्टणमल्ल जइने बीजा मल्लोने जीती सरपावमां धन लइ घेर आवे. एकदा सिंहगिरि राजाए विचार्युं जे उज्जयणीनो मल्ल आवी वर्षोवर्ष जीती जाय ते रुडुं नहीं, माटे आपणे एनो उपाय करीए.

पछी एक बलवान् माछीने देखी राजाए तेने पोता पासे राखी मल्लयुद्ध शीखव्युं. पछी मल्लमहोत्सवना दिवसे अट्टणमल्ले आवी मलीदा खवरावी पीवरावी पुष्ट कर्यो. पछी राजाए माछीने द्रव्य आप्युं. अट्टण युद्ध कर्युं तेने तरुण एवा माछीए जीत्यो. राजाए माछीने द्रव्य आप्युं. अट्टण पाछो वळ्यो. तेणे सोरठ देशमां एक महा जोरावर फलिह नामे कोली दीठो, तेनी साथे नाणुं परठवीने तेने उज्जयणीए लइ गयो. तिहां तेने मल्लविद्या शीखावी. पछी सोपारा नगरमां परीक्षानी वेलाए तेने आव्यो, तिहां सभामां मल्लमहोत्सव संबंधी वाजित्र वाजते, शंख पूराते, बंदिजन जयजय बोलते, फलिहमल्ल अने माछीमल्ल ए बे मांहोमांहे जूझता, नाचता, माचता, हसता, एक बीजाने मुष्टिप्रहार देता, पडता, चडता, मांहोमांहे पोतपोताने स्थानके गया. तिहां अट्टणमल्ले फलिहमल्लने पूछ्युं के तुजने युद्ध करतां थकां क्यांय अंग दुःखतां होय, तो कहे. तेणे पण साचेसाचुं कह्युं, के अमुक अमुक अंग दुःखे छे. ते वारे अट्टणमल्ले फलिहमल्लने अभ्यंग स्नान करावी तेनुं शरीर ताजुं कराव्युं.

हवे राजाए माछीमल्लने पूछ्युं के तारां अंग क्यां दुःखे छे? पण माछीए लाजने लीधे दुःखवानुं कांइ कह्युं नहीं, अने बीजे दिवसे सभा मांहे सर्व लोक समक्ष बेहु

मल्लयुद्ध करवा लाग्या, तिहां माछीमल्ल थाक्यो, अने फलिहमल्ले तेनी ग्रीवा मरडी मारी नाख्यो. तेथी फलिहमल्लनो यश विस्तार पाम्यो, अने बक्षीस पण मली. एम अट्टणमल्लनी आगल ते यथास्थित स्वरूप कही सुखीओ थयो, अने माछीमल्ले यथास्थित स्वरूप न कह्युं, तेथी दुःखी थयो. ए दृष्टांते जे कोइ गुरुनी आगल साचुं कही आलोयणा लीए, ते अट्टणमल्ल फलिहमल्लनी पेठे सुखी थाय, नीरोगी थाय, अने जे कोइ गुरुनी आगल आलोवतां लाजथी साचुं न कहे, ते माछीमल्लनी पेठे रोगी थको दुःखी थाय ॥ उक्तं च ॥ पाप आलोवे आपणुं, गुरु आगल निःशंक ॥ नीरोगी सुखीआ हुवे, निर्मल जेहवो शंख ॥ १ ॥ ए आलोयण उपर अट्टणमल्ल अने फलिहमल्लनी कथा कही ॥ ३६ ॥

॥ हवे साडत्रीशमी पृछानो उत्तर एक गाथाए करी कहे छे ॥

॥ गाथा ॥ लहु हत्थयाइ धुत्तो, कूडतुला कूडमाण भंडेहिं ॥ ववहरइ नियडि बहुलो, सो हीणंगो भवे पुरिसो ॥ ५२ ॥ भावार्थः—जे धूर्त्त, लघुलाघवी कलाए एटले हस्तादिलाघवे करी कूडा तोले, कूडां मापे करीने तथा कुंकुम कपूर मजीठ भेलसेल करी कूडां करियाणे करी (ववहरइ के०) व्यवसाय एटले व्यापार करे (निय-

ऋिबहुलो के०) निकृतिबहुल एटले मायावी थको घणुं पाप करे, ते पुरुष ज्ञवांतरने विषे जो मनुष्य थाय, तोपण हीनअंगवालो थाय. जेम ईश्वर शेठनो पुत्र दत्त, एवे नामे हतो ते पूर्वे कूम तोल, कूमां माप अने कूडां करियाणादिक करवाना पापने परिमाणे हस्तादिक अवयवथी हीन थयो ॥ ५२ ॥ तेनी कथा कहे छे.

आशापूरणकल्पद्रो, दिनेश्वरवरद्युते ॥ देहि त्वं गौतम स्वामिन्, वंदितः सुखसंपदम् ॥ १ ॥ क्षितिप्रतिष्ठित नामना नगरे आदिदेव ईश्वर नामे शेठ वसे छे, तेनी प्रेमला नामे स्त्री छे, तेने चार पुत्र थया, ते चारेने ज्ञणाव्या, परणाव्या. शेठ पोते वृद्ध थयो, तेना घरमां घणुं द्रव्य छतां पण लोज्ञने लीधे अनेक प्रकारना व्यापार करे, परंतु लक्ष्मी कोइने आपे नहीं, कोइने दान देवानुं तो मनज न थाय.

एक दिवस शेठ जमीने गोखे बेठो छे एवामां चोथा पुत्रनी स्त्री बहु गुणवंती छे तेनी सुपात्रने दान देवानी मति छे, चतुर छे, जाण छे, ते स्त्री वासण धोवा मांजवा माटे घरथी बाहिर आंगणामां बेठी छे, एटलामां कोइक नवदीक्षित शिष्य आठ वर्षनी उमरनो हतो, ते ईर्यासमिति शोधतो वहोरवा माटे शेठना घरने बारणे आव्यो, तेने देखी स्त्रीए कह्युं ॥ दोहो सोरठी ॥ चेला खरी सवार, धामणी वार न

जाणीए ॥ तुम ल्यो अनथी आहार, अम्ह घर वासी जीमीए ॥ १ ॥ चेलाए कह्युं तो हुं अन्यत्र भिक्षा माटे जाउं? वहूए कह्युं जेम मेल आवे तेम करो. पछी चेलो पण ते कृपणनुं घर मूकी अनेरे घेर आहार लेवा गयो.

गोखमां बेठेला शेठजीए ते सर्व वात सांभलीने विचार्युं जे ए बेहुनां वचन मलतां नथी, ते वारे वहूने बोलावीने पूछ्युं जे बे पहोर थया छतां, तमे चेलाने एम केम कह्युं के सवार छे, वली चेलाए कह्युं अमे वीहीए छीए. ते वारे तें कह्युं अमारे घेर वासी जमीए छीए, पण आपणे घेर तो सर्वदा नवीज रसवती नीपजे छे, अने सर्व कुटुंब सहित ताजी रसवती खाइए छीए, परंतु टाढी रसोइ तो कोइ जमतुं नथी. तेम छतां तें चेलाने आम कह्युं, तेनुं कारण शुं? ते सांभली वहू घुंघट करी लज्जा आणती थकी कहेवा लागी के हे तातजी! सांभलो. में चेलाने कह्युं के तमे सवारी एटले वहेली नानपणमां दीक्षा केम लीधी? ते वारे चेले कह्युं जे धामणी वार न जाणीए ते हुं बीहुं छुं, कारणके संसार असार छे, आयु अथिर छे, तेनी बीक लागे छे, माटे धामणी वार न जाणीए, एटले वेला केम गमावीए? जे माटे जीवितव्य वीजलीना झबकारा सरखुं छे. वली में कह्युं जे अमारे घेर वासी जमीए छीए. तेनो

अर्थ आम छे के अमे पाछले भवे दान पुण्य कीधां छे तेने योगे ऋद्धि मली छे, परंतु आ भवमां दान पुण्य कांइ करता नथी, माटे नवी उपार्जन कांइ थती नथी, तेथी वासी भोजन करीए छीए.

ए वचन सांभली शेठे वहूने महा बुद्धिमान् जाणी हर्ष पाम्यो थको कहेवा लाग्यो के मारी आ वहू, सहु वहूरोथी नानी छे, परंतु बुद्धिए करी सर्वमां अग्रेसर छे, माटे एने हुं मारा कुटुंबमां मोटी करी थापुं छुं. तो हवे मारा सर्व कुटुंबी जनोए एने पूछीने कामकाज करवुं, एवी आज्ञा करुं छुं. वली शेठने ते दिवसथी दान देवानी बुद्धि पण थइ.

केटलोएक काल वीत्या पछी वली शेठने पांचमो पुत्र थयो. तेनुं दत्त एवुं नाम पाड्युं, परंतु तेने हाथ पग नथी, हीणांगो छे, तेने जे वारे यौवनवय प्राप्त थयुं, ते वारे लोक तेनी हांसी करे, वैद्ये तेलमर्दनादि अनेक उपचार कर्या, पण जेम दुर्जनने उपकार करीए, ते गुण न करे, तेम एने पण कांइ गुण थयो नहीं. शेठे अनेक उपचारो करी घणुं द्रव्य खरच्युं, पण पुत्र जेवो हतो तेवोज रह्यो.

एकदा बे मुनीश्वर भिक्षाए आव्या, तेमने वांदीने शेठे पूछ्युं के महाराज ! मारो

पुत्र सारो थाय तेवुं औषध कहो. गुरुए कह्युं जीवने रोग बे प्रकारना थाय छे, एक द्रव्यरोग अने बीजो भावरोग. तेमां पहेला द्रव्यरोगनो प्रतिकार तो वैद्य जाणे छे, अने बीजा भावरोगनो प्रतिकार अमारा गुरु जाणे छे. ते हाल आ गामनी बाहेर वनमां आव्या छे, तेमने पूछो. ते वात सांभली शेठ पण वनमां गयो. तिहां गुरुने वांदी पूछवा लाग्यो के महाराज! मारो दत्त पुत्र अंगहीण छे, ते कोइ रीते सारो थतो नथी, तेनुं शुं कारण छे? तथा द्रव्यरोग अने भावरोग ते कोने कहीए? ते वारे गुरु बोल्या जे रागद्वेषे करी माठां कर्म उपार्जन करीए ते भावरोग कहीए, अने ते कर्म उदय आव्याथी, जे विपाके भोगवीए ते द्रव्यरोग जाणवो. तिहां भावरोग मटी गयाथी द्रव्यरोग पण जाय. तप, संयम, दया, काउस्सग्गादिक क्रियाए करी भावरोग जाय, भावरोग गयो तो द्रव्यरोग पण जाय.

आ तारा पुत्रे पूर्व भवे हाटे बेठां लोभे करी लोकोने वंच्या छे, कूडे तोले कूडे मापे करी व्यापार कीधो छे, सरस नीरस वस्तुने भेल संभेल करी वेची छे. एम घणां पाप कीधां छे, परंतु एक वार साधुने दान दीधुं छे, ते पुण्यने योगे करी तारे घेर पुत्रपणे उपन्यो छे. एणे हाथे करी कूड कपट छलभेद करी मुग्ध लोकोने वंच्या

छे, तेणे करी हाथ रहित थयो छे. एवी वात गुरुना मुखथी सांजली शेठे तथा दत्ते वेलु जणे मलीने श्रावकधर्म अंगीकार कस्यो. दत्ते नियम लइ माया मूकी नवकारमंत्रनुं स्मरण कस्युं, ते स्मरण करी देवलोके गयो, माटे अहो लोको! म वंचो, म वंचो, एक पुण्यज संचो, संचो ॥ इति हीनांगे दत्तकथा समाप्त ॥ ३७ ॥

॥ हवे आडत्रीशमी अने उंगणचालीशमी पृछाना उत्तर एक गाथाए कहे छे ॥

॥ गाथा ॥ संजम जुआण गुणवं, तयाण साहूणसील कलिआणं ॥ मूर्ज अवणवाए, ण टुंटर्ज पह्हिघाएण ॥ ५३ ॥ जावार्थः—जे जीव, संयम युक्त क्षमादि गुणवंत, शीले कलित एटले शीले करी युक्त एवा जे साधु महात्मा तेमना (अवणवाए के०) अवर्णवादने बोले, एटले अणछता दोष बोले, निंदा करे, ते जीव जवांतरे (मूर्ज के०) मूक ते बोबडो थाय. तथा जे जीव पगना प्रहारे करी साधुने (घाएणं के०) घा करे एटले पाटु मारे, ते जीव जवांतरे टूंटो थाय ॥ ५३ ॥ जेम वरुोड्डावासी देवशर्माना पुत्र अग्निशर्माए महात्मानी निंदा कीधी, तेणे करी ते मूक थयो अने साधुने ढीका पाटुना प्रहार कस्या तेथी तेहीज जवे तेने देवताए शिक्षा दीधी.

त्यांथी मरी नरके गयो. ज्ञवांतरे हीन कुलमां पासरु नामे टूंटो थयो. तेनी कथा कहे ठेः—

विटप नगरे देवशर्मा नामे ब्राह्मण चौद विद्यानुं निधान ठे, तेने अग्निशर्मा नामे पुत्र थयो, ते घणां शास्त्र जण्यो, ज्योतिष शास्त्रमां निपुण थयो, तेथी पोताना मनमां घणो अहंकार आणे. धर्मवंतनी गुणवंतनी चारित्रीयानी निंदा करे, तेमना दोष बोले, तेने बापे शिखामण दीधी के हे वत्स ! जातिकुलनो मद न करीए. डाह्यो मनुष्य गर्व करे नहीं, कोइनी निंदा न करे. इत्यादि समजाव्यो पण जेम कागडाने दूधथी धोतां उज्ज्वल न थाय, तेम ए पण पोतानो स्वज्ञाव मूके नहीं.

एकदा घणा साधुना परिवारे परवर्या थका एवा ज्ञानी गुरु तिहां आवी समोसर्या. तेमने नगरना लोक सर्व वांदवा गया, ते गुरुनो महिमा देखीने अग्निशर्मा खीज्यो थको लोकोने कहेवा लाग्यो के ए पाखंडी महात्मानी पूजा ज्ञक्ति करवाथी शुं थाय? ए वेदत्रयीथी बहार ठे.

एक वार ते ब्राह्मण घणा ब्राह्मणलोकोने देखतां थकां गुरुनी साथे वाद करवा माटे आव्यो अने कहेवा लाग्यो के तमे क्षुद्र, अपवित्र अने निर्गुण ठो, तेम ठतां लोको पासे पूजा

करावो डो, ते शामाटे करावो डो? जे माटे वेदना जाण एवा पवित्र ब्राह्मणने दान आपे, तेनी पूजा करे तो जीव स्वर्गे जाय. अमे यज्ञ करीने डाग जेवा जनावरोने पण स्वर्गमां मोकली आपीए डीए. एवी रीते बोलवा लाग्यो, तेने एक शिष्ये कह्युं के तुं प्रथम मारी साथेज वाद कर. हुंज तारा प्रश्नोनो उत्तर आपुं डुं, ते सांजल.

प्रथम तुं कहे डे के तमे क्रुद्ध डो, अमेज ब्राह्मण डीए,ते तारुं बोलवुं अयुक्त डे, जे माटे कह्युं डे के ॥ श्लोक ॥ ब्राह्मणो ब्रह्मचर्येण, यथा शिल्पेन शिल्पकः ॥ अन्यथा नाममात्रं स्या–दिंद्रगोपककीटवत् ॥१॥ ए वचनथी एम कीधुं जे ब्रह्मचर्य पाले, ते ब्राह्मण कहेवाय. केनी पेठे? तो के शिल्पीना गुणे करी जेम शिल्पक कहेवाय. जो तेम ब्रह्मचर्य न होय तो इंद्रगोप कीट समान ते व्यर्थ ब्राह्मण जाणवो.

वली तुं कहे डे के तमे अशौच डो, ते पण असत्य कहे डे. जे माटे स्नान करी पाणी ढोली अप्काय जीवोने विराधवाथी कांइ शौचपणुं थतुं नथी, जो स्नान कीधाथी शौचता थती होय तो पाणीमां रहेलां माडलां सर्व सदैव स्नानज करे डे, ते सर्व तारा कहेवा प्रमाणे पवित्र थवां जोइए; परंतु मनःशुद्धि विना शौचपणुं थतुं नथी, मननी शुद्धि एज शौचता कही डे ॥ यदुक्तं पुराणे ॥ श्लोक ॥ चित्तमंतर्गतं डुष्टं,

तीर्थस्नानैर्न शुध्यति ॥ शतशोऽथ जलैर्धौतं, सुराभांडमिवाशुचि ॥ १ ॥ किं च ॥ सत्यं शौचं तपः शौचं, शौचमिंद्रियनिग्रहः ॥ सर्वभूतदया शौचं, जलशौचं च पंचमम् ॥२॥ चित्तं रागादिभिः क्लिष्ट—मलीकवचनैर्मुखं ॥ जीवहिंसादिभिः कायो, गंगा तस्य पराङ्मुखी ॥ ३ ॥

भावार्थः—जेनुं अंतःकरण दुष्ट छे, तेवो पुरुष, स्नानथी शुद्ध थतो नथी. केनी पेठे तो के जेम हजार वखत जलथी धोयेलुं मदिरानुं पात्र शुद्ध थतुं नथी. वली प्रथम सत्यरूप शौच, बीजुं तपरूप शौच, त्रीजुं इंद्रियना निग्रहरूप, चोथुं सर्व भूतपर दयारूप शौच अने जलशौच तो छेवटनुं पांचमुं शौच छे. तथा जेनुं चित्त रागादिके करी क्लिष्ट छे, खोटुं बोलवाथी जेनुं मुख अपवित्र छे, तथा जीवहिंसादिकथी काया जेनी अपवित्र छे, तेवा पुरुषने गंगा पण पवित्र करती नथी. अर्थात् गंगा पण तेमनाथी पराङ्मुखी छे. वली कह्युं छे के ॥ श्लोक ॥ आत्मा नदी संयमपुण्यतोया, सत्यावहा शीलदयातटोर्मी ॥ तत्राभिषेकं कुरु पांडुपुत्र, न वारिणा शुध्यति चांतरात्मा ॥ १ ॥

भावार्थः—श्रीकृष्ण कहे छे, के हे पांडु राजाना पुत्र अर्जुन! संयम अने पुण्य तेरूप जले करी युक्त, अने सत्यरूप जेनो प्रवाह छे तथा शील अने दया तेरूप जेनां बे

तट छे एवी आत्मारूप नदी छे तेने विषे तुं अभिषेक कर. अर्थात् तेमां स्नान कर; परंतु जले करी अंतरात्मा कोइ दिवस पण शुद्ध थतो नथी.

वली तें कह्युं के तमे निर्गुण छो, ते पण तारुं बोलवुं अयुक्त छे. जे माटे क्षमा, दया अने क्रिया प्रमुख अनेक गुणो पण प्रत्यक्ष अमारामां देखाय छे, तो निर्गुणी केम कहेवाइए? ॥ उक्तं च ॥ चित्तं शमादिभिः शुद्धं, वदनं सत्यभाषणैः ॥ ब्रह्मचर्यादिभिः काया, शुद्धा गंगांभसा विना ॥ १ ॥ भावार्थः—शमादिके करी चित्त शुद्ध थाय छे, सत्य भाषणे करी वदन शुद्ध थाय छे, ब्रह्मचर्यादिके करी काया शुद्ध थाय छे. एम गंगाना जल विनाज ते पूर्वोक्त सर्व शुद्ध थाय छे, परंतु गंगाजलथी ते काइ शुद्ध थतुं नथी.

वली तुं कहे छे के तमे लोको पासे पूजा करावो छो, ते पण तें सत्य कह्युं नथी; जे माटे कह्युं छे के ॥ श्लोक ॥ पूजां होते जनाः स्वस्य, कारयंति न जातुचित् ॥ स्वयमेव जनः किंतु, गुणरक्तः करोति तत् ॥ भावार्थः—लोको जे अमोने पूजे छे, ते स्वयमेव एटले पोतानी मेलेज अमारामां गुणो जोइने पूजे छे; कारणके जन छे, ते गुणरक्तयुक्त छे. अर्थात् सर्व माणस जो गुण जुए छे तो पूजे, पण एमां काइ नवाइ नथी.

तथा तैं कह्युं के ब्राह्मणनी पूजा करनारो स्वर्गे जाय छे, ते पण असत्य छे, केमके ब्राह्मण तो अपवित्र, अब्रह्म सेवनारा, खेती करनारा, घरमां गाय भैंसादिक पशुउं तथा छोरु वाछरुने राखी तेनुं पालन करनारा छे, तेमज रीसाल अने निर्दयी होय छे, माटे तेने पूजवाथी स्वर्ग प्राप्त न थाय.

वली तैं कह्युं के अमे यज्ञमां छागनो वध करी स्वर्गे मोकलीए छीए, एवा पुण्यात्मा छीए, ते पण तारुं बोलवुं असत्य छे. जे माटे ताराज शास्त्रमां कह्युं छे के ॥ श्लोक ॥ यूपं छित्वा पशून् हत्वा, कृत्वा रुधिरकर्दमम् ॥ यद्येवं गम्यते स्वर्गे, नरके केन गम्यते ॥ १ ॥ भावार्थः—यूपने छेदीने, पशुने मारीने, भयंकर हिंसाथी लोहीनो कचरो करीने ज्यारे स्वर्गमां जाय, त्यारे पछी नरकमां कोण जाय? अर्थात् कोइ जायज नहीं.

एवी युक्तिए सर्व नगरना लोक देखतां थकां शिष्ये अग्निशर्मा ब्राह्मणने हराव्यो, तेथी ब्राह्मण रोषे भर्यो थको पोताने घेर जतो रह्यो. पछी रात्रिए एकलो वन मांहे आवी सर्व साधुउं निद्रामां हता, तेमने पाटु प्रहार दीधा, मुष्टिउंना प्रहार दीधा, तेने वनदेवताए हांक्यो, पकड्यो. पछी तेना बेहु पग शक्तिए करी छेद्या. तेनी पीडाथी टलवलतो प्रभाते लोकोए दीठो, तेनुं स्वरूप सर्व लोकोने जाणवामां आव्युं. ते वारे

सर्व तेनी निंदा करवा लाग्या. एवी रीते साधुउंनी अवज्ञा करी, ते पापिष्ठ मरीने पहेली नरके जइ नारकीपणे उपन्यो. तिहांथी नीकली कोइ दरिद्रीने घेर पासड एवे नामे पुत्र थयो. तिहां पूर्वकृत कर्मने दोषे करी मूक थयो, टूंटो थयो, जन्मतांज माता मरी गइ, अने जे वारे आठ वर्षनो थयो, ते वारे तेनो पिता देवशरण थयो. लोकोनुं दासपणुं करी पेट जरवा लाग्यो. सर्व जनोने अणगमतो थयो थको वली पण संसार मांहे घणो रऊल्यो ॥ इति अग्निशर्माकथा ॥

॥ हवे चालीशमी पृछानो उत्तर एक गाथाए करी कहे छे ॥

॥ गाथा ॥ जो वाहइ निस्संसो, छावायंपि डुक्खियं जीअं ॥ सीयंतगत्त संधिं, गोयम सो पंगुलो होइ ॥ ५४ ॥

जावार्थः—जे पुरुष निःशंकपणे अथवा निःस्तृंश एटले निर्दय छतो वृषजादिक जीवनी उपर जार नाखीने खेडे (वाहइ के०) जार वहावे तेथी छात एटले जेमनां अंग त्रूटी गयां छे, उछ्वात एटले जेमनो उंचोज श्वास छे अने शरीरनी संधिउं जेनी डुःखित छे एवा डुःखीआ वृषज कर्मकरादिक जीवोने जे डुःखी करे, ते जीव हे गौतम ! मरीने पांगलो थाय. जेम सुग्रामवासी हालुकर्षणीनो पुत्र कर्मण नामे हतो,

तेणे पूर्वला जवमां बलद अने हालीने घणा भूख्या तरस्या राख्या तेथी पांगलो थयो. तेनी कथा कहे छे.

सूग्राम ग्रामे हालुकर्षणी छे, ते दयावंत संतोषी छे. चारा पाणीनो वखत थाय एटले हल खेडनार हालीने तथा बलदने छोडी चारो पाणी आपे, कदा काले चारो पाणी हाजर न होय तो पोते पण जमे नहीं, एवो नियम करेलो छे. तेनी हेमी नामे स्त्री छे, ते सरलचित्तवाली छे, तेने कर्मण नामे पुत्र थयो, ते पूर्वकृत कर्मे करी रोगीओ पांगलो थयो छे. ते ज्यारे मोटो थयो, त्यारे खेत्रनी चिंता करवा माटे बलद उपर बेसीने खेत्रमां जाय, जाते घणोज लोभी छे माटे तेना बाप करतां त्रिगुणी भूमि खेडावे, हाली तथा बलदोने खावानो वखत थाय तोपण तेने छूटा करे नहीं. चारा पाणीनी चिंता राखे नहीं. तेणे करीने वर्षोवर्ष कर्षण करतां जे जे पाछले वर्षे धान्य नीपजतुं हतुं तेथी आगले आगले वर्षे धान्य ओछुं ओछुं नीपजवा लाग्युं, तेथी अनुक्रमे निर्धन थइ गयो. तोपण ते पापकर्म करतो रहे नहीं.

एकदा ज्ञानी गुरु आव्या तेमने वांदवा माटे गामनां लोकोनी साथे ए पिता पुत्र पण गया. गुरुने पिताए पूछ्युं के महाराज ! कया कर्मने योगे आ मारो पुत्र

रोगीर्ज, पांगुलो अने निर्धन थयो ठे ? ते वारे गुरुए कह्युं के एणे पूर्वले जवे कर्षण करतां जूख्या तरस्या बलदोने वाह्या ठे, तेमनी संधिए घा दीधा ठे, मार्या ठे, अंते पश्चात्ताप कीधो, तेथी मनुष्यपणुं पामी तारो पुत्र थयो ठे, एवी गुरुनी वाणी सांजली हलखेत्रनां पाप आलोइ बापे दीक्षा लीधी अने कर्मणे श्रावकधर्म आदर्यो, आयु पूर्ण करी बेहु देवलोकनां सुख पाम्या. ए निर्दयता उपर कर्मणहालीनी कथा कही ॥

॥ हवे एकतालीशमी तथा बेंतालीशमी पृछाना उत्तर बे गाथाए करी कहे ठे ॥

॥ गाथा ॥ सरल सहावो धम्मि, व माणसो जीव रक्कण परोय ॥ देव गुरु संघ जत्तो, गोयम रूवस्सियो होइ ॥ ५५ ॥ कुटिल सहावो पाव, प्पिर्ज अजीवाण हिंसण परोअ ॥ गुरु देवय पडिणीर्ज, अच्चंत कुरूवर्ज होइ ॥ ५६ ॥

जावार्थः—जे पुरुष बत्रदंकनी पेठे सरल स्वजावी होय अने धर्मने विषे जेनुं चित्त होय तथा जे मनुष्य जीवनी रक्षा करवामां तत्पर होय तथा जे देव, गुरु अने संघनी जक्ति करवामां तत्पर होय, ते जीव हे गौतम ! रूपवान् थाय ॥ ५५ ॥ तथा जे जीव स्वजावे कुटिल होय एटले कुटिल स्वजावी होय अने पापप्रिय होय, एटले तेने पाप करवुंज गमे, अने जीवनी हिंसा करवामां तत्पर होय, तथा देव

अने गुरुनी उपर द्वेष वहे, देव गुरुनो प्रत्यनीक होय ते पुरुष मरीने अत्यंत कुरूपवंत थाय ॥ ५६ ॥ जेम पाटण नगरमां देवसिंह शेठनो पुत्र जगसुंदर सर्व लोकोने मन गमतो रूपवंत थयो, अने तेनोज बीजो जाइ असुंदर हतो. ते कालो, कूबमो, डुर्जागी, डुःस्वर, लंबकंठो, मोटा पेटवालो, कुरूपो थयो. ए बेहु जाइनी कथा कहे डेः—

पाटण नगरे देवसिंह शेठ धनवंत वसे डे. तेने देवश्री नामे स्त्री डे, ते सरल अने स्नेहाली डे. तेणे एकदा पाबली राते एक आंबानुं वृक्ष शाखा माल फूले जरेलुं आकाशथी उतरतुं पोताना मुख मांहे संचरतुं स्वप्नामां दीवुं. एटलामां जाग्रत थइने पोताना जरतारने ते स्वप्नानी हकीकत कही. जरतारे सांजलीने स्त्रीने कह्युं के तुजने फलवंत गुणवंत आंबानी पेठे अनेक जीवोनुं आधारजूत एवुं पुत्ररत्न थशे. ते सांजली स्त्री हर्षवंत थइ. अनुक्रमे पूर्ण दिवसे लक्षणवंत पुत्र जन्म्यो. तेना पिताए वधामणां, कीधां कुटुंब जमाडी, दीधां वस्त्र ने साडी, हरख्यां बाप ने माडी. एनुं जगसुंदर नाम यथागुणे दीधुं. शेठनुं वंछित काम सीधुं. निशाले जण्यो. कलाउं शीख्यो, जाग्य, विनय, विवेक, चातुर्य, औदार्य, गांजीर्य, धैर्यादिक गुणवंत थयो. ते यौवनवय पाम्यो ते वारे तेणे अनेक कन्या साथे पाणिग्रहण कीधुं, देव गुरु संघनी जक्ति करे, जिनधर्म आदरे,

दान दइ पुण्यभंडार भरे, दीन दुःखीनो उद्धार करे, एवो गुणवंत ते कुमार थयो. हवे वली एकदा देवश्रीए शेषरात्रिए दवदग्ध वृक्ष मुखमां पेसतुं स्वप्नामां दीठुं, माठुं स्वप्नुं जाणी भरतार आगल कह्युं नहीं, अनुक्रमे कालो, चीपडो, दंतालो, तुछ कानवालो, जेनुं हैयुं, पेट स्थूल, बाहु जेनी टूंकडी, जांघ लांबी, शरीरे घणां रोम, दुर्भागी, दुःस्वर, एवो पुत्र प्रसव्यो. लोकोए तेनुं रूप देखी असुंदर एवुं नाम आप्युं. ते पुत्र मूर्ख धर्महीन थयो. पापे कूडो, कोइ न कहे रूडो, एवो दुर्भागी थयो. तेथी तेने कोइ कन्या आपे नहीं. द्रव्य आपवा मांड्युं तोपण कोइ कन्या आपवा कबूल थयो नहीं.

ते वारे पिताए कह्युं के हे वत्स! तें पूर्वले भवे पुण्य कीधुं नथी, तेथी आवो कुरूप थयो छो, अने वांछित पामतो नथी; माटे हमणां धर्मकरणी कर. एवी शिखामण दीधी, तोपण तेने धर्म करवानी इच्छा थइ नहीं.

एकदा ते नगरे चार ज्ञानना धणी एवा सुव्रत नामना आचार्य आवी समोसर्या. तेमने देवसिंहे पुत्रो सहित जइ वंदना करी. गुरुए धर्मोपदेश दीधो, ते सांभली जेम मेघगर्जारव सांभली मोर हर्ष पामे, तेम सर्व हर्ष पाम्या. देशनानंतर शेठे पूछ्युं के हे भगवन्! मारा बे पुत्रो छे, तेमां एक मोटो पुत्र गुणवंत सोभागी पुण्यवंत

थयो अने बीजो लघु पुत्र दुष्ट दुर्भागी पापरुचि माठो थयो, माटे तेणे शुं पुण्य पाप कर्यां हशे ? ते कहो.

गुरु कहेवा लाग्या के हे शेठ ! एहीज नगरे आ भवथी पाछले त्रीजे भवे एक जिनदत्त एवे नामे वणिक रहेतो हतो, ते सरल स्वभावी जीवरक्षा करवामां सर्वत्र प्रसिद्धि पाम्यो. वली देव, गुरु अने श्रीसंघनी भक्ति करवामां पण अग्रेसर हतो, तेथी सर्व लोको तेनां वखाण करवा लाग्यां. वली तेहीज नगरमां एक शिवदेव नामे वणिक महा मिथ्यात्वी रहेतो हतो, ते देव, गुरु अने संघ उपर द्वेष राखी तेमनी हांसी करे, मनमां कूड कपट राखे, ते यद्यपि जिनदत्तनो मित्र हतो, तथापि जीवहिंसा करतो रहे.

ते मिथ्यात्वी मरीने पहेली नरके गयो अने जिनदत्त श्रावक मरीने पहेले देवलोके देवता थयो. तिहां देवतानां सुख भोगवी आयु पुरुं करीने तारो जगसुंदर नामनो माटो पुत्र थयो अने शिवदेवनो जीव नरकथी नीकली तारो असुंदर नामे नानो पुत्र थयो छे. एने देव गुरु उपर द्वेष हतो, निर्दयी हतो, तेथी कुरूपो थयो छे. हजी पण धर्मद्वेषी छे, माटे घणो संसार भ्रमण करशे. एवी गुरुना मुखथी पूर्व भव संबंधी वात सांभलतां जगसुंदरने जातिस्मरणज्ञान उपन्युं, तेथी हर्ष पाम्यो. घणो

काल श्रावकधर्म आराधी अंते दीक्षा लइ मोक्षसुख पाम्यो ॥ इति देव, गुरु अने श्रीसंघनी जक्ति उपर जगसुंदर अने असुंदरनी कथा ॥ ५२ ॥

॥ हवे त्रेंतालीशमी पृछानो उत्तर एक गाथाए करी कहे ले ॥

॥ गाथा ॥ जो जंत दंम कस रज्जु, खग्ग कुंतेहिं कुणइ वियणाउ ॥ सो पावो निक्करुणो, जायइ बहु वेयणो पुरिसो ॥ ५३ ॥ जावार्थः—जे पुरुष यंत्र, लाकमी, दंड, परोणा, काश, रज्जु ते नाडी, दोरी, खङ्ग ते खांमा, कुंतणा अने जालां इत्यादिक हथियारे करी अनेरा जीवोने वेदना करे, ते पापी निर्दयी पुरुष जन्मांतरे घणी वेदना पामे ॥ ५३ ॥ जेम मृग गामे विजय राजानी मृगा राणीनो पुत्र लोढो एवे नामे हतो, तेणे पाछले जवे घणां गाम उपर अधिकारी होवाथी घणा लोकोने अत्यंत दुःखी कस्या, तेथी तेहीज जवमां तेने जलोदर कोढ प्रमुख सोल महा रोग उपन्या. मरीने पहेली नरके गयो. तिहांथी लोढाने जवे नपुंसक थयो. पांचे इंद्रियोथी रहित अत्यंत वेदना खमतो महा दुःखी थयो, तेनी कथा कहे छेः—

एहीज जरतक्षेत्रे मृग गामे विजय राजा हतो. तेनी मृगावती राणी छे. तेमने संसारसुख जोगवतां घणो काल वीत्यो.

एकदा श्रीमहावीर तीर्थंकर विहार करता भव्य जीवोने प्रतिबोध देता श्रीगौतमस्वामी प्रमुख अनेक साधुउंना परिवारे परवस्या थका तिहां समोसस्या. देवताए त्रण गढनी रचना करी आगल फूलपगर भस्या. बार पर्षदा मली परमेश्वरनी वाणी सांभलवा बेठी. एवा अवसरे एक जात्यंध पुरुष जाते कोढीउं छे, तथा हाथ पग नाक आंगली सर्व गली गयां छे, दुःस्वर दुर्भग एवो छे, ते लोके निंदातो थको तिहां समोसरणमां आव्यो. तेने देखी गौतमस्वामीए परमेश्वर प्रत्ये पूछ्युं के हे भगवन्! ए जीव कया अशुभ कर्मने योगे महा दुःखी थयो छे? भगवाने कह्युं एणे पूर्व भवे घणां पापकर्म कस्यां छे, तेथी दुःखीउं थयो छे. वली गौतमस्वामीए पूछ्युं के महाराज! ए जीवथी पण हजी अधिक दुःखीउं जीव कोइ हशे के जेने देखी लोक दुगंछा सूग करे, निंदे, काढी मूके? भगवान् बोल्या के हे गौतम! एज गामना राजानो पुत्र जगतमां अत्यंत दुःखीउं छे, जे माटे ते बहेरो पांगलो नपुंसक छे. हाथ, पग, आंख, कान, नाक, भ्रकुटी, मुख एमांनां अंग तो तेने कांइ छेज नहीं. जेनी आठ नाडी मांहि वहे छे अने आठ नाडी बाहिर वहे छे, आठ नाडी लोहीनी

अने आठ परुनी वहे छे. महा दुर्गंधित छे, शरीर लोढो छे, सदैव लोमे करी आहार
लीए छे. ते इहांज नरकनां दुःख जोगवे छे.

ते सांजली गौतमस्वामीने कौतुक उपन्युं, ते वारे तेने जोवा माटे कहेवा लाग्या
के हे स्वामी! तमे आज्ञा आपो, तो हुं तेने जोइ आवुं. परमेश्वरे आज्ञा आपी.
गौतमस्वामी राजाने घेर आव्या. राजा राणी बेहु हर्ष पाम्यां. राणी बोली महाराज!
आज अमारा उपर अनुग्रह कीधो. श्रीगौतमजी मृगावती प्रत्ये बोल्या के तमारो
पुत्र मारे जोवो छे. ते वारे राणीए पोताना चार पुत्र जे गुणवंत हता, तेने तेमीने
गौतमस्वामीने वंदाव्या, श्रीगौतमे धर्मलाज दीधो. वली राणीए कह्युं के आज अनु-
ग्रह कीधो. ते वारे श्रीगौतमे मृगावतीने कह्युं तमारो जे शिला सरिखो पुत्र छे, ते
हुं जोवा आव्यो छुं. राणी बोली के हे जगवन्! ते पुत्र तो कोइ न जाणे तेवी रीते
अमे जोंयरा मांहे छानो राख्यो छे, ते तमे शी रीते जाण्युं? श्रीगौतम बोल्या, अमारो
स्वामी श्रीमहावीर छे, ते सर्वज्ञ छे, तेमना कहेवाथी जाण्युं. त्यारे राणीए कह्युं के हे
जगवन्! क्षणेक पमखो, तो जोजनवेलाए वस्त्राजरण मूकी गाडलीए आहार घाली
जोंयरे जइशुं, त्यारे तमने तेमी जइ देखामशुं. पछी राणी गामी लइ श्रीगौतमस्वा-

मीने तेनी भोंयरामां गइ. तिहां गौतम प्रत्ये कह्युं के हे भगवन्! इहां उग्र दुर्गंध छे, माटे मुहपत्तिए मुख नाक बांधीने अंदर आवो. तिहां जइ भोंयरानुं कमाड उघाड्युं त्यारे तिहां खाधेलुं अन्न पण पाछुं वळे एवी दुर्गंध आववा मांडी. राणीए सादरी पाथरी तेनी उपर आहार मूकी लोढाने उपर लइ आवी. तेणे आहारसंज्ञाथी रोमे करी आहार लेवा मांड्यो, तेवोज ते आहार परु थइने नीकळवा लाग्यो. एवुं दुःख जोइ राणीने वंदावी श्रीगौतमस्वामी महावीर पासे पाछा आवी कहेवा लाग्या के जेवुं दुःख तमे कह्युं, तेवुंज में दीठुं, माटे हवे कहो के एणे शुं मोटुं पाप कर्युं हशे के जेथी ए एवो दुःखी थयो छे?

प्रभु कहेता हवा के हे गौतम! कृतद्वारी नगरे धनपति राजाने विजयवर्द्धन गोकुळ छे, तेने पांचसें गाम आव्यां, तेनी संभाल माटे एक राठोड अधिकारी करी मोकल्यो, ते राठोड रौद्र परिणामी क्षुद्रबुद्धि महा पापकर्मी छे, पांचसें गामनी चिंता करे, अधिका कर लीए, नवा कर बेसाडे, लोकोने कूडां आळ आपी अन्याय थापी दंड करी निर्द्धन्य कीधां, अधिकी ओछी वात करी लोकोने ताजणे करी ताडना करे, बांधीने मार आपे, उकळावे, दुहवे. एवी रीतनां घणां पाप करतो रह्यो. तेथी तेज भवमां

तेने कास, श्वास, ज्वर, दाह, कुखशूल, जगंदर, हरस, अजीर्ण, आंखवेदना, कानवेदना, पूंठशूल, खस, कोढ, जलोदर, वेग अने वायु, ए सोल महा रोग उपन्या, तेणे करी अति उपद्रव पाम्यो थको आर्त्त रौद्र ध्यान धरी मरण पामी पहेली नरके गयो. तिहां छेदन, जेदन, ताप, ताडनादि अनेक कष्ट सहन करी तिहांथी नीकली विजय राजानो पुत्र थयो छे. नपुंसक, दुःखीउं, घणी वेदनाए पीड्यो थको छे. एणे एक जवमां पापे करी घणां दुःख दीठां ॥ इति अकृत्य करवा उपर मृगापुत्रनी कथा ॥ ४३ ॥

॥ हवे चुम्मालीशमी पृछानो उत्तर एक गाथाए करी कहे छे ॥

॥ गाथा ॥ जे सत्ते विअणत्ते, मोआवइ वंधणाउं मरणाउं ॥ कारुस पुस हियउणो असुहा वेयणा तस्स ॥ ५७ ॥

जावार्थः—जे पुरुष पीडा युक्त एवा (सत्ते के०) जीवोने (वंधणाउं के०) सांकल वंधनरूप (वियणत्ते के०) वेदना थकी तथा (मरणाउं के०) मरण थकी (मोआवइ के०) मूकावे छे, (कारुसपुसहियउं के०) दयाए करी पूर्ण एवुं छे हृदय जेनुं एवा जे होय (तस्स के०) ते जीवने जवांतरे कोइ पण (असुहा के०) असुहामणी एवी (वेयणा के०) वेदना न होय ॥ ५७ ॥

जेम सुप्रतिष्ठित नगरे चंदन नामे शेठ मिथ्यात्वी हतो, पछी दृढ प्रतीतिवालो श्रावक थयो, तेनो पुत्र जिनदत्त हतो, ते सर्व कोइने अभीष्ट वल्लभ थयो. अत्यंत सुख पाम्यो. ते चंदन शेठ अने जिनदत्तनी कथा कहे छेः—

सुप्रतिष्ठित नगरे चंदन नामे व्यवहारीओ वसे छे. ते मिथ्यात्वी छे, परंतु परिणामे भद्रक छे, तेनी वाहिणी नामे स्त्री छे. एकदा शांत, दांत, गुणने धरता धर्मवंत क्रियावंत, एवा बे साधु तेने घेर आव्या. तिहां प्राशुक उपाश्रय जाणी शेठनी आज्ञा लइ तेमां रह्या. ते साधुना संसर्गे शेठ तथा तेनी स्त्रीए जिनधर्म पामीने व्रत पच्चरकाण नियम लीधां. तथा साधुओना संसर्ग थकी शेठनी गोत्रदेवी पण सम्यक्दृष्टिवाली थइ.

हवे ते साधु अन्यत्र विहार करी गया, शेठ पोतानी स्त्री सहित पहेलुं व्रत आराधवा लाग्यो, परंतु गृहस्थरूप वृक्षनुं फल जे पुत्र, ते शेठने नथी तेणे करी शेठ शेठाणी बेहु चिंतातुर रहे छे. पछी पुत्रने अर्थे कुलदेवीनी आराधना करवा माटे कंकू, कपूर, सुखड अने फूले करी कुलदेवीने पूजे, भूमिए शयन करे, तपस्या करे. एम करतां कुलदेवी प्रसन्न थइ. प्रत्यक्ष आवीने कहेवा लागी के हे शेठ ! जे तुं माग, ते तुजने हुं आपुं. ते वारे शेठे पुत्र माग्यो. गोत्रदेवीए चिंतव्युं जे प्रथम तो ए शेठे

जे साधु पासेथी पहेलुं व्रत लीधुं छे, ते साचुं पाले छे के नथी पालतो? धर्ममां दृढ छे के नथी? तेनी परीक्षा करुं. एम मनमां विचारीने देवी कहेवा लागी के हे शेठ! तुं जो जीववानी वांछा करतो हो, तो एक जीव मारीने तेनुं बलिदान मुजने आप, तो हुं तुजने पुत्र आपीश, अने जो तेम नहीं करीश तो स्त्री भरतार बेहुने कुशल नथी. ते सांभली शेठे कह्युं के तुं एम कां बोले छे? जे माटे भलो पुरुष जे होय, ते कांइ लीधेलो नियम भंग करे नहीं, अने में तो प्राणातिपातनो नियम लीधो छे, माटे पुत्र विना सह्युं, पण नियमनुं खंडन हुं करीश नहीं. ते सांभली देवी कोप करती शेठनी स्त्रीने चोटले पकडी तरवारे करी मारवा लागी. स्त्री पण रडती थकी कहेवा लागी जे अरे देवि! मारी रक्षा करो! रक्षा करो!! तोपण देवीए ते स्त्रीनुं मस्तक छेदी नाख्युं. वली शेठने कहेवा लागी जे तुजने पण एवीज रीते मारी नाखीश. वली कह्युं के अरे दुष्ट! दुर्बुद्धि! आपणा कुलक्रमागत जीवघात करवी, बलि आपवानो जे चाल चालतोज आवे छे, तेनो तें नियम शा वास्ते लीधो? माटे हवे पुत्रनी वात तो लांबी रही, पण तारे पोताने जीववानो पण संदेह छे, माटे हठ कदाग्रह मूकीने मुजने बलिदान आप. एवां देवीनां कटुक वचन सांभल्यां, तोपण शेठ क्षोभ

पाम्यो नहीं, अने देवी प्रत्ये कहेवा लाग्यो के मरवुं तो एक वार छेज, माटे पछी मरीश, ते करतां हमणांज ज्ञले मारी नाख; पण हुं निर्दयी थइने जीवघातपणुं अंगीकार करीश नहीं. एवी शेठनी दृढता जोइ देवी हर्ष पामी शेठने स्त्री जीवती देखाडीने कहेवा लागी के हे शेठजी ! तुं धन्य छो, तुं महा साहसिक अने पुण्यवंत छो. तारुं पहेलुं व्रत शुद्ध छे के नथी, तेनी में परीक्षा करी. ते संबंधी मारो अपराध तुं क्षमा करजे. तुं मारो साचो साधर्मी ज्ञाइ छो, माटे हुं तुजने उपकार करीश. तुं श्रीजिनेश्वरनी ज्ञक्ति कर, जेथी तुजने योग्य पुत्र थशे. तेनुं जिनदत्त नाम राखजे. एम कही गोत्रदेवी अदृश्य थइ गइ. केटलाएक दिवस पछी शेठनी स्त्रीए पुत्र प्रसव्यो तेनी वधामणी आवी, तेथी शेठे मोटो महोत्सव करी तेनुं जिनदत्त एवुं नाम पाड्युं. निशाले पोसाले ज्ञएयो. सर्व कलाउं शीख्यो. धर्मनो जाण थयो. यौवनवये मोटा कुलनी योग्य कन्या परणावी. ते जिनदत्त पिताने वल्लज्ञ छे, नीरोगी छे, नित्य प्रत्ये देवपूजा करे छे.

एकदा वन मांहे ज्ञानी गुरु पधार्या, तेमने शेठे पुत्र सहित जइ वांद्या. धर्मोपदेश सांजळ्यानंतर चंदन शेठे पूछ्युं के हे ज्ञगवन् ! मारो जिनदत्त पुत्र नीरोगी,

महा सुखी, सर्वने स्नेहालु कये कर्मे करी थयो बे ? ते कहो. ते वारे गुरु बोल्या के हुं जे कहुं बुं, ते सावधान थइने सांजलो. एज नगरमां धरणो वाणीयो रहेतो हतो, तेने जिनदत्तनो जीव साधारण एवे नामे पुत्र हतो. ते पिता पुत्र बेहु दयावंत हता, तेमां साधारण तो निष्पाप व्यवसाय करतो. मृगलां, बाग, तित्तर, चीडां बांधेलां मूकावतो. बंधीखाने पडेलां मनुष्योने पोते घरनुं ड्रव्य आपी मूकावतो, मरता प्राणीने बोडावतो. देव गुरु धर्मने संसर्गे धर्मरंगे रंगायो रहेतो, श्रीशत्रुंजय तीर्थे तेणे यात्रा कीधी. आयु पूर्ण करी देवलोके ते देवता थयो. तेमां धरणानो जीव तमे बो अने साधारणनो जीव तमारे घेर जिनदत्त पुत्र थयो बे. महा धनवंत नीरोगी सुखीउ थयो, ते सर्व पूर्व पुण्यने प्रजावे जाणवो. एवी गुरुना मुखनी वाणी सांजली बेहु जणने जातिस्मरणज्ञान उपन्युं. पूर्वला जव दीठा. वैराग्य उपन्यो, ते वारे दीक्षा लेवा तत्पर थया. गुरुए कह्युं के हजी तमारुं आयुष्य घणुं बे, अने जोगावली कर्म पण घणां बे, ते माटे तमे सविशेष श्रावकधर्म करो. ते सांजली पिता पुत्र बेहु गुरुने वांदीने घेर आव्या. अनेक प्रकारनां पुण्य कीधां, सुकृत कीधां, दान दीधां, व्रत लइ बेहु जण देवलोके देवता थया. तिहांथी चवी मनुष्यजन्म पामी मोक्ष पामशे. इति जिनदत्त कथा ॥

॥ ७५ ॥

॥ हवे पीस्तालीशमी पृछानो उत्तर एक गाथाए करी कहे छे ॥

॥ गाथा ॥ जया मोहोदउं तिव्वो, अन्नाणं खु महप्रयं ॥ पेलवं वेयणिज्जं च, तया एगिंदियत्तणं ॥ ४ए ॥ नावार्थः—(जया के०) जे वारे जीवने (तिव्वो के०) तीव्र गाढ (मोहोदउं के०) मोहनो उदय तथा (अन्नाणं के०) अज्ञान ते सम्यकूज्ञाननो अन्नाव होय, (तया के०) ते वारे ते पंचेंड्रिय जीव होय, तोपण तेने (महप्रयं के०) मोटो छे नय जेमां एवुं तथा (पेलवं के०) तुछ, असार अने (वेयणिज्जं के०) वेदनीयरूप एवुं (एगिंदियत्तणं के०) एकेंड्रियपणुं प्राप्त थाय छे. ए (खु के०) निश्चे जाणवुं ॥

जेम महीसार नगरे मोहक नामे धनवंत हतो, पण अत्यंत कृपण थको लक्ष्मी कुटुंबनी घणी मूर्छा करी मरण पामीने एकेंड्रियमां जइ उपन्यो. घणो काल संसारमां नमशे. इहां मोहक गृहस्थनी कथा कहे छे ॥ देवकोटिसमायुक्तं, वसुधाधिपसेवितम् ॥ पुण्यातिशयसश्रीकं, रक्तवर्णं जिनं स्तुवे ॥ १ ॥

महीसार नगरे मोहक नामे कोइ गृहस्थ वसे छे. तेने मोहिनी नामे स्त्री छे. तेना पितानी उपार्जित लक्ष्मी घणी छे. लक्ष्मीनो मोह अपार छे. रात्रिदिवस सावधानपणे

रहे, रखेने कोइ मारुं धन लइ जाय ? एवी चिंता करतो छानो ओयरामां निधान राखे. वली तिहांथी उपाडी बीजे स्थानके संचय करे, एम लक्ष्मीने राखवाना अनेक उपाय करे, रात्रिए सूवे नहीं. अति कृपणपणे कदापि जमे नहीं तो चाले, पण आखो दिवस धन साचववानी पछवाडे जम्या करे. जाडां, मेलां कपडां पहेरे. कोइने दान न आपे, कोइने माग्युं उछीनुं पण न आपे. लोजने लीधे सगा, गुणवंतने पण न उंलखे ॥ चोपाइ ॥ किस्युं करो रे कृपण वखाण, नहीं उंलखे आव्या घर जाण ॥ एह तिले तेल नहीं लगार, एहथी वांछे तेह गमार ॥ १ ॥

हवे शेठनी स्त्री मोहिनीने पुत्र थयो. तेनुं लक्षण एवुं नाम दीधुं ॥ चोपाइ ॥ मोहिनीने पुत्रनो मोह घणो, हाथथी न मूके बालक परो ॥ वहेलो जण्यो विवेकी बुद्धिमंत, सुलक्षण कलाए हुर्ज बलवंत ॥ १ ॥ हवे ते पुत्र बाप थकी विपरीत गुण-वालो थयो. जगतमां कहेवत छे के जेवो बाप तेवो बेटो थाय. ए वात जूठी छे, जे माटे एनो बाप तो निर्विवेकी कृपण छे अने पुत्र तो विवेकी उदार थयो. साते क्षेत्रे धन वावरे, ते जोइ तेनो पिता घणो दुहवाय अने कहे के हे वत्स! धन कांइ फोकट आवतुं नथी. ए तो महा दुःखे उपार्जन करेलुं छे, ते सांजली पुत्र कहे हे पिताजी,

धन घणुंए छे, तमे चिंता करशो नहीं. ते वारे पिताए कह्युं के हे वत्स ! पाणीथी जरेलुं सरोवर पण ढोरे पी जतां सूकाइ जाय. ते वारे पुत्रे कह्युं के ज्यां लगण आपणुं पुण्य प्रबल छे, त्यां लगण कदापि खूटे नहीं ॥ उक्तं च ॥ जइ सुपुत्त तो धन कां संचे, जो कुपुत्त तो धन कां संचे ॥ अचल रिद्धि तो धन कां संचे, जो चल रिद्धि तो धन कां संचे ॥ १ ॥ लच्छी सहाव चवला, तउ चवलं च रायसम्माणं ॥ जीवोवि तउ चवलो, भवयार विलंबणा कीस ॥ २ ॥ माटे जेम कूवानां पाणी, वाडीनां फूल, गायनां दूध, लेतां थकां घणां होय, तेम दान देतां थकां लक्ष्मी पण वृद्धि पामे. इत्यादि पुत्रे समजाव्यो, तोपण शेठ धननो मोह मूके नहीं. मनमां विचारे जे आ मारो पुत्र कांइ जाणतो नथी.

एकदा उंरडामां चोर लोको खातर पाडी धन लइ गया. ते सांजली शेठने मूर्छा आवी गइ, रोवा बेठो, जमवा बेसे नहीं. तेने पुत्रे कह्युं के ए लक्ष्मी असार अने चपल छे, माटे तमे जमो. एम घणुं समजावी जमाड्यो. बीजे वर्षे शेठनी स्त्री मोहिनी मरण पामी. ते वारे शेठ, स्त्रीना मोहे करी वज्रे हणायेलो जेम दुःखी थयो होय, तेम दुःखी थयो, तेना गुण संजारी संजारीने रुदन कस्या करे, जमे नहीं. तेने दुःखे

शेठ मरण पाम्यो; पण पुत्र सुजाण छे, संसारनुं स्वरूप जाणी शोक न करे. विचारे जे मारो बाप मोहे करी मरण पाम्यो माटे ए मोह छे, ते जीवने विष विना मरण छे. ए मोह त्रिदोष विना सन्निपात छे, ए मोह न होय, तो जीव सदैव सुखीज होय. वली विवेक जे छे, ते सूर्य विना पण अजवालुं छे, दीपक विना प्रकाश छे, रत्न विना कांति छे, फूल विना फल छे, माटे विवेक मोटी वात छे. एवी समजण राखतो विवेकी थको धर्म कस्या करे.

एकदा ते नगरे श्रुतकेवली पधास्या, तेमने लक्षणे वांदीने पूछ्युं के महाराज! मारो पिता मरी क्यां गयो हशे ? गुरु बोल्या हे वत्स! तारो पिता धन कुटुंबनो मोह करी अज्ञानने वशे एकेंद्रिय पृथ्वीकायमां जइ उपन्यो छे. वली अप्काय, तेउकाय, वाउकाय अने वनस्पतिकाय मांहे घणुं संसारचक्रमां भ्रमण करशे. ते वात सांजली वैराग्य पामीने लक्षणे दीक्षा लीधी. तेने रूडी रीते आराधीने स्वर्गादिकनां सुख पाम्यो ॥ इति मोहक कथा ॥ ४५ ॥

हवे छेंतालीशमी अने सुडतालीशमी पृछाना उत्तर कहे छेः—

॥ गाथा ॥ नय धम्मो नय जीवो, नय पर लोगुत्ति नेय कोय रिसी ॥ इय जो

मन्नइ मूढो, तस्स थिरो होइ संसारो ॥ ६० ॥ धम्मोवि अत्थि लोए, अत्थि अधम्मोवि अत्थि सवन्नू ॥ रिसिणोवि अत्थि लोए, जो मन्नइ सो न संसारी ॥ ६१ ॥ भावार्थः— धर्म नथी, जीव नथी, परलोक नथी, कोइ ऋषीश्वर नथी, एवी रीते जे नास्तिक पुरुष माने, तेने संसार घणो स्थिर होय. मोक्ष ढूकडो न होय ॥ ६० ॥ तथा लोक मांहे धर्म छे, अधर्म पण छे, सर्वज्ञ पण छे, अने लोक मांहे ऋषि पण छे. जे जीव एवुं माने ते जीव, संसारी न होय, अल्प संसारी थको तरत मोक्षे जाय ॥६१॥

जेम राजगृही नगरीए एक पंडितनी पासे एक शूर अने बीजो वीर ए बे शिष्य भण्या. तेमां शूर तो धर्ममार्ग उथापवाथी तिहां पण दुःखीउं थयो अने वली घणो संसारमां भमशे. कुसंगतिने लीधे नास्तिकवादी थयो, अने वीर तो सद्गुरुनी संगतिथी जाणकार थयो. धर्ममार्ग स्थापतो तिहांज महत्त्व पामीने स्वल्प कालमा मोक्ष पामशे. तेनी कथा कहे छेः—

राजगृही नगरीए एक शूर अने बीजो वीर, ए बे गृहस्थो छे. ते बेहु जण नानपणमां एकज गुरुनी पासे भण्या, परंतु पाछलथी शूरने नास्तिक लोकोनी सोबत थइ तेथी "सरिसा सरिसेन रचंति" एटले मनुष्य, पोतानी समान संगतिवालो मलवाथी

आनंद पामे छे. तेथी दुःसंगे कुग्रहकदाग्रही थयो, उद्धतपणे धर्म उत्थापे, पोताना रूडापण आगल बीजाने तृण समान गणतो रहे, लोको सुखना अर्थनी वात कहे, तो तेमनुं कह्युं माने नहीं.

एकदा तिहां कोइ सुदत्त नामना गुरु चार ज्ञानना धणी पधार्या, तेमने धर्मार्थी लोक तथा वीर ए सर्व वांदवा गया, अने शूर तो महा अहंकारी थको गुरुनुं माहात्म्य सांभली मनमां ईर्ष्या आणतो तिहां आव्यो. गुरुने कहेवा लाग्यो के तमे लोकोने शामाटे विप्रतारो छो? जो तमारामां शक्ति होय, तो मारी साथे वाद करो. ते सांभली गुरुजीनो एक शिष्य तेने कहेवा लाग्यो के अरे मूर्ख! सर्वज्ञ समान एवा आ मारा गुरुनी साथे तुं शुं वाद करीश? हुंज तारो अहंकार मूकावीश, अने तुजने उत्तर दइश; परंतु सभ्य, सभापति, वादी अने प्रतिवादी, ए चारे करी युक्त चतुरंग वाद कहेलो छे, माटे ते चतुरंग जो वाद थाय, तो करुं. शूरे पण कबूल कर्युं. पछी बीजे दिवसे सवारमां चतुरंगनुं स्थापन थवाथी वाद करवा मांड्यो.

तिहां शूरे कह्युं शरीरमां बीजो अनेरो कोइ जीव नथी, अने ते जीव नथी तो धर्म पण नथी, जो धर्म नथी तो परलोक पण नथी. जेम गाम विना सीम न होय,

जेम स्त्री विना पुत्र न होय, तेम जाणी लेवुं. माटे पृथ्वी, पाणी, आकाश, अग्नि अने वायु ए पांच महाभूतना संयोगे आत्मा थाय छे. जेम धावडी महुडां मीठुं गोल अने पाणीथी मदशक्ति होय छे तेम जाणी लेवुं. बीजुं आकाशना फूलनी पेठे कांइज नथी. तो जीव क्यां छे? के जेने सुख पामवानी वांछा करीए? छतुं सुख छांडीने संदेह युक्त आगला अर्थने क्यां जोवा जइए?

तथा सुख दुःख सर्व कर्मे करी होय छे, ए वात पण अणमलती छे. जे माटे एक पाषाण नित्य सुखड अने फूले करी पूजाय छे अने एक पाषाणनी उपर नित्य विष्टा नाखीए तो हवे ए पाषाणे शुं सारुं मातुं कर्म आचर्युं छे? तेम प्राणीमात्रने पण सुख दुःखनुं कारण कांइज नथी. तप जप कष्टक्रिया जे कांइ करीए, ते सर्व क्लेशरूप फोकट जाणवी. एटली वात शूर बोल्यो.

हवे शिष्य ए वातनो उत्तर आपे छे. हे शूर! तुं जे कहे छे के जीव नथी तो हुं सुखी छुं, हुं दुःखी छुं, ए वातनो जाणनार कोण छे? जेम सुखड लगाडवाथी हर्ष पामीए, कांटो लागे दुहवाइए छीए, तेनो जाणनार तो जीवज छे, ए तो प्रत्यक्ष देखाय छे. जो तारा कहेवा प्रमाणे जीवज नथी तो पिता प्रमुख वडेरानां नाम पण

तारे कहेवां न जोइए. तथा कोप, प्रसाद, शोक, भूख, तृषा, तृप्तो, पीड्यो ए वात अनुमाने जीव जाणे छे, माटे जीव छे. तथा तें कह्युं जे पांच महाभूत छे तेज आत्मा छे, ते पण असत्य छे, केमके पांच भूत तो जड छे माटे जे जड ते चैतन्य केम होय? जो वेलु घणी पीलीए, तोपण तेमांथी तेल नीकले नहीं.

तथा तें जे शुभ अशुभ कर्म कांइज नथी, ए वात उपर पाषाणनो दृष्टांत कह्यो ते पण अयुक्त छे, जे माटे एक सुखी एक दुःखी, एक ठाकर एक चाकर. इत्यादि सारा माठा जे छे, ते सर्व पोतपोतानां कर्मे करी छे. ते माटे जो तप संयमरूप धर्म करीए, तो सफल थाय. धर्मनां फल इहांज देखाय छे ते माटे धर्म पण छे, परलोक पण छे अने सर्वज्ञ पण छे, तेना कहेला शास्त्रने योगे चंद्र सूर्य ग्रहण प्रमुख जाणीए छीए, माटे तुं कदाग्रह मूक. इत्यादि अनेक उत्तर प्रत्युत्तर आपीने शूरने निरुत्तर कर्यो. तें वारे राजाए शिष्यनी प्रशंसा करी अने शूरने राजाए कह्युं के हे पापी! तुं बापने नथी मानतो, सर्वने उठापे छे, तेथी सर्व कोइ अन्याय चोरी करशे अने राजा कोइने दंडशे नहीं? ते वारे सदाचारनी वात तो रहेशेज नहीं. एम कही राजाए रोष आणीने शूरने पकड्यो. तेने शिष्ये छोडाव्यो. ते वारे राजा फरी बोल्यो

के जूर्ड आ शिष्यमां दयानो गुण केवो ठे? ए निरीह ठे, साचो सदाचार कहे ठे. एम कही पठी शूरने पोताना नगरमांथी काढी मूक्यो अने वीजो वीर तो सन्मार्गे चालतो, धर्मनी स्थापना करतो तथा पुण्य ठे, पाप ठे, वीतराग देव ठे, सुसाधु गुरु ठे इत्यादि कहेतो हतो. तेने राजाए मान्यो ते मरीने देवता थशे. अंते मोक्षसुख पामशे, अने शूर नास्तिकवादी थको घणो संसार रझलशे ॥ इति धर्मस्थापने शूर अने वीरनी कथा ॥

॥ हवे अडतालीशमी पृछानो उत्तर एक गाथाए करी कहे ठे ॥

॥ गाथा ॥ जो निम्मल नाणचरि, त्त दंसणेहिं विभूसिअ सरीरो ॥ सो संसारं तरिउं, सिद्धिपुरं पावए पुरिसो ॥ ६१ ॥

भावार्थः—जे पुरुष निर्मल ज्ञान, चारित्र अने दर्शने करी विभूषित शरीरवालो होय ते पुरुष संसारसमुद्र तरीने मोक्ष नगर प्रत्ये पामशे ॥ ६१ ॥ जेम अभयकुमार ज्ञानादिक आराधी मोक्ष पामशे. तेनी कथा कहे ठेः—

मगध देशे श्रेणिक राजा राज्य करे ठे, तेनो पुत्र अने प्रधान अभयकुमार ठे. ते

चार बुद्धिनुं निधान छे, पोताना बापना राज्यने वृद्धिवंत करे छे. तेने राजाए राज्य आपवा माड्युं; परंतु ते पापना जयथी बीतो थको लीए नहीं.

एकदा श्रीवीर प्रज्जु आवी समोसस्या. तेमने अजयकुमारे वांदीने पूछ्युं के हे स्वामी! छेलो साधु कोण थशे ? प्रज्जुए कह्युं जदायिन राजा थशे.

हवे पोतानो पिता श्रेणिक राज्य मूकी दीक्षा लेतो नथी. ते वारे अजयकुमारे चिंतव्युं के जो हुं मारा पिताना आग्रहथी राज्य लइश, तो माराथी पण दीक्षा लेवाशे नहीं, माटे मारे राज्यथी काम नथी, पण मारा बापे एवुं वचन मारी पासेथी लीधेलुं छे जे मारी आज्ञा विना तारे किहां पण जवुं नहीं, तेनो शो जपाय करवो ? तेनी शोध करे छे.

एवामां माघ महिनाने दिवसे संध्यासमये चेलणा राणीए सरोवरनी पाल जपर एक साधुने काउस्सग्ग ध्याने रह्यो दीठो, ते वारे राणीए चिंतव्युं जे ए ऋषि रात्रिए टाढ केवी रीते सहन करशे ? एवा विचारमां घेर आवी रात्रिए शय्याए पोढी. तिहां पोतानो हाथ सोडनी बहार रही गयो, अने जागीने जोयुं तो हाथ टाढो लाग्यो, ते वखत साधु सांजरी आव्यो.

हवे श्रेणिक राजाए चिंतव्युं जे मारो अंतेजर सघलो विरुद्ध छे. पाछली रात्रिए

अभयकुमारे आवी जुहार कीधो तेने श्रेणिके कह्युं अंतेउरने प्रजाली नाखो. एम कही पोते वीर भगवानने पूछवा गयो. पाछलथी अभयकुमारे चिंतव्युं जे अंतेउरमां तो चेलणादिक महा सतीओ छे, माटे आग न देवाय. एम विचारी एक जूनी हस्तिनी शाला हती तेने आग लगाडी पोते श्रीवीरना समोसरण भणी चाल्यो. तिहां श्रेणिके श्रीवीरने पूछ्युं के हे भगवन् ! मारी स्त्री चेलणा सती छे, किंवा असती छे ? प्रभुए कह्युं चेला महाराजानी पुत्रीओ साते सतीओ छे. ते सांभली श्रेणिक पाछो वल्यो. गाममां आग बलती दीठी. मार्गमां अभयकुमार मल्यो तेने राजाए पूछ्युं के अंतेउरने आग लगाडी ? अभये कह्युं के हा स्वामी ! आग लगाडी. ते वारे श्रेणिके रोष आणीने कह्युं के तुं केम न बल्यो ? माटे तुं माराथी दूर जा. ते वारे अभयकुमारे कह्युं के मने आपनो आदेश जोतो हतो. सीली आग मांहे पेसी कार्यसाधन करशुं. एम कही समोसरणे जइ श्रीवीरने हाथे दीक्षा लीधी, राजा श्रेणिक पण फरी समोसरण भणी चाल्यो. ते जेटलामां राजा श्रेणिक आव्यो, एटलामां तो अभयकुमार दीक्षा लइने साधुना समुदायमां जइ बेठा. तेने राजाए आवीने वांद्यो, अपराध खमाव्यो. अभयकुमार ज्ञान, दर्शन, चारित्र पाली सर्वार्थसिद्ध विमाने

पहोंता. ते एकावतारी थइ मोक्षे जशे. इति अजयकुमार कथा ॥ महिहारं वारत्व, श्रीदं गौरतनुं मतम् ॥ जितैनसं सूर्यरम्यं, प्रणमामि मुहुर्मुहुः ॥ १ ॥ एकाक्षरांतरितं नामत्रयं ॥ एम अरुतालीश पृछाना उत्तरो परमेश्वरे कह्या ॥

॥ गाथा ॥ जं गोयमेण पुठं, तं कहियं जिणवरेण वीरेण ॥ जवा जावेह सया, धम्माधम्मं फलं पयडं ॥ ६३ ॥ अरुयालीसा पण्ह, त्तरेहिं गाहाण होइ चउसठि ॥ संखेवेणं जणिया, गोयमपृछा महछावि ॥ ६४ ॥

जावार्थः—जे कांइ पुण्यपापनां फल श्रीगौतमस्वामीए पूछ्यां, ते सर्व जिनवर श्री महावीरस्वामीए कह्यां. ते जो जव्य लोको ! तमे जावे करी सदैव धर्म अधर्मनां फलने प्रगट विचारो, धर्म आदरो ॥ ६३ ॥ हवे ए शास्त्रमां प्रश्नोत्तरनी गाथानी संख्या कहे छे. अरुतालीश प्रश्नोत्तरे करी चोसठ गाथा थइ. एवो श्रीगौतमपृछारूप जे ग्रंथ ते जो पण महा अर्थरूप छे तोपण अहीं संक्षेपथी कह्यो ॥ ६४ ॥ इति बालावबोधसहितं गौतमपृछाशास्त्रं संपूर्णम् ॥

॥ अथ हरियाली ॥

॥ सेवक आगल साहेब नाचे, वहे गंगाजल खारे ॥ गर्दज

साटे गयवर वेच्या, ए अचरिज मोहे जारे ॥ १ ॥ चतुर नर
बूझो ए हरियाली ॥ जेम उत्तराहु देहि संजाली ॥ ए आंकणी ॥

अर्थः—कर्मरूपी सेवकनी आगल जीवरूपी राजा नाचे बे तथा गंगा नदीना मीठा जल समान जे जैनवाणी बे तेना खारा जल समान खोटा अर्थ केटलाएक मतवादीउं करे बे तथा प्रमादरूप गर्दजनी आगल संयमरूप हाथी वेचाय बे; अर्थात् केटलाएक संयमधारको प्रमादने वश पमी चोखुं चारित्र पाली शकता नथी, माटे ए मुजने मोटुं आश्चर्य थाय बे ॥ १ ॥ हे चतुर जनो, ए हरियाली तमे समजो अने एनो उत्तर संजाली आपो.

॥ मांकडने वश जोगी नाच्यो, मार्यो सिंह शियाले ॥ एक
चीटीए पर्वत ढायो, अचरिज इण कलिकाले ॥ च० ॥ २ ॥

अर्थः—मनरूपी मांकडाने वश पड्या थका असंयती योगीजनो नाचे बे तथा शील-रूपी सिंहने कामरूपी शियालीए मार्यो तथा एक तृष्णारूपी कीटिकाए संतोषरूपी पर्वतने पामी नाख्यो. ए अचरिज कलिकाल मांहे देखाय बे ॥ २ ॥

॥ सुरतरु शाखाए कागज बेठो, विषधर गरुड त्रिकारे ॥
कस्तूरी परनाळे वाहे, लसण जमुं जंकारे ॥ ३ ॥ च० ॥

अर्थः—जिनशासनरूपी कल्पवृक्षनी उपर कुगुरुरूपी कागडो बेठो तथा क्रोधरूपी सर्प ते ज्ञानरूपी गरुडने त्रिकारे छे तथा समतारूप कस्तूरी छे तेने असत्य वचनरूप परनालिका मांहे वहावी दीधी अने ममता दुर्गंधरूप लसणनो संचय करी जंकारमां जम्यो छे ॥ ३ ॥

आंबो अकफल एक तरु लागा, हंस काग एक माळे ॥
मेंढे नाहर लाते मार्यो, नासी गयो पाताळे ॥ ४ ॥ च० ॥

अर्थः—जीवरूपी एक वृक्ष तेने विषे आंबानां फल समान सुख लाग्यां अने आकडानां फल समान दुःख लाग्यां एम बे जातनां फल एक जीवरूप वृक्षने विषे लाग्यां. तथा एकज जीवरूपी माळो तेनी उपर पुण्यरूप हंसपक्षी अने पापरूप कागपक्षी आवी बेठा तथा अज्ञानरूप मेंढे विवेकरूपी नाहरने लाते मार्यो, परहो टाळ्यो ॥ ४ ॥

॥ मछारक मुख मयगल गलिया, राजा घरघर हिंडे ॥
एकज थंजे पण गज बांध्या, रान होइ कण खंडे ॥ ५ ॥ च० ॥

अर्थः—आ कलिकालना जीव स्वल्प पुण्यवान छे, माटे मछर समान जाणवा. ते मछर समान मिथ्यात्वी जीवो ते मयगल समान मोटा जिनधर्मने गली जाय छे तथा जीवरूप राजा ते कर्मने वश रह्यो थको चोराशी लक्ष जीवायोनिरूप घरघरने विषे हिंडे छे, भ्रमण करे छे तथा एक जीवना एकज शरीररूपी थांजाने विषे पांच इंद्रियरूपी पांच हाथी बांध्या छे ते मदोन्मत्त थका सांकलोना बंधने तोडी रह्या छे तथा अव्रतरूपी रानः रण ते व्रतरूपी धान्यना कणनी खंडना करे छे ॥ ५ ॥

॥ आठ नारी मलि एक सुत जायो, बेटे बाप वधाऱ्यो ॥ चोर
वस्या मंदिरमां आवी, घरथी साह कढायो ॥ ६ ॥ च० ॥

अर्थः—कर्मनी मूलप्रकृति आठ छे तेज आठ नारी जाणवी. तेणे संसाररूपी एक पुत्र पेदा कीधो छे तथा कपटरूपी बेटाए मोहरूपी पिताने वधाऱ्यो छे एटले मोटो कऱ्यो छे तथा विषयरूपी चोर ते कायारूप मंदिरमां आवी वस्या छे, तेणे शीलसाहसिकरूपी मोटा शाहुकार तेने घरमांथी काढी मूक्या छे ॥ ६ ॥

॥ एक अग्नि सघलो जल शोषे, वेश्या घूंघट काढे ॥
कुलवंती कुल लाज त्यजी करी, घर घर बाहिर हिंडे ॥ ७ ॥ च० ॥

अर्थः—एक तृष्णारूपी अग्निए संतोषरूपी सर्व जल पीधुं छे तथा माया कपटरूपणी वेश्या ते मीठा वचनरूपी घूंघट काढे छे तथा सर्वविरतिरूप कुलवंत स्त्रीए पोतानी लाजनो त्याग करीने असंयमरूपी अनेक थानक छे तेज अनेक घर जाणवां, तद्रूप घरघरने विषे बहार फरती हिंडे छे.

॥ ए परमारथ ज्ञान सुनी करी, आतम ध्यान सुध्यावो ॥
विनयसागर मुनि इम उपदेशे, धर्ममति मन लावो ॥ ८ ॥ च० ॥

अर्थः—ए वातनो ज्ञानमय परमार्थ जे श्रीवीतरागनां वचन, तेने संभारीने आत्मध्यान ध्यावाने प्रवर्त्तो, विनयसागरजी मुनि एवी रीते उपदेश करे छे के, धर्मनी बुद्धि तमारा मनने विषे आणो, के जे थकी जन्म, जरा अने मरणनां दुःखथी विमुक्त थइ मुक्तिनां सुख पामो ॥ ८ ॥

ममत्वनी प्रबलता.

ममत्वनी केटली प्रबलता छे, ते जुओ के साध्य तद्दन भूलाइ गयुं छे. अने राग द्वेषनी जे निवृत्ति थवी जोइए तेने बदले राग द्वेषनी वृद्धि अने खंडन मंडन मरजी मुजब करी जिनवचन शुं छे, जैन केम थवाय ते एक तरफ राखी पोते पोताना पक्षमां भोळा लोकोने भरमावी सामेल करे छे, अने ते पाछा खसी न जाय तेने माटे अनेक कुयुक्तिओ शीखवी ममत्वमां लीन करी देइ अने आज धर्म छे एम समजावे छे. आवा वर्तनवाळा जो जैनपणुं पोतामां मानता होय तो ते मोटी भूल खाय छे. जैननी रीति आवी होयज नहीं; माटे जैन थवुं होय तो तेथी राग द्वेष उत्पन्न थाय एवी एके क्रिया न करतां राग द्वेषना परित्याग तरफज दृष्टि रखाय तोज जैन थइ शकाशे. हालना वर्तनथी जो कोइने जैन बनवुं होय तो दरेक तरफथी एमज बोलाशे के के अमो जैन अमो जैन, अने तरत पोताना समुदायमां खेंचवा माटे पोतानुं मंडन अने बीजाना खंडननो प्रवाह एकदम शरु थइ जशे. स्थानकवासी कहे के अमो जैन छीए, दिगंबरी कहेशे के अमो जैन छीए, बीजा खोटा छे. श्वेतांबरीमां पण

अनेक गच्छथी जूदा जूदा गच्छवाला पोतपोतामां जैनपणुं स्थापन करशे. तेथी पूछनार जो विचक्षण हशे तो तरत एमज कहेशे के आमां जैन एके नथी, जैननो उद्देश राग द्वेष जीतवानो छे, तेमां आ लोको तो राग द्वेषथी भरेलाज नजरे पडे छे. आ उपरथी हुं एम नथी कहेवा मागतो के असत्यने असत्य न कहेवुं, पण मारे एम तो कहेवुं जोइए के असत्यनुं प्रतिपादन करतां पोताने असत्य तो नज बनवुं जोइए, पण सत्यान्वेषी बनवुं जोइए, सत्यान्वेषी बनता जो हठवाद कदाग्रहमां पडी जाय तो पोतेज असत्यग्राही शा माटे न कही शकाय ? माटे हालमां जैनोमां जे मारामारी अने वैरभाव नजरे जोवामां आवे छे ते कोइ रीते जैन शब्दने छाजे तेम नथी, माटे आपणे जैन बनवुं होय तो आनंदघनजी महाराजनां वचन सदा याद राखी वर्तवुं जोइए.

Printed by B R. Ghanekar, at the N S. Press, 23, Kolbhat Lane, Bombay, and Published by Bhanji Maya, for Shravak Bhimsi Manek, Mandvi, Saka Lane, No. 225–231, Bombay.

जाहेरखबर

पांडवचरित्र

आ ग्रंथनुं शुद्ध सरल गुजराती भाषांतर प्रसंगोपात आशरे १०० रंगीन मनोहर चित्रो सहित बहार पड्युं छे.

तेमां श्री नेमीश्वर भगवान्, बलभद्र, वासुदेव जे श्रीकृष्ण, प्रतिविष्णु जे जरासंध, पांडव, कौरव, भीष्मपितामह, कर्ण, द्रोणाचार्य अने कृपाचार्यादिक अनेक वीर पुरुषोनां चरित्रो छे. तेउंनी कथारूप अमृतनी धारानुं पान करतां कोइ पण मनुष्यने तृप्ति थाय नहीं, कारण के ते ग्रंथ एटलो तो रसिक छे के वारंवार वांचवा मन थाय छे. किमत रू० ५—०—०

श्री हरिभद्रसूरि कृतान्यष्टकानि. (मूल, तेनो अर्थ, अने टीकानो भावार्थ, संस्कृत परथी गुजराती.) आ ग्रंथमां नीचे प्रमाणे बत्रीश विषयो छे.

(१) महादेवाष्टकम्. (२) स्नानाष्टकम्. (३) पूजाष्टकम्. (४) अग्निकारिकाष्टकम्. (५) भिक्षाष्टकम्. (६) सर्वसंपत्करी भिक्षापूर्वकपिंडविशुद्ध्यष्टकम् (७) प्रच्छन्नभोजनाष्टकम्. (८) प्रत्याख्यानाष्टकम्. (९) ज्ञानाष्टकम्. (१०) वैराग्याष्टकम्. (११) तपोऽष्टकम्. (१२) वादाष्टकम्. (१३) धर्मवादाष्टकम्. (१४) एकांतनित्यपक्षखंडनाष्टकम्. (१५) एकांतानित्यपक्षखंडनाष्टकम्. (१६) नित्यानित्यपक्षखंडनाष्टकम्. (१७) मांसभक्षणदूषणाष्टकम्. (१८) अन्यदर्शनीयमतशास्त्रोक्त मांसभक्षणाष्टकम्. (१९) मद्यपानदूषणाष्टकम्. (२०) मैथुनदूषणाष्टकम्. (२१) सूक्ष्मबुद्ध्यष्टकम्. (२२) भावशुद्ध्यष्टकम्. (२३) शासनमालिन्याष्टकम्. (२४) पुण्यादिचतुर्भंग्याष्टकम्. (२५) पितृभक्त्यष्टकम्. (२६) महादानस्थापनाष्टकम्. (२७) तीर्थकृद्दानाष्टकम्. (२८) राज्यादिदानदूषणनिवारणाष्टकम्. (२९–३०) सामायिकाष्टकम्. (३१) देशनाष्टकम्. (३२) सिद्धस्वरूपाष्टकम्. तथा दान माटे वीर प्रभुनुं स्वरूप, मोक्षनुं स्वरुप, महावीर प्रभुए पितृभक्ति माटे लीधेला अभिग्रहनुं स्वरूप, श्री वीर प्रभुना दाननुं स्वरूप, प्रभु देशना शामाटे आपे छे ? तेनुं स्वरूप, पुण्यानुबंधी पुण्यादि चारे भांगाउनुं स्वरूप, तथा सामायि-

कनुं स्वरूप वगेरे. मूल संस्कृत, तेनो अर्थ अने टीकानो जावार्थ सहित अति रसिक ग्रंथ छे. किमत रू० १—१२—०

प्रकरण रत्नाकर जाग १ लो—आ ग्रंथमां साडी त्रणसो गाथानुं स्तवन, आगमसार, नयचक्रसार, आनंदघनजीनी चोवीशी, द्रव्य गुण पर्यायनो रास, आठ दृष्टिनी सज्झाय, अध्यात्मसार, समाधिशतक, दिक्पट चोराशी बोल, चिंतामणि पार्श्वजिनस्तोत्रं विगेरे ग्रंथो आवेला छे. (छपला सर्वे ग्रंथो मूल अने जाषांतर सहित छे.) किमत रू० ५—०—०

सिवाय छपला ग्रंथना अलग अलग कटका जुदा बंधाव्या छे तेनी विगत.

प्रकरण रत्नाकर जाग १ लो, कटको पहेलो— आ ग्रंथमां श्रीमद्यशोविजयजी रचित विहरमान तीर्थंकर श्री सीमंधर स्वामिनी स्तुतिगर्जित साडी त्रणसो गाथानुं अति अद्भुत स्तवन अर्थ सहित छे. तथा श्री देवचंद्रजी कृत आगमसार, जेमां यथा-प्रवृति प्रमुख त्रण करणनुं, सात नयनुं, चार निक्षेपानुं, प्रमाणोनुं तथा सप्तजंगीनुं स्वरूप संक्षेपथी दर्शावेलुं छे. किमत रू० २—०—०

प्रकरण रत्नाकर जाग पहेलो, कटको बीजो—आ ग्रंथमां श्री देवचंद्रजी कृत नय-

चक्रसार तथा आनंदघनजी कृत चोवीशी तथा द्रव्य गुण पर्यायनो रास, ए रसिक ग्रंथो अर्थ सहित छे. किमत रू० २–४–०

प्रकरण रत्नाकर भाग पहेलो, कटको त्रीजो—आ ग्रंथमां श्रीमद्यशोविजयजी कृत अध्यात्मसार अने आठ दृष्टिनी सझाय तथा समाधिशतक, समताशतक तथा दिक्पटना चोराशी बोल तथा चिंतामणि पार्श्वनाथजिनस्तोत्रं, ए ग्रंथो अर्थ तथा बालावबोध सहित छे. किमत रू० २–०–०

प्रकरण रत्नाकर भाग बीजा मांहेलुं समयसार नाटक (बनारसी कृत.)—आ ग्रंथमां पदलालित्यना तथा अर्थगौरवतादिक जे काव्यना सारा गुण वर्णन कर्या छे ते आ ग्रंथ वांचवाथी जणाशे. तेमज अलंकार वडे कविता सारी रीते भूषित करी छे. जो के आ ग्रंथ दिगंबरीनो रचेलो छे, तोपण एनो विषय आध्यात्मिक होवाथी सर्वने उपयोगी छे. किमत रू० २–८–०

प्रकरण रत्नाकर भाग ४ थो (त्रीजी आवृत्ति.)—आ ग्रंथमां इंद्रिय पराजय शतक बालावबोध सहित, तथा संग्रहणीसूत्र बालावबोध सहित, तथा लघुक्षेत्र समास तथा छए कर्मग्रंथ बालावबोध सहित सरस उंचा कागलमां मोटा सरस टाइपमां छापेल छे. ७-०-०

जैन तत्त्वादर्श ग्रंथ—(महामुनि श्रीआत्मारामजी महाराज विरचितनुं हिंदुस्तानी शुद्ध भाषांतर) इसमें जुदा जुदा बार परिछेद (खंड) है. १ इसमें शुद्ध देवतत्त्वका स्वरूप कथन कीया है. २ कुदेवका स्वरूप वर्णन कीया है. ३ शुद्ध गुरुतत्त्वका स्वरूप कहा है. ४ कुगुरुका स्वरूप कथन कीया है. ५ शुद्ध धर्मतत्त्वका स्वरूप नवतत्त्वरूपसें कथन कीया है. ६ सम्यक्ज्ञानका स्वरूप कथन करके वास्ते चौद गुणस्थानकोके स्वरूप कथन कीया है. ७ सम्यक्दर्शनका स्वरूप कथन करा है. ८ सम्यक्चारित्रके स्वरूप संबंधी श्रावकोकां बार व्रतोका स्वरूप विस्तारपूर्वक वर्णन कीया है. ९ श्रावकोका दिनकृत्य श्राद्धविधि ग्रंथानुसारसें लीखा है. १० श्रावकोकां रात्रिकृत्य, पाक्षिककृत्य, चौमासीकृत्य, संवत्सरीकृत्य अरु जन्मकृत्य, ए पांचो कृत्यका स्वरूप वर्णन करा है. ११ आदीश्वर भगवानसें लेकर श्री महावीर भगवान् पर्यंतके कितनेक इतिहासका वर्णन करके जैनमत अनादि है ऐसा सिद्ध करा है. १२ श्री वर्द्धमान स्वामिके निर्वाण पीछे किंचित् इतिहास लीखे है ऐसा वर्णन इस बुकमें है.

हिंदुस्तानी भाषांतर किमत रु० ५—०—० गुजराती भाषांतर किमत रु० ४—०—०

शुद्धिपत्रकः—पानाना अंक ५० पछी ५३ ५४ ५१ अने ५२ छे, त्यां ५० पछी ५१ ५२ ५३ अने ५४ समजवा.

जैनकथारत्नकोष भाग १ लो समाप्त.

टीकाः—पुनराह ॥ मुग्धप्रतारणेति ॥ कपटे मायायां लंपटा वांछायुक्ता चित्तवृत्तिर्मनोव्यापारो यस्य तस्य पुरुषस्य यत्पाटवं चातुर्यं उज्जिहीते उल्लासति । तत्पाटवं अवश्यं निश्चयेन आयतौ आगामिनि काले उपप्लवं उपद्रवं अकृत्वा अविधाय न जीर्यति परिणामं न याति । किं कुतः ? तस्य विपाको भवत्येव । किमिव ? अपथ्यभोजनं आमयमिव । यथा अपथ्यं भोजनं जेमनं आमयं रोगं अकृत्वा आयतौ न जीर्यति । कथंभूतं पाटवं ? मुग्धानां मूर्खाणां प्रतारणे वंचने परायणं तत्परं ॥ अत्र मल्लीनाथजीवमहाबलदृष्टांतः ॥ ५६ ॥ इति ॥ सिंदूरप्रकराख्यस्य, व्याख्यायां हर्षकीर्त्तिभिः ॥ सूरिभिर्विहितायां तु, मायायाः प्रक्रमोऽजनि ॥ १२ ॥ इति द्वादशो मायाप्रक्रमः ॥ १२ ॥

भाषाकाव्यः—आभानकछंद ॥ ज्यौं रोगी करी कुपथ, बढावे रोग तन ॥ स्वाद लंपटी भयो, कहै मुऊ जनम धन ॥ त्यौं कपटी करी कपट, मूढको धन हरे ॥ करे कुगतिकों बंध, हरष मनमें धरे ॥ ५६ ॥

हवे लोभत्यागनो उपदेश करे छे.

शार्दूलविक्रीडितवृत्तद्वयम् ॥ यद्दुर्गामटवीमटंति विकटं क्रामंति देशांतरम्, गाहंते गहनं समुद्रमतनुक्लेशां कृषिं कुर्वते ॥ से-

वंते कृपणं पतिं गजघटासंघट्टदुःसंचरम्, सर्पंति प्रधनं
धनांधितधियस्तल्लोभविस्फूर्जितम् ॥ ५७ ॥

अर्थः—(धनांधितधियः के०) धने करी अंध थयेली छे बुद्धि जेनी एवा पुरुषो अर्थात् लोभी जनो (यत् के०) जे धनने माटे (दुर्गां के०) न जवाय एवी (अटवीं के०)अरण्य प्रत्ये (अटंति के०) अटन करे छे, एटले अरण्यमां फरे छे. वली (विकटं के०) विस्तीर्ण एवा (देशांतरं के०) देशांतर प्रत्ये (क्रामंति के०) भ्रमण करे छे. वली (गहनं के०) कोइथी न अवगाहन थाय एवा (समुद्रं के०) समुद्र प्रत्ये (गाहंते के०) अवगाहन करे छे. वली (अतनुक्लेशां के०) बहु कष्टे करी साध्य थाय एवी (कृषिं के०) खेतीने (कुर्वंते के०) करे छे. वली (कृपणं के०) अदाता एवा (पतिं के०) स्वामीने (सेवंते के०) सेवे छे. वली (गजघटासंघट्टदुःसंचरं के०) हस्तिसमूहना यूथे करी जेमां न जवाय एवा (प्रधनं के०) युद्ध प्रत्ये (सर्पंति के०) जाय छे. (तत् के०) ते पूर्वोक्त सर्व (लोभविस्फूर्जितं के०) लोभनुं विचेष्टित जाणवुं. अर्थात् लोभवशे करी प्राणी सर्व चेष्टा करे छे. माटे लोभनो त्याग करवो ॥ ५७ ॥